TEXT FLY
WITHIN THE
BOOK ONLY
TEXT PROBLEM
WITHIN THE
BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182903
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H80 B79B Accession No. H 3281

Author प्र हेमानन्द

Title बंगला (भाषा और साहित्य) पर हिन्दी (भाषा और साहित्य) का प्रभाव 1962.

This book should be returned on or before the date last marked below.

बँगला (भाषा और साहित्य) पर हिन्दी (भाषा और साहित्य) का प्रभाव

(आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

लेखक

डॉ० ब्रह्मानन्द एम० ए०, पी-एच० डी०,

प्राध्यापक हिन्दी-विभाग

डूंगर कालेज, बीकानेर

प्रकाशक

अशोक प्रकाशन

नई सड़क, दिल्ली।

प्रकाशक :

जगदीशचन्द्र गुप्त

अशोक प्रकाशन

नई सड़क, दिल्ली ।

प्रथम संस्करण : फरवरी १९६२

मूल्य : १५·००

मुद्रक :

निरंजन स्वरूप सक्सैना

डीलाईट प्रेस,

दिल्ली ।

भूमिका

'जादू उसे कहते हैं जो सिर पर चढ़ कर बोले' यह उक्ति गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के संबंध में शत-प्रतिशत चरितार्थ होती है, निःसन्देह उनकी गीतांजलि के माध्यम से उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का जादू भारत पर ही नहीं, प्रत्युत सारे विश्व पर हुआ है।

आज से दस वर्ष पूर्व जब लेखक १९५० में इन्टरमिडियट श्रेणी का विद्यार्थी था, तब गीतांजलि के हिन्दी अनुवाद रूपी वातायन से ही उदात्त-भावना का समन्वित आलंकारिक-भाषा-सम्पन्न रवीन्द्र साहित्य रत्नाकर की एक झलक पा सका। लेखक गीतांजलि के आकर्षण से ही रवीन्द्रनाथ के प्रति श्रद्धान्वित हुआ और रवीन्द्रनाथ के माध्यम से ही गौरवमयी बंगभारती के दर्शन कर भाव-विभोर हो गया।

यह सन् १९५१ की बात है कि जब साहित्यरत्न के एक प्रश्न-पत्र के लिए प्रान्तीय भाषाओं में से किसी एक को चुनने का विकल्प था। अतः बँगला से सहज प्रेम होने के कारण इसी को चुना।

जब आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी-विद्यापीठ में शोध-कार्य के लिये प्रवेश लिया तब विषय चुनने के कई सुझाव मिले। तुलनात्मक अध्ययन का भी एक सुझाव था। तब पूर्व संस्कारोंवश लेखक ने बँगला को ही इस अध्ययन का विषय बनाना श्रेयस्कर समझा।

बँगला के प्रति लेखक का सहज मोह था, और इस कार्य के लिये विद्यापीठ तथा पूज्य श्री हरप्रसाद बागची महोदय का निजी वाणी मंदिर पुस्तकालय, बँगला लाइब्रेरी आदि उपयुक्त साधन भी मिल गये।

श्रद्धेय बाबू गुलाबराय जी और जिन-जिन बंगाली विद्वानों से लेखक ने लिखा-पढ़ी की उनसे पूर्ण प्रोत्साहन मिला।

अन्ततोगत्वा गुरुवर डॉ० सत्येन्द्र जी की देखरेख में यह शोध-कार्य करना निश्चित हो गया।

अतः प्रस्तुत अनुसंधान कार्य में बँगला और हिन्दी की आदान-प्रदान की युग-युगीन विस्मृत एवं प्रच्छन्न कड़ी को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। लेखक का उद्देश्य किसी एक भाषा एवं साहित्य की श्रेष्ठता दिखाना नहीं है, वरन् घटनाओं और तथ्यों के आधार पर बँगला और हिन्दी दोनों का निकट सम्पर्क और भारत की आत्मास्वरूप व्यापक विचारों और भावों के मिले-जुले तन्तुओं को देखना है। दोनों ही व्यापक भारतीय साहित्य के पुष्ट और प्रबल अंग हैं। दोनों ही भारतीय विचारधारा और काव्य-परम्पराओं से अनुप्राणित हैं। दोनों ही एक दूसरे

के आदान-प्रदान से पनपे और पुष्ट हुए हैं। अतः लेखक का इसी आदान-प्रदान के अध्ययन के लिये यह शोध-प्रबंध एक प्रयास है।

भारत में अद्भुत सांस्कृतिक एकता है, इसी विशाल देश को एक सूत्र में पिरोने वाली भारतीय सस्कृति ही है। इस संस्कृति का स्रोत संस्कृत भाषा एवं साहित्य के रूप में भारतीय भाषाओं में प्रवाहित होता रहा है।

संस्कृत एवं इसकी परवर्ती भाषाएं मध्यदेशीय भाषा होने पर समग्र देश को उत्प्रेरित और प्रभावित करती रही हैं। यह एक इतिहास का सत्य है, जैसा कि स्वनाम-धन्य भारत के प्रसिद्ध भाषाचार्य डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी का कथन है, "मध्यदेश ही (दिल्ली आगरा का प्रदेश) सदैव से भारत में संस्कृति का अग्रदूत, राजनीति और प्रशासन का केन्द्र, भाषा और साहित्य का दुर्ग और प्रेरणास्थल रहा है। संस्कृत की परवर्ती समस्त मध्यदेशीय भाषाएं क्रमशः पाली, प्राकृत, शौरसेनी, अपभ्रंश, ब्रजभाषा (पश्चिमी हिन्दी) एवं आधुनिक हिन्दी या उर्दू (खड़ी बोली के दो रूप) सदैव से भारतीय जीवन के हर पहलू पर गंभीर और चिरस्थायी प्रभाव छोड़ती आई हैं।" मध्यदेश को भारत का हृद्पिण्ड कह सकते हैं और इसकी भाषाओं के साहित्य को इसका युग-युगीन स्पन्दन।

हिन्दी का अन्य प्रान्तीय भाषाओं पर प्रभाव एवं भारतीय गणराज्य की राष्ट्र-भाषा होने का रहस्य भी इसी में निहित है।

एक भाषा का प्रभाव दूसरी भाषाओं पर यों ही (अकस्मात) नहीं पड़ता है। उसके पीछे गंभीर एवं ठोस सांस्कृतिक, राजनीतिक, साहित्यिक तथा ऐतिहासिक कारण और घटनाएं हुआ करती हैं।

यह विश्व-इतिहास से सिद्ध हो चुका है कि संस्कृति एवं साहित्य के क्षेत्र में सदैव आदान-प्रदान होता रहता है। पारस्परिक आदान-प्रदान का सिद्धान्त भारतीय-भाषाओं पर भी लागू होता है।

हिंदी भाषा और साहित्य का प्रभाव युग-युगान्तर से बँगला, मराठी, गुजराती और पंजाबी आदि इसकी भगनियों पर रहा है। उक्त भाषाओं का प्रभाव भी न्यूनाधिक रूप में हिंदी पर पड़ा है।

हिंदी का प्रभाव बँगला भाषा और साहित्य पर उसके शैशव-काल से लेकर आधुनिक-काल तक दृष्टिगोचर होता है, बंगाल के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान, बँगला भाषा एवं साहित्य के इतिहासकार सर्वश्री डॉ० दीनेशचन्द्र सेन, डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी डॉ० सुकुमार सेन, डॉ० मोहम्मद शहीदुल्ला, डॉ० सुशील कुमार दे, डॉ० शशिभूषण दास गुप्त, डॉ० सत्येन्द्रनाथ घोषाल, डॉ० उपेन्द्रनाथ भट्टाचार्य आदि महानुभाव हिंदी का बँगला पर प्रभाव मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं।

कुछ लोगों की धारणा है कि बँगला का प्रभाव ही हिंदी पर है, हिन्दी का बँगला पर नहीं प्रतीत होता। यह विचार ठीक नहीं है। क्योंकि संस्कृति और भाषा के क्षेत्र में एक हाथ से ताली नहीं बजती ? क्योंकि प्रत्येक भाषा अनेक भाषाओं की खिचड़ी होती है। प्रत्येक साहित्य अनेक भाषाओं के साहित्यों से कुछ न कुछ आधार एवं प्रेरणा लेकर निर्मित होता है। संसार के इतिहास में ऐसी कोई भाषा नहीं जो बिलकुल अन्य भाषाओं के प्रभाव से बच सकी हो।

ऐसे भ्रामक विचार दोनों भाषाओं के साहित्य एवं इतिहास की अनभिज्ञता तथा अन्य कारणों से उत्पन्न होते हैं। कुछ भी हो, हिन्दी का बँगला पर प्रभाव ऐतिहासिक घटना है।

अतः इस प्रभाव का परिचय देने के लिए प्रस्तुत प्रबन्ध के बँगला साहित्य के इतिहासानुसार काल-विभाजन के अनुसार चार अध्याय किये गये हैं। तथा प्रत्येक अध्याय के साथ ही उसका परिशिष्ट भी दे दिया गया है।

प्रथम अध्याय : पृष्ठभूमि तथा प्रारम्भिक काल (चैतन्य पूर्वयुग) (८००-१४०० ई०)

द्वितीय अध्याय : प्रारम्भिक भक्ति आन्दोलन का इतिहास (चैतन्य-वैष्णव युग) (१४००-१७०० ई०)

तृतीय अध्याय : चैतन्योत्तर (वैष्णवोत्तर) काल (इस्लामिक बँगला) परम्परा साहित्य की (१७००-१८५० ई०)

चतुर्थ अध्याय : आधुनिक काल (१६०० से······)

यह कालक्रम सैकड़ों साल तक जाता है। अतः प्रत्येक युग की कोई अन्तिम कठोर सीमारेखा निर्धारित नहीं हो सकती। अतः प्रत्येक युग की साहित्यिक एवं भाषायी धारायें समानान्तर भी चलती रहती हैं। एक दूसरी की सीमा को पार (overlap) भी कर जाती हैं। किन्तु किसी एक की प्रधानता होने पर युग का नामकरण उसी प्रवृत्ति के आधार पर होता है।

प्रथम अध्याय में दोनों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि एवं एकता और आरम्भिक काल पर कुछ प्रकाश डाला गया है। अपभ्रंश साहित्य, नाथ-साहित्य, मैथिली भाषा या विद्यापति साहित्य के विषय में कुछ विवेचन किया गया है। इसी अध्याय के परिशिष्ट में कुछ पत्रों की प्रतिलिपियाँ भी दी गई हैं।

द्वितीय अध्याय में बँगला के गौड़ीय वैष्णव साहित्य पर हिन्दी का प्रभाव पाँच रूपों में दिखाया गया है। यह प्रभाव भक्ति आन्दोलन का कुछ परिचय देते हुए स्पष्ट किया गया है। क्योंकि भक्ति आन्दोलन के परिणामस्वरूप ही हिन्दी का प्रभाव बंगला पर पड़ा है। यह पंचमुखी प्रभाव इस . ार है:—

१—शब्दगत हिन्दी प्रभाव।
२—वाक्यविन्यासगत हिन्दी प्रभाव।
३—पदगत हिन्दी प्रभाव।
४—भाषागत (ब्रजबुलिगत) हिन्दी प्रभाव।
५—हिन्दी भक्तमाल का प्रभाव।

इस अध्याय के परिशिष्ट में गौड़ीय वैष्णव पदावली में हिन्दी शब्दावली की सूची भी दी गई है।

तृतीय अध्याय में इस्लामिक बँगला साहित्य की परम्परा पर हिन्दी प्रभाव की चर्चा की गई है। दौलत काजी, आलाओल, मुसलमानी बँगला साहित्य एवं मुसलमानी बँगला भाषा, भारतचन्द्र राय तथा रामनिधि गुप्त पर हिन्दी प्रभाव का दिग्दर्शन है। इसी अध्याय के परिशिष्ट में बँगला रामायणों पर तुलसी रामायण के प्रभाव के बारे में कुछ प्रकाश डाला गया है, और अन्य रायबार (राज प्रशस्तियों) पर हिन्दी प्रभाव का सिहावलोकन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में भी आधुनिक बँगला भाषा और साहित्य पर हिन्दी के प्रछन्न प्रभाव की रूपरेखा प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर हिन्दी संगीत और संत साहित्य के प्रभाव के विषय में विशेषरूप से लिखा गया है।

इसी अध्याय के परिशिष्ट में बंगला में हिन्दी शब्दावली, हिन्दी लोकोक्तियों का प्रभाव बँगला लोकोक्तियों और कुछ गद्यांश-पद्यांशों पर और हिन्दी सगीत का बँगला संगीत और साहित्य पर प्रभाव का कुछ विवेचन किया गया है। अन्त में कुछ अनुवादों की, विशेषतः हिन्दी से बँगला में जो अनुवाद हुए हैं, उदाहरण के लिए उनकी छोटी सी सूची भी दी गई है। सहायक ग्रन्थों की सूची भी दी गई है।

लेखक की शैली कहीं-कहीं प्रस्तुत प्रबन्ध में बँगला से प्रभावित हो गई है। अतः सहज भाव से अवचेतन अवस्था में कुछ शब्दों का प्रयोग इस प्रकार हो गया है। जैसे—ईस्वी सन् के लिए ख्रीष्टाब्द, लोकोक्ति के लिए प्रवाद, योगदान के लिए अवदान, साहित्यिक भाषा के लिए साधु भाषा, बोलचाल की भाषा के लिए चलित भाषा, शास्त्रीय हिन्दी संगीत के लिए उच्चाँग हिन्दी संगीत आदि शब्दों के प्रयोग हुए हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध में यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि हिन्दी का प्रभाव भारत की आतमा का प्रभाव है। भारत की आत्मा को बँगाल ने प्रचुर मात्रा में अपनाया है। हिन्दी भारतीय आत्मा का दर्पण एवं माध्यम है। इसी माध्यम से इन दोनों बहनों का परस्पर मिलन हुआ है। भूतकाल की तरह भविष्य में भी इनमें आदान-प्रदान होता रहेगा और ये घनिष्ठता के आलिगन में आबद्ध हो जायेंगी।

इस प्रबन्ध का निर्माण करने में लेखक को विकटतम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है। इस प्रबंध के सृजन का श्रेय भारत के दो बड़े ऐतिहासिक नगरों को है। यदि प्रबंध की आत्मा कलकत्ता (बंगभूमि) की है तो निःस्सन्देह इसका सुन्दर शरीर आगरा (ब्रजभूमि) का है।

इस प्रबन्ध के अनुसंधान कार्य के लिए लेखक को दो साल तक कलकत्ता में रहना पड़ा है। वहाँ बंगाल के चोटी के विद्वानों का सहयोग और स्नेह प्रचुर मात्रा में उसे प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत प्रबन्ध उनके वरदान और आशीर्वाद का फल है। इस प्रबन्ध की रचना के लिए जिन-जिन लोगों का सहयोग और प्रेरणा प्राप्त हुई है, लेखक उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है। इस प्रबंध के निर्माण में दो महानुभावों डॉ० सुकुमार सेन और डॉ० सत्येन्द्र जी का सर्वाधिक सहयोग और आशीर्वाद रहा है। यह दोनों दिग्गज विद्वान उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव के समान हैं। जिन्होंने अनेक झंझावातों के मध्य में भी लेखक को दिग्भ्रमित नहीं होने दिया।

सर्वप्रथम लेखक उन संस्थाओं का धन्यवाद करता है जिन्होंने इस प्रबंध की सामग्री जुटाने में भरसक सहायता की है। नेशनल लायब्रेरी कलकत्ता, एशियाटिक सोसाइटी आव् बंगाल, बंगीय साहित्य परिषद कलकत्ता, कलकता विश्वविद्यालय का केन्द्रीय पुस्तकालय तथा बंगला विभाग, विश्वभारती विश्वविद्यालय का केन्द्रीय पुस्तकालय तथा पुथि शाला; श्री जालान स्मृति मन्दिर पुस्तकालय कलकत्ता, आगरा विश्वविद्यालय की केन्द्रीय लायब्रेरी, आगरा विश्वविद्यालय की हिन्दी विद्या-

पीठ लायब्रेरी, दिल्ली विश्वविद्यालय का पुस्तकालय, साहित्य अकादमी का पुस्तकालय, श्री नागरी प्रचारिणी सभा आगरा का पुस्तकालय, श्री हरप्रसाद बागची की निजी वाणी मन्दिर पुस्तकालय आदि संस्थाओं द्वारा पर्याप्त सामग्री प्राप्त हुई। उक्त संस्थाओं के कार्यकर्ताओं ने अमूल्य सहयोग प्रदान कर लेखक का उत्साह बढ़ाया। जिन सज्जनों ने पुस्तक या सूचना सम्बन्धी अन्य प्रकार की सहायता प्रदान की, लेखक उनका अत्यन्त आभारी है।

बंगजगत् के विद्वानों सर्वश्री डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी, डॉ० सुकुमार सेन, डॉ० शशिभूषणदास गुप्त, डा० सत्येन्द्रनाथ घोषाल, डॉ० उपेन्द्रनाथ भट्टाचार्य और श्री भूदेव चौधरी आदि ने प्रोत्साहन प्रदान किया तथा अन्य प्रकार की सहायता की।

भारत के सुप्रसिद्ध कलाकार नंदलाल बोस और संत-साहित्य के मर्मज्ञ स्वर्गीय आचार्य क्षितिमोहन सेन (भूतपूर्व उपकुलपति विश्वभारती, शान्ति निकेतन) के वात्सल्य को भी लेखक नहीं भूल सकता।

हिन्दी जगत् के विद्वानों सर्वश्री महापंडित राहुल सांस्कृत्यान, डॉ० गुलाबराय, डॉ० विश्वनाथ प्रसाद जी (हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय के संचालक महोदय) डॉ० सत्येन्द्र जी, डॉ० महादेव प्रसाद साहा, पंडित प्रवर उदयशंकर शास्त्री जी ने अकुण्ठित भाव से लेखक की सहायता की है। हिन्दी जगत् के प्रसिद्ध विद्वान डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० बाबूराम सक्सेना, डॉ० इन्द्रनाथ मदान आदि ने पत्र-व्यवहार द्वारा मूल्यवान सहायता की और सुझाव देकर लेखक को अनुगृहीत किया है।

अन्यान्य विद्वान श्री हरप्रसाद बागची, डॉ के० आर० जी० हर्ष, डॉ० कमलेश, डॉ० केलकर आदि ने भी लेखक की जी खोलकर सहायता की है। सम्बन्धियों, साथियों और समवयस्कों में श्री बुद्धदेव भट्टाचार्य, श्री भवतोषदत्त, श्री राजेन्द्र यादव, डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया, डॉ० चन्द्रभान रावत, डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, श्री गंगा प्रसाद पाठक और लेखक के सुहृदवर कलाकार धर्मेन्द्र का नाम भी उल्लेखनीय है।

लेखक गुरुजनों के आशीर्वाद और बंधुओं की सद्भावनाओं के साथ अपना यह प्रबन्ध विद्वत्जगत के समक्ष प्रस्तुत करता है।

—ब्रह्मानन्द

विषय सूची

विषय				पृष्ठ
भूमिका	...	...	...	३
सांकेतिक चिह्न	...	...	...	१०
संक्षेप और संकेत	...	...	...	११

प्रथम अध्याय

पृष्ठभूमि और आरम्भ काल :			३३-६२
१. भारतीय संँस्कृति की सामान्य पृष्ठभूमि	...	...	३३
२. हिन्दी और बँगला की सामान्य पृष्ठभूमि एवं सांस्कृतिक एकता		...	३४
३. अपभ्रंश-साहित्य (८००-१४०० ई०)	...	...	३६
४. नाथ-सम्प्रदाय का साहित्य	...	...	३८
५. मैथिली (विद्यापति ठाकुर १३५०-१४५०)	...	...	५०
६. उपसंहार, परिशिष्ट (पत्रों की प्रतिलिपियाँ)	...	...	६०

द्वितीय अध्याय

प्रारम्भिक-भक्ति आन्दोलन का इतिहास	...	...	६३-२०६
१. मध्यकाल (चैतन्य-वैष्णव-युग)	...	...	६३
२. बँगाली गौड़ीय-वैष्णव पदावली में शब्दगत हिन्दी प्रभाव		...	७२
३. बंगला-गौड़ीय-वैष्णव-पदावलियों में वाक्य-विन्यासगत हिन्दी प्रभाव	...	...	८७
४. बँगला-गौड़ीय-वैष्णव-पदावलियों में पदगत हिन्दी प्रभाव		...	९०
(१) हिन्दी क्षेत्रीय कवियों के उद्धृत पद	...	...	९१
(२) बंगाल वैष्णव पदकर्ताओं के पद	...	...	९६
(३) कुछ विशेष बँगाली गौड़ीय-वैष्णव-पदकर्त्ता और उन पर हिन्दी प्रभाव	...	...	१०६
(४) गौड़ीय-वैष्णव पदावली (ग्रंथ) विशेषगत हिन्दी प्रभाव		...	११५
५. भाषागत प्रभाव (मिश्रित भाषा-ब्रजबुलि)	...	...	११५
६. अनुवादावतरणगत (श्री भक्तमाल) हिन्दी प्रभाव		...	१२४
७. उपसंहार (१) बँगला वैष्णव-पदावलियों में शब्दगत हिन्दी प्रभाव		...	१३८

तृतीय अध्याय

वैष्णवोत्तर-चैतन्योत्तर काल २१०-२६९

१. इस्लामिक-बँगला-साहित्य की परम्परा (१७००—१९०० ई०) ... २१०
२. दौलत काजी २१२
३. महाकवि सैयद आलाओल २१९
४. मुसलमानी बँगला साहित्य २३२
५. मुसलमानी बँगला भाषा २४०
६. भारतचन्द्रराय गुणाकर (१७२२-१७६० ई०) २४३
७. रामनिधि गुप्त (१७४१-१८३९ ई०) २४८
८. उपसंहार, परिशिष्ट २५१
(१) बँगला रामायणों पर तुलसी रामायण का प्रभाव ... २५२
(२) भाषामूलक प्रभाव २६७

चतुर्थ अध्याय

आधुनिक काल (१८५०……) २७०-३६७

१. हिन्दी बँगला का आदान-प्रदान और पारस्परिक प्रभाव ... २७०
२. धर्मोपदेष्टा राजा राममोहनराय (१७७४-१८३३ ई०) ... २७१
३. पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (१८२०-१८९७ ई०) ... २७२
४. गीतिकाव्यकार बंकिमचन्द्र चटोपाध्याय १८३८-१८९४ ई०) ... २७३
५. संगीतकार तथा दार्शनिक कवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर
(१८६१-१९४१ ई०) २७५
(१) हिन्दी संगीत का प्रभाव २७५
(२) भाषारूपगत (ब्रजबुलि का) प्रभाव २८८
(३) हिन्दी संत-साहित्य का प्रभाव २९२
६. उपसंहार, परिशिष्ट ३१७
साहित्यिक एवं अन्य विधाओं पर प्रभाव ३१८
(१) बँगला में हिन्दी शब्दावली ३१८
(२) बँगला, प्रवादों और वाग्धाराओं पर हिन्दी कहावतों एवं
मुहावरों का प्रभाव ३१९
(३) हिन्दी गद्यावतरण और पद्यावतरण ३३२
१. हिन्दी गद्यावतरण ३३२
२. हिन्दी पद्यावतरण ३४१
(४) हिन्दी संगीत का बंगाली संगीत पर प्रभाव ३४४
(५) अनुवादात्मक (बँगला में अनूदित हिन्दी ग्रन्थ) ... ३६३

सहायक ग्रंथों की सूची

अंग्रेजी ३६९
बँगला ३७३
हिन्दी ३८८
अपभ्रंश ३९८
संस्कृत ३९८
सहायक-ग्रन्थों की अतिरिक्त सामूहिक सूची ३९९

सांकेतिक चिह्न

> परिणति ज्ञापक या विकास या विकार की गति-द्योतक चिह्न, जैसे—संस्कृत हस्त>, प्राकृत हत्थ>, हिन्दी हाथ> ।

+ धन या संयोगवाचक चिह्न—भाग्योदय=भाग्य+उदय ।

> उत्पत्तिज्ञापक या पूर्ववर्ती या गतिद्योतक चिह्न, जैसे—लहइ <लभति <लभते ।

। पूर्णविराम

, कामा

; सेमीकालन

= तुलनात्मक चिह्न—हिं० लड्डू=संस्कृत लड्डुक

√ करणी या धातुवाचक चिह्न—गम् धातु √ गम्

* तारक चिह्न

( ) कोष्ठ

" " इनवर्टेड कॉमा

ँ अर्धचन्द्र बिन्दु

% प्रतिशत

... अवशेष चिह्न, जैसे—हे धनि माननि मान निवारो...

? प्रश्नवाचक चिह्न

- संयोजक चिह्न या हाइफन

' रेफ चिह्न

'' द्विरेफ चिह्न

∴ अतएव

∵ चूंकि कारण हेतु

× काकपद चिह्न, डमरु चिह्न

— ऋण चिह्न

' शीर्ष कॉमा

संक्षेप और संकेत

संक्षिप्त रूप	पूर्ण रूप	लेखक	प्रकाशक और सन् व संवत्
अ०	अध्याय		
अ० मं०	अन्नदामंगल	भारतचन्द्र राय	ब्रजेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, सजनी काँतदास, बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता, प्रथम संस्करण, १३३८ बंगाब्द ।
अ०प्र०प०र०	अप्रकाशित-पद-रत्नावली	श्री सतीशचन्द राय	बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता १३३८ बंगाब्द ।
अष्ट०छा०व०	अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय	डॉ० दीनदयाल गुप्त	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग २००४ वि० ।
अप०सा०	अपभ्रंश-साहित्य	डॉ० हरवंश कोछड़	भारतीय-साहित्य मंदिर, फव्वारा, दिल्ली, सन् १९५७ ई० ।
इ०बाँ०सा०	इस्लामिक-बाँगला साहित्य	डॉ० सुकुमार सेन	वर्द्धमान-साहित्य सभा, प्रथम संस्करण १३५८ बंगाब्द ।
ई०	ईसवी		
क० वि०	कल्याण-विशेषांक		गीताप्रेस गोरखपुर ।
गी० अं०	गीतांजलि	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	विश्वभारती शांति निकेतन, १९१३ ई० ।
गी० च०	गीतचन्द्रोदय	स्वामी हरिदास दास	हरिबोल कुटीर, नदिया ।
गौ०च०चि०	गौरचरित चिंतामणि	नरहरि चक्रवर्ती	,, ,,
गौ०प०त०	गौरपद तरंगिणी	जगदबंधु भद्र	
गौ०वै०सा०	गौड़ीय-वैष्णव-साहित्य	स्वामी हरिदास दास	श्रीधाम-नवद्वीप, हरिबोल कुटीर, ४६१ गोराब्द ।
गौ०वै०प०	गौड़ीय-वैष्णव-पदावली		
गो०वा०	गोरखवाणी	गोरखनाथ	पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
चै० च०	चैतन्य चरितामृत	कृष्णदास कविराज	राधागोविंदनाथ, भक्ति ग्रंथ प्रचार भंडार, ११ नं० सुरेन ठाकुर रोड, वालिगंज, कलकत्ता १३५५ बंगाब्द ।

सक्षिप्त रूप	पूर्ण रूप	लेखक	प्रकाशक और सन् व संवत्
जा० ग्र०	जायसी ग्रंथावली	रामचन्द्र शुक्ल	
तु० ग्रं०	तुलसी ग्रंथावली		नागरी प्रचारिणी सभा, काशी २००४ वि० ।
तु०श०सा०	तुलसी शब्द सागर	हरगोविंद तिवारी	श्री भोलानाथ तिवारी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश १९५४ ई० ।
दो० को०	दोहा कोश	राहुल सांकृत्यायन	राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, प्रथम संस्करण १९५७ ई० ।
नं० ग्रं०	नंददास ग्रंथावली	ब्रजरत्नदास	काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण, सं० २००६ वि० ।
ना०प्र०स० का०	नागरी प्रचारिणी सभा काशी		
पद्०	पद्मावत	जायसी	डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी, प्रथमावृति २०१२ वि० ।
प० च०	पउमचरिउ	स्वयंभू	आचार्य जिनिविजय मुनि, डा० हरिवल्लभ चुनीलाल-भायाणी, सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ, भारतीय विद्या भवन बंबई, प्रथम भाग, सं० २००९ वि० ।
प०क०त०	पदकल्पतरु		श्री सतीशचंद्र राय, बंगीय साहित्य परिषद् मंदिर, १३३८ बंगाब्द ।
पृ०	पृष्ठ		
पु० न०	पुरातत्व-निबंधावली	राहुल सांकृत्यायन	इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग १९३७ ई० ।
पु० हि०	पुरानी हिन्दी	श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
व०	वर्ष		
बं०भा० ओ० सा०	बंगभाषा ओ साहित्य	डॉ० दीनेशचंद्र सेन	कलकत्ता विश्वविद्यालय १९१४ ई० ।
बं०सा०प०	बंग-साहित्य-परिचय	,,	कलकत्ता विश्वविद्यालय १९१४ ई० ।

संक्षिप्त रूप	पूर्ण रूप	लेखक	प्रकाशक और सन् व संवत्
बां०सा०इ० प्र० ख०	बाँगला-साहित्येर-इतिहास, प्रथम खंड	डॉ० सुकुमार सेन	मडार्न-बुक एजेन्सी, १० स्ववायर कलकत्ता-१२, १९४८ ई० ।
बाँ०भा०अ०	बाँगला-भाषार-अभिधान	ज्ञानेन्द्रमोहनदास	दी इंडियन पबलिशिंग हाउस २२।१, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता ।
बाँ०भा०भू०	बाँगला भाषा तत्वेर भूमिका	डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी	कलकत्ता विश्वविद्यालय, १३३५ बँ० ।
वि० सा०	विचित्र साहित्य	डॉ० सुकुमार सेन	
बृ०हि०को०	बृहत-हिंदीकोश		ज्ञानमण्डल लिमिटेड, कबीर चौरा, वाराणसी-१ ।
बौ०गा०औ०दो०	बौद्धगान औ दोहा	म०म० हरप्रसाद शास्त्री	बंगीय-साहित्य-परिषद् १९११ प्रथम बार ।
भ०क००व्या०	भक्तकवि व्यासजी	वासुदेव गोस्वामी प्रभुदयाल मीतल	अग्रवाल प्रेस, मथुरा, २००९ वि० प्रथम संस्करण ।
भ०बं०	भक्तमाल ग्रंथ बंगला	लालदास(कृष्णदास) बाबाजी	उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, वसुमती साहित्य मंदिर, द्वितीय संस्करण चैतन्याब्द ४३७ ।
भ०र०	भक्ति-रत्नाकर	नरहरिदास चक्रवर्ती	स्वामी हरिदासदास, नवद्वीप, हरिबोल कुटीर, चैतन्याब्द ४२६ ।
भ० हि०	भक्तमाल हिंदी	नाभादास प्रियादास	नवल किशोर प्रेस,लखनऊ, पचम बार, १९४० ई० ।
भा०स०	भारतीय साहित्य	डॉ० विश्वनाथ प्रसाद	हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्व-विद्यालय, आगरा ।
भा०च०ग्रं०	भारतचंद्र ग्रंथावली	भारतचन्द्र	बृजेन्द्रनाथ बंद्योपाध्याय, सजनी-कांत दास, बगीय साहित्य परिषद् कलकत्ता, १३५७ बंगाब्द ।
भा०ठा०प०	भानुसिंह ठाकुरेर-पदावली	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	रवीन्द्र रचनावली, विश्वभारती, शांति निकेतन ।
मा०श०सा०	मानस शब्द-सागर	बद्रीदास अग्रवाल	काशीप्रसाद विजयकुमार अग्रवाल ८३, बीडन स्ट्रीट, कलकत्ता-६, १९५५ ई० ।
मि०बं०वि०	मिश्रबंधु विनोद		
मैं० गी०	मैंमनसिंह गीतिका	डॉ० दीनेशचंद्र सेन	

संक्षिप्त रूप	पूर्ण रूप	लेखक	प्रकाशक और सन् व संवत्
मैं० स०	मैनासत	श्री हरिहरनाथ द्विवेदी	श्री उदय द्विवेदी, विद्या मन्दिर प्रकाशन, ग्वालियर, प्रथम संस्करण १९५९ ई० ।
र०का०प०	रवीन्द्र काव्य-परिक्रमा	उपेन्द्रनाथ भट्टाचार्य	
र० जी०	रवीन्द्र जीवनी	श्री प्रभातकुमार मुखोपाध्याय	विश्वभारती, शांति निकेतन ।
र० र०	रवि रश्मि	चारुचन्द्र बंद्योपाध्याय	ए० मुखर्जी एण्ड को, कलकत्ता ।
रा०च०म०	रामचरितमानस	तुलसीदास	डा०माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, उत्तरप्रदेश ।
रा० र०	रामरसायण	रघुनंदनदास गो०	आहिरी टोला, कामार पाड़ा स्ट्रीट १०, विद्यारत्नचन्द ।
बं०सा०प०क०	बंगीय-साहित्य-परिषद्, कलकत्ता		
बं०सा०प०प०	बंगीय साहित्य-परिषद् पत्रिका		
वि० प०	विनय पत्रिका	तुलसीदास	श्री वियोगिहरि, रामदास पीड़वाल, साहित्य-सेवा-सदन, वाराणसी, २०१५ ।
वि० प०	विद्यापति-पदावली	विद्यापति	खगेन्द्र मित्र विपिनबिहारी मजूमदार ।
वि०भा०प० श०	विश्वभारती पत्रिका, शाँति निकेतन		
वि० स०	विक्रमी संवत्		
वि० सा० ग्रं०	विद्यासागर ग्रथावली	ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	ब्रजेन्द्रनाथ बंद्योपाध्याय सजनीकांत दास, बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता ।
सं० शा०	संगीत-शास्त्र	के०वासुदेव शास्त्री	प्रकाशन शाखा, सूचना-विभाग, उत्तर प्रदेश, प्रं० सं० १९५८ ।
स०मैं०लो०च०	सतीमयना और लोर चन्द्रानी	दौलतकाजी	सत्येन्द्रनाथ घोषाल, विश्वभारती, शांति निकेतन ।
सं०रा० क०	संगीत-राग-कल्पद्रुम		नगेन्द्रनाथ गुप्त, बंगीय साहित्य परिषद्-कलकत्ता १९३१ ।
स० मैं०	सती मैना		

संक्षिप्त रूप	पूर्ण रूप	लेखक	प्रकाशक और सन् व संवत्
स० प०	सम्मेलन पत्रिका		हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
सू०ब्र०भा०क०	सूर ब्रजभाषा कोश	डॉ०दीनदयालु गुप्त	लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
स०हिं०श०सा०	संक्षिप्त हिंदी-शब्द-सागर	रामचन्द्र वर्मा	नंददुलारे वाजपेयी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं० संवत् २००७ वि०।
ह०लि० ग्रं०	हस्तलिखित ग्रंथ		
हिं०का०धा०	हिंदी-काव्य-धारा	राहुल सांकृत्यायन	किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद १९४५ ई०।
हिं०बाँ०अभि०	हिंदी बाँगला-अभिधान	श्री गोपालचंद्र वेदान्त शास्त्री	बंगाल मास एडूकेशन सोसाइटी, ९९।१९, कार्नवालिस स्ट्रीट, शाम बाजार, कलकत्ता।
हिं० भा० इ०	हिंदी भाषा का इतिहास	डॉ० धीरेन्द्र वर्मा	हिंदुस्तानी एकेडेमी, उत्तरप्रदेश, प्रयाग १९५३।
हिं०मु०कोष०	हिंदी मुहावरा कोष	भोलानाथ तिवारी	किताब महल, इलाहाबाद, १९५१।
हिं०सा०आ० इ०	हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डॉ० रामकुमार वर्मा	रामनारायणलाल, इलाहाबाद चतुर्थ संस्करण १९५८।
हिं०सा०इ०	हिंदी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचंद्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण छठा २००७।
हिं० सा०	हिंदी-साहित्य	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी	अत्तरचंद कपूर एंड संस, देहली, अंबाला, आगरा, १९५२ ई०।
हिं०का०नि० स०	हिंदी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय	डॉ० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल	
हिं०वि०ग्रं० वि०	हिंदी-विद्यापीठ ग्रंथ वीथिका	डॉ० विश्वनाथ प्रसाद	हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्व-विद्यालय, आगरा।
हिं०वि०को०	हिंदी-विश्व-कोष	डॉ० नगेन्द्रनाथ वसु	
हिं०श०सा०	हिंदी शब्दसागर		नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
हिं०स०बृ०इ०	हिंदी-साहित्य का बृहद इतिहास (प्र०भाग)		सम्पादक राजबली पाँडेय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१४ वि०।
हिं०सा०स०प्र०	हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।		

A.B.D.C.E.C. (ए०बी०डी०सी०ई०सी०)	Anglo Bengali Dictionary of Colluquiel Expressions. R.P. De., 22/53 Shamapooker Lane, Calcutta. 1927.
B.R. (बी० आर०)	Bengali Ramayanas, Dr. Dineshchandra Sen, Calcutta University, 1920.
B S.R.B.L. (बी०एस०आर०बी०एल०)	Begirnning of secular Romance in Bengali Literature Dr. S. N. Ghoshal, Vishwabharti, Shanti Niketan, First Edition, 1959.
G.H.L. (जी०एच०एल०)	Grammar of Hindi Language, Rev. S.H. Kellog. Routledge and Kegan Paul Ltd., Broadway House, 68, 74 Carter Lane, London, E.C.4, 1955.
H.B.L. (एच०बी०एल०) हि०बु०लि	History of Brijbuli Literature, Dr. Sukumar Sen, University of Calcutta, 1935.
H.B.L.L. (एच०बी०एल०एल०) हि०बँ०लाँ०लिट०	History of Bengali Language and Literature, Dr. Dineshchandra Sen, University of Calcutta, Edition 1954.
H M.L. (एच०एम०एल०)	The History of Maithili Literature, Dr. Jai Kanta Misra, Trihut Publications, Allahabad, Sir P.C, Banerji Road, 1949.
K.S.I.L. (के०एस०आई०एल०)	Kaleidoscopic Survey of Indian Languages, Madras 1959.
J.D.L.C.U. (जे०डी०एल०सी० यू०)	Journal of Department of Letters, Calcutta University.
L.S.I. (एल०एस०आई०)	Linguistic Survey of India, George Grierson.
L. (एल०)	Language, Edward Spi, Harcourt, Brace and Company, New York 1921.
M.V.L.H. (एम०वी०एल०एच०)	Modern Vernacular Literature of Hindustan, George Grierson, Asiatic Society of Bengal. 57, Park Street, Calcutta-16, 1889.
O.D.B.L. (ओ०डी०बी०एल०)	Origin and Development of Bengali Language I and II Volumes. University of Calcutta, 1926.
O.R C. (ओ०आर०सी०)	Obscure Religious Cults as the background of Bengali Literature, Dr. S. B. Dass Gupta, Calcutta University, 1946.
V.B.Q. (वी०बी०क्यू०)	Vishwa Bharti Quarterly.

नोट—इससे आगे पृष्ठ ३३ पढ़ें।

प्रथम-अध्याय

पृष्ठभूमि तथा आरम्भ काल

: १ :

भारतीय संस्कृति की सामान्य पृष्ठभूमि

पृष्ठभूमि--बँगला और हिन्दी एक ही भाषा-परिवार की शाखाएं हैं[1] और दोनों का जन्म भी प्रायः साथ ही हुआ है[2]। दोनों ही एक दूसरे की पड़ोसिनें हैं एवं दोनों के क्षेत्रों में पारस्परिक आदान-प्रदान रहा है। साथ ही ये दोनों भाषाएं भारत की अखंड सांस्कृतिक परंपरा की भी उत्तराधिकारिणी बनी हैं।

क्या जीवन-दर्शन, क्या पौराणिक-कथा संपत्ति, क्या भाषातात्विक प्रवृत्ति और क्या सांस्कृतिक प्राण-प्रतिष्ठा सभी में प्रागैतिहासिक काल से ही एक साम्य भारत के प्रायः सभी क्षेत्रों में दिखायी पड़ता है। वही साम्य हिन्दी-बँगला में भी प्रतिफलित हुआ है।

जीवन-दर्शन—भारत दार्शनिकों का देश कहलाता है, पारलौकिक-कल्याण, कर्मवाद एवं धर्म के प्रति यहाँ के लोगों का विशेष आकर्षण, विश्वास एवं मोह रहा है। यहाँ लौकिक अभ्युदय को सदैव परमार्थ से गौण-स्थान प्रदान किया गया है। इसीलिए आस्तिक तथा नास्तिक सभी दर्शन जीवन का ध्येय दुःख और उससे छुटकारा या मुक्ति मानते हैं। मुक्ति की साधना के भी अनेक पथ वैयक्तिक-मेधा, रुचि, देश-काल तथा पात्र के अनुसार निर्मित हुए हैं, किन्तु सभी की आत्मा एक ही है।

काश्मीर से कुमारी अन्तरीप तक एवं अरबसागर से वंग देश तक प्रत्येक भारतीय के जीवन-दर्शन का मर्म एक ही है। अतः भारत की एकता मूल में यहाँ की संस्कृति एवं यहाँ के जीवन-दर्शन में है। दूसरे शब्दों में इस देश को 'ऋषियों का देश' अध्यात्म–प्रधान कहा जाता है। धार्मिक संस्कार जीवन की प्रत्येक क्रिया के साथ संलग्न हैं। यही इसकी सांस्कृतिक एकता का कारण है।

पौराणिक कथायें—इस सांस्कृतिक एकता का एक सूत्र पौराणिक-कथाओं में भी देखा जा सकता है। ये कथायें समान रूप से समस्त देश में प्रचलित हैं। वैदिक-ऋषियों की गाथायें समान रूप से सारे देश की संपत्ति हैं। रामायण-

---

१. बं० भा० भू०, पृ० ६८।
२. वही वही ।

महाभारत के पात्र अखिल भारतीय समाज के आदर्श हैं। राम-कृष्ण, कौरव-पाण्डवों की गाथायें भी समान रूप से एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक देश में व्याप्त हैं। सभी संतों और भक्तों की कहानियाँ भी समस्त देश में एक ही सांचे ढली हुई हैं और एक सा सम्मान पाती हैं।

भाषा—भारत में अनेक आर्य, अनार्य और देशी, विदेशी भाषाओं काजमघट रहा है। किन्तु इस देश को ऐतिहासिक, भौगोलिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं भाषायी एकता संस्कृत ही प्रदान करती रही है। समान रूप से आर्य-अनार्य समस्त उत्तरी और दक्षिणी भारत की भाषायें संस्कृत की ऋणी हैं और इससे अत्यन्त प्रभावित हैं। संस्कृत भाषा और साहित्य भारत की महान् ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, साहित्यक एकता तथा अखण्डता की परंपरा का प्रतीक है।

: २ :

हिन्दी और बँगला की सामान्य पृष्ठभूमि एवं सांस्कृतिक एकता

संस्कृत भाषा तथा साहित्य एवं उसमें प्रतिबिम्बित भारतीय संस्कृति, को पुरातन-काल से एकता एवं अखण्डता प्रदान करती आई है। भौगोलिक दृष्टि से उत्तरी और दक्षिणी भारत में जो भेद किया जाता है, उस भेद में यह सांस्कृतिक अभेद विद्यमान है। तब उत्तरी भारत में तो सदैव से ऐतिहासिक एवं भौगोलिक एकता रही है। जब कभी भी कोई आन्दोलन उत्तरी भारत के किसी भी कोने में छिड़ा है, उसका प्रभाव सारे प्रदेश पर पडा है। आर्य-संस्कृति एवं भारतीय आर्य-भाषा परिवार ने उसको घनिष्ठ-सूत्र में जकड़े रखा है।

इसी कारण हिन्दी प्रदेश, (पजाब का हरियाना प्रदेश, पर्वतीय-प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार एवं मध्य प्रदेश) और बंग प्रदेश (पूर्वी एवं पश्चिमी बंगाल) में अद्भुत सांस्कृतिक एकता रही है। इसे निम्नलिखित रूपों में हृदयंगम किया जा सकता है :—

(१) सीमा संबंधी या भौगोलिक एकता
(२) ऐतिहासिक एकता
(३) जनसंख्या का आदान-प्रदान
(४) धार्मिक एकता
(५) वेशभूषा एवं आचार-विचार की एकता
(६) साहित्यक एवं भाषा-वैज्ञानिक-समानता, परस्पर-प्रभाव एवं आदान-प्रदान।

(१) सीमा संबंधी या भौगोलिक एकता

इस एकता का अभिप्राय यह नहीं है कि इन दोनों की सीमाएँ अभिन्न हैं। वस्तुतः भौगोलिक दृष्टि से हिन्दी प्रदेश और बंग प्रदेश में कोई विभाजक-रेखा नहीं है। दोनों का प्रादेशिक विभेद कृत्रिम है। हिन्दी प्रदेश (बिहार) की पूर्वी एवं बंग प्रदेश की पश्चिमी सीमायें मिली हुई है*। जो गंगा हिन्दी-क्षेत्र को सींचती है; वही बंग-क्षेत्र को भी सींचती है। जो हिमालय हिन्दी क्षेत्र की जलवायु को अनुशासित करता है, वह बँगला क्षेत्र की जलवायु का भी नियंत्रण करता है।

(२) ऐतिहासिक एकता

ऐतिहासिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोण से भी हिन्दी प्रदेश एवं बंग प्रदेश युग-युगों से एकानेक बार एक ही शासन में बँधे हैं। मुस्लिम काल में दोनों ही प्रदेश एक-सी परिस्थितियों से गुजरे हैं। धार्मिक, सामाजिक एवं भक्ति संबंधी आन्दोलनों ने समय-समय पर दोनों को ही समान रूप से प्रभावित किया है।

(३) जनसंख्या का आदान-प्रदान

जनसंख्या का आदान-प्रदान सदैव से होता आया है, मुस्लिम काल (मध्यकाल) में आज के बगाली ब्राह्मणों के पूर्वज कान्य-कुब्ज से आये थे[१]। चैतन्य-काल में बहुत से बंगाली मथुरा वृन्दावन में रहने लगे थे। मिथिला एवं बंगाल का आदान-प्रदान तो बहुत पुराना है[२]।

(४) धार्मिक एकता

दोनों ही प्रदेशों के निवासी मूलतः एक से धर्म को मानते हैं, अधिकांशतः क्योंकि वे हिन्दू हैं। शक्ति-पूजा बंगाल में विशेष है; पर हिन्दी-क्षेत्र में भी वह देवी-पूजा के रूप में अन्तर्धारा की भाँति व्याप्त है।

वैष्णव धर्म का प्रभाव दोनों प्रदेशों में समान रूप से रहा है। ऐतिहासिक क्रम से भी दोनों ही प्रदेशों पर हिन्दू, बौद्ध, इस्लाम, ईसायत एवं पश्चिमी संस्कृति और सभ्यता का गंभीर प्रभाव है। सिद्धों के सहज मार्ग का प्रभाव बंगाल पर विशेष रहा है। शैव, शाक्त एवं नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव पूर्वी भारत में अधिक रहा है। दोनों ही प्रदेशों में तीर्थ-स्थान हैं। ऋषिकेश, हरिद्वार, बद्रीनारायण, मथुरा-वृन्दावन, काशी (वाराणसी), प्रयाग, गंगासागर, नवद्वीप एवं तारकेश्वर के दर्शनों के लिए दोनों ही प्रदेशों के लोग लालायित रहते हैं।

(५) वेशभूषा एवं आचार-विचार की एकता

रहन-सहन, वेश भूषा, आचार-विचार एवं नैतिकता के प्रति दोनों

१. बं० भ० ओ० सा०, पृ० २४७।

*देखिये अंत में मानचित्र (अ)

२. बं० भा० ओ० सा०, पृ० २२६।

क्षेत्रों में समान विचार एवं सम्मान रहा है। बंगाल के प्रख्यात विद्वान डा० दीनेशचन्द्र सेन लिखते हैं—केवल भाषा में ही नहीं, किन्तु वेशभूषा और आदतों में भी उस समय के बंगाली अपने से ऊपर के देशवासी भाइयों से अधिक मिलते-जुलते थे। साफा पहना करते थे। धोती कभी लाँग लगाकर आज के हिन्दुस्तानी लोगों की तरह पहना करते थे[1]।

(६) साहित्यिक एवं भाषा वैज्ञानिक समानता

इन दोनों क्षेत्रों में परस्पर प्रभाव एवं एक दूसरे के साथ आदान-प्रदान भी निरतर होता रहा है। साहित्य समाज का प्रतिबिंब है। अतः हिन्दी-साहित्य एवं बँगला-साहित्य की वे परिस्थितियाँ समान ही रही हैं जिन्होंने समस्त उत्तरी भारत को प्रभावित किया है। वे परिस्थितियाँ ऐतिहासिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक हैं। इसी कारण हिन्दी एवं बँगला साहित्यों के युगों में कुछ सामान्य अन्तर होते हुए भी बहुत कुछ समानता है। हिन्दी एवं बंगला के इतिहासों के काल-विभाजन में भी अद्भुत समानता है। उदाहरण से स्पष्ट करते हैं—यह काल-विभाजन हिन्दी साहित्य का पंडित रामचन्द्र शुक्ल एवं बँगला साहित्य का डा० दीनेशचन्द्र सेन के अनुसार है[2]।

हिन्दी		बँगला	
युग-नाम	कालावधि	युग-नाम	कालावधि
सिद्ध-सामंत-साहित्य (आदिकाल)	८००-१४०० ई०	प्राचीन काल	८००-१४०० ई०
मध्यकाल (भक्तिकाल)	१४००-१७०० ई०	वैष्णव काल	१४००-१७०० ई०
रीतिकाल	१७००-१६०० ई०	इस्लामिक साहित्य परम्परा	१७००-१६०० ई०
आधुनिक काल	१६०० ई०……	आधुनिक काल	१८५० ई०…

भाषा-वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी दोनों भाषाओं का उद्गम एवं विकास का क्रम सामान्य सूत्र से हुआ है*। जिसे यों समझा जा सकता है:—

१. Not only in the language, but also in costumes and habits, the Bengalis of past times were more like their brethren of the up-country. They used to wear a turban and tuck up the Dhoti tightly between the legs as the Hindustani people do now.

H.B.L.L. P.509.

२. हि० सा० इ० पृ० १ बं० सा० प० प्र० ख० भू०, पृ० १६।

* देखिए चार्ट—परिशिष्ट (१)।

(क) प्राचीन भारतीय आर्य भाषायें : वैदिक (साहित्यिक) तथा जनभाषायें
(ख) मध्यकालीन ,, ,, : संस्कृत (लौकिक) ,, ,,
(ग) उत्तर मध्यकालीन ,, : पाली प्राकृत (गाथा),, ,,
(घ) संधियुगीन ,, ,, : अपभ्रंश (अपभ्रंशकालीन जन भाषाएँ)

नागर अपभ्रंश | शौरसैनी | अर्धमागधी | मागधी

(च) आधुनिककालीन
भारतीय आर्य भाषाएँ- राजस्थानी | पश्चिमी हिंदी | पूर्वी हिंदी | बंगला

१६. भाषा की दृष्टि से दोनों ही भाषायें पूर्ववर्ती भाषाओं से विकसित हुई हैं। संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश का साहित्यिक एवं भाषा मूलक प्रभाव दोनों ही भाषाओं पर है। ये सभी इन दोनों की पूर्वज हैं और इनकी संपत्ति दोनों की अपनी संपत्ति है।

अपभ्रंशोत्तर काल में उत्तरी भारत की समस्त भारतीय आर्य-भाषाओं में बहुत कुछ सादृश्य था। कालान्तर में प्रत्येक भाषा ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व बना लिया है। उस काल में शौरसैनी अपभ्रंश मध्यदेशीय एवं जनभाषा होने के कारण दूसरी अपभ्रंशों पर अपना कुछ प्रभाव डालती रही है। शौरसैनी अपभ्रंश पश्चिमी हिन्दी का पूर्ववर्ती रूप माना जाता है।[1]

परस्पर प्रभाव की दृष्टि से हिन्दी का प्रभाव अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं (बंगला, गुजराती, पंजाबी) पर विशेष रहा है। बँगला पर हिन्दी के प्रभाव के कारण मुख्यतया ये हैं :—

(१) हिन्दी मध्यदेश अथवा उस प्रदेश की भाषा थी, जिसकी मूर्धन्य भाषा संस्कृत ने समस्त भारत में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गौरव प्राप्त किया था। वास्तव में वह संस्कृत की उत्तराधिकारिणी बनी।

(२) साधु-समाज, सिद्धनाथ, निर्गुणी-संतों आदि ने भी हिन्दी को देश के एक कोने से दूसरे कोने तक बहुत पहले ही पहुँचा दिया था।

(३) मध्ययुगीन प्रबल वैष्णव भक्ति आन्दोलन के दोनों इष्ट महापुरुषों की पुण्यभूमि भी हिन्दी-क्षेत्र ही है। कृष्ण और राम के भक्त ब्रज और अवध की ओर आकर्षित होते रहे हैं। कृष्णभक्ति ने इस सम्पर्क को बहुत महान बनाया है। इससे यहाँ की भाषा का प्रभाव और भी बढ़ गया।

(४) मुस्लिम साम्राज्य ने भी यत्किंचित हिन्दी को अखिल भारतीय भाषा का रूप प्रदान किया।

१. पु० हि०।

(५) वणिक सार्थवाहों से इसके प्रचार-प्रसार में पूरा सहयोग मिला।

(६) बँगला और हिन्दी के भाषा-साहित्य की परम्परा एक थी। दोनों एक-सूत्र से सम्बद्ध रहीं।

हिन्दी भाषा एवं साहित्य का इसी कारण प्रभाव बँगला भाषा और साहित्य पर दीर्घकालीन है। यह साहित्यिक भी है एवं भाषामूलक भी है।

(१) हिन्दी मध्यदेश की भाषा है, यह इतिहास सिद्ध तथ्य है कि मध्यदेश ही संस्कृति, साहित्य तथा राजनीति के क्षेत्र में सदैव से समस्त देश का प्रेरणास्रोत रहा है। यह क्रम संस्कृत, पाली, प्राकृत, शौरसैनी अपभ्रंश एवं ब्रजभाषा, आधुनिक हिन्दी या उर्दू (खड़ी बोली) के प्रसार एवं प्रभाव से प्रकट है[1]। संस्कृत भाषा ने सभी भारतीय भाषाओं को अत्यधिक प्रभावित किया है। ब्रजभाषा उसी के क्षेत्र की है व उसकी प्रतिनिधि बन गयी है। मध्ययुग में संस्कृत में निष्णात होने के लिए काशी आना अनिवार्य था, इससे काशी अखिल भारतीय शिक्षा-केन्द्र था।

(२) हिन्दी साधुओं की भाषा मानी जाती है। प्राचीनकाल से ही अर्थात् मुस्लिम-पूर्व युग से ही साधुओं के साथ-साथ भारत के विविध स्थानों में फैली। अतः इसका प्रभाव अन्य आधुनिक भाषाओं पर भी पड़ा है। बँगला पर भी इसका प्रभाव पड़ा है।

(३) मध्ययुग के सभी प्रमुख वैष्णव भक्ति-आन्दोलनों का केन्द्र हिन्दी-क्षेत्र हो गया। चैतन्य संप्रदाय में वृन्दावन को जो आध्यात्मिक महत्त्व मिला, उससे वृन्दावन बंगाल का एक उपनिवेश बन गया। इससे हिन्दी बंगला क्षेत्रों की पारस्परिक घनिष्ठता बहुत बढ़ गयी[2]।

(४) मुस्लिम शासकों के कर्त्ता-धर्ता प्रायः हिन्दी-क्षेत्र से होकर भारत के अहिन्दी-क्षेत्रों में गये। उनके साथ उनकी निजी भाषा भी गयी। इससे हिन्दी राजकीय स्तर पर भी अन्य क्षेत्रों में पहुँची। इनकी विशाल सेनाओं में अधिकाँश हिन्दी-क्षेत्रीय होते थे। फलतः जहाँ-जहाँ मुस्लिम-साम्राज्य फैला वहाँ-वहाँ हिन्दी भी आकर्षण का विषय बनी।

(५) साधु-समाज पर्यटनशील समाज था, उसी भाँति मध्ययुग में वणिकों के सार्थवाह भी देश भर में घूमते थे। दिल्ली-आगरा इनके केन्द्र थे। समस्त क्षेत्रों के व्यवसायी और वाणिज्य-प्रेमी इन सार्थवाहों में सम्मिलित होकर दिल्ली-आगरा आते या दिल्ली से विविध भारतीय क्षेत्रों को जाते थे। इनके निजी बाजारों की भाषा हिन्दी ही होती थी। आज के कलकत्ता में रहने वाले मारवाड़ी समाज एवं बिहार-निवासियों की भाषा भी हिन्दी है।

---

१. ओ० डी० बी० एल० पृ० १३।

२. मी० बें० बै० लि० ५ तथा लों० भा० भू० पृ० १३६।

(६) इसका प्रमाण अपभ्रंश भाषा है। दोनों का मूल अपभ्रंश है। शौरसैनी अपभ्रंश की पहुँच पूर्व में विशेष थी*। इसके विवेचन के लिए आगे अपभ्रंश पर इसी अध्याय में कुछ पृष्ठ दिये गये हैं।

: ३ :

अपभ्रंश-साहित्य (८००-१४०० ई०)

वैदिक, संस्कृत तथा पाली एवं प्राकृत के प्रभाव की परम्परा पर यहाँ विस्तारपूर्वक चर्चा करना अनावश्यक माना जा सकता है, अपभ्रंश भाषाओं के प्रभाव की परम्परा का अनुसंधान स्वयं ही एक महान विषय है। किन्तु अपभ्रंश तो हिन्दी बँगला भाषाओं से घनिष्ठतः सम्बन्धित है। अतः उस पर एक दृष्टि डालना समीचीन होगा।

ऐतिहासिक दृष्टि से अपभ्रंश नाम ईसा की पहली तथा दूसरी शताब्दी पूर्व से सुनाई पड़ता है[१], किन्तु भाषा-विज्ञान के पंडित[२] इसकी ५५० या छठी शताब्दी ईसवी से मानते हैं। साहित्य में अपभ्रंश के उल्लेख छठी शताब्दी से मिलने लगते हैं। भामह (छठी शताब्दी ईसवी[३]) अपभ्रंश को काव्योपयोगी भाषा और काव्य का एक विशेष रूप मानते हैं—'काव्य शब्द और अर्थ को लेकर होता है, यह गद्य-पद्य में दो प्रकार का है। संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश को लेकर तीन प्रकार का है तथा इन तीन भाषाओं में काव्य रचना होती है[४]।' दण्डी (सातवीं शताब्दी ईसवी[५]) समस्त वाङ्मय को संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और मिश्र इस प्रकार चार तरह का मानते हैं[६]। रुद्रट (नवी शताब्दी ईसवी[७])—देश-विशेष से भाषा कहीं प्राकृत, संस्कृत, मागधी तथा पैशाची एवं शौरसैनी तथा अपभ्रंश आदि छः नामों

* लां० भा० त० भू० पृ० १३

१. भर्तृहरि—वाक्यपदीयम्, प्रथम काण्ड, कारिका १४८, लाहौर संस्करण, सं० पं० चारुदेव शास्त्री।

२. हि० भा० इ०, पृष्ठ ४७।

३. सं० सा० इ०, पृ० १०१।

४. **शब्दार्थौ संहिता काव्यं गद्यं पद्यं च तद्‌द्विधा।**
संस्कृतं प्राकृतं चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा॥ काव्यालंकार—१-१६-२८।

५. सं० सा० इ०, पृ० १०१।

६. तदेतद् वाङमय भूयः संस्कृत प्राकृत तथा।
अभ्रंश्च मिश्र चैत्याहुरश्मि चतुर्विधम्॥ —काव्यालंकार, १-१-३२।

७. सं० सा० इ०, पृ० ११४।

से प्रयुक्त होती है[१]। स्वयंभू (८वीं-९वी शताब्दी ईसवी) अपभ्रंश के कवि हैं, इन्होंने पउम-चरिउ, (पद्म-चरित) और रिट्ठणेमि चरिउ (रिष्टनेमि-चरित) या हरिवंश पुराण इसमें ही लिखा है। पउम-चरिउ में इसका अंतरंग प्रमाण है[२]। पुष्पदंत (दशम शताब्दी ईसवी) लिखते हैं : संवक्कउ पायउ पुण आ हँसउ वितउ उप्पाहउ सपसंस[३]। अभिनव गुप्त (९७०-१०५० ई०) द्वारा दी गयी विभाषा विषयक विवृत्ति से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि 'अपभ्रंश भाषा' विभाषा के अन्तर्गत उस समय में बोली जाती होगी।

इन प्रमाणों से प्रकट होता है, अपभ्रंश की परम्परा बहुत प्राचीन है। इसको देशभाषा भी कहा गया है। ८०० से १४०० ई० तक अपभ्रंश का अधिक प्रचार था। भारतीय भाषा-विकास में अपभ्रंश आधुनिक भाषाओं के पूर्व की (संधिकाल) भाषा है। इसका साहित्य बहुत विशाल है। अपभ्रंश का गौरव हमें अभी मालूम हुआ है। जबकि आधुनिक देशो विदेशी विद्वानों ने इस पर गवेषणात्मक कार्य किया है[४]। म० प० हरप्रसाद शास्त्री एवं राहुल सांकृत्यायन आदि ने अब इसके नये ग्रंथों का अनुसंधान किया है। यह एक ओर संस्कृत-पाली प्राकृत से अपना नाता जोड़ती है। क्योंकि अपभ्रंश क्रमशः संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा तत्कालीन जनभाषाओं से विकसित हुई है। अतः इसका नाता उनके साथ है। यह उनकी जीवित पररंपरा की प्रतीक है। उनकी भाषा-तात्विक एवं साहित्यिक धारायें इसमें प्रतिबिबित हुई हैं। दूसरी ओर यह हमारी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की जननी है। ऐतिहासिक-दृष्टि से यह संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा आधुनिक भारतीय आर्य-आषाओं के बीच की कड़ी है। हमारी आधुनिक भारतीय आर्य-भापायें अपभ्रंश की भाषा-वैज्ञानिक एवं साहित्यिक परंपरा का सीधा विकास हैं। अपभ्रंश-साहित्य के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। बंगाली, हिन्दी, उड़िया एवं आसामी आदि प्रान्तीय भाषाओं के विद्वान अपभ्रंश को अपनी भाषा का पूर्व रूप मानते हैं[५]। (पृष्ठ ४१ पर देखें)

अपभ्रंश के विषय में भारत के विविध विद्वानों का मत उल्लेखनीय है। अपभ्रंश का सर्वप्रथम ग्रंथ 'बौद्धगान ओ दोहा है'। सर्वप्रथम म० म० हरप्रसाद

१. प्राकृत संस्कृत मागध विशाच भाषाश्च शौरसैनी
षष्टौश्च भूरिभेदो देश विशेषाय भ्रंश, २-१२।

२. दीह-समास-पवाहावंकिय—सक्कय--पायय पुलिणालंकिय ॥
देसीभाषा-उभय-तडुज्जल कवि दुक्कर घण सद्द सिलायत।
पउम-चरिउ (१-२) (३-४)

३. महापुराण, ५-१८-६।

४. हि० का० धा०, भूमिका।

५.

विद्वान का नाम	विद्वान की भाषा का प्रान्त	ग्रंथ	उपयुक्त उद्धरण	मतों के आधारमूल ग्रंथ
१. म० म० हरप्रसाद शास्त्री	बंगाल	बौद्धगान ओ दोहा : भूमिका	बंगला	बौद्धमान ओ दोहा
२. डा० मौहम्मद शहीदुल्ला	,,	लाशां भिसती के द कान्ह ऐद सरह [दोहाकोश]	अपभ्रंश	दोहाकोश सरह औरकान्ह ।
३. राहुल सांकृत्यायन	हिन्दी	पुरातत्व निबन्धावली; हिन्दी काव्य धारा, भमिधा पृ० ११; दोहाकोश पृ० ८ ।	हिन्दी	दोहाकोश
४. प्रबोधचन्द्र बागची	बगाल	दोहाकोश	अपभ्रंश	दोहाकोश
५. डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी	बंगाल	ओ० डी० बी० एल० पृष्ठ ११२	बंगला	,,
६. विनयतोष भट्टाचार्य	बंगाल	दोहाकोश	बंगला	,,
७. डा० वाणीकांत ककाती	असमी	आसामीज़ हट्स फॉरमेशन एंड डेवलपमेन्ट, पृ० ६	असमी	,,
८. रायबहादुर आर्तवल्लभ महन्ती ।	उड़िया	उ० सा० स० इ० पृ० ३	उड़िया	चर्यापद
९. डॉ० नगेन्द्रनारायण चौधरी ।	बंगाल	डाकार्णव, पृ० १९	बंगला	डाकार्णव
१०. डॉ० सुकुमार सेन	बंगाल	ओल्ड बगाली टैक्स पृ० ४४ ।	बंगला	अपभ्रंश चर्यागीतिका
११. श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी	हिन्दी	पुरानी हिन्दी	हिन्दी	अपभ्रंश साहित्य
१२. मिश्रबन्धु विनोद	,,	मिश्रबधु विनोद	,,	,,
१३. प० रामचन्द्र शुक्ल	,,	हि० सा० इ०, पृ० १९	,,	,,
१४. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी	,,	हिन्दी साहित्य का उदगम् एवं विकास	,,	,,
१५. डा० रामकुमार वर्मा	,,	हि० सा० आ० ई०, पृ० ५७	,,	,,
१६. डा० विश्वनाथप्रसाद	,,	ले० आई० के० स० पृ० ३५	,,	,,

शास्त्रीजी को यह दोहा संग्रह नेपाल में मिला है। उन्होने इसका नामकरण 'हजार बछरेर पुरान बंगला भाषाय बौद्धगान श्रौ दोहा'[१] अर्थात् "हजार वर्ष पुरानी बंगला भाषा में बौद्धगान श्रो दोहा" किया है। दूसरे विद्वान डॉ० शहीदुल्ला ने तिब्बती अनुवाद से मूल को मिलाकर 'लाशा' भिसती के द कान्ह ऐद सरह[२] दोहाकोश प्रबंध रूप में प्रकाशित किया है। इसकी भाषा अपभ्रंश बतलाई गई है। तीसरे विद्वान डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची हैं; इन्होंने तिब्बती के साथ मूल को दिया है। इसका परिचय अपभ्रंश भाषा के नाम से दिया है। चौथे विद्वान महापण्डित राहुल सांकृत्यायन हैं; जिन्होंने सिद्ध-कवियों का संग्रह हिन्दी-काव्यधारा के नाम से किया है। उनका दूसरा ग्रंथ दोहाकोष सरहपाद पर प्रकाशित हुआ है। राहुल जी ने पहले इसकी भाषा को बिहारी 'प्राचीन मगही एवं मैथिली' माना है[३]। साथ ही राहुल जी समस्त उत्तरी भारत की आर्य-भाषाओं का पूर्व रूप भी अपभ्रंश को मानते हैं[४]। श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी मानते हैं[५]। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपभ्रंश को प्राकृत्याभास हिन्दी मानते है[६]। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी भी उपर्युक्त मतों का समर्थन करते हैं[७]। डॉ० रामकुमार वर्मा भी अपभ्रंश को हिन्दी की पूर्ववर्ती मानते हैं[८]। डॉ० विश्वनाथप्रसादजी का भी यही मत है[९]। डॉ विनयतोष भट्टाचार्य सरहपा को बंगला का सर्वप्रथम कवि मानते हैं। राय बहादुर आर्तवल्लभ महन्ती ने इसको पुरानी उड़िया कहा है[१०]। डॉ० वाणीकांत ककाती ने इसको आसामी कहा है[११]। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने केवल 'बौद्धगान श्रौ दोहा' में ही संग्रहीत दोहाकोशों और चर्यापदों में ही दो तरह की भाषाओं की ओर संकेत किया है। चर्यापदों की भाषा पूर्व की है, वे उसे प्राचीन बंगाली कहते हैं। क्योंकि क्रिया रूप तथा मुहावरे ऐसे हैं जिनकी परंपरा पुरानी बंगला में है। दोहाकोश की एक ही भाषा है पश्चिमी (शौरसेनी अपभ्रंश) किंतु पूर्व भारत में

१. बो० गा० श्रो० दोहा, भूमिका।
२. लाशां भिसती के द कान्ह ऐद सरह, प्रबंध–डि० लिट०, भूमिका, पृष्ठ ११।
३. पु० त० नि०, पृ० १६७। हि० का० धा०, पृ० ११।
४. दो० को०, पृ० ८।
५. पृ० हि०।
६. हि० सा० इ०, पृ० १९।
७. हि० सा० (उद्भव एवं विकास) पृ० १६।
८. हि० सा० आ० इ०, पृ० ५७।
९. ले० इ० के० स०, पृ० ३५।
१०. उ० सा० स० इ०, पृ० ३।
११. ककाती आसामीज इट्स फारमेशन एण्ड डेवलपमेंट, पृ० ९।

लिखे जाने के कारण इसमें कुछ पूर्वी मुहावरे एवं रूप भी मिल गये हैं[१]। डॉ० नगेन्द्रनारायण चौधरी डाकार्णव की भाषा का आधार शौरसैनी अपभ्रंश मानते हैं किन्तु इसमें पूर्वी बंगाल के शब्दों, रूपों, उच्चारणों तथा मुहावरों का समावेश मानते है[२]। डॉ० सुकुमार सेन हेवज्र की वज्र गीतियों एवं साधनमाला की भाषा शौरसैनी अपभ्रंश मानते है। चर्यापदों की भाषा को अलग (पूर्वी) मानते हैं[३]।

किन्तु उपर्युक्त मतों के आधार पर अपभ्रंश के बारे में यह निष्कर्ष निकलता है कि अपभ्रंश-साहित्य समस्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की साझे की सम्पत्ति है। १. अर्थात् हर भाषा इसको अपना पूर्ववर्ती मानती है। २. शौरसैनी अपभ्रंश तत्कालीन दूसरी अपभ्रंशों पर प्रभावशाली रही है। ३. अतः हिन्दी को कई विद्वान शौरसैनी अपभ्रंश का परवर्ती-रूप मानते हैं। इन तीनों सिद्धांतों का स्पष्टीकरण इस प्रकार हो सकता है।

(१) अपभ्रंश साहित्य एवं भाषा आधुनिक आर्य भाषाओं की सामूहिक (साझे की) सम्पत्ति है। विद्वानों का एक समन्वयवादी दृष्टिकोण भी है, जो अपभ्रंश-साहित्य को आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं के साझे की सम्पत्ति समझता है। डा० दीनेशचन्द्र सेन लिखते हैं, "केवल शब्दों के अध्ययन की अपेक्षा प्रत्यय जो कारक और क्रिया रूप बताते हैं वे भाषायी भेद के अधिक वैज्ञानिक आधार हैं। अधिकतर प्रत्यय जो इन गीतों और दोहों में प्रयुक्त हुये हैं, यह विचारणीय विषय है वे सामान्यतः मैथिली, हिन्दी, उड़िया, आसामी, बंगला, मारवाड़ी और नैपाली में भी मिलते हैं। किसी एक भाषा का एकाधिपत्य इन पर (रूपो) नहीं हो सकता[४]। राहुल जी हिन्दी के पक्ष की बात करते हुए अपनी हिन्दी काव्यधारा और दोहाकोष में स्पष्ट करते हैं। "यहाँ एक बात को हम और साफ कर देना चाहते हैं, हम जब इन पुराने कवियों की भाषा को हिन्दी कहते हैं तो इस पर मराठी, उड़िया, बंगला,

१. ओ० डी० बी० ऐल०, पृ० ११२।
२. डाकार्णव, पृ० १६।
३. ओ० बं० टै, पृ० ४४। बां० सा० इ०, पृ० ४६।
४. The post-positions to denote cases and forms of verbal inflextions are a far more scientific basis for linguistic differentition than a mere study of words. In regard to most of the post-positions denoting casesused in these Songs and Dohas, it is to be observed that they are those found in common in Maithili, Hindi, Oriya, Assamese, Bengali and even Marwari and Nepalese. No one language in particular can claim any of these forms as peculiary its own.

(H. B. L. L. pp. 53).

आसामी, गोरखा, पंजाबी एवं गुजराती भाषाभाषियों को आपत्ति हो सकती है। लेकिन हमारा यह अभिप्राय हरगिज नहीं है कि ये पुरानी भाषा मराठी आदि की अपनी साहित्यिक भाषा नहीं है। उन्हें भी उसे अपना कहने का उतना ही अधिकार है जितना हिन्दी भाषाभाषियों को। वस्तुतः ये आर्य आधुनिक भाषाएँ १२वीं-१३वीं शताब्दी में अपभ्रंश से अलग होती दीखती हैं। जिस समय (८वीं सदी में) अपभ्रंश का साहित्य पहले-पहल तैयार होने लगा था। उस समय बंगला आदि उससे अलग अस्तित्व नहीं रखती थी।" आगे फिर लिखते हैं, "वस्तुतः यह सिद्ध सामंत-युगीन-कवियों की सारी भाषाओं की सम्मिलित निधि है। अर्थात १२वीं-१३वीं शताब्दी तक द्राविड़ भाषाभाषी आँध्र, तमिल, केरल और कर्णाटक को छोड़कर भारत के सभी प्रान्तों की एक सम्मिलित भाषा भी थी[1]।"

दोहाकोश में लिखते हैं "अपभ्रंश वैसे केवल हिन्दी की अपनी चीज़ नहीं है। उस पर उत्तर भारतीय या भारत की हिन्दू (आर्य) सभी भाषाओं का एक समान अधिकार है। वह मराठी, गुजराती, पंजाबी, हिन्दी-क्षेत्र की भाषाओं—राजस्थानी, मालवी, बुन्देली, हरियानी, कौरवी (मूल हिन्दी), पहाड़ी, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली, मगही, असमियाँ, बंगला और उड़िया की अपनी निधि है। इन सभी भाषाओं के क्षेत्र में अपभ्रंश-साहित्य की रचना हुई, उसको अपना समझा गया और वह सभी को अपने साहित्यिक दाय भाग के रूप में मिली[2]। डॉ० सत्येन्द्र जी का मत है, "सिद्धों की भाषा एक सामान्य लोकभाषा थी जो विभिन्न प्रान्तीय तत्त्वों को लेकर निर्मित हुई थी[3]। उस सामान्य लोकभाषा में प्रान्तीय तत्त्वों का समावेश था जहाँ से हिन्दी और बंगला का एक ही मूल और स्रोत दिखलाई पड़ता है। सिद्ध लोग विभिन्न स्थानों से एकत्रित होते थे और उस सामान्य भाषा में स्थानीय स्वरूपों का भी समावेश हो जाता था।"

२. किन्तु इस सामान्य भाषा में सर्वप्रधान तत्व शौरसैनी-अपभ्रंश का ही था। विद्वानों का मत है कि शौरसैनी अपभ्रंश का दूसरी अपभ्रंशों पर प्रभाव रहा है। यह एक इतिहास सिद्ध तथ्य है कि मध्यदेश सदैव से सारे देश को प्रभावित करता रहा है। यहाँ की भाषा सदैव से देश की अन्य भाषाओं पर अपना प्रभाव डालती रही है। क्योंकि जैसा डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने बताया है, "ऊपरी गग-प्रदेश इतिहास के उदयकाल से ही सांस्कृतिक एवं राजनीतिक जीवन का केन्द्र रहा है। स्वभावतः यहाँ की भाषायें क्रमात्, संस्कृत, पाली, शौरसेनी, प्राकृत तथा अप-

१. हि० का० धा०, पृ० १३।
२. दो० को० भू०, पृ० ८।
३. मध्ययुगीन हिन्दी के प्रेमगाथा काव्य तथा भक्तिकाव्य में लोकवार्ता-तत्व, पृष्ठ ८१ (अप्रकाशित डी० लिट० प्रबंध) १९५७ प्रकाशित पू०।

भ्रंश के रूप में, अवहट्ट के रूप में, व्रजभाषा के रूप में तथा हिन्दुस्तानी के रूप में भारत के इतिहास भर में एक शक्ति रहेगी[१]। डॉ चटर्जी आगे फिर लिखते हैं कि यह पश्चिमी अपभ्रंश साहित्यिक भाषा के रूप में पूर्वी भारत में प्रचलित थी[२]। डॉ० सुकुमार सेन मध्यदेश की भाषा शौरसैनी के प्रभुत्व के बारे में लिखते हैं : "आठवीं शताब्दी से शौरसैनी अपभ्रंश समस्त उत्तरी भारत (उत्तरापथ) की साहित्यिक (साधू) भाषा रही है। जैनियों द्वारा लिखे हुए अनेक ग्रंथ मिलते हैं। बंग देश के बौद्ध-तान्त्रिक सहजपंथी एवं शैव-योगी नाथपंथी सिद्धाचार्य इसी भाषा में अपने कड़वा ग्रंथ एवं छड़ागान लिख गये हैं[३]। शौरसेनी का प्रभुत्व दो कारणों से हुआ था, जैसा कि विद्वान मानते हैं। डॉ० चटर्जी राजपूतों के राजनीतिक प्रभुत्व को शौरसेनी अपभ्रंश के प्रचार एवं प्रसार का कारण मानते हैं[४]। डॉ० सत्येन्द्र जी लोकमानस को शौरसेनी अपभ्रंश के प्रसार का कारण मानते हैं[५]। शौरसेनी-अपभ्रंश ने तीन स्वरूप धारण किये। प्रथम अन्य अपभ्रंशों के समरूप थी। दूसरे उसने अवहट्ट रूप धारण किया जिसमें विद्यापति की कीर्तिलता, कीर्तिपताका एवं प्राकृत-पेंगलम् की रचना हुई। तीसरे वह हिन्दी के अधिक पास आ गई। जिसे पुरानी हिन्दी भी कहते हैं[६]। शौरसेनी अपभ्रंश का प्रभाव पूर्वी अपभ्रंश पर रहा है। बगला पूर्वी अपभ्रंश (मागधी अपभ्रंश) से विकसित हुई है। हिन्दी, शौरसेनी अपभ्रंश का ही एक

---

१. ओ० डी० बी० एल० पृष्ठ १३।

२. The upper gangetic valley has been the centre of culture and political life in India since the dawn of history, and it is in the nature of things that its language, successively as Sanskrit, as Pali, as Saursani prakrit and Apbhransa, as Avahatta, as Brajbhakha and as Hindustani should be a force throughout the history of India.

(O. D. B. L. pp. 13.)

३. अष्टम शताब्दी हड़ते शौरसेनी अपभ्रंश समस्त उत्तरापथेर साधु भाषा हइया दाँडाय। एही भाषाय जैनदेर लेखा वई अनेक पाओया गियाछे। बँगलादेशेर बौद्धतान्त्रिक सहजपंथी एवं शैवयोगी, नाथपंथी सिद्धाचार्यरा एही भाषा ताँहा-देर कड़वा वई एवं छड़ागान लिखिया गियाछेन।

(बा० सा० इ० प्र० ख०, पृ० ३३)

४. ओ० डी० बी० एल०, मध्ययुगीन हिंदी के प्रेमगाथा तथा भक्तिकाव्य में लोकवार्त्ता तत्त्व (अब प्रकाशित)।

५. डी० लिट प्रबन्ध प्रकाशित, पृ० ७१।

६. देखिये चार्ट, पृ० १० : लेखक का प्रबन्ध।

परवर्ती रूप है। श्री भूदेव चौधरी महाशय इस रूप में हिन्दी का प्रभाव प्राचीन बंगाली पर थोड़ा ही मानते हैं[1]।

निष्कर्ष यह है कि अपभ्रंश साहित्य को समस्त आधुनिक, भारतीय भाषाओं के साहित्य की सामान्य निधि मानना अधिक ऐतिहासिक एवं भाषा-वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संगत है। आनुपातिक दृष्टि से शौरसेनी अपभ्रंश मध्यदेशीय भाषा होने के कारण राजनीतिक सहायता एवं-परम्परा प्राप्त कर अधिक प्रसार एवं प्रचार पा सकी फिर भी उसके साथ ही दूसरी अपभ्रंश भाषायें भी चलती रहीं और अपना योगदान देती रहीं। एक ओर दोहाकोशों में शौरसेनी अपभ्रंश का प्राधान्य है[2] तो दूसरी ओर पूर्वी अपभ्रंश के रूप चर्यापदों में मिलते हैं[3]। वास्तव में अपभ्रंश साहित्य अखिल उत्तर-भारतीय जनता का साहित्य है। जिस प्रकार हम हिन्दी की परम्परा अपभ्रंशों में मानते हैं उसी तरह बँगला, आसामी, उड़िया, गुजराती, मराठी, सिंधी, पंजाबी एवं नेपाली आदि अन्य भाषाओं की भाषा-वैज्ञानिक एवं साहित्यिक परम्परा अपभ्रंश में या उसके किसी न किसी रूप में ही मिलती है। इसके सम्बन्ध में ऊपर मत दिये जा चुके हैं।

हिन्दी-बँगला में तो यह सामान्य-स्रोत की बात उनके इतिहासकारों के लेखों से विशेषत. पुष्ट हो जाती है। यहाँ एक उदाहरण से उसे स्पष्ट देखा जा सकता है। हिन्दी और बँगला दोनों के प्रामाणिक इतिहासकारों ने हम्मीर रासो को अपनी भाषा का माना है। उसके पद दोनों में उद्धृत हैं। दोनों इतिहासों में कुछ पाठ का ही भेद है। जैसे, हिन्दी पाठ यह है—

ढोला मारिय ढिल्लि महं मुच्छिउ मेच्छ शरीर।
पुर जज्जला मंतिवर चलिज वीर हम्मीर॥
चलिए वीर हम्मीर पाअभर मेइणि कंपइ।
दिगमग णह अंधार धूलि सुररह आच्छाइहि॥

---

१. बाँगला साहित्येर इतिवृत के लेखक श्री भूदेव चौधरी से नेशनल लायब्रेरी में इस विषय पर चर्चा हुई। लेखक के सामने उन्होंने इस तथ्य को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया, "प्राकृत-पेंगलम् के कई पदों को पुरानी हिन्दी का रूप माना जा सकता है"।

२. दोहाकोश।

३. बा० सा० इ० प्र० ख पृ० ४७ देखिये चर्यागीत का नमूना—

कहन्ति गुरु परमार्थेर घाट
कर्म्म कुरंग समाधि कपाट।
कमल विकशिल कहई ण जमरा
कमल मधु पिवि घोके न भमरा। (चर्यागीत २१)

दिगमग णह अंधार आण खुर साबुक उल्ला।
दरमरि दमसि धिपक्ख भारु ढिल्ली मह ढोल्ला[1] ।।

अर्थात् दिल्ली में ढोल बजाया गया, म्लेच्छों के शरीर मूर्च्छित हुए। आगे मंत्रिवर जज्जल को करके वीर हम्मीर चले। चरणों के भार से पृथ्वी काँपती है। दिशाओं के मार्गों और आकाशों में अंधेरा हो गया है, धूल सूर्य के रथ को आच्छादित करती है। ओस में खुरासानी ले आए। विपक्षियों को दल मल कर दबाया, दिल्ली में ढोल बजाया।

और बँगला के इतिहास में यह पाठ है :—

ढोल्ल मारिव ढिल्लिमह-मुच्छिअ मेच्छ शरीर।
पूर जज्जल मल्लवर चलिअ वीर हम्मीर।।
चलिअ वीर हम्मीर पाअभर मेइनि कम्पइ।
दिगमग णह अन्धार धुलि सूरह रह आमइ।।
दिगमग णह अन्धार आनू सूर सानक उल्ला।
दलबलि दमसि विक्ख मारअ ढिल्लि मह ढोल्ला[2] ।।

अर्थात् ढोल मारिल दिल्लि माझे, म्लेच्छ शरीर मूर्च्छित हइल, मल्लवर जज्जलके पूरः सर करिया वीर हम्मीर चालियाछे। वीर हम्मीर चलियाछे, मेदिनी काँपितेछे, दिक् मार्गओ नमः अन्धकार, धूलाय सूयेर रथ झाँपियाछे, दिक्, मार्ग ओ नमः अधकार खोरासानेर उल्ला आज्ञादिल दलबले विपक्षे दमन कर, दिल्लिमाझे ढोल पिटोओ।

दोनों ही साहित्यों के इतिहासकार इन पदों को अपनी भाषा एव साहित्य का अभिन्न अग मानते हैं। इस प्रकार दोनों ही इतिहासों में अपभ्रंश और अवहट्ठ के प्रकरण में ऐसे बहुत से पद हैं जो समान हैं। अपभ्रंश का पूर्ववर्ती स्वरूप सभी क्षेत्रों में अधिक भेद से युक्त नही है। किन्तु उत्तरकालीन अपभ्रशो में नव्य भारतीय आर्य भाषाओ के बीज अंकुरित हो उठे हैं। पर सभी के रूप साथ-साथ चलते दीखते हैं। ऐतिहासिक सत्य तो यह है कि इन भाषाओं में पहले कोई अधिक भाषामूलक एवं साहित्यिक अन्तर नही था। उस काल में इन भाषाओं की कोई कठोर सीमा-रेखा निर्धारित नहीं थी। अतः अपभ्रंश को शौरसेनी अपभ्रंश अथवा पुरानी हिन्दी से प्रभावित (गर्भित) अपभ्रंश नव्य भारतीय आर्य भाषाओं के साझे की (पैतृक) सम्पत्ति कहा जा सकता है। साथ ही यह बात भी दृष्टव्य है कि यह अपभ्रंश शौरसैनी अपभ्रंश से अत्यधिक प्रभावित है। अतः हिन्दी के प्रभाव का मूल इसी युग से दिखाई पड़ने लगता है।

१. हि० सा० इ०, पृ० २५।
२. बाँ० सा० इ०, पृ० ३९।

: ४ :

नाथ-सम्प्रदाय का साहित्य (१००० ई० से १८०० ई० तक)

२६. अपभ्रंश भाषा के अंतिम छोर पर जब पुरानी हिन्दी तथा आधुनिक अन्य देश-भाषायें कुछ-कुछ अपना रूप ग्रहण कर रही थीं। तब भारत भर में नाथ-संप्रदाय प्रबल था। नाथ-सम्प्रदाय विषयक प्रभूत-साहित्य हिन्दी में लिखा गया। इस संप्रदाय का प्रभाव बंगाली-साहित्य पर बहुत था। डॉ० शशिभूषणदास गुप्त ने लिखा है—"नाथ-सम्प्रदाय एक अन्य अस्पष्ट धार्मिक-सम्प्रदाय है, जिसने बँगला-साहित्य के विकास को अत्यधिक-रूप में उसके आदिकाल से ही प्रभावित किया है। नाथ-सम्प्रदाय एक अखिल भारतीय धार्मिक आन्दोलन के रूप में अत्यधिक लोकप्रिय रहा है और अब भी है। आदिकाल और मध्यकाल में इसने कई अन्य भारतीय साहित्यों को भी प्रभावित किया है। नाथ-सम्प्रदाय का इतिहास धार्मिक एवं साहित्यिक रूप में भारत के अन्य प्रदेशों और हिमालय के भागों, नैपाल और तिब्बत के साथ भी घनिष्ठ रूप में सम्बंधित रहा है। यह जानना सरल है कि इसका सहज वही है जो सहज बौद्ध-तंत्रों, बौद्धगानों और दोहों में वर्णित है। बहुधा नाथ-सम्प्रदाय के आधुनिक भाषाओं के साथ में और विशेषकर पुरानी हिन्दी के ग्रंथ गोरखबोध और इसी तरह के चर्पटी और सिद्ध-साहित्य में इसी सहज के दर्शन होते हैं[१]।

यह भारतव्यापी संप्रदाय था। इसके माध्यम से पश्चिम और पूर्व का पारस्परिक आदान-प्रदान भी बढ़ा। गोरखनाथ के ग्रंथ हिन्दी में इस संप्रदाय के विशिष्ट ग्रंथ हैं। इनके एक हिन्दी-ग्रंथ का प्रभाव बंगाली-ग्रंथ पर स्पष्ट है। जिसे उस भाषा के विद्वान इतिहासकार भी स्वीकार करते हैं। उदाहरणार्थ डा० सुकुमार सेन ने लिखा है—"तवे आदान-प्रदान एक तरफा हय नाई। भारतेर अन्य-प्रान्तेर

१. Another obscure religious cult, that has influenced the growth of Bengali Literature to a considerable extent from an early period of its history is Nathism. As an all India religious movement Nathism enjoyed and is still enjoying immense popularity and it influenced the growth of many other modern Indian Literatures in the early and the middle periods. The religious and literary history of Nathism in Bengal is therefore, intimately. connected with that of many other provinces of India as also of the Himalayan regions like Nepal and Tibet. It is very easy to see that this sahaj is the same as the sahaj described in the Buddhist tantras and the Buddhist Dohas and Songs. In the vernacular Literature of the Nath cult we frequently meet with this conception of Sahaj particularly in the old Hindi text Gorakh-bodh and in the similar Literature of Carpati and other Siddhas.

(C. K. R. C.)

गोरख-पंथी देर छड़ार प्रभाव ओ बाँगाला देशेर नाथ योगीदेर निबन्धे पाइआछि। उत्तर बगे लेखा एकटि क्षुद्र प्राचीन निबंध श्री गोर्ख-संहिताय छड़ार भाषाय ओ छन्दे गोरख-पन्थी हिन्दी छड़ार स्पष्ट-प्रभाव रहियाछे।[1] इसके निर्दशन के लिये यह तुलनात्मक अंश दिया जाता है :—

बँगला (श्री गोर्ख संहिता)

गोरखनाथ—तुमि गुरु आमि शिष्य सब्दके पूछो गुरु मनेते ना करिह रोष

जादेसेर कौन उपदेशा, सुन्नेर कथा वसा रसे ज्ञानेर कौन परिचय

मछदलि नाथ वाच—अवधु आदेसेर अन्य उपदेशा, सुन्नेर निरन्तक वासा, ज्ञानेर अकथ्य मुदा, सुन गोर्ख मिनेर चेला. गोरखनाथ वाच—गुरु गोसाई, केमन गुरु केमन चेला, केमन मूल, केमन वेला केम न तंत्र लेके फेरे अकेला।

मछदलि नाथ वाच—अवधु मन मूल पवन वेला सबद गुरु सुरत चेला, निर्मल तंत्र लेके फेरेरे अकेला। कहे मछदलि शुन गोर्ख चेला।

गोरखनाथ वाच—गुरु गोसाई
कौन सरोवर पानि बिनो,
कौन मूल बिनौ डाल,
कौन परिमल वासा बिनौ,

कौन मृत्यु : : बिनो काल।
मछदलि नाथ वाच—अवधु
मन सरोवर पानि बिनो मूल पवन बिनो डाल
आशा परिमल वासा बिनो निद्रा मत्यु बिनो काल।

हिन्दी (मछिन्द्र गोरखबोध)

गोरखो वाच—स्वामी तुम्हें गुरु गुसाई अम्हें जु सिष (सबद एक पूछिब्वा) दया करि कहिवा मन ही में करिवा रोष

गोरख स्वामी आदेशे का कौन उपदेश, सुनि का कथं वास, सबद का कौन गुर, कथंत मछिन्द्रनाथ।

मछिन्द्र—अवधू आदेश का अनुपम उपदेश, सुनि का निरन्तर वास। सबद का परचा गुरु, कथंत मछिन्द्रनाथ। गोरख स्वामी कौण मूल कौण वेला। कौण गुरु, कौण चेला, कौण क्षेत्र कौण मेला।

मछिन्द्र—अवधू मन मूल पवन वेला सबद गुरु सुरति चेला त्रिकुटी वँध उलटि मेला, नृवांण तंत्र ले रमो अकेला।

गोरख
स्वामी कौन पँड़ि बिन डाल,
कौन पंषि बिन सूवा,
कौन पालि बिन नीर, कौन बिन कालहि मूवा।
मछिन्द्र—अवधू
पवन पँड़ि बिन डाल,
मन पंपि बिन सूवा,

धीरज पालि बिन नीर, निद्रा बिन कालहि मूवा

१. बाँ० भा० इ० प्र० ख० पृ० ७५८।

यह मछिन्द्र गोरखबोध हिन्दी का ग्रंथ है, और श्री गोरख संहिता ग्रंथ बंगला का है।

पहले कहा जा चुका है कि भारत में सदैव एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में आदान-प्रदान होता आया है अतः गोरखनाथ प्रभावशाली व्यक्ति थे, उनका प्रभाव बँगला पर होना स्वाभाविक है। इसी तरह यह प्रश्नोत्तर शैली शैवनाथ पंथियों की एक विशेपता है। बँगला में अब भी इस तरह की हैंयाली (पहेलियाँ) चलती हैं[1]। हिन्दी का प्रभाव बँगला के नाथपंथ के लोक-साहित्य पर भी कुछ-कुछ है। यह लोक-साहित्य का उदाहरण गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर संकलित युगीर गान से है।

प्रश्न	उत्तर
कौन देश में राजा भाला कौन देश में रानी,	उत्तर में राजा भाला दक्षिण में रानी,
कौन देश में कापड़ भाला कौन देश में पानी,	पश्चिम देश में कापड़ भाला, पूर्व देश में पानी।

इस प्रकार के सम्वाद कुछ तो शब्दानुवाद, कुछ भावानुवाद एवं कुछ शैली का अनुकरण मात्र हैं। इस एक संकेत से हम इस युग में इस संप्रदाय द्वारा पड़े प्रभाव के कुछ रूप को समझ सकते हैं।

: ५ :

मैथिली (विद्यापति ठाकुर १३५०–१४५०)

हिन्दी का प्रभाव बँगला भाषा पर जिन परंपरागत स्रोतों से पड़ा है उनका कुछ दिग्दर्शन ऊपर कराया जा चुका है। यहाँ मैथिली का प्रश्न भी हमारे सामने आता है। हिन्दी वाले मैथिली को हिन्दी के अन्तर्गत मानते हैं, उन्हीं के साथ वैज्ञानिक ऊहापोह के बाद यही मत समीचीन लगता है। इस स्थिति में मैथिली का प्रभाव भी हिन्दी का ही प्रभाव माना जाएगा। विद्यापति मैथिली के महाकवि हैं। उनका प्रभाव बँगला पर इतना है कि पहले मैथिली को बँगला ही माना जाने लगा था। वैसे तो यह विषय हमारे प्रबंध के विषय से सीधा संबंध नहीं रखता फिर भी वस्तुस्थिति का परिचय देने के लिये यह आवश्यक है कि मैथिली विषयक तीन मतों की कुछ चर्चा करली जाय। ये तीन मत ये हैं—(१) मैथिली बँगला के अन्तर्गत है। (२) मैथिली स्वतंत्र भाषा है। (३) मैथिली हिन्दी है। इस विवाद को इस तालिका से समझा जा सकता है[1] :—

१. देखिये बाँ० सा० इ० प्र० ख० पुनश्च पृ० १०३४—१०३५।

बँगलावादी

समय	विद्वान	अभिमत के तत्व
(१८६६-१९३९) सदैव से बंगाली विद्यापति को बँगला का कवि मानते आये हैं।	डॉ० दीनेशचन्द्र सेन एवं अन्य बंगाली विद्वान	बँगला भाषा ओ-साहित्य पृष्ठ २२५, हि० ब० लैं० लि० पृ० १३४, चंडीदास एवं विद्यापति प्रकरण। बँगला और मैथिली एक ही मागधी समुदाय की भाषाएँ हैं।

स्वतंत्र-अस्तित्व

	हॉनेल, जार्ज ग्रियर्सन, डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी डॉ० सुभद्र झा, डॉ० जयकांत मिश्र	अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं की तरह मैथिली की भी अपनी प्राचीन साहित्यिक स्वतंत्र परंपरा है। हि० मै० लि० पृ० ४७।

हिन्दीवादी

	डॉ० कैलौग, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, राहुल जी, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० रामकुमार वर्मा, डा० बाबू गुलाबराय, मिश्रबन्धु, डॉ० सत्येन्द्र, डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, डॉ० हजारी प्रसाद, द्विवेदी, डॉ० बाबूराम सक्सैना, डा० विश्वनाथप्रसाद, प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	हिन्दी ग्रामर, पृ० ६५; देखिये शब्द-तत्त्व नामक-प्रबंध; हि० सा० इ०, पृ० ५७; पत्र-व्यवहार पृ० त० नि०, पृ० २३१; हि० भा० इ०, पृ० ५४; हि० सा० आ० इ०, पृ० ३३; हिन्दी काव्य विमर्श में निबंध; साहित्य-सन्देश; पत्र-व्यवहार, हिन्दी-साहित्य, पृ० ७६; पत्र-व्यवहार; एल० आइ० के० स०, पृ० ३५; हिन्दुस्तान १५ जून १९-५९ ई० में हिन्दी के आद्य कवि विद्यापति, अभिभाषण।

तालिका का कुछ स्पष्टीकरण भी आवश्यक है। कुछ समय पूर्व लोगों की यह धारणा थी कि विद्यापति बंगाली कवि हैं किन्तु अब वह विचारधारा बदलती जा

रही है। डॉ० दीनेशचन्द्र सेन एक ओर विद्यापति पर बंगाली का दावा मानते हैं[1]। उनका कथन है कि सदैव से बंगाल विद्यापति से प्रेरणा लेता आया है। किन्तु वे उनको वास्तव में मैथिल कवि ही मानते हैं। उड़िया, आसामी व बंगला की तरह मैथिली भी मागधी में अपभ्रंश प्रसूत है। अतः मैथिली और विद्यापति का सम्बन्ध इनके साथ घनिष्ठ है। कुछ क्रिया रूपों में मैथिली का इन पूर्वी भाषाओं के साथ मेल है। किन्तु अब विद्वान् इस बात को मानने लगे हैं कि विद्यापति बँगला कवि नहीं हैं[2]। वह मैथिली का सर्वश्रेष्ठ कवि है। अतः यह स्पष्ट और सिद्ध है कि मैथिली भाषा बँगला के अन्तर्गत नही आती है। विद्यापति भी बँगाली कवि नहीं हैं।

अन्य विद्वान् मैथिली को स्वतंत्र भाषा का पद प्रदान करते हैं। उनमें से प्रमुख विद्वान् जार्ज ग्रियर्सन, डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी, डॉ० सुभद्र झा और डॉ० जयकांत मिश्र हैं जो इसको स्वतंत्र भाषा मानते हैं। उनका तर्क है कि भाषा-विज्ञान की दृष्टि से मैथिली, मागधी अपभ्रंश प्रसूत है। जिस प्रकार मागधी अपभ्रंश प्रसूत अन्य भाषायें उड़िया, बँगला एवं आसामी स्वतंत्र हैं उसी प्रकार मैथिली भी स्वतंत्र भाषा है। मैथिली का संबंध पश्चिमी भाषाओं की अपेक्षा पूर्वी भाषाओं के साथ घनिष्ठ है। यह हिन्दी और बँगला की मध्यवर्तिनी भाषा है।

किन्तु अन्य विद्वान् मैथिली को हिन्दी की उपभाषा मानते हैं, उनका कथन है कि मैथिली हिन्दी के अन्तर्गत ही आती है जिनमें प्रमुख है[3]—डॉ० कैलोग मैथिली को हिन्दी के अन्तर्गत मानते हैं। वे अपनी हिन्दी ग्रामर में लिखते हैं, इस क्षेत्र में हिन्दी विभाषाओं की गणना इस प्रकार होती है—पश्चिम से शुरू होकर और पूर्व की ओर जाते हुए उदाहरण स्वरूप ये भाषायें आती हैं :—

(१) राजस्थान की विभाषाएँ : मारवाड़ी, मेवाड़ी, जैपुरी, हाड़ोती।

(२) हिमालय की विभाषाऐ : गढ़वाली, कुमाऊनी, नेपाली।

(३) द्वाबा की बोलियाँ : ब्रज, कन्नौजी।

(४) पूर्वी विभाषाएँ : अवधी, रिवाँई (रीवाँ की) भोजपुरी। मागधी, मगही और मैथिली।[4]

---

१. बंगभाषा और साहित्य, पृष्ठ २२५।

२. हि० बं० लैलि०. पृष्ठ १३४।

३. देखिए-पृष्ठ २१; प्रस्तुत निबन्ध में हिन्दीवादी तालिका।

४. With this region, the dialects of Hindi may be enumerated as follows: beginning in the west and proceeding eastward namly:
(1) The dialects of Rajputana: Marwari, Mewari, Mairwari, Jaipuri, and Haroti,
(2) The Himalayan dialects, Garhwali, Kumconi and Naipali,

शब्दावली, साहित्यिक परम्परा तथा विभक्तियों आदि की दृष्टि से मैथिली का हिन्दी से सादृश्य होने के कारण वह हिन्दी ही के अन्तर्गत आ जाती है। एक उदाहरण देते हैं :— (देखिये पृ० ५४-५५)

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर हिन्दी की बोलियों की षष्ठी विभक्ति का वर्णन करते हुए मैथिली को भी सम्मिलित कर लेते हैं। उदाहरण से घोड़ा शब्द देकर स्पष्ट करते हैं—

खड़ी बोली,	कन्नौजी,	ब्रजभाषा,	मारवाड़ी,	मेवाड़ी,	गढ़वाली,	अवधी
घोड़ा का,	घोड़ना का,	घोड़ा को,	घोड़िरों,	घोड़ा का,	घोड़ोका,	घोड़नकेर

बिहारी	भोजपुरी	मागधी	मैथिली
घोड़नकर	घोड़नकि	घोड़नकेर	घोड़ानिक, घोड़ानिकर[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल विद्यापति की पदावली को हिन्दी के अन्तर्गत मानते हैं।[2] राहुल जी मैथिली को उसी तरह हिन्दी की विभाषा मानते हैं जिस प्रकार ब्रज-भाषा को।[3] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा भी मैथिली को हिन्दी की उपभाषा मानते हैं।[4] डॉ० रामकुमार वर्मा भी इसी मत के समर्थक हैं।[5] बाबू (डॉ०) गुलाबराय विद्यापति को हिन्दी का कवि मानते हैं।[6] डॉ० सत्येन्द्र जी उनके मत का समर्थन

(3) The dialects of the Doab, Braj, Kanauji,

(4) The Purbi or Eastern dialects, Awadhi, Riwai, Bhojpuri, Magadhi and Maithili.

Kellogg : The grammar of the Hindi Language. Chapter IV. Page 65.

१. देखिये—रवीन्द्र रचनावली में द्वादश खण्ड, पृ० ३६०-६१, 'शब्द तत्व नामक प्रबन्ध।'

२. हि० सा० इ०, पृ० ५७।

३. देखिये—पुरातत्व निबंधावली, पृ० २३१ और परिशिष्ट १ में पत्र संख्या १।

४. हि० भा० इ० भू०, पृ० ५९ और परिशिष्ट में पत्र संख्या ३।

५. हि० सा० आ० इ०, पृ० ३३।

६. देखिये—'हिन्दी काव्य विमर्श' में 'विद्यापति का हिन्दी-साहित्य में स्थान' नामक निबन्ध।

एकवचन (मैं)

मू० हिन्दी	कर्ता	कर्म	करण	सम्प्रदान	अपादान	सम्बन्ध	अधिकरण
	मैं	मुझको, मुझे	मैंने	मेरे लिए	मुझसे	मेरा	मुझ, मैं, पै, पर ।
कन्नौजी	मैं	मोहि, मोको	मैंने	मोको	मो से, ते	मेरो	मोपे, मोपर ।
ब्रज	मैं, हौं, हो	मौहि,	मैंने	हाँ	मोसों, मुजतें	मेरौ,	मोपे, मुझपरि, मुपै ।
मारवाड़ी	हूँ	म्हनै, मनै	म्हैं, मैं	मोकूँ	म्हैंसूँ	म्हारो	म्हैं, माहैं, मैंऊपरे
मेवाड़ी	म्हूँ	म्होए	म्हैने	म्हैं	म्हाँसूँ	म्हारो	म्हाँ, माएं, म्होऊपरे
गढ़वाली	मैं	मैं कणि	मैंने		मैंते	मेरो	मैंमाँ, मैंपर
कुमाऊनी	मैं	मैंहुणि	मैंसे	मैंहें	मैथें	मेरो	मैंमां
नैपाली	मैं.प.मौ	मौं	मैलाई	मलै	मैवाट	मेरो	मैमां, मरलथ
बैंसवाड़ी	मैं	मो, मोहि	मैं	मो	मोहि, मोहिसन	मोर	मोमांहि,
अवधी	मैं	मोका	'अभाव' 'इच्छित'	मोसे	मोते	मोर	मोपर, मोम
भोजपुरी	मैं, मौं हम	हमरा, मोरा	मोराके	हमरा	हमरासें	मोर	मौरा में, हमरा में
मगही	हम	मोरा, हमरा	हमराके	इच्छित	मौरासे, हमरासें	मोर, मोरा हमार	मोरा में, हमरा में
मैथिली	हम, हमे, हमका,	हमेंरा, हम्में हम्मे मोरा	मोराके	हमरासें	मोरासैं हमरालें	मोर, मौरे, हमर, हमरे	मोरा में, हमरा में

H 3281

बहुवचन (हम)

	कर्ता	कर्म	करण	सम्प्रदान	अपादान	सम्बन्ध	अधिकरण
मू० हिन्दी	हम	हमें, हमको	हमने	हमसे	हमसे	हमारा	हमने, हमपर
कन्नौजी	हम	हमें	हमको	हमनै	हमसै, हमतैं	हमारो	हममैं, हमपर
ब्रज	हम	हमें	हमकौं, हमौं	हमन, हमनि	हम, हमों सौंतें, हमन, हमनि	हमारौ	हममैं, हमौंपर हमनि, हमन, परि, पै
मारवाड़ी	म्हैं	म्हांनैं	म्हाने	म्हां	म्हांसूं, मासूं	मारौ, म्हांरो	म्हाँउपरी
गढ़वाली	हम	हमुं	हमसणि	हमु	हमुने	हमारो	हमुमां, हमुपर
कुमाऊंनी	हम	हमनहुणि	हमनले		हमंथ	हमरौ	हमनमां
नैपाली	हामि हामहेरु	हामेरु	हामिले	हामिवाट	हामरो	हामरो हामिको	हामिमां, हामेर माथि
बैंसवाड़ी	हम, हमन	हमहिं	हमरकहं	हम	हमसन	हमार	हैममाहिं
अवधी	हम	हममा	इच्छित	हमसे	हमते	हमार	हमरेम
भोजपुरी	हमनोका हमरन	हमरन	हमनी	हमरन	इच्छित	हमरनका	हमरनमें, हमनीमें
मगही	हमनी हमरनि	हमनी	हमरनी	इच्छित	हमनीकै, हमरनीका	हमनीकर हमरनीकेरा	हमरनीमैं हमनीमें
मैथिली[2]	हमनी, हमें, हम सब हमरा सलके	हमरा, सबके	हमरासभकें हमरासभलेल	इच्छित	हमरासबसें	हमरासमकें	हमरासकमैं[1]

१. हिन्दी ग्रामर, पृष्ठ १९६।

२. इन तालिकाओं में उन बोलियों के सर्वनाम के रूपान्तर दिये गये हैं जो हिन्दी की बोलियाँ कही जाती हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'मैथिली' की प्रवृत्ति हिन्दी की बोलियों की परम्परा से सम्बन्धित है।

करते हैं।[1] डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का मत है—मैथिली के साहित्य, भाव, भाषा, शब्दावली* व्याकरण आदि के अध्ययन की दृष्टि से हिन्दी के अन्तर्गत मानना उचित है।[2] डॉ० बाबूराम सक्सैना भी मैथिली को हिन्दी की उपभाषा मानते हैं।[3] सुप्रसिद्ध—भाषा वैज्ञानिक डॉ० विश्वनाथप्रसाद जी का मत है—ब्रजभाषा, अवधी, राजस्थानी, मारवाड़ी और मैथिली का प्रारम्भिक और समृद्ध-साहित्य है, किन्तु अब भी अपने-अपने क्षेत्रों की सीमाओं में साहित्यिक लहरों से सजीव हो जाती हैं। किन्तु जो व्याकरण लिखने एवं बोलने में प्रचलित है वह सबमें सामान्य है। सामान्य ढाँचा और शब्दावली, सृजनात्मक शक्ति और परस्पर बुद्धिगम्य होने के कारण अपने भाषाभाषियों को एक ही परिवार में आबद्ध कर रखा है। अब उनका एक ही भाषायी परिवार है, जो हिन्दी भाषा को सामान्य-साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आधार मानती हैं।[4] पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र विद्यापति को हिन्दी का आदिकवि मानते हैं।[5]

विद्यापति का बँगला पर प्रभाव

बंगाल और मिथिला प्रदेश का सम्बन्ध बहुत प्राचीन और गौरवपूर्ण रहा है। मिथिला और बंगाल का सांस्कृतिक आदान-प्रदान बहुत पुराना है। सुप्रसिद्ध विद्वान डा० दीनेशचन्द्र सेन लिखते हैं, "हमारे अनेक प्रथम श्रेणी के कवि विद्यापति के शिष्य हैं। यह शिष्यत्व हमारी नूतन कथा नहीं है। मिथिला के राजर्षि जनक,

---

१. देखिये साहित्य संदेश के एक अंक में 'क्या विद्यापति हिन्दी के हैं ?' नामक लेख।

* देखिये 'विद्यापति पदावली' के अन्त में खगेन्द्रनाथ मिश्र द्वारा संकलित शब्दावली।

२. परिशिष्ट में पत्र संख्या २।

३. परिशिष्ट में पत्र संख्या ४।

४. Some of these like Brajbhasha, Awadhi, Rajsthani or Marwari and Maithili have early and rich-literature of their own and are still animated by literary urges within their respective- territorial limits. But by working out the grammar operating into their written and speech-forms, that as much in common between them. The mutual intelligibility based on a community of structure, vocabulary and creative-will has bound their speakers in a close fellowship and they all now belong to one speech-community looking upon Hindi of their common literary and cultural language.
(K. S. I. L, Page 35)

५. देखिए—हिन्दुस्तान १५ जून १६५६ ई०।

याज्ञवलक्य, गार्गी, मैत्रेयी, गौतम और कपिल सारे भारत के गुरु स्थानीय हैं। मिथिला राजा इक्ष्वाकू के चार पुत्रों ने विमाता के कुचक्रों से ताड़ित होकर कपिलवस्तु में नया राज्य स्थापित किया। बुद्धदेव उसी वंश में उत्पन्न हुए हैं। नवद्वीप का अजेय टोल मिथिला के शिष्य काना शिरोमणि द्वारा अधिष्ठित हुआ है।[1] इससे प्रकट है कि मिथिला का बँगाल पर कितना सांस्कृतिक प्रभाव है। सदैव से मिथिला विद्या का बड़ा केन्द्र रहा है। भारत के चोटी के संस्कृत के विद्वान आज भी मिथिला में मिलते हैं। मैथिली भाषा एवं साहित्य का प्रभाव बंगला भाषा और साहित्य पर गम्भीर और युगान्तरकारी है। इससे बड़ा प्रभाव का प्रमाण क्या हो सकता है? मैथिली एवं बँगला के सम्पर्क से अवहट्ठ पर आधारित एक नयी साहित्यिक भाषा का जन्म हुआ जिसे हम ब्रजबुलि कहते हैं। मैथिली भाषा एवं साहित्य का सबसे बड़ा महाकवि विद्यापति ठाकुर है। उनका प्रभाव बँगला भाषा एवं साहित्य पर बँगला के आदि मध्ययुग से लेकर आधुनिक विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर तक आता है। चैतन्य महाप्रभु विद्यापति के पद सुनकर भावविभोर हो जाया करते थे। ऐसी वैष्णव पदावली कौन सी है, जिस पर विद्यापति का प्रभाव नहीं हो। बंगाल विद्यापति के पदों से इतना भावमग्न हुआ है कि उसने उनको बंगाली का कवि मान लिया है।

डा० दीनेशचन्द्र सेन लिखते हैं कि विद्यापति बँगाली कवि नही हैं फिर भी उनका नाम बँगला साहित्य के इतिहास में लिखते हैं। विद्यापति के पद समस्त वैष्णव पदावलियों में स्थान पा गए हैं और वे प्रत्येक अवसर पर गाए जाते हैं[2]। सचमुच विद्यापति के पद बँगला पदों में दूध और पानी की तरह घुलमिल गए हैं। उनका पूर्णतया बंगालीकरण हो गया है। उनमें भेद करना बहुत कठिन है। जो लुप्तप्राय पद हैं वे तो अब केवल बँगला में ही मिलते हैं जो मैथिल रूप से मैथिली में अप्राप्य हैं[3]। कई शताब्दी से वे पद अब बँगला रूप धारण किए हुए हैं। पूर्णतया अविभाज्य हैं। जार्ज ग्रियर्सन का मत है, "प्रसिद्ध वैष्णव सुधारक चैतन्य महाप्रभु ने

---

१. आमादेर अनेक गुलि प्रथम श्रेणीर कवि विद्यापतिर शिष्य। मिथिलार शिष्यत्व आमादेर नूतन कथा नहे। मिथिलार राजर्षि जनक, याज्ञवलक्य, गार्गी, मैत्रेयी, गौतम, कपिल—समस्त भारतवर्षेर गुरुस्थानीय। मिथिलाराज इक्ष्वाकुर चारि-पुत्र विमातार चक्रान्ते ताड़ित हइया कपिलवस्तुते नवराज्य स्थापन करेन, बुद्धदेव सेइ वंशोद्भव। नवद्वीपेर अजेयटोल मिथिलार शिष्य काणा शिरोमणि द्वारा अधिष्ठित। (बं० भा० ओ० सा०, पृ० २२५)

२. हि० ब० ला० लि०, पृ० १३४।

३. देखिए—जनम अवधि हाम रूप नेहारिनू। तोपि नयनना तिरपित मेल।

विद्यापति को अपनाया है।[1] इसी कारण उनके गीत बंगालियों के घर में इसी तरह गाए जाते हैं, जिस प्रकार बाइबिल अंग्रेजों के घर में। उनके पदों को तोड़ा-मोड़ा गया है, बढ़ाया गया है, छोटा किया गया है और उनका अनुकरण किया गया है जिससे एक नयी भाषा बनी है, जिसे ब्रजबुलि कहते हैं।[2] डा० सुनीतिकुमार चटर्जी लिखते हैं, विद्यापति ठाकुर (चौदहवीं शताब्दी के अंत और पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ) मैथिली के सबसे बड़े महाकवि हैं। विद्यापति के राधाकृष्ण के प्रेमगीत भारतीय गीतिकाव्य के सुन्दरतम पुष्प हैं। इन्होंने बंगाल-वैष्णव गीतिकाव्य को बहुत प्रभावित किया है। उनके पद बंगाल में फैले, बंगालियों द्वारा प्रशंसित हुए, अपनाए गए और सोलहवीं शताब्दी से उनका प्रभाव चला आ रहा है। बँगाल में एक नई काव्य की भाषा बनी जो मैथिली, बँगला और पश्चिमी हिन्दी का मिश्रण है। जो बँगाल में राधा-कृष्ण के प्रेम गीतों के लिए बहुत फैली है। इस मिश्रित भाषा को ब्रजबुलि कहते हैं। यह कृष्ण के बचपन, यौवन की भूमि के गीत गाती है। अर्थात् ब्रजभाषा से यह अलग भाषा है। इस भाषा में जो गीतिकाव्य लिखा गया है वह बंगाल की अनुपम निधि है।[3] डॉ० सुकुमार सेन लिखते हैं, बँगाल में सोलहवीं शताब्दी के साहित्य में इन्हीं मैथिली गानों का प्रभाव सार्थक हुआ था। ब्रजबुलि में रचित वैष्णव पदावली सर्वांश में नहीं तो अधिक परिमाण में मैथिली पदावली का अनुसरण किया गया था। यह अविसंवादित है कि ब्रजबुलि के गठन में मैथिली ही प्रधान उपादान है। अवश्य अवहट्ठ का भी प्रभाव है। ब्रजबुलि में जो पश्चिमी हिन्दी के पद और वाक्य रीति पायी जाती है, वह प्रधानतः अवहट्ठ से ही आयी हुई कह सकते हैं।[4]

डा० सुभद्र झा ने बँगला पर मैथिली के प्रभाव का इस प्रकार वर्गीकरण किया है :—

१. चंडीदास विद्यापति, रायेर नाटक गीति···स्वरूप रामानन्दे सने, महाप्रभु रात्रिदिने, गाये शुने परम आनन्दे। चै० च०
२. लैं० स० आई० (हि० मैं० लि० फ० वा० १६७)
३. ओ० डी० बी० लैं०, पृ० १०३।
४. बाँगलाय षोड़श शतकेर पदावली-साहित्य एइ मैथिल गानगुलिर प्रभाव-सार्थक हइयाछिल। ब्रजबुलिते रचित वैष्णव पदावली सर्ववांश ना हओक अधिक परिमाणे मे मैथिल-पदावलीर अनुसरण करियाछे ताहा अविसंवादित। ब्रजबुलि भाषार गठने मैथिलई प्रधान उपादान। अवश्य अवहट्ठेर प्रभाव ओ मानिते हय। ब्रजबुलिते जे पश्चिमा हिन्दीर पद ओ वाक्य-रीति पाओया जाय ताहा प्रधानत अवहट्ठ हइते आगत बलिया मने करि।
(बाँ० सा० इ० प्र० ख०, पृ० ८१)

(क) कुछ पद जिनकी भाषा बिल्कुल मैथिली है।

(ख) कुछ पद जो मैथिली एवं बँगला मिश्रित हैं।

(ग) कुछ पद जो विशुद्ध बँगला हैं।

(घ) कुछ पद जो बँगला में हैं, जिनमें ब्रजभाषा के पद मिले हुए हैं।[1] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी लिखते हैं कि विद्यापति की पदावली ने आगे चलकर बंगाल, आसाम और उड़ीसा के वैष्णव भक्तों को खूब प्रभावित किया और यह उन प्रदेशों के भक्ति-साहित्य में नयी प्रेरणा और नयी प्राणधारा संचारित करने में समर्थ हुई। इसीलिए पूर्वी प्रदेशों में सर्वत्र यह पुस्तक धर्मग्रन्थ की महिमा पा सकी है[2]। मैथिली साहित्य के इतिहासकार डा० जयकांत मिश्र बंगाल में विद्यापति के प्रभाव के बारे में लिखते हैं—बंगाल, आसाम और उड़ीसा में ये बड़े वैष्णव माने जाते हैं। पूर्वी भारत के सर्वप्रथम गीतिकार हैं, जिन्होंने एक बोलचाल की साधारण भाषा को साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया है। विद्यापति और चंडीदास का नाम साथ-साथ लिया जाता है। रमेशचन्द्र दत्त जैसे विद्वान् कहते हैं, विद्यापति एवं चंडीदास का मिलन नहीं हुआ था, चंडीदास की कविता विद्यापति से परवर्ती है। वे विद्यापति द्वारा प्रभावित हैं, विशेषकर उनके श्रीकृष्ण संकीर्तन में देखा जा सकता है। चंडीदास की पदावली में जो ब्रजबुलि के रूप हैं ये कहाँ से आए हैं? यह आश्चर्यपूर्ण प्रश्न है।[3]

विद्यापति के अनुकरण पर जो गीत-शैली बनी, वह लगभग साढ़े तीन सौ साल तक बंगालियों का कण्ठहार बनी रही। विद्यापति का प्रभाव गीतिकाव्यकार के रूप में ही अधिक हुआ है। वे रूप सौन्दर्य एवं यौवन के कवि हैं। विद्यापति लौकिक प्रेम के कवि हैं, किन्तु भक्तों ने सदैव उनके पदों का अर्थ आध्यात्ममूलक किया है। राधा और कृष्ण का प्रेम सांसारिक नर-नारी का प्रेम नहीं है। वह आत्मा और परमात्मा के आध्यात्मिक प्रेम का प्रतीक है। उनका विरह मुमुक्षु आत्मा की परमात्मा से मिलन की आकुलता है।

विद्यापति ने अपने गीतों से भारत में जो माधुर्य बिखेरा है। उस माधुर्य की गंगा में बंगालियों ने बहुत गहरे गोते लगाये हैं। सचमुच विद्यापति भावुक बंगालियों के जातीय कवि माने जाते हैं। पहले कहा जा चुका है कि वे शृंगार या आदि रस के कवि हैं। उनके गीतों में भू और स्वरलोक का संगम है। कवि धरती के गीत गाते हैं और अंत में स्वर्गीय आनंद विकीर्ण करते हैं। भाव एवं भाषा के रूप में विद्यापति का प्रभाव बँगला भाषा एवं साहित्य पर अमित और अमिट है। सचमुच वे बँगला

---

१. हि० मैं० बि० फ० का० पृ० १६८।

२. हिन्दी साहित्य, पृ० ७६।

३. ए हिस्ट्री आव मैथिली लिटरेचर, फर्स्ट वाल्यूम, पृ० १६७।

साहित्य के साथ एकाकार हो गये हैं। वैष्णव बँगला-साहित्य के निर्माण में इनका सहयोग एवं देन अनुपम है। क्षणदा गीत-चिंतामणि (१६०० ई०), पदामृत समुद्र (१७२५), पद कल्पतरु (१७५०), संकीर्तनामृत (१७७१), पदरस सार (१७२३), पदकल्प लतिका (१८४६), गौर-पद तरंगिणी (१६०३), अप्रकाशित पदरत्नावली (पदकल्पतरु की पूरक) पदमेरु[1] और इस प्रकार के विद्यापति के पद वैष्णव पदावलियों में प्रचुर रूप में पाए जाते हैं।

: ६ :

उपसंहार

इस अध्याय में भारत की साँस्कृतिक एकता का कारण यहाँ का जीवनदर्शन, पौराणिक गाथायें, एवं संस्कृत भाषा एवं साहित्य बताया गया है। वही साँस्कृतिक ऐक्य हिन्दी प्रदेश और बंग प्रदेश में प्रतिफलित हुआ है। हिन्दी और बँगला ही उस महान साँस्कृतिक धरोहर की उत्तराधिकारिणी बनी है। मध्यदेश इस संस्कृति का केन्द्रस्थल रहा है। इसी प्रदेश ने सदैव से भारत के इतिहास एवं जीवन के हर क्षेत्र में नेतृत्व किया है। यहाँ की भाषायें ही क्रमशः भारत की अन्य भाषाओं को प्रभावित करती रही हैं। हिन्दी इसी प्रदेश की भाषा है। अतः बँगला पर इसका प्रभाव इस कारण पड़ा है। भक्ति आन्दोलन एवं मुस्लिम साम्राज्य ने इस प्रभाव में योगदान दिया है। हिन्दी और बँगला का स्रोत अपभ्रंश भाषा और साहित्य है। अपभ्रंश साहित्य के विषय में बहुत विवाद रहा है, किन्तु शौरसैनी अपभ्रंश प्रमुख मानी गयी है। शौरसैनी अपभ्रंश में ही पश्चिम हिन्दी के अंकुर छिपे हैं। सिद्धों नाथों की साहित्यक परम्परा अपभ्रंश से ही देशी भाषाओं में चलने लगी थी, तब नाथों में सर्वशक्तिशाली गुरु गोरखनाथ का प्रभाव हिन्दी के माध्यम से कुछ बँगला पर पड़ा। हिन्दी के आद्य गीतिकाव्यकार विद्यापति ठाकुर माने जाते हैं। विद्यापति का प्रभाव बँगला और बँगला भाषा एवं साहित्य पर गंभीर, गुरुतर और युगान्तरकारी है। ब्रजबुलि विद्यापति की पदावली के अनुकरण पर बनी है। जो सदियों तक बंगाली वैष्णव-साहित्य का माध्यम बनी रही है। मैथिली भाषा एवं विद्यापति को लेकर बहुत विवाद रहा है। प्रत्येक विद्वान् के मत दिये गये है। हिन्दी के विद्वान् इनको हिन्दी का कवि मानते हैं। क्योंकि वे शौरसैनी परंपरा में अवहट्ठ के कवि भी हैं। उनकी कीर्तिलता एवं कीर्तिपताका पश्चिमी हिन्दी के निकट आजाती हैं। इनकी पदावली में हिन्दी शब्दावली का प्राचुर्य है।

---

१. पदमेरु हस्तलिखित ग्रंथ है। यह शांति निकेतन पुंथिशाला में सुरक्षित है। यह वैष्णव पदावली का ग्रंथ है।

अतः इनको हिन्दी का कवि मान कर बँगला पर प्रभाव दिखलाया गया है। इनका प्रभाव आधुनिक काल में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर तक जाता है। सामान्यतया, विद्यापति बंगाली वैष्णव साहित्य के प्रकाशदीप एवं प्रेरणाकेन्द्र हैं। विशेषतया गौड़ीय वैष्णव (ब्रजबुलि) साहित्य के मेरुदण्ड हैं।

परिशिष्ट

मैथिली के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों से जो पत्र-व्यवहार हुआ है। उसका उल्लेख भी आवश्यक है।

१. राहुल–सांकृत्यायन

द्वारा पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी अकाली मार्केट, अमृतसर,

२५-१२-५७

प्रिय ब्रह्मानंद जी,

हिन्दी तो ब्रज, राजस्थानी, अवधी की तरह मैथिली को भी अपनी मान चुकी है। उसके लिये जो ब्रजभाषा की स्थिति है वही मैथिली की भी है।

आपका

राहुल

२. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

काशी विश्वविद्यालय

१४-१-५६

प्रियवर,

मैथिली साहित्य, भाव, भाषा, शब्दावली, व्याकरण, आदि के अध्ययन की दृष्टि से हिन्दी के ही अन्तर्गत मानना उचित है।

भवदीय

वासुदेवशरण

३. डा० धीरेन्द्र वर्मा

प्रयाग

३१-१-५६

प्रिय महोदय,

……मैं मैथिली को हिन्दी प्रदेश की एक महत्त्वपूर्ण उपभाषा मानता हूँ और इसलिये हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहासों में इस उपभाषा का भी समावेश किया जाता है।

भवदीय

धीरेन्द्र वर्मा

४. डा० बाबूराम सक्सैना

प्रयाग-२
३१-१-५६

प्रियवर,

भाषा की गठन की दृष्टि से मैथिली, बिहारी भाषा समूह की एक वाणी है। उसे प्राचीन साहित्य की दृष्टि से स्वतंत्र भाषा का पद मिला है, पर कालक्रम से वाणियाँ अन्य किसी वाणी की प्रभुता मानकर बोली अथवा उपभाषा का स्थान ग्रहण कर लेती हैं। इसलिये अवधी और ब्रज जो सम्पन्न भाषाएं थीं आज हिन्दी के अन्तर्गत हैं। बिहार की भी आज प्रमुख दैनिक व्यवहार की भाषा खड़ी बोली हिन्दी है। यद्यपि बोलचाल में भोजपुरी, मगही और मैथिली हैं।

शुभेच्छु
बाबूराम सक्सैना

द्वितीय अध्याय

आरम्भिक भक्ति-आन्दोलन का इतिहास

: १ :

मध्यकाल (चैतन्य-वैष्णव-युग १४००-१७०० ई०)

बँगला के वैष्णव-साहित्य पर हिन्दी-प्रभाव का दिग्दर्शन कराने के पूर्वी भारतीय भक्तिवाद के उद्गम और विकास पर अतीव संक्षेप में कुछ पंक्तियों द्वारा प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का सूत्र सदैव अविच्छिन्न रहा है। संस्कृति की आत्मा एक रही है, किन्तु उसके शरीर ने अनेक बार ऐतिहासिक, राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों के भँवर-जाल में पड़कर अनेक रूप धारण किए हैं।

भारत के मध्ययुगीन इतिहास में एक बहुत बड़ी क्रान्ति हुई जिसे पुरातन-संस्कृति का भक्ति-आन्दोलन के रूप में पुनर्जागरण कह सकते हैं। मनुष्य की प्रवृत्तियाँ या तो कर्म-प्रधान होती हैं या ज्ञान-प्रधान। किन्तु मनुष्य की एक और स्वाभाविक-प्रवृत्ति है जिसे हम हृदय का श्रद्धायुक्त भावावेग या भक्ति कहते हैं।

भारतीय भक्तिमार्ग के विषय में बहुत मतभेद है। विशेषकर, भारतीय भक्तिवाद को अनेक विद्वान विदेशियों की देन मानते हैं, उनमें से कुछ विद्वानों, सील, बेबर, बार्थ, जार्ज ग्रियर्सन[1] और हॉपकिन्स का मत है कि भारतीय भक्तिवाद ईसायत की देन है। कोई कोई-विद्वान इसको इस्लाम का प्रभाव भी मानते हैं।

किन्तु अनेक पूर्व और पश्चिम के विद्वान उक्त मतों का प्रत्याख्यान करते हैं। जैसा कि विश्वविख्यात दार्शनिक डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन का मत है, अब हम महाभारत के सर्वप्रमुख धार्मिक सिद्धान्त वासुदेवकृष्ण मत के सम्बन्ध में विचार करते हैं, जो श्रीमद्भागवत् गीता और आधुनिक वैष्णव धर्म का आधार है। गार्ब भागवद् धर्म के विकास में चार सोपानों का उल्लेख करते हैं, प्रथम सोपान में इनका अस्तित्व

---

१. Journal of the Royal Asiatic Society, 1909, page 311—39 Encyclopaedia of Religion and Ethics Part II Article on Bhakti Marg. page 539—557.

ब्राह्मण धर्म से स्वतंत्र था। गार्ब के मतानुसार इसके मूलतत्व ईसा पूर्व से तीसरी शती तक प्रचलित थे, ये वासुदेव कृष्ण द्वारा सर्व-विश्रुत एकेश्वरवाद का सांख्ययोग के संयोग से प्रवर्तन भक्ति के अधार पर गंभीर धार्मिक भावनाओं और धर्म-प्रवर्तक का दैवीकरण आदि हैं।[१]

आगे वे फिर लिखते हैं, हमारे पास भागवत् धर्म को ईसायत से पूर्ववर्ती सिद्ध करने के लिये पुरातत्व सम्बन्धी प्रमाण भी हैं। भागवत् हेलियोडोरस(Helivdura) ने वासुदेव के सम्मान में गरुड़ांकित ध्वज स्तम्भ का निर्माण कराया था। यह दो शती ईसवी पूर्व के बेसनगर के शिलालेख में अकित है। भागवत् सकर्षण और वासुदेव की पूजा का उल्लेख घोसुण्डी शिलालेख में है। तीसरे नानाघाट में स्थित एक शती ईसवी पूर्व के शिलालेख में संकर्षण और वासुदेव की प्रशस्ति है। उक्त प्रमाणो से स्पष्ट है कि भारत का एकेश्वरवादी धर्म विदेशी प्रभावों से पूर्णतया मुक्त है और युग के जीवन एवं विचारों का स्वाभाविक विकास है।[२]

---

१. We now pass to the most important religious doctrine of the Mahabharata, the Vasudeva-Krisna cult, which is the basis of the Bhagavadgita as well as of modern Vaisnavism. Garbe traces four different stages in the growth of the Bhagavata-religion. In the first stage it had an existence independent of Bramahanaism. The central features of this stage which in the opinion of Garbe continued till 300 B. C. are the founding of a popular monotheism by Krisna Vasuvda, its alliance with Sankhy-yogh, the deification of the founder of the religion and a deepened religious sentiment on the basis of Bhakti. Indian philosophy, Page 489.

२. We have also archaelogical evidence to prove the priority of the Bhagavata religion to the rise of christianity. The Besnagar inscription of the second century B. C. mentions the creation of a flag staff with Garudas image in honour of Vasudeva by Helivdora, the Bhagvata. The Ghosundi inscription speaks of the worship of Bhagavata Sanskarsana and Vasudeva. A third inscription of the first century B. C. existing at Nanaghat contains an adoration of Sankarsana and Vasudeva. From all this it is evident that the monotheistic religion of India is absolutely independent of any foreign influences, and is the natural outcome of the life and though of the period. Vide, P. 501.

भारत की भक्ति परम्परा उतनी ही प्राचीन है जितना कि वैदिक-साहित्य। वैदिक काल में धार्मिक एवं आध्यात्मिक साधना के तीन अंग बन चुके थे। जिन्हें हम कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड कहते हैं। सचमुच उपासनाकाण्ड के गर्भ में ही भक्तिवाद के अंकुर छिपे हैं। भक्ति का सम्बन्ध हृदय से है। फिर यह कहना सरासर भूल होगी कि भक्तिवाद भारत को ईसाइयत या इस्लाम की देन है। हमारा गुरुमंत्र (गायत्री मंत्र) भक्ति का उज्ज्वलतम दृष्टान्त है। वेदों में अनेक मन्त्र हैं, जिनको हम भारतीय भक्तिवाद का जनक[1] कह सकते हैं। ऋगवेद का ऋषि लिखता है—'हे परमेश्वर्य-सम्पन्न भगवन्! हे सर्वपुरातन, सनातन, शाश्वत प्रभो! यहाँ आपके अस्तित्व से ऊँचा किसी का भी अस्तित्व नहीं है। आपका ही अस्तित्व सर्वोत्तम है। यहाँ आपकी तुलना में कोई भी ज्ञानी देव नहीं है। आप जो कर रहे हैं, आगे जो कुछ करेंगे, उसको उत्पन्न हुए और होने वाले प्राणियों में से कोई भी नहीं जानता। आप का व्यक्तित्व और आपका ज्ञान अनुपम है[2]।'

एनसाइक्लोपीडिया आव् रिलिजन एण्ड एथीक्स में लिखा है—"भक्तिमत केवल वैयक्तिक देव की ओर नहीं प्रत्युत एक देव की ओर संकेत करता है। वास्तव में यह धार्मिक विचार का एकेश्वरवादी दृष्टिकोण है। यदि हम विचार करते हैं कि भक्ति एक धार्मिक पारिभाषिक शब्द के रूप में ईसा से चौथी शताब्दी पूर्व नहीं मिलता। किन्तु यह महत्वपूर्ण अनुसंधान का विषय है कि हम इसकी प्रतिनिधि भावना की कहाँ तक खोज कर सकते हैं। भारत में यह धारणा बहुत प्राचीन है, बहुधा हमें ऐसी बातें मिलती हैं जिनसे वैदिक प्रार्थनाओं से कोई भेद नहीं कर सकते। विशेषकर उनसे जो वरुण देवता को समर्पित हैं[3]।"

---

१. देखिये—डा० मुन्शीराम जी का प्रबन्ध 'भक्ति का विकास' चतुर्थ अध्याय पृष्ठ ११२, २३२।

२. अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावां अस्ति देवता विद्वानः।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध॥
(ऋ० १।१६५।९)

३. Devotional Faith implies not only a personal God, but one God. It is essentially a monotheistic attitude of the religious sense, if there, we assume that the word Bhakti, as a religious technical term can not be traced to a period earlier than 4th century B. C., it is important inquire how far back we can trace the feeling which it represents: this feeling was very old in India. We occasionally come across what it is difficult to distinguish from Bhakti even in Vedic Hymns especially those dedicated to Varruna.

Encyclopaedia of Religion and Ethics. P. 539.

अतः वैदिक युग के बाद भक्ति का सूत्र भागवत-धर्म के रूप में दिखाई पड़ने लगा। जैसा कि हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वानों के मत हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—'धर्म की भावनात्मक अनुभूति या भक्ति जिसका सूत्रपात महाभारत काल में और विस्तृत प्रवर्तन पुराणकाल में हुआ था, कभी कहीं दबती, कभी कहीं उभरती किसी प्रकार चली आ रही थी[1]।'

बाबू गुलाबरायजी का मत है—'भारतवर्ष में ईश्वर-प्राप्ति वा सद्‌गति के ज्ञान, भक्ति और कर्म ये तीन मार्ग माने गये हैं। ये तीन मार्ग आदिकाल से चले आये हैं किन्तु कभी किसी की प्रधानता रही और कभी किसी की। भक्ति-मार्ग मानव-प्रकृति के अनुकूल होने के कारण लोकप्रिय रहा है—'आदित्यानामहं विष्णुः'। प्राचीनकाल में यह 'भागवत-धर्म' के नाम से प्रख्यात था। इसी को महाभारत में 'पाँचरात्र धर्म' और 'शाश्वत धर्म' भी कहा है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में भक्ति और शरणागति के भाव प्राचुर्य के साथ पाये जाते हैं (सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज—गीता १८।६६)। देवर्षि नारद भागवद्धर्म के मुख्य आचार्य माने गये हैं। इन्होंने अपने भक्ति सूत्रों में भक्ति को ज्ञान की अपेक्षा प्रधानता दी है[2]।' डा० मुन्शीरामजी का कथन है—'पतंजलि ने पाणिनि की अष्टाध्यायी सूत्र ४, ३, ९८ पर जो भाष्य लिखा है, उसके अनुसार वासुदेव ईश्वर का नाम है, जिसकी पूजा की जाती है। अतः भागवतों का आराध्य-देव वासुदेव और उनके नाम से प्रचलित सम्प्रदाय विक्रम संवत् से कई सौ वर्ष पूर्व ही इस देश में प्रतिष्ठित हो गये थे। भागवत शब्द इतना अर्थ गर्भित समझा जाता था कि शिव सम्प्रदाय वाले भी अपने को शिव भागवत कहने में प्रतिष्ठा का अनुभव करते थे[3]।'

मध्ययुगीन भक्ति-आन्दोलन का इतिहास

वैदिककालीन भक्ति की गंगधारा और भागवतकालीन भक्ति की यमुना-धारा का पूर्ण प्रवाह मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति-आन्दोलन में दृष्टिगोचर होता है। कालक्रम से वैदिकयुगीन भक्ति में कुछ परिवर्तन हो गया था और भागवत भक्ति में उसकी आत्मा तो वही रही किन्तु रूप में परिवर्तन हो गया था। अतः मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन परम्परागत भक्ति की धारा का अनेक रूपों में सहज विकास है।

किन्तु यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि मध्यकाल में भक्ति की धारा दक्षिण से आई। आलवार भक्त इसके प्रवर्तक माने जाते हैं, जैसा कि भागवतकार भी

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ६१।
२. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, पृष्ठ ६०।
३. भक्ति का विकास, पृष्ठ २४९।

दक्षिण को ही भक्ति-आन्दोलन का मूल स्रोत मानते हैं। 'द्राविड़ देश में उत्पन्न हुई, कर्नाटक में वृद्धि को प्राप्त हुई, कुछ-कुछ महाराष्ट्र में इसकी उन्नति हुई, गुजरात में वृद्धावस्था को प्राप्त हुई[1]।' अतः दक्षिण से यह धारा उत्तर में आई इसका प्रमाण कबीरदास जी के शब्दों में इस प्रकार है :—

भक्ति दक्षिण ऊपजी, लाए रामानन्द
प्रकट करी कबीर ने, सप्तदीप नव खण्ड ॥

विद्वानों को सन्देह हो सकता है कि इससे पहले उत्तरी भारत में भक्ति नाम की कोई वस्तु थी या नहीं। दक्षिण में भक्ति का उदय होने पर यूरोपीय विद्वानों को अपना मत पुष्ट करने का आधार मिल जाता है। क्योंकि वे इसे ईसाई-यत का प्रभाव मानते हैं। क्योंकि भारत में ईसाई धर्म सर्वप्रथम दक्षिण से आया। जैसे जार्ज ग्रियर्सन का कथन है—बिजली की चमक की तरह ईसाई भक्तिवाद का प्रभाव दक्षिण से उत्तर को आया।

किन्तु दक्षिण में ही शंकर के अद्वैतवाद का अधिक प्रचार रहा। इसी शंकर वेदान्त की प्रतिक्रियास्वरूप, सगुण उपासकों का आन्दोलन चला। भक्ति शुष्क बुद्धिवाद के प्रति मधुर हृदय का विद्रोह है। क्योंकि भगवान शंकराचार्य का आवि-र्भाव भी दक्षिण में ही हुआ था। वैष्णव आचार्यों की जन्मभूमि भी दक्षिण ही है। भगवान शंकर औपनिषदिक अद्वैतवाद के प्रचारक हैं। रामानुजाचार्य ने शंकर अद्वैत की जगह विशिष्टाद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की। माध्वाचार्य ने द्वैतवाद को प्रधान माना। विष्णु स्वामी ने शुद्धाद्वैत का प्रतिपादन किया। निम्बार्क स्वामी ने द्वैताद्वैत का मंडन किया।

अब प्रश्न उठता है कि क्या इससे पहले उत्तरी भारत में भक्ति नाम की कोई साधना नहीं थी ? इसका उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है कि जिस प्रकार शंकराचार्य से भी पूर्व औपनिषदिक अद्वैतवाद था किन्तु सिद्धान्त एवं व्यवहार रूप में उसके प्रबलतम प्रचारक भगवान शंकर ही थे। इसी प्रकार उत्तरी भारत में वैष्णवाचार्यों से पहले भी भक्ति साधना का एक अंग थी। जैसा कि वैदिक साहित्य से सिद्ध होता है। किन्तु वैष्णव भक्तिवाद के प्रबल प्रचारक तो ये आचार्य ही थे। उत्तरी भारत में उस समय भक्ति आन्दोलन की बड़ी आवश्यकता थी। क्योंकि उस समय नाथ-पंथ का जोर था। उसी परम्परा की प्रतिक्रिया में तुलसीदासजी जैसे भक्तशिरोमणि तक ने गोरखपथियों को फटकारा है :—

---

१. उत्पन्ना द्राविड़े साहं वृद्धि कर्णाटके गता।
क्वचित क्वचित् महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतागता।
(भागवत १।२८ प्रथम खण्ड, पृष्ठ ५)

गोरख जगायो जोगु भक्ति भगायो लोग ।

तथा—

अलखहीं कालखे, राम नाम जप नीचु ।।

चैतन्य महाप्रभु से पूर्व बगाल में सिद्धों और नाथों का बोलबाला था। बौद्ध सिद्धों की प्रतिक्रियास्वरूप नाथ-पथ का जन्म हुआ। नाथों की प्रतिक्रिया वैष्णव धर्म में हुई। अतः वैष्णवभक्ति का आन्दोलन तत्कालीन विचारधारा की प्रतिक्रिया-स्वरूप उत्पन्न हुआ था।

इस सम्बन्ध में यह विचारणीय विषय है कि दक्षिण और उत्तर भारत की भक्ति परम्परा में साम्य होते हुए वैषम्य भी है। जहाँ तक भावना का सम्बन्ध है वहाँ तो सब समान हैं। किन्तु, सूफी और निर्गुणोपासक संतों की जैसी साधना दक्षिण में दृष्टिगोचर नहीं होती।

जहाँ उत्तर पश्चिम भारत के वैष्णवों और पूर्व भारत बंगाल के वैष्णवों में समानता है वहाँ विभिन्नता भी बहुत है। बंगाल में संत-साधना का अधिक प्रभाव नहीं रहा है। सूफी साधना बहुत बाद में आयी। किन्तु बाउलों [1] में संतों और सूफियों के कुछ तत्व दृष्टिगोचर होते हैं। बंगाल में कृष्णभक्ति की साधना अधिक हुई है किन्तु रामोपासना का इतना अधिक प्रचार नहीं हुआ जैसा कि हिन्दी प्रदेश में हुआ। हिन्दी-क्षेत्र में रामोपासना और कृष्णोपासना को समान स्थान मिला। विष्णु के इन दोनों अवतारों में कुछ भेदभाव नहीं समझा गया किन्तु बंगाल में कृष्णोपासना के पहिले अनेक प्रकार की सहजिया और शाक्त साधनाओं का अधिक प्रचार रहा है।

एक प्रसिद्ध दार्शनिक का मत भी द्रष्टव्य है— 'दक्षिण भारत के वैष्णव मत में वृन्दावन लीला के महत्व पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। यद्यपि आलवारों के स्रोत से कृष्ण की गोपियों के साथ लीला की ओर सकेत है। किन्तु, उत्तर में कुछ और बात थी। निम्बार्क सम्प्रदाय में प्रियतमा राधा केवल गोपियों में प्रधान ही नहीं है, अपितु कृष्ण की सनातन सगिनी भी है। गीत गोविन्द के लेखक और उमापति, विद्यापति और चन्डीदास की रचनाओं में राधा-कृष्ण मत का प्रभाव बंगाल और बिहार में दृष्टिगोचर होता है। उसका श्रेय शाक्त सिद्धान्त और साधनाओं को है[2]।'

---

१. बाँगलार बाउल, पृ० १२६ से १३१।

२. The Vaisnaism of South India did not pay much attention to the glorification of the Brindaban Lila, though some of the Allavars refer to Krisna's sports with the Gopies. In the North, however, the case was different. In Nimbark, Radha the beloved mistress, is not simply the chief of the Gopies

भक्ति आन्दोलन मध्ययुगीन भारत के इतिहास में एक बहुत बड़ी घटना है। इस आन्दोलन ने समस्त आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं में साहित्य सृजन को अभूतपूर्व उत्कर्ष प्रदान किया है। बंगाल में भी चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव एक नए युग का सन्देशवाहक है। वैष्णव आन्दोलन कुछ प्रादेशिक विशेषताओं के साथ समस्त भारतव्यापी था। विशेषकर हिन्दी ही उनके आन्दोलन के प्रभाव का माध्यम बनी। महाप्रभु चैतन्यदेव के कारण बंगाल एवं मथुरा-वृन्दावन का घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ। महाप्रभु चैतन्य महाभाव के उपासक थे। राधा के महाभाव के जो वृन्दावन में परिपूर्ण हुआ था। यही इस घनिष्ठता का मूल था। अतः बंगला के साथ-साथ हिन्दी (ब्रजभाषा) भी उनके साहित्य का माध्यम बनी। चैतन्य महाप्रभु मथुरा-वृन्दावन को बैकुण्ठ की उपमा दिया करते थे। अतः उस समय बंगाल एवं ब्रजमण्डल का बहुत घनिष्ठ सम्पर्क हुआ था। ब्रजभाषा का प्रभाव चैतन्य वैष्णव पदकर्त्ताओं के गीति-काव्य में साकार हुआ[1]।

---

but is the eternal consort of Krisna. The writings of Jaideva, the author of Gita Govinda, Vidyapati, Umapati and Chandidas (fourteenth century) show growing influence of the Radha-Krisan cult in Bengal and Bihar, thanks to the influence of the Sakta system of thought and practice.
Vol. II P. 767 (Indian Philosophy).

१. डा० दीनेशचन्द्र सेन लिखते हैं—'एई युगेर साहित्ये हिन्दी-उपकरणे विशेष रूपे पुष्ट। एखन जे रूप इंगरेजी भाषार राजत्व, वैष्णव धर्मेर प्रभाव काले तखन छिल वृन्दावनी (ब्रजभाषा) भाषार राजत्व। वृन्दावन एखनओ बड़ तीर्थ बलिया गण्य, किन्तु तखन बंगेर शिक्षित समाज इहाके धरातले स्वर्ग बलिया गण्य करितेन, श्यामकुंड कि राधाकुंड दर्शनार्थ ताँहादेर जे उत्साह पूर्ण आग्रह छिल, विलात जाईते शिक्षित गणेर तैमन ऐकान्तिक आग्रह नाई एखन जे रूप आमरा बाँगला कथार मध्ये चारि आना इंगरेजी मिशाइया विद्या देखाइया थाकि तखन सेई रूप वैष्णव गणेर बाँगलाकथा चारि आना वृन्दावनीर मिश्रणे सिद्ध हइत। कौन काव्य की इतिहासे ये स्थले कथावार्ता वर्णित हय, सेइस्थले ग्रंथकर्ता प्रचलित भाषा व्यवहार करिया थाकेन। चैतन्यचरितामृत, नरोत्तमविलास प्रभृति पुस्तके दृष्ट हइवे, ये स्थले कथावार्तार उल्लेख, सेइ खानेइ वृन्दावनी भाषार समधिक छड़ाछड़ि हइयाछे।
बं० भा०, ओ०, सा०, पृ० ३६०।

अर्थात् इस काल के साहित्य में अधिक हिन्दी उपकरणों का मिश्रण है। इस समय जिस प्रकार अंग्रेजी भाषा का राजत्व है वैसे ही वैष्णव धर्म के प्रभाव

डा दीनेशचन्द्र सेन ने अपने अंग्रेजी ग्रंथ में वैष्णव साहित्य पर हिन्दी प्रभाव के तीन कारण बताये हैं—१. वैष्णव धर्म के कई प्रमुख आचार्य वृन्दावन में निवास करते थे, इससे वृदावन और बंगाल के लोगों में आदान-प्रदान बढ़ा। २. पदकर्त्ता विद्यापति के गीतों पर मुग्ध थे। अतः उन पद रूपों का अनुकरण उन्होने किया। वैष्णव पदावलियों में ब्रजबुलि का उदय इसी से हुआ। ३. वैष्णव धर्म का प्रचार भारत में करने के लिये हिन्दी ही उस समय उचित माध्यम थी। इससे हिन्दी के अगणित शब्द उन्होंने लिये। वे आगे लिखते है[१]।

काल में उस समय वृन्दावनी (ब्रजभाषा) का राजत्व था। उस समय वृन्दावन बड़ा तीर्थ माना जाता था। उस काल में बगीय-शिक्षित समाज इसको धरती पर स्वर्ग कहा करते थे। श्यामकुण्ड अथवा राधाकुण्ड के दर्शनों के लिए जितना उत्साहपूर्ण आग्रह था उतना आज शिक्षितगणों का विलायत जाने में भी वैसा ऐकान्तिक-आग्रह नहीं है।

इस समय जबकि हम अपनी भाषा में चार आना अंग्रेजी मिलाकर अपना पांडित्य प्रदर्शन करते हैं। उस काल में इसी प्रकार चार आना ब्रजभाषा का मिश्रण कर पंडित कहे जाते थे। किसी भी काव्य, इतिहास, कथावार्ता का वर्णन होता था। उस समय ग्रंथकार प्रचलित भाषा का व्यवहार करते थे। चैतन्य-चरितामृत, नरोत्तमविलास को देखें तो जिन स्थलों पर कथावार्ता का उल्लेख है वहीं ब्रजभाषा का समधिक मेल है।

१. Bengali in the Vaisnava-period was subject to the influence of Hindi, this I have already mentioned on page 337. Many of the great masters of the vaisnava faith lived in Brindavan and there was a constant exchange of ideas between the people of that place and those of Bengal. This circumstance explains why we find such a large number of Hindi words imported into the Bengali writings of the vaisnavas. The padakaratas held Vidyapati's songs in great admiration and as a result many of them imitated the Maithil forms in their padas and too Brajabuli of the vaisnava songs is a result of this imitation. Thirdly in their attempts to propagate the creed of vaisnavism all over India, the vaisnavas came in contact with different races of India speaking different languages.

Hindi had grown to be the lingua-franca of all India under the zuzerain power of the Muslim Emperor of Delhi. Those who had the propaganda of their faith to carry to all Indians could not help having recourse to the most convenient vehicle

तत्कालीन

इस प्रकार डा० सेन ने बंगला में हिन्दी के शब्द-बाहुल्य का स्पष्टीकरण किया है। किन्तु हिन्दी का प्रभाव केवल शब्दगत नहीं था वह पंचमुखी था।

(१) वैष्णव पदावलियों में हिन्दी के शब्द आए हैं।

---

already available for approaching them. The vaisnavas imported a large number of Hindi-words into their works to make them intelligible to the people of all parts of India.

Owing to these causes the works written by a large number of vaisnavas are more or less influenced by Hindi, and instances of

जैसे, कैसे, कबहुँ, तबहूँ, दुहुँ, हइलुँ, काँहाँ, ताहां, अबक, विछुरिल।

are numerous in all vaisnava writings, not to speak of Brajabuli which is a thoroughly Hindi-ized form of Bengali.

(History of Bengali language & Literature)

By Dr. D. C. Sen Page 508.

हिन्दी रूपान्तर :

वैष्णवकाल में बंगला पर हिन्दी का प्रभाव पड़ा है। यह मैंने पृ० ३३७ पर दिखलाया है। बहुत से वैष्णव धर्म के आचार्य वृन्दावन में रहा करते थे। वहाँ के निवासियों और बंगालियों में निरन्तर विचारों का आदान-प्रदान हुआ करता था। इन्हीं कारणों से इतने अधिक शब्दों का समावेश बंगला वैष्णव पदावलियों में हुआ है। पदकर्ता विद्यापति के पदों को बहुत आदर की दृष्टि से देखा करते थे। इसलिए उन्होंने मैथिली रूपों का अनुकरण अपने पदों में किया, इसी अनुकरण के फलस्वरूप ब्रजबुलि बनी है। तीसरे वैष्णव लोग अपने धर्म को अखिल भारतीय बनाना चाहते थे। वे भारत की अनेक जातियों और भाषाभाषियों के सम्पर्क में आए। दिल्ली के मुगल बादशाहों के कारण हिन्दी अखिल भारत की सार्वजनिक भाषा बन चुकी थी। जो अपने सिद्धान्तों को अखिल देशव्यापी बनाना चाहते थे उनके लिये इसका अपनाना आवश्यक था। वैष्णव पदकर्ताओं ने निखिल भारतवासियों को समझाने के लिए हिन्दी शब्दों को अपनी पदावलियों में मिलाया। इन कारणों से थोड़ा-बहुत हिन्दी का प्रभाव वैष्णवों की कृतियों पर पड़ा है। जैसे उदाहरण रूप में—जैसे, कैसे, कबहुँ, तबहुँ, दुहुँ, हइलुँ काँहाँ, ताहाँ, अबक, विछुरिल इत्यादि शब्द वैष्णव पदावलियों में पाये जाते हैं। ब्रजबुलि के बारे में क्या कहा जाये यह तो पूर्णरूपेण हिन्दीकृत बंगला का रूप है।

(२) वैष्णव पदावलियों में हिन्दी का वाक्य विन्यास।
(३) इसमें बहुत से मैथिली ब्रजभाषा के पद के पद मिल गये हैं।
(४) इससे ब्रजबुलि नाम की एक नयी साहित्यिक भाषा का जन्म हुआ।
(५) भक्तमाल के अनुवाद के रूप में ग्रंथ के ग्रंथों का अवतरण।

इन्हीं को दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि इस प्रभाव के पाँच रूप ये हैं:—

(१) शब्दगत
(२) वाक्य-विन्यासगत
(३) रूपावतरणगत
(४) भाषा रूपगत (ब्रजबुलि सम्पूर्ण भाषा ही हिन्दीमय हो गई)
(५) अनुवादावतरणगत

: २ :

१. बंगाली गौड़ीय वैष्णव-पदावली में शब्दगत हिन्दी प्रभाव

बंगला ने हिन्दी के बहुत से शब्द अपनाये हैं। उसमें बहुत से शब्द ऐसे भी हैं जो दोनों को समान स्रोत से मिले हैं। इन्हें दोनों ही अपने शब्द कह सकती हैं। अथवा स्रोत की दृष्टि से एक ही मूलस्रोत का निर्देश कर सकती हैं। बंगला के कोशों में बंगला भाषा में गृहीत हिन्दी शब्दों का उल्लेख हुआ है[1]। विशेषकर 'बाँगला भाषार अभिधान' (कोश) में इसके कोशाकार श्री ज्ञानेन्द्रमोहनदास ने हिन्दी शब्दों का उल्लेख किया है। इससे यह स्पष्ट है कि बंगला की शब्द-शक्ति को हिन्दी ने बहुत प्रभावित किया है। ऐसे प्रभाव को ठीक-ठीक समझने के लिये हमें यह देखना होगा कि बंगला में शब्दगत प्रभाव किन रूपों में पड़ा है। कोई भी भाषा किसी दूसरी भाषा के शब्दों को कब-कब और क्यों ग्रहण करती है? इस ग्रहण का रूप क्या होता है? वास्तव में भाषाओं का पारस्परिक सम्बन्ध जैसा होता है वैसा ही प्रभाव भी होता है। ये सम्बन्ध कुछ ऐसे हो सकते हैं:—

(१) अन्यजनक सम्बन्ध
(२) समानमूलक सम्बन्ध
(३) पड़ौस का सम्बन्ध
(४) आरोपित सम्बन्ध

प्रथम दो ऐतिहासिक हैं। दोनों का एक ही अर्थ है; इस विशेषता के साथ कि जनक भाषा से जन्य कई भाषायें हो सकती हैं। ये कई भगनियाँ ही समानमूलक

१. देखिये पदकल्पतरु, पंचम खण्ड, शब्द सूची एवं बंगीय शब्दकोश।

की भाषाएँ हैं। समान मूल से उद्भव होने के कारण बहुत से जनक की प्रवृत्तियाँ दोनों में मिलेंगी और दोनों बहुत समय तक बिना अपने व्यक्तित्व के चैतन्य के साथ-साथ चलती रहेंगी। बंगला हिन्दी के सम्बन्ध में यह स्थिति विशेषत: दिखायी पड़ती है। एक युग इन भाषाओं के इतिहास में ऐसा प्रतीत होता है; जबकि ये दोनों भाषायें परस्पर ऐसी गुंथी हुई थीं कि उनके अलग-अलग अस्तित्व को उस समय अलग-अलग पहचाना नहीं जा सकता था। सबसे आरम्भिक काल का सिद्ध-साहित्य भी इसका एक प्रमाण है। उसमें हिन्दी-बंगला दोनों के तत्व हैं। यही कारण है कि दोनों ही भाषायें उन्हें अपना ही साहित्य मानती हैं। अब तक की विविध ऊहापोहों ने भी स्थिति में कोई अन्तर प्रस्तुत नही किया। वस्तुतः जब दोनों भाषाएँ एक ही थीं और सन्धिकाल की मिश्रण-प्रवृत्ति विद्यमान थी तब एक के ताने को दूसरे के बाने से कैसे अलग किया जा सकता है।

यह बात काफी समय तक रही; और भक्तिकाल में तो यह और भी बढ़ गयी। ऐसी स्थिति में ब्रज और बंगाली की शैली भेद के रूप में ही, इस काल में लिया जा सकता है। अन्यथा बंगला भाषा के ब्रज बोली समन्वित भावपूर्ण उत्कृष्ट पद भाषा-समक अलंकार के उदाहरण ठहराने पड़ेंगे। निश्चय वे भक्त भाषा-समक नहीं लिख रहे थे, उन्हें शैलियों की भिन्नता भले ही प्रतीत होती रही हो। भाषा-भिन्नता का चैतन्य उनमें नहीं था। अतः जहाँ जन्य-जनक संबंध से संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश की शब्दावली पैतृक सम्पत्ति के रूप में हिन्दी-बंगला ने प्राप्त की, वहाँ समानमूलक ही नहीं, सहजात होने के कारण भी बंगला हिन्दी में बहुत समय तक अभेद रहा। बंगाल के क्षेत्र में, और अन्यत्र भी बंगलाभाषी हिन्दी के शब्दों, मुहावरों और वाक्यों को अपने ही समझकर अपनाते रहे। भाषा-चैतन्य आने पर बंगला भाषियों ने देखा कि भक्ति का युग था, तब उन्हें कृष्ण का इष्ट हो गया। पहले कहा जा चुका है कि इष्टदेव की भूमि की भाषा 'ब्रजभाषा' में उनका आकर्षण बढ़ गया। इससे निःसंकोच वे ब्रजभाषा में अपनी अभिव्यक्ति के लिये ललचाने लगे और उसके शब्दों को अपनी भाषा में निःसंकोच लेने लगे। तीसरा सम्बन्ध भौगोलिक है। बंगला-और हिन्दी भौगोलिक कारणों से पड़ौसिनें हैं। पड़ौसी में पारस्परिक आदान-प्रदान रहता ही है। चौथा 'आरोप' विषयक सम्बन्ध अप्राकृतिक अथवा राजनीतिक है; विजेता की भाषा का विजित की भाषा से सम्बन्ध। ऐसा ही आरोप धार्मिक सत्ता की प्रबलता के कारण भी हो सकता है। धार्मिक सत्ता का प्रभाव भावनात्मक विशेष होता है। साहित्यिक उच्चता से भी आरोपी सम्बन्ध बनता है। साहित्यिक के साथ ज्ञान-विज्ञान विषयक उच्चता भी परिगणनीय है।

हिन्दी बंगला के सम्बन्ध में ये सभी तत्त्व मिलते हैं। इन्हीं के कारण उस काल बंगला में हिन्दी के शब्द गृहीत हुए।

किन्तु प्रश्न यह है कि ऐसे संबंधों से कोई भाषा चाहे जितने या सभी शब्द दूसरी भाषा से नहीं लेती। प्रत्येक गृहीत शब्द का इतिहास होता है, उसका एक कारण होता है। बंगला-हिन्दी के उक्त संबंधों से बंगला ने हिन्दी के जो शब्द ग्रहण किये होंगे, वे तुलना से ही मिलेंगे। इस तुलना से हमें उन शब्दों का पता लग जाता है जो दूसरी भाषा से आगत या गृहीत होते हैं[1] तथा आनुकरणिक होते हैं। आगत अथवा गृहीत शब्दों की दो कोटियाँ की जा सकती हैं:—

(१) उधारागत (उधार+आगत)

(२) धारागत (धारा + गत)

उधारागत वे शब्द हैं जो उधार लिए शब्दों की भांति व्यवहार में आते हैं। तथा धारागत वे शब्द हैं जो किसी भाषा के प्रवाह में प्रविष्ट हो जाते हैं। भाषा-वैज्ञानिकों ने इन समस्त शब्दों के लिये 'लोन' (Loan) या 'बोरोड' (Borrowed words) शब्दों का व्यवहार किया है[2]।

जैस्पर्सन महोदय ने (Loan Words) के संबंध में कहा है—'पारिभाषिक शब्दों के रूप में लोन वर्ड्स (आगत शब्दों) और 'बोरोड वर्ड्स' (उधार लिये हुए) जैसे शब्दों का प्रयोग सुविधाजनक और बहुप्रयुक्त है। भाषायी उधार लेने और अन्य पदार्थों के उधार लेने में अन्तर है। अन्य पदार्थों के उधार पर कृतज्ञता के साथ उन्हें लौटाना पड़ता है किन्तु भाषायी ऋण में यह नियम लागू नहीं होता। क्योंकि भाषायी उधार लेना तो अनुकरण (Imitation) मात्र है[3]।

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि इन भाषा-वैज्ञानिकों ने उधार शब्द का बहुत विस्तृत अर्थ लिया है। वस्तुतः उधार लिये हुए शब्द वही हैं जो किसी सामयिक आवश्यकता के कारण कुछ काल के लिए भाषा में गृहीत हो जाते हैं, किन्तु कुछ काल बाद वे प्रयोगबाह्य (Obsolete) हो जाते हैं, वे उस भाषा की धारा में नहीं मिल पाते। उधार धन की भाँति यह शब्दधन भी इस प्रकार लौट जाता है। उदाहरणार्थ अंग्रेजी की गुलामी के समय में हिन्दी ने शतशः अंगरेजी शब्द अपनाये;

---

१. A word taken over from another Language. Pike D.L.P. 125
The concise Oxford Dictionary-Fourth Edition P. 242.
देखिये सा० हि० श० सा०, पृ० १२०।

२. 'भाषा में आगत-शब्द'। भारतीय-साहित्य, पृष्ठ १७३-१८१ सन् अक्तूबर १९५६। एवं अप्रकाशित प्रबंध 'हिन्दी में आंग्ल-आगत-शब्द, डा० कैलाश चन्द्र भाटिया, १९५८ ई०, पृष्ठ २६।
Vendryes; Language P. 227,
Gleason (Descriptive Linguistics P. 290)

३. Language, its development and Origin : Page 208.

अंग्रेजी से उधार लिये हुए शब्दों में से बहुत से धारागत हो जायेंगे और बहुत से प्रयोग-वाह्य। वस्तुतः ये प्रयोगवाह्य शब्द ही उधारागत शब्द हैं। एकाउन्टेंट, एजेण्डा, अलार्म, सेक्रेटरी आदि शब्द कुछ समय बाद हिन्दी में न दिखायी पड़े तो आश्चर्य नहीं। भाषा का गहरा प्रभाव उन शब्दों से परिलक्षित होता है जो उसमें धारागत हो जाते हैं। जन्य-जनक और सामानमूलक संबध वाली भाषाओं में तो बहुत-सा शब्द-भांडार समान संपत्ति के रूप में होता ही है, फिर भी उनका प्रवृत्ति-भेद शब्द-चयन में झलकने ही लगता है। इसी तथ्य को अधिक स्पष्ट करने के लिये आइनर हागेन महोदय द्वारा प्रस्तुत उद्धृत या आगत शब्दों का वर्गीकरण इस प्रकार है :—

(क)

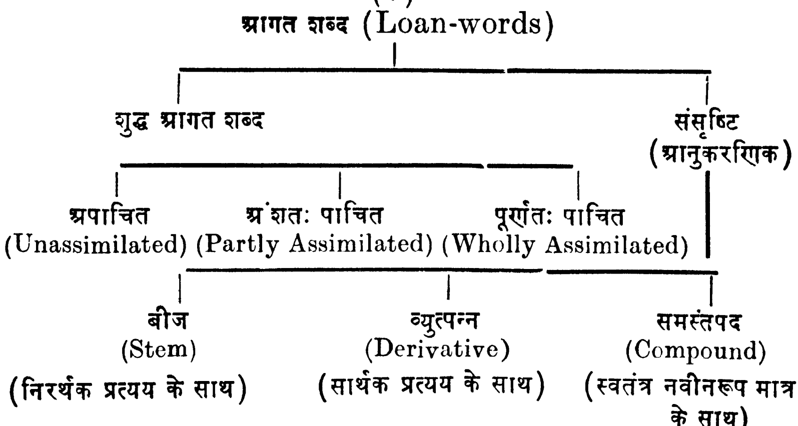

(ख)

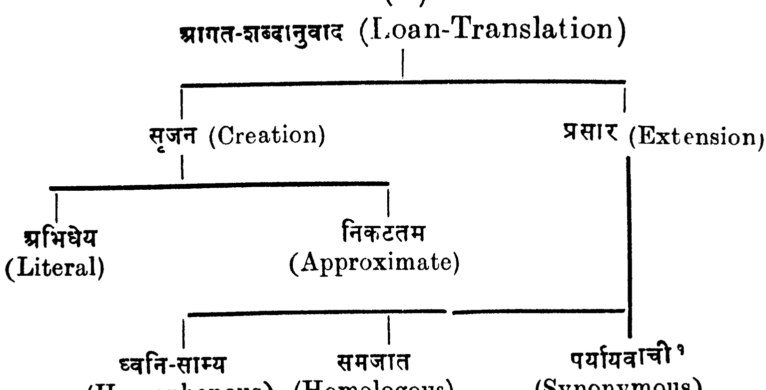

१. Einer Haugen. The Norwegian Language in America. Vol. II ब० १ अक्तूबर, १९५६, भा०, सा०, पृ० १८१।

इस वर्गीकरण की किंचित व्याख्या समीचीन है।

अपाचित—अपाचित उन आगंत शब्दों को कह सकते हैं जो एक भाषा में दूसरी भाषा से जाकर अपना तत्सम रूप ही बनाये रखते हैं। उनको दूसरे शब्दों में अविकृत आगत शब्द कह सकते हैं। इस प्रकार के हिन्दी से आगत शब्दों के उदाहरण बँगला में बहुत हैं[1]।

अंशतः पाचित—अंशत पाचित उन उद्धृत शब्दों को कह सकते हैं, जो तद्भव रूप में रह गये हैं। जो पूर्णतया विकृत नहीं है अर्धविकृत अवस्था में हैं[2]।

पूर्णतः पाचित—पूर्णतः पाचित वे गृहीत शब्द हैं। जिनका पूर्णरूपेण रूप-परिवर्तन या ध्वनि परिवर्तन हो गया हो, ऐसे शब्द पूर्णतः विकृत हो जाते हैं। मूल भाषा में उनका रूप कुछ और ही होता है। जिस भाषा में वे आत्मसात किये गये हैं, उसमें उनका रूप बिलकुल और ही हो जाता है। वे उस भाषा के तद्रूप या देशज शब्दों के समान होकर उसकी धारा में विलीन हो जाते हैं[3]। वे जिस भाषा में गृहीत होते हैं, उसके व्याकरण के अनुसार ढल जाते हैं और उस भाषा की स्थायी निधि बन जाते हैं। विशेषकर, संज्ञाओं, विशेषणों एवं क्रियाओं में यह प्रवृत्ति देखी जाती है। डॉ० दीनेशचन्द्र सेन ऐसे शब्दों को भाषा में 'स्थायी चिह्न' मानते हैं।[4] क्योंकि जिस भाषा में वे पाचित या आत्मसात होते हैं उसका स्थायी अंग बन जाते हैं। उन पूर्णतः पाचित शब्दों का अपना अलग अस्तित्व या व्यक्तित्व नहीं होता। जिस प्रकार नदी सागर में गिरकर अपना अस्तित्व खो बैठती है उसी प्रकार वे शब्द भी भाषा के सागर में विलीन हो जाते हैं।

यहाँ तक हमने यह देखने की चेष्टा की है, कि एक भाषा जब दूसरी भाषा को प्रभावित करती है तो उस प्रभाव का 'शब्द' संबंधी रूप कैसा हो सकता है।

	हिन्दी अर्थ और प्रसंग	बँगला अर्थ और प्रसंग
१.	अचाहै=देवात्	अचाहै=अकस्मात्
	हरिपद विमुख परमगति चाहा	शामर काय अचाहै हिलायत
	(मा० बा० पृ० १३२)	(कृष्णकाँत, प०क०त०, पद २८८६)
२.	अस=ऐसा	अछ्र=ऐमन
	अस विचारि जिअ जागहु ताता	को अछु वेदन सहई
	(मा० बं०, पृ० १३२)	(गोविंददास, प०क०त० पद १७४)
३.	दुलाल=प्यारा	दुलाल=प्रिय
	मिटि जु गयो संताप जनम को देखो नंद दुलारो	शचीर दुलाल बूझति देखिलु

४. बं० भा० ओ० सा०, पृ० ४०८।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ऐसे प्रभाव में आत्मसात करने एवं अपनत्व की भावना है। प्रभाव में प्रभावित करने वाले और प्रभावित होने वाले में कोई अन्तर नहीं रह जाता है। दोनों एक आत्मस्वरूप और एकाकार हो जाते हैं। जिस प्रकार एक संस्कृति का प्रभाव दूसरी पर पड़ता है। उसी तरह एक भाषा का प्रभाव भी दूसरी पर पड़ता है। एक भाषा के ऊपर दूसरी भाषा का प्रभाव एवं सम्पर्क सांस्कृतिक एवं राजनीतिक आदि कारणों से होता है। भाषा संस्कृति का वाहन है। यदि कोई भाषा अपूर्ण रहती है, तो उसकी संस्कृति भी अपूर्ण ही रहती है। जैसे कि डॉ० एडवर्ड सपिर लिखते हैं, 'संस्कृतियों की तरह भाषायें भी कभी पूर्ण नहीं होती है, आदान-प्रदान की आवश्यकता, एक भाषा के बोलने वालों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में पड़ोसी या सांस्कृतिक प्रभुत्वसम्पन्न भाषाओं के बोलने वालों के सम्पर्क में ले आती हैं[1]।' एक भाषा पर दूसरी भाषा का पड़ने वाला प्रभाव कई प्रकार का होता है। इनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इनमें से अन्यजनक संबंध तथा समानमूलक संबंध से जातिगत (औरस) प्रभाव प्रकट होता है।

१. **जातिगत (औरस) प्रभाव**—जो चीजे एक जाति की होती हैं, उनकी एक परम्परा होती है। अतः परम्परा एक होने पर समानता स्वाभाविक है। अतः जातिगत (औरस) प्रभाव को वास्तविक अर्थ में प्रभाव नहीं कहना चाहिये। क्योंकि एक ही जाति की भाषाओं की एक ही परंपरा होने के कारण बहुत कुछ एक-सी शब्दावली, एक से साहित्यिक मानदण्ड आदि होंगे ही। किन्तु जब एक ही जाति की दो भाषाएँ अलग-अलग हो जाती हैं, तब ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों के कारण कालान्तर में उनमें भेद उत्पन्न हो जाते है। उनकी शब्दावली और साहित्यिक परंपराओं में विविधता एवं विभिन्नता उत्पन्न होने लग जाती हैं। उनका मूल एक होते हुए भी उनकी शाखाऐं भिन्न-भिन्न होती चली जाती हैं। उनके विकास का अपना अलग मार्ग बन जाता है, परिस्थितियों वश वे भाषाऐं जब फिर कभी सम्पर्क स्थापित करती हैं, तब उनमें परस्पर आदान-प्रदान होना स्वाभाविक है।

२. **पड़ोस**—जिस प्रकार एक पड़ोसी संस्कृति दूसरी को प्रभावित करती है, उसी तरह पड़ोसी भाषाएँ भी परस्पर प्रभाव डालती हैं। भाषायी पड़ोस के कारण भौगोलिक होते हैं। यात्रा एवं व्यापार आदि के द्वारा भी पड़ोस जैसे ही प्रभाव-क्षेत्र प्रस्तुत होते हैं।

---

१. Languages, like cultures, are rarely sufficient unto themselves, the necessities of intercourse bring the speakers of one language into direct or indirect contact with those of neighbouring or culturally dominant languages. —Language P. 192.

३. **आरोप**—एक भाषा का आरोप दूसरी पर दो प्रकार से हो सकता है:—

(१) सांस्कृतिक और (२) राजनीतिक।

(१) **सांस्कृतिक**—शक्तिशाली संस्कृति निम्नस्तर की संस्कृति को प्रभावित करती है। कभी-कभी बराबर की सस्कृतियां भी एक दूसरी को प्रभावित करती हैं। निम्नस्तर की संस्कृति भी कुछ न कुछ अपना प्रभाव ऊँची संस्कृति पर छोड़ जाती है। अत: संस्कृतियों में पारस्परिक प्रभाव होना आवश्यक है। सस्कृतियों के कारण एक भाषा का प्रभाव दूसरी पर पड़ता है।

(२) **राजनीतिक**—राजनीतिक कारणों से भी एक भाषा का प्रभाव दूसरी पर पड़ता है। राजनीतिक प्रभुता के कारण भी शासितों की भाषा पर शासकों की भाषा का प्रभाव पड़ता है। किन्तु शासितों की भाषा का भी थोड़ा बहुत प्रभाव शासकों की भाषा पर रहता है।

४. **गुणनिष्ठता या आवश्यकता**—भाषा वैज्ञानिक "वेन्ड्रेयीज" (Venedryes) ने इस गुणनिष्ठता को Worth का नाम दिया है। इसी पर किसी भाषा की प्रतिष्ठा (Prestige) निर्भर करती है[१]। अत: गुणों की ओर आकर्षण स्वाभाविक है, आवश्यकता के कारण जीवन में गति उत्पन्न होती है। उच्च साहित्य-सम्पन्न भाषा की ओर आकर्षण स्वाभादिक है। जिस भाषा में अधिक साहित्यिक सौन्दर्य होगा, वह दूसरी भाषाओं के साहित्यकारों एवं पाठकों को मोहित करेगी। उदाहरणतया संस्कृत और यूनानी आदि भाषायें अपने गुणों के कारण ही सारे विश्व को आकर्षित करती आई हैं। गुणसम्पन्न भाषायें अपूर्ण भाषाओं के विकास में सहायक होती हैं। तब गुणसम्पन्न भाषा का प्रभाव अपूर्ण, अविकसित भाषा पर स्वाभाविक रूप से पड़ जाता है। जब कभी अपूर्ण एवं अविकसित भाषा में किसी चीज़ का अभाव होता है, तब वह गुणसम्पन्न एवं विकसित भाषा से ही उधार लेकर अपने साहित्य की श्रीवृद्धि करती है। उदाहरणतया—आज पारिभाषिक शब्दों के लिये भारत की आधुनिक भाषायें संस्कृत अथवा अंग्रेजी से ही उधार लेकर अपने ज्ञान-भाण्डार को पूरा करती हैं। विविध वर्ण्यों के सूक्ष्म से सूक्ष्मतर पक्षों को प्रस्तुत करने के लिए सम्पन्न भाषायें भी दूसरी भाषाओं से शब्दों को ग्रहण कर लेती हैं।

बँगला और हिन्दी के प्रसंग में ये चारों भाषायी प्रभाव के कारण आ जाते हैं। दोनों भाषायें हिन्दी और बँगला एक आर्य-भाषा-परिवार की दो शाखायें हैं। दोनों का घनिष्ठ औरस सम्बन्ध है। अर्थात् जन्य-जनक तथा समानमूलक संबंध। प्रथम अध्याय में इस विषय पर प्रकाश डाला जा चुका है। पूर्ववर्ती भारतीय आर्य

१. Language pp. 282—283.

भाषाओं में उपलब्ध भाषात्मक-सौंदर्य एवं साहित्यिक समृद्धि दोनों भाषाओं की सामान्य धरोहर है। हिन्दी और बंगला की अधिकतर शब्दावली सामान्य है; किन्तु दोनों में साम्य होते हुए वैषम्य भी बहुत है। दोनों ही अपनी-अपनी शब्दावली और साहित्यिक परंपराओं के साथ विभिन्न क्षेत्रों में फली फूली है। कालान्तर में वियोग के साथ संयोग भी दोनों में होता रहा है। हाँलाकि दोनों भाषायें संस्कृत की महान् शब्दावली की उत्तराधिकारिणी हैं, फिर भी दोनों ने उस शब्दावली को अपनी भौगोलिक एवं ऐतिहासिक प्रवृत्ति और प्रकृति के अनुसार ही आत्मसात किया है। कई संस्कृत के शब्दों का हिन्दी में कुछ और अभिप्राय होता है, बँगला में कुछ और ही होता है। अतः जो औरस शब्द हिन्दी से बँगला में गये हैं वे हिन्दी के अर्थ-विचार के अनुसार हैं, अर्थात् जो अर्थ उनका हिन्दी में है, बंगला में भी उसी अर्थ के लिये उनका प्रयोग हुआ है, कुछ औरस शब्द इस प्रकार समझे जा सकते हैं :—

(१) मूल संस्कृत	हिन्दी अर्थ एवं प्रसंग	बँगला अर्थ और प्रसंग
ग्रामीण	गंवार=गाँव का गोंड गँवार नृपाल महि (दो० ५२६)	गोंयार=गाँव का रतिरस ना जानये कानू से गोंयार (वि० प०)
(२) गल् धातू	गलह=गलना गरै गलानि कुटिल कैकेई (रामचरितमानस)	गलत=द्रवीभूत हय जाहाँ जहाँ धेनु चंदन श्रम जले गलह (प० क० त० पद २३५)
(३) धृष्ट	ठीठ=उद्धत मैं जानति हों ठीठ कन्हाई (सूरदास—सू०सा० १०।१४२४)	धृष्ट=प्रगल्भ ठीट कानाइ कतए भागि जानत (गोविंददास, प०क०त० पद ५३६)
(४) भ्रातृ	भैया=भाई भैया भरत भावते के संग (गी० २।६३।४)	भैया=भ्राता भैया अभिराम बदनु बन जाओइ (प० क० त० पद १२१६)
(५) निद्रा	निन्द=नींद तुरत जाइ पौढ़े दोउ भैया सोवत आई निन्द (सू०सा० १०।२३०)	निन्द=घूम, निद्रा बिगलित लोचन निन्द (प० क० त० पद ४०)

जातिगत प्रभाव से ये शब्द संस्कृत से चले आ रहे हैं, निश्चय ही ये औरस हैं। इन शब्दों की परम्परा हिन्दी में अपनी प्रकृति के अनुरूप जीवित रही। बँगला भाषा में इन शब्दों की यह परंपरा नहीं मिलती। वैष्णव-काल में हिन्दी और बँगला का सम्पर्क पुनः स्थापित हुआ, तब ये शब्द हिन्दी से बँगला में गये। जैसे संस्कृत शब्द "सौभाग्य" हिन्दी में सुहाग बन गया। संस्कृत में सौभाग्य का अर्थ है, ऐश्वर्य अथवा

भाग्यशालीत्व, किन्तु हिन्दी में "सुहाग" का अर्थ है, स्त्री की 'सधवा अवस्था" अर्थात् सपतित्व। बँगला वैष्णव-पदावली में इसका अर्थ है आदर[१]।

आज दोनों भाषाएँ अपने-अपने विकास की कई शताब्दियाँ समाप्त कर चुकी हैं। अपने-अपने क्षेत्र की विशेष भौगोलिक एवं ऐतिहासिक विशेषताओं के कारण अपनी-अपनी निजी शब्दावली का विकास किया है। दोनों पड़ौसिनें हैं। पड़ौसी होने के कारण दोनों में आदान-प्रदान स्वाभाविक था। मैथिली और बँगला का पड़ौस भौगोलिक कारण से है। मिथिला और बँगाल का घनिष्ठ सम्बन्ध तो इतिहाससिद्ध तथ्य है। प्रथम अध्याय में लिख चुके हैं कि मिथिला सदैव से बँगाल का गुरु रहा है। मिथिला-संस्कृति एवं भाषा का प्रभाव बंगाल पर गंभीर रहा है। ब्रजभाषा और बगला का सम्पर्क या पड़ौस धार्मिक यात्राओं के कारण हुआ है। पहले कहा जा चुका है कि ब्रजप्रदेश (मथुरा, वृन्दावन) सदैव से बंगाली वैष्णवों का गढ़ रहा है, आज भी है। नवद्वीप और वृन्दावन की संस्कृति किसी समय एक हो गई थी। एक आनन्द-कन्द-कृष्णचन्द्रजी की जन्मभूमि थी, एक प्रेमावतार चैतन्य-महाप्रभु की। अतः दोनों स्थानों की भाषा के लिये गौड़ीय बंगाली वैष्णवों की बड़ी गहन श्रद्धा थी। पड़ौसी होने के नाते हिन्दी के कुछ शब्द बँगला में चले गये हैं। उदाहरणतया कुछ शब्द इस प्रकार हो सकते हैं :—

प० क० त० पद १२५५—चोलि हि० चोली, : प० क० त० पद १८८७
झींकये हि० झीकना : (प० क० त० पद २६५१)—टेंटि हि० टेंट :
(करील का फल) प० क० त० पद १०३२ ठोर हि० ठौर।

सांस्कृतिक आरोप के कारण एक भाषा का प्रभाव दूसरी पर पड़ता है। पहले कहा जा चुका है कि मध्यदेश की संस्कृति का प्रभाव सारे देश पर ऐतिहासिक काल से रहा है, वैष्णव-काल में मध्यदेश ही संस्कृति व धार्मिक व्यक्तियों का गढ़ था। अतः वैष्णव-भक्ति आन्दोलन ही प्रमुखतया बंगाल और ब्रजमण्डल के पारस्परिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक सम्पर्क का कारण है। अत. उनकी भाषाओं पर भी परस्पर प्रभाव होना स्वाभाविक है। इसी सांस्कृतिक आरोप के कारण हिन्दी-शब्दावली का अधिकतर प्रवेश बंगला-वैष्णव-पदावलियों में हुआ है,[२] क्योंकि वैष्णव-भक्ति आन्दोलन के कारण हिन्दी भाषाभाषियों और बँगला भाषाभाषियों का अभूतपूर्व घनिष्ठ संवंध हुआ था। उस समय ब्रजभाषा का बोलबाला सारे उत्तरी

---

१. देखिये (प० क० त०, पद ८६, ७१६, २८३४)।
बँ०—देख देख प्रीतम प्यारिक सौहागे।
हि०—अनुराग भाग सौहाग सील सरूप बहु भूषन भरी।

२. देखिये—गौ० वे० अ० (द्वितीय भाग)।

भारत में प्रबल-रूप से दूर-दूर तक था। ब्रजमण्डल और वंगदेश की भाषा चैतन्य-सम्प्रदाय के गायकों के कारण एकाकार हो रही थी। कृष्णभक्ति और ब्रजभाषा-साहित्य एक दूसरे के पर्यायवाची बन गये थे। कृष्णभक्ति ने ब्रजभाषा को भारती का कण्ठहार बनाया और ब्रजभाषा ने कृष्णभक्ति को अखिल भारतव्यापी बनाने में योगदान दिया। कृष्णभक्ति केवल संस्कृत के ग्रंथों, भागवत और जयदेव के गीत-गोविंद एवं पडितों तक ही सीमित नहीं रही, किन्तु वह ब्रजभाषा के माध्यम से जनता तक पहुँच गयी।

पंजाब से लेकर सुदूर बंगाल तक ब्रजभाषा की मधुर-मुरली कई शताब्दियों तक बजती रही है। इस भाषायी आरोप का कारण विशुद्ध सांस्कृतिक है[1]। चैतन्य महाप्रभु ने अपने आराध्यदेव भगवान् कृष्ण की अवतार-भूमि ब्रजमण्डल को बैकुण्ठ से उपमा दी थी। गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदाय के आचार्यों और उनके अनुयायियों में वृन्दावन-दर्शन एवं वहाँ निवास करने की उत्कट उत्कण्ठा रहती थी। वहाँ पर मरना भी उनके लिये महापुण्य का कार्य और मोक्ष-द्वार समझा जाता था। अतः वहाँ की भाषा के प्रति तत्कालीन बंगालियों और चैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों में प्रगाढ़ श्रद्धा रहती थी। ब्रजभाषा में बोलना और कविता अथवा संकीर्तन करना गौरव का प्रतीक माना जाता था। अतः वृन्दावन की महिमा के साथ ब्रजभाषा की भी महान् प्रतिष्ठा हुई। वह परम आकर्षण का विषय बन गई।

विद्यापति की पदावली तो सदियों से ही गौड़ीय वैष्णव गायकों की हृत्वीणा के तारों को स्पन्दित करती रही थी। यह पदावली बँगला गौड़ीय वैष्णव-पदावली साहित्य का प्रेरणास्रोत एवं एकमात्र कृष्णभक्ति का माध्यम बन गई। जिसके अनुकरण पर राधा-कृष्ण के प्रणय को अभिव्यंजित करने वाली साहित्यिक-भाषा ब्रजबुलि का उद्गम और विकास हुआ था। यदि विद्यापति पदावली की भावधारा ब्रजबुलि की आत्मा है, तो निःसन्देह ब्रजभाषा एवं तत्कालीन बँगला उसका सुन्दर शरीर है। इसी ब्रजबुलि के रूप में बंगला गौड़ीय-वैष्णव-धार्मिक पदावली पर हिन्दी की गंभीर छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है।

प्रत्येक धर्म या सम्प्रदाय का नेता अथवा अनुयायी जब अपने धर्म का प्रचार एवं प्रसार करना चाहता है; तब उसको सरल सर्वजन सुलभ भाषायी माध्यम का

---

१. इस सांस्कृतिक आरोप के कारण गये हुए कुछ शब्द इस प्रकार हो सकते हैं—

(१)	कृष्ण	कन्हैया या कान्हा	कानया, कानाइ : आकुल भइ बहु कानया
(२)	उद्धव	ऊधो	ऊधो
(३)	केशव	केशो	केशो, मथुरा में केशवराय बिराजें
(४)	माधव	माधो	माधो, माधाइ—आओये भादो बेगर—माधो (प० क० त० १७३६)

सहारा (आश्रय) लेना पड़ता है। गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय के पदकर्त्ता अथवा अनुयायी तथा अन्य संप्रदायों के आचार्य तथा अनुयायी अपने-अपने मत का प्रचार करना चाहते थे, तब उनको हिन्दी की ही शरण लेनी पड़ती थी[१]।

इसके अतिरिक्त मुसलमानी राजनीतिक प्रभुता के कारण हिन्दी लगभग सारे भारत में थोड़ी बहुत फैल चुकी थी। इसी कारण फारसी के साथ-साथ हिन्दी के शब्द भी बँगला एवं अन्यान्य तत्कालीन भाषाओं में प्रवेश पा गये। पहले कहा जा चुका है कि मुसलमानी राज में अरबी और फ़ारसी तहजीबी एवं दफ़्तरी जबान थी। दिल्ली और आगरा के मुगल-बादशाहों का राजनीतिक प्रभुत्व मध्यकाल में लगभग सारे देश पर था। दिल्ली और आगरा की भाषा का प्रभाव भी थोड़ा-बहुत सारे देश पर होना स्वाभाविक था। अतः जनता से सम्पर्क स्थापित करने एवं भारत के अन्य प्रान्तों पर शासन करने के लिए हिन्दी को अपनाये बिना कार्य असंभव-सा था।

मुगल बादशाहों का हिन्दी-प्रेम तो ऐतिहासिक तथ्य है[२]। अकबर से लेकर औरंगजेब तक ने अपने रसास्वादन के लिये हिन्दी को अपनाया था। यह माना जाता है कि अरबी, फारसी एवं हिन्दी के सम्पर्क-स्वरूप उर्दू का उद्‌गम और विकास हुआ है। अतः साधारणतया यह सिद्ध ही है कि मुसलमानी राज, विशेषतया मुगल-बादशाहों ने हिन्दी के उद्‌गम और विकास में महत्त्वपूर्ण हाथ बटाया है। आज अखिल भारत-पाक महोपद्वीप में हिन्दी और उर्दू का बोलबाला इसी कारण है। इस राजनीतिक- आरोप के कारण भी कुछ हिन्दी शब्द बँगला में गये हैं[३]।

गुणनिष्ठता, आवश्यकता एवं उपयोगितावश भी हिन्दी शब्द बँगला में गये हैं। क्योंकि सब देशों, सब कालों और सब परिस्थितियों में एक ही भाषा पूर्ण नहीं होती है। अपनी इस अपूर्णता या अभाव को पूरा करने के लिये दूसरी भाषाओं से सम्पर्क स्थापित करना ही पड़ता है। हिन्दी से सम्पर्क स्थापित किये बिना बंगाली वैष्णव-पदकर्त्ताओं को वृन्दावन की महिमा का परिचय और वहाँ निवास करने की सुविधा नहीं हो सकती थी। आवश्यकतावश उनको प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में ब्रजभाषा को अपनाना ही पड़ता।

१. देखिये—प्रस्तुत प्रबंध द्वितीय अध्याय, पृष्ठ ३५।

२. देखिये—अकबरी दरबार के हिन्दीकवि।

३.

	फारसी	हिन्दी	बंगला प्रयोग और प्रकरण	
(१)	अफसोस	अफसोस; खेद	अपशोसई—अफसोस—हि० इ—	(प० क० त० ७३३)
(२)	किताबत	किताब	किताब (कर्तृत्व)	(प० क० त० १०६)
(३)	चस्का	चस्का	चछकि	(प० क० त० १०६)

जो मुसलमान-शासक अथवा जनसाधारण पंजाब तथा दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार से भारत के अन्य प्रदेशों में गये, वे हिन्दी को साथ ले गये। क्योंकि अरबी-फ़ारसी से उनका काम नहीं चल सकता था। पहले कहा जा चुका है कि हिन्दी को अखिल भारतीय बनाने में पूर्व-मुगलकाल से ही मुसलमानों का जबरदस्त हाथ है। अतः जो भी मुसलमान हिन्दी प्रदेश से बंग-प्रदेश में गये वे हिन्दी को साथ ले गये। अतः कुछ हिन्दीनुमा अरबी-फारसी शब्दों का प्रभाव गौड़ीय वैष्णव-पदावली में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। अतः गुणात्मकता के कारण अथवा आवश्यकतावश कुछ हिन्दी शब्द बंगला में घुलमिल गये हैं[1]।

तीन सौ से अधिक साल तक हिन्दी-शब्दों का प्रयोग गौड़ीय-वैष्णवपद-कर्त्ता अपनी वैष्णव-पदावलियों में करते रहे हैं। पहले कह चुके हैं कि इसका कारण सांकृतिक था। डा० सपिर महोदय ने सांस्कृतिक प्रभाव के इस सिद्धान्त की पुष्टि इस प्रकार की है : 'सरलतम प्रकार का जो प्रभाव एक भाषा का दूसरी पर होता है, वह शब्दों का उधार लेना या अपनी भाषा में उनका प्रयोग है। जब सांस्कृतिक तत्वों को उधार लिया जाता है, तब सदैव यह संभावना रहती है कि तत्संबंधी शब्दों को भी उधार ले लिया जाये[2]।'

कितने ही पदकर्त्ताओं के पदों में हिन्दी प्रभाव की झलक है, हिन्दी-शब्द उनके पदों में मोती के समान जड़े हुए हैं। इनको दूसरे अध्याय के परिशिष्ट में हिन्दी शब्दावली की तालिका में देखा जा सकता है[3]। किन्तु यह कहना सरल नहीं है कि किस शताब्दी में अधिक हिन्दी शब्द बँगला वैष्णव-पदावलियों में प्रवेश पा गये हैं।

१.

संस्कृत	हिन्दी प्रयोग और प्रकरण	बंगला प्रयोग और प्रकरण
दुर्लभ	दुलहा : नहिं बरात दुलह अनुरूपा (मा० १।६२।४)	दुलह-परिचय दुलह रहे केलि (प० क० त० पद ५२)
दुर्लभा	दुलहिन-दुलहिनि कहत दौरि दीजहु द्विज पाती (सू० सा० १०।३१२०)	दुलहिनी (प० क० त० २६६८)
	दुर्ललित दुलार	दुलाल (प० क० त० २७७)

२. The simplest kind of influence that one language may exert on another is the borrowing of words. When there is cultural borrowing there is always the likelihood that the associated words may be borrowed too.

—Edward Sapir, Language. Page 193.

३. देखिए—दूसरे अध्याय का परिशिष्ट "गौणीय-वैष्णव-बँगला पदावली" में शब्दगत हिन्दी प्रभाव।

संभवत: सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही हिन्दी के अधिक शब्दों का प्रयोग हुआ होगा।

यह कहना भी आसान नही है कि किस बंगाली पदकर्त्ता ने अधिक हिन्दी शब्दों का प्रयोग किया है, किन्तु हमारे अनुमान से सोलहवीं शताब्दी में गोविन्ददास कविराज (१५३५-१६१३ ई०) ने ही अधिक हिन्दी शब्दों का प्रयोग अपने पदों में किया है, क्योंकि पदकर्त्ताओं में सबसे अधिक पदों की रचना ही गोविन्ददासजी ने की है। १७वीं शताब्दी में नरहरिदास चक्रवर्ती ने अधिक हिन्दी शब्दों को प्रयोग किया है। इनकी रचनाएँ भी कम नहीं हैं और ये ब्रज में ही वास भी करते थे। अंत में हम कह सकते हैं कि चैतन्य-सम्प्रदाय का आन्दोलन सारे बंगाल और ब्रजभाषा क्षेत्र में सदियों तक छाया रहा है और इस दीर्घकाल में ब्रज के शब्दों को मुक्तभाव से ग्रहण किया जाता रहा है।

अत: शब्दगत हिन्दी प्रभाव को सारे सम्प्रदाय एवं उसके इतिहास, विस्तार और आन्दोलन को लेकर ही ठीक तरह समझा जा सकता है, और उसके उचित स्थान का निर्धारण और मूल्यांकन हो सकता है।

हिन्दी शब्दों के प्रयोग के कारण बंगला में हिन्दी शब्दों की स्थूलत: दो श्रेणियाँ होती हैं। हिन्दी के वे शब्द जो बँगला में तत्सम् रूप में या ज्यों के त्यों चले गये हैं।[१] दूसरी श्रेणी में वे शब्द आते हैं, जिनका किसी आंतरिक या बाह्य कारण से ध्वनि परिवर्तन या रूप परिवर्तन अथवा अन्वय में परिवर्तन हो गया है। सुप्रसिद्ध भाषा-वैज्ञानिक डा० एडवर्ड सपिर का भी मत हमारे सिद्धान्त का समर्थन करता

१. इनको अपाचित उधार लिए शब्द भी कह सकते हैं। इनके उदाहरण कुछ इस प्रकार है :—

शब्द	हिन्दी प्रयोग और प्रकरण	बँगला प्रयोग और प्रकरण
अहेरा (स)	फिरत अहेरें परउँ भुलाई (तु० रा० च० मा० बा० १५९)	माधव मनमथ फिरत अहेरा (गोविददास प०क०त० पद ३१६)
अगोरइ (क्रि०)		राम चरण भुज पुन पुन अगोरइ (प० क० त० २७४२)
अधिकाइ (वि०)	इकटक नैन हइ छवि की अधिकाइ (रा० च० म० पृ० ३१८)	कानु अनुराग बाढ़ये अधिकाइ (प० क० त० पद २५९०)
छबीले (वि०)	छबीले मुरली नैकु बजाउ (सूरदास, सू० सा० १०।१२१६)	छयल छबीले रस बरसीले (गोपालदास, प० क० त०, पद २९६६)
दीजै क्रिया	दीजै कान्ह काँधे को कँबर— (सूरदास, सू० सा० १०।१९९१)	तन मन धनहु निछायरि दीजै— (उद्धवदास, प० क० त० पद २८५८)

है। वे लिखते हैं कि अन्य क्षेत्रीय शब्दों के उधार लेने में सदैव ही ध्वनि-संशोधन होता है, निश्चय ही अन्य क्षेत्रीय ध्वनियाँ या बलाघातिक विशेषताएँ ऐसी हो सकती हैं जो स्वदेशी प्रकृति के अनुकूल नहीं होंगी[1]।

अत: हिन्दी के अनेक शब्दों के रूप में बगला में अन्वय एवं ध्वनि-वैलक्षण्य के कारण परिवर्तन हो गया है। क्रियाओं में सबसे अधिक, विशेषणों, सर्वनामों एवं संज्ञाओं की एक बहुत बड़ी संख्या में ऐसा रूप या ध्वनि-परिवर्तन हुआ है। इनमें बहुतों में स्वरागम, स्वरलोप, व्यंजनागम एवं व्यंजन लोप हुआ है[2]।

---

१. The borrowing of foreign words always entails their phonetic-modification. There are sure to be foreign sounds or accentual peculiarities that do not fit the native phonetic-habits.

—Language. P. 197.

२. हि० अगहन—

बँ० आघन —आघन मासे आश बहु आछिल (प० क० त० पद १७४८)

(आ का आगम, ग का घ में महाप्राणत्व, ह महाप्राण का लोप)

हि० पगड़ी —एते पर अंखियाँ रससानि अरु पगीया लपटानी (सू० सा० १९६७)

बँ० पाग — नरपति पाग शरे (प० क० त०, पद ६४५)

(अ स्वर के स्थान पर आ स्वर का आगम, ड़ व्यंजन का लोप)

हि० बनवारी —मथुरा जन्म लियो बनवारी (गोविद की० र० भाग बीजो पृ० ८९)

बँ० बनओआरि—चीर हरण नागर बनओआरि (प० क० त०, पद २९६६)

(व व्यंजन का लोप, ओ, आ स्वरों का आगम)

हि० अस —अस विचारि जिअ जागहु ताता (रा० च० मा० ल०, पृ० ४३८)

बँ० अछु —को अछु वेदन सहइ (गोविददास प० क० त०, पद १७४)

(स के स्थान पर बँगला में छ का नित्य ध्वनि परिवर्तन होता है)

हि० घुंघुराली—घुंघुराली लटें लटकें मुख ऊपर (तुलसी क० व० बा० ५)

बँ० घुँगुरओआली·घुँगरओआलि अलकें झलके (कृष्णदास, प० क० त० पद २८६०)

(आ का ओ में परिवर्तन 'व' का बँगला उच्चारण' 'ओ आ' होता है।)

हि० चतुरपन— ——

बँ० चोयानपना--शुन सांगातिनि नागर चोयानपना (प० क० त० पद ६०९)

यहाँ तक हमने शब्दों के प्रभाव और प्रभाव प्रकार पर जो विचार किया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी शब्दों का गंभीर प्रभाव बँगला शब्दावली पर पड़ा है, यह प्रभाव उधार ली हुई अस्थायी शब्द-सम्पत्ति के रूप में नहीं है। यह प्रत्यक्ष प्रभाव है ; उच्चारण-भेद के कारण हिन्दी-शब्दों का ध्वनि-परिवर्तन हुआ है। इसी कारण शब्दों के रूप और अन्वय में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है।

प्रभाव की गारमा

हिन्दी से बँगला में आगत-शब्दों के पर्याय भी मिलते हैं। साथ में उनके बँगला-पर्याय भी बहुत हैं। हिन्दी-शब्दों के बँगला में गये हुए पर्याय अधिकतर तद्भव अथवा देशज हैं। कुछ तद्भव अथवा देशज मैथिली अथवा विद्यापति की पदावली से भी आए हैं। किन्तु यह प्रश्न पैदा होता है, कि बँगला में इतने पर्यायवाची शब्दों के होते हुए भी हिन्दी शब्दों को बँगाली शब्दों के स्थान पर क्यों अपनाया गया है ? इसका कारण यह हो सकता है कि हिन्दी के पर्यायवाची शब्द प्रयत्न-लाघव या प्रयोग की सुविधा के लिए अपनाये गये हों। पहले कहा जा चुका है कि हिन्दी एक विशाल भूभाग की भाषा थी, उसका प्रचार भारत के तत्कालीन अहिन्दी प्रदेशों में भी कुछ न कुछ था। अन्य भाषाभाषी प्रदेशों के लोग भी कुछ न कुछ इसको समझ लेते थे। बँगाली गौड़ीय वैष्णव पदकर्त्ताओं ने अपने सम्प्रदाय और पदों को सर्वजन-ग्राह्य या बोधगम्य बनाने के लिए हिन्दी पर्यायों को बँगला में मिलाया होगा। आवश्यकता एवं गुणनिष्ठता के कारण भी ऐसा हो सकता है।

'पर्यायवाची शब्द' किसी प्रभाव की पूर्ति ही नहीं करते, किन्तु गुणात्मकता के कारण प्रभाव के भी द्योतक होते हैं। परन्तु प्रभाव अर्थ के उस अनुमान के तत्व को अभिव्यक्त करने वाला नहीं है जो गुणात्मकता व गुणनिष्ठता के कारण होता है। एक तरह अभाव के कारण हैं, किन्तु अभाव वाले शब्द के पर्याय का प्रयोग वस्तुगत हुआ है या भावगत। शब्द कभी-कभी सहज सम्पर्क के कारण

(रूप एवं अन्वय में परिवर्तन, भाववाचक संज्ञा, पन हिन्दी का प्रत्यय)

हिं० नवल —नवल नेह नव पिया नयो नयो (सूरदास, सू० सा० १०।६६१)

बं० नओल —नओल नओल नओ रंग में (शिवराम प० क० त० पद१५५७)

(व व्यंजन का लोप, ओ स्वर का आगम एवं व के स्थान पर नित्य ध्वनि परिवर्तन हिन्दी से बँगला में होता है)

हिं० भौचक्क — —

बं० भरुंचक —झलकत विजुरि नयन भरुंचक (प० क० त० पद १००३)

(ओकारांत का लोप, रु व्यंजन का आगम)

भी गृहीत हो जाते हैं। सहज रूप से प्राप्त शब्द भी पर्यायवाची का स्थान पा जाते हैं। अर्थ वैशिष्ट्य की गुणात्मकता उस शब्द में होती है, परन्तु प्रयोग की सुविधा की दृष्टि से तथा व्यवसाय की दृष्टि से भी शब्द गृहीत होते हैं।

शब्दों का प्रयोग सामान्य व्यवसायी दृष्टि से हुआ है, या लोकप्रियता की दृष्टि से भी। हिन्दी के बँगला में आये हुए शब्दों में अर्थ-संकोच नहीं है। अर्थ-विस्तार भी नहीं हुआ है। जिस भाव के द्योतक वे हिन्दी में थे उस भाव की आत्मा बँगला में भी सुरक्षित रही है। हिन्दी के पर्यायवाची शब्द बँगला में हीन अर्थ के द्योतक नहीं हैं, न उसमें अर्थोपकर्ष है। अतः वस्तु एवं भाव की दृष्टि से वे शब्द अपनाए गए हैं। तत्कालीन व्रजभाषा की चलित या आवश्यक-शब्दावली (Current Vocabulary) बँगला में समावेश पा गई है। वस्तु एवं भाव के द्योतक कुछ शब्दों के पर्यायों के उदाहरण समीचीन हैं। (देखिए तालिका पृष्ठ ८८।) अगले पृष्ठों में वाक्य-विन्यासगत गौड़ीय-वैष्णव-पदावली पर हिन्दी प्रभाव का कुछ विवेचन है।

: ३ :

बंगला-गौड़ीय-वैष्णव-पदावलियों में वाक्य-विन्यासगत हिन्दी प्रभाव

भाषायी प्रभाव केवल शब्दगत ही नहीं होता है, वाक्य-विन्यासगत प्रभाव भी उसमें समाविष्ट है। जिस प्रकार शब्द-संपत्ति एक भाषा से दूसरी भाषा में गृहीत होती है, उसी तरह वाक्य भी एक भाषा से दूसरी भाषा में प्रवेश पा जाते हैं। जैसा कि भाषा-वैज्ञानिक सइस ने बताया है, कि वह शब्दों, ध्वनियों, मुहावरों, प्रत्ययों को ही नहीं वरंच व्याकरणिक-रूपों को एक भाषा दूसरी से लेती रहती है। यह कोई अत्युक्ति नहीं कि पूर्णतया-विशुद्ध और अमिश्रित भाषा संसार की सभ्य जातियों में नहीं मिलती है।[1] इसी प्रकार शब्दों की तरह अनेक हिन्दी वाक्य बँगला वैष्णव-पदावलियों, पदकल्पतरु, गौरपद-तरंगिणी, पदमेरु एवं चरित काव्यों, चैतन्य-चरितामृत, भक्तिरत्नाकर, गौर-चरित-चिन्तामणि, गीत-चन्द्रोदय आदि में गृहीत हुए हैं। मध्यकालीन बँगला भाषा के गठन पर इस वाक्य-विन्यास का गहरा प्रभाव पड़ा है। जिससे भाषा कुछ खिचड़ी बन गई है। बँगला-साहित्य में यह हिन्दी-वाक्यावली कुछ बँगला के साँचे में ढल गई है। बँगला के अनेक पद ऐसे हैं जो हिन्दी-वाक्य-विन्यासगत-प्रभाव के कारण भाषा-समक अलंकार के उदाहरण कहे जा सकते हैं, ये पद उभय-भाषात्मक हैं, कुछ बँगलामय हैं; कुछ हिन्दी-प्रभाव-गर्भित हैं।

१. The modes of borrowers are read into the language he borrows words, sounds, idoims, suffices and even the grammatical forms may be and constantly are borrowed from one dialect by another, and it is not too much to say that a thoroughly pure and unmixed language does not exist among the civilized races of mankind. A. H. Sayec, Introduction to the Science of Language, 1890. Page 172.

१. वस्तुगत-शब्द एवं इनके प्रसंग

हिन्दी		बँगला
आग (संज्ञा)	=	आगुन (संज्ञा)
उढनि, ओढ़नी (संज्ञा)	=	ढ़ाकनि (संज्ञा)
खोज लूँ (क्रि०)	=	खुँजिलाम (क्रि०)
घूँघट (सं०)	=	घामटो (सं०)
जागलूँ (क्रि०)	=	जागिलाम (क्रि०)
टिके (क्रि०)	=	थाके (क्रि०)
ठोर (सं०)	=	स्थान, जगह (सं०)
डूबलूँ (क्रि०)	=	डूबिलाम क्रि०
थारि (क्रि०)	=	दाँडाइया (क्रि०)
दिये (क्रि०)	=	दियाछे (क्रि०)
धरती (स०)	=	धरित्री (सं०)
निचोरि (क्रि०)	=	निडड़ाइया (क्रि०)
पहिरण (सं०)	=	पिन्धन (सं०)
पूछइ (क्रि०)	=	जिज्ञासा करे (क्रि०)
फोरि (क्रि०)	=	फुड़िया (क्रि०)
बात (सं०)	=	कथावार्ता (सं०)
बेचलूँ (क्रि०)	=	बेचिलाम (क्रि०)
लिये (क्रि०)	=	जन्ये, निमित्त (क्रि०)
होत (क्रि०)	=	हय (क्रि०)

भागवत् शब्द और उनके प्रसंग

हिन्दी		बँगला
अभागिया (वि०)	=	दुर्भाग्य व्यक्ति (वि०)
अयानि (वि०)	=	अज्ञानी वोका (वि०)
उरझाई (क्रि०)	=	जड़ाजडि (क्रि०)
केशो (सं०)	=	केशव, कानाई (सं०)
घुँघुरओलि (वि०)	=	कुंचित, काँकडानो (वि०)
चतुरपन (वि०)	=	चातुर्य (वि०)
छबीले (वि०)	=	सुन्दर, नायक (वि०)
ढीठपना (वि०)	=	धृष्टता (वि०)
दुलहिन (सं०)	=	नववधू, नूतन वो (सं०)
निपट (वि०)	=	नितांत (वि०)
परदेशिया (सं०)	=	प्रवासी (सं०)
रसिकपन (भा० सं०)	=	रसिकता भा० (सं०)
शतधरिया (सं०)	=	जार, व्यभिचारी (स०)
सतीपन भा० (सं०)	=	सतीत्व भा० (सं०)
संत (सं०)	=	सज्जन, भालमानुष, भद्रलोक (सं०)
सयानि (वि०)	=	चतुरा (वि०)
सीधे (वि०)	=	सोजाभावे (वि०)
सुढार (वि०)	=	सुगठन (वि०)
सोतिनि (सं०)	=	सपत्नी, सतिन (सं०)

हिन्दी-वाक्य-विन्यास के प्रभाव के कारण बँगला वैष्णव-पदावलियों की भाषा की प्रकृति में विकार उत्पन्न हुआ है, यह नीचे के उदाहरणों से स्पष्ट है:—

पद	पदकर्ता	प्रसंग	पद संख्या
अलसात जम्हात, लगात नखगात	कृष्णदास	४६४, सा० प० पुथि	१४४
अलि रि होत मनहूँ	जगतादास	गो० प० त० पद	२७०
आजू परम रंगहासि श्याम रसिक-राज	नरहरि चक्रवर्ती	भ० र०	पृ० ४२०
कांहां को काहां पाओ ब्रजेन्द्रनंदन	कृष्णदास कविराज	चे० च० मध्यलीला, प्र० खंड दूसरा परि०-१४	

कुछ वाक्य हिन्दी के ऐसे हैं जो ज्यों के त्यों आये हैं, जैसे—

पद	पदकर्त्ता	प्रसंग	पद संख्या
आरति जय वृषभानु किशोरी	परमानन्द	प० क० त० पद	२८५८
आरति युगल किशोरकि कीजै	,,	,,	,,
ए दुहुं मंगल आरति कीजै मंगले-नयने-निरखि सुख लीजै	रामराय	,,	२२४४
ए धनि माननि मान निवारो	ब्रजहरिदास	,,	१४६९
गोविंद मुखारविंद निरखि मनविचारो	सूरदास	,,	१०८६
जय मेरो प्रान सनातन रूप	नरहरि चक्रवर्ती	गो० च०	पृ० ३४१
जीओ-जीओ मेरे मन चोरागोरा	शाह अकबर	गो० प० त०	४।२।३९
तज मन हरि विमुखन के संग	माधो	प० क० त०	पद ३०३५
देख सखि झूलत राधा श्याम	अज्ञात	,,	१५६१
नओल किशोर नओल रंग में	शिवराम	,,	१५२४
माधव मनमथ फिरत अहेरा	गोविंददास	पदमेरु	३१८
सबहूँ गायत सबहूँ नाचत	,,	,,	२०८०
समय जानि सब सखिगन आई	नरहरि चक्रवर्ती	गो० च० चि०	पद १८, पृ० २१५
होरि खेलत गोर किशोर रसवती नारी गदाधर कोर	शिवानंद	गो०प० त०	५।१।४७

किन्तु काफी संख्या में ऐसे वाक्य हैं, जिनमें उनकी प्रकृति एवं प्रवृत्ति और विधेय-तत्व एवं सम्बन्धतत्व हिन्दी से प्रभावित हैं। शब्दगत और वाक्य-विन्यासगत हिन्दी प्रभाव की भाँति हिन्दी पदगत प्रभाव का विवेचन अगले प्रकरण में किया जाएगा।

: ४ :

'बँगला गौड़ीय-वैष्णव-पदावलियों में पदगत हिन्दी प्रभाव

भाषायी प्रभाव का एक रूप पदावतरणों का आगम भी है। एक भाषा में दूसरी भाषा के कवियों के पदों का समावेश भी हो जाता है। इसी कारण बहुत-से हिन्दी पद बँगला-वैष्णव-पदावलियों में सहजरूपेण मिल गए हैं। पदकर्त्ताओं ने उनको पदावलियों के अभिन्न अंग समझकर ग्रहण किये हैं। हिन्दी-कवियों के जो पद बँगला में गये हैं, उनकी भावधारा बँगला और ब्रजबुलि के पदों से भिन्न नहीं है। सब राधाकृष्ण विषयक हैं। वैष्णव-युग में इतना अधिक भाषा विषयक भेद भी नहीं था। जिस सरलता एवं सुविधा से वैष्णव आचार्य अथवा उनके अनुयायी बँगला, ब्रजबुलि अथवा विद्यापति की पदावली को समझते थे उसी तरह वे हिन्दी के पदों को भी समझ लेते थे। संकीर्त्तन एवं गेय पदावली में बँगला पदों के साथ-साथ हिन्दी पद भी गाये जाते थे।

किन्तु, स्थूलतः इन पदों की दो श्रेणियाँ हो सकती हैं :—

१. हिन्दी क्षेत्रीय कवियों के उद्धृत हिन्दी पद।

२. (क) बँगालियों एवं वैष्णवों कवियों द्वारा विरचित हिन्दी पद।

　(ख) बँगला के अन्य कवि जो हिन्दी से प्रभावित हैं।

इस पदगत प्रभाव को निम्न मानचित्र के द्वारा भली प्रकार समझा जा सकता है :—

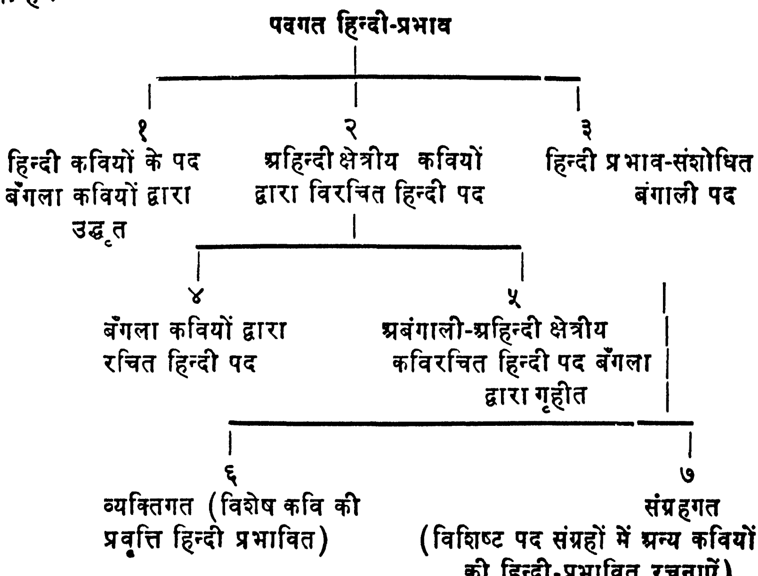

१. कुछ पद मूलतः हिन्दी-क्षेत्रीय कवियों द्वारा विरचित हैं। बँगला पदों से विचार-साम्य के कारण एवं ब्रजबुलि के पदों से भाषायी सादृश्य के कारण बंगला पदावलियों में बहुत से हिन्दी पद घुलमिल गये हैं। और ये पद बँगला वैष्णव पदावलियों के सहजरूपेण अभिन्न अंग हो गये हैं। आगे के मानचित्र द्वारा इस स्थिति को सरलता से समझा जा सकता है।

१. हिन्दी-क्षेत्रीय कवियों के उद्धृत पद

क्रमांक	पदकर्ता	पद सं०	संग्रह अथवा पृष्ठ[1]	ग्रंथ का प्रकाशन, सन्[2]
१	सूरदास—३ पद	१	४६५, सा० प० पुथि २११, अ० प्र० प० र०	बं०सा०प० कलकत्ता
		१	प० क० त० पद १०८६	बं०सा०पा० कलकत्ता बं० १३३८, प्रथम सं० अ० प्र०प०र०
		१	४६६ पद रससार अ० प्र० प० र०	पदकल्पतरु की पूरक
२	नंददास—४ पद	१	४३५ पद रससार ,, ,, पृ० १३६	,, ,,
		१	४३६ ,, ,, ,,	,, ,,
		१	४३७ ,, ,, ,,	,, ,,
		१	४३८ ,, ,, ,,	,, ,,
३	कृष्णदास—१ पद	१	४६२ ,, ,, ,,	,, ,,
४	माधो (माधव)—४ पद	१	प० क०त० पद २३६४	बं० सा०प०, कलकत्ता
		१	,, पद २३६५	बं० १३३८, प्रथम सं०
		१	,, पद २९६८	,, ,,
		१	,, पद ३०९५	,, ,,
५	गोपाल भट्ट या गोपालदास-३ पद	१	,, पद १०८८	,, ,,
		१	,, पद २३३८	,, ,,
		१	,, पद	,, ,,
६	सुन्दर कवि – १ पद	१	४६४ सा० प० पुथि १४४	,, ,,
७	आगरओआलि-१ पद	१	प० क० त० पद २८३४	,, ,,
८	नृप रघुनाथ–१ पद	१	४४९सा०प०२०१पुथि१४१	,, ,,
९	भक्तकवि व्यासजी २	१	भ० र० पृ० ४७३	भ० र०
		१	,, ,,	,, ,,

१. देखिये—संकेत रूपों के लिए सांकेतिक चिह्न।

२. ,, ,, ,,

अब इनके कुछ उदाहरण और विवेचन देना आवश्यक है[1]।

१. सूरदास (१५३५–१६३८ वि० सं०)

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि सूरदास के कुछ पद बँगला-वैष्णव-पदावलियों के अभिन्न अंग बन गये हैं; हिन्दी से बँगला में उच्चारण-भेद होने के कारण उनके पदों में कुछ विकृति आ गयी है, उदाहरणार्थ—

बँगला पाठ :—

पेखलुँ एकहि अद्भुत राग, जुगल कहल पर गजवर गोरत—१
तापर सिंह करत अनराग, तहिपर सरवर तापर गिरिवर—२
गिरि पर फूल कंज पराग, रसिक कपोत बसई तहि उपर—३
अरुण अमृत फल लाग, फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव—४
तापर मनिधर नाग, इहविध शोभा रहत निशि वासर—५
कबहुँ न करत तियाग, सूरदास पहुँ रसिक-शिरमणि—६
बाड़हुँ सिंधु—सोहाग (४६५, सा० प० २११ पुथि)

बँगला का यह पद 'सूरदास' का ही पद है, इसमें संदेह नहीं, किन्तु कितने ही विकारों से युक्त हो गया। इसका मूल हिन्दी पाठ यों है—

हिन्दी पाठ :—अद्भुत एक अनुपम बाग। १

जुगल कमल पर गजवर क्रीड़त, तापर सिंह करत अनुराग—२
हरिपर सरवर, सर पर गिरवर, गिर पर फूले कंज पराग—३
रुचिर कपोत बसे ता ऊपर अमृत-फल लाग—४
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, तापर सुकपिक मृग-पद-काग—५
खंजन, धनुष, चन्द्रमा ऊपर, ता ऊपर एक मनिधर नाग—६
अग-अंग प्रति और और छवि, उपमा ताको करत न त्याग—७
सूरदास—प्रभु पियो सुधारस मानों अधरन के बड़भाग।

(सूरदास—सू० सा० पद २७२८)

अब इन दोनों की तुलना से बँगला पद में विकृतियों को भली प्रकार समझा जा सकता है—इसके लिए यह तालिका दी जाती है[2]।

---

१. देखिये—हिस्ट्री आव ब्रजबुलि लिटरेचर, पृष्ठ ३७५।

२. कुछ शब्दों का रूपान्तर तो लिपि दोष के कारण विदित होता है। 'राग' बाग के लिए रूपान्तर नहीं माना जा सकता, बंगाली लिपि में (ब) और (र) में केवल बिन्दु का अन्तर है। लिपिक ने हिन्दी के 'ब' पर मूल से बिन्दु चढ़ा दिया है, ऐसे ही और स्थलों पर भी वास्तविक रूपान्तर न होकर लिपि दोष ही हो सकता है।

१			२	३	४
उच्चारण भेद से			आगम से	लोप से	रूपान्तर से
बँगला चरण—कडल			१ पेखलु	१ अद्‌भुत	६ सोहाग
हि०	१	कमल	—	१ अनुपम	७ बड़भाग
बं०	३	उपर	२ तहिपर	२ अनुराग	—
हि०	३	पर	२ तापर	२ अनुराग	—
बँ०	१	गीरत	१ एकहि	—	—
हि०	२	क्रीड़त	१ एक	—	—
बँ०	६	पहुँ	—	—	—
हि०	७	प्रभु	—	-	—

बँगला के संग्रहों में सूरदास नाम की छाप से एक ऐसा पद भी मिला है जो हिन्दी सूरसागर की प्रतियों में नहीं मिलता। यह पद यों है।

गोविंद मुखारविंद, निरखि मन विचारों।
चन्द्रकोटि भानूकोटि, मदन-कोटि उबारो ॥
सुन्दर कपोल लोल, पंकज दल नयना।
अधर बिम्ब मधुरहास, कुन्दकलिक दशना ॥
मणि-कुण्डल मकरांकृत, अल-भृंग पुंजा।
केशर को तिलक बनो सोने मड़िगुंजा ॥
नव जलधार तड़िताम्बर गले बनमाला शोहे।
लीला नट सूर के प्रभु रूपे जग-मन-मोहे ॥

(प० क० त० १०८६) (एच० बी० एल०, पृ० ३७५)

इस पद को पदकल्पतरु के संकलनकर्ता वैष्णवदास एवं डा० सुकुमार सेन सूरदास का प्रमाणिक पद मानते हैं। किन्तु हिन्दी सूरसागर में इसका न मिलना कुछ सन्देह पैदा कर सकता है पर यथार्थ यह है अभी तक सूरदास के समस्त पदों का संग्रह हो ही नहीं पाया। हो सकता है यह पद सूरदास का ही हो, पर हिन्दी संग्रहों में न संकलित हो सका हो। एक संभावना यह भी हो सकती है कि यह किसी अन्य सूरदास का हो।

यही स्थिति नीचे संकलित दो पदों की भी है। इन पदों के संकेत के लिए प्रथम चरण ही यहाँ दिये जाते हैं :—

(१) "कानाइ आमारे जगमन मनमोहन राखल" एवं
(२) "सभै मैलि झूलन जाइ हिडोर वंशी वट तट सब सखि मोर।
झूलन नन्दकिशोर (४६६ पद रससार)

ये दोनों पद हिन्दी सूरसागर में नहीं मिलते। बंगला के संग्रहों में हैं, और बंगाल के विद्वानों ने इन्हें भी सूरदासकृत माना है। किन्तु यथार्थता संदिग्ध है जैसा कि अभी ऊपर बताया गया है।

२. नंददास (१५६०-१६४३ वि०सं०[1])

अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि नंददास के चार पद अप्रकाशित पद-रत्नावली में मिलते हैं,[2] उनमें से एक इस प्रकार हैं :—

झूलत ब्रज नागरवर, चंद्रानिनि सग, भुजहि भुजहि कंधे कंधे।
लटपटात कतहि बंधे, झूगत मंद आलि वृंद, राग रचत रंगे।।
तार्थै तार्थै मधुर बोल, झूलने नुपुर किंकिणि बोल
कादम्बिनि गगने घोर गर गर गर गरजे जोर
बरिखत तहि थोर थोर, तड़ित जड़ित अंगे।।
झमकि झमकि झरत नीर, चातक-चय बोलत धीर
सार-शुक कपोल-कुल पुंज पुंज, कुहकत सब कुंज कुंज
भ्रमरी सग्रें गुंज गुंज, गुंजरु सब भृंगे, कालिंदि-कूल कुसुम-वृंद
विपिने वहत अति सुगंध पवन गमन गमन मद मंद
हंस-नाद-तुंग, हेरि-युगल-रस-विलास नदवास निज ही आश
पूरत कत रंगे।

(४३५ पदरससार : अप्रकाशित-पद रत्नावली, पृ० १३६)

३. कृष्णदास (१५५२-१६३२-३८)[3]

अष्टछाप के कवि कृष्णदास का भी एक पद इस प्रकार है:—

"झूलन लीला"
झूले झूले झूले श्याम, वृन्दावने कुंज भवन में मोहन,
रंगहि-रंग हिंडोर-आदि

(४६२ पदरससार)

---

१. अष्ट० व० स०, पृ० २५५-२६२।

२. शेष तीन पद इस प्रकार हैं :—

(१) झूल-कुंज-बिहारी, संगहि नअोल किशोरि आदि-(४३६ पदरससार)

(२) देख शाड न सुखे समये-प्यारि पितामहि झूले आदि-(४३७ पदरससार)

(३) झूलतधनि चन्द्रानिनि, नागर नटराज, आदि-(४३८ पदरससार)

झूलन लीला पर नंददासजी के जो पद हिन्दी में प्राप्त हैं, उनमें ये पद भी नहीं है।

३. अष्ट व० स० पृ० २५३-२५४।

४. माधो (माधव)[1] (१५२३ ई०)

हिन्दी के कवि माधो के चार पद पदकल्पतरु एवं भक्ति रत्नाकर में मिलते हैं। ये इस प्रकार हैं[2]—

जय जय रूप महारस सागर।
दरशन परशन वचन रसायन, आनंदहुके गागर॥
अति गंभीर धीर करुणामय प्रेम भकतिक आगर।
उज्जल[3] प्रेम महामणि प्रकटित देश गौड़ वैरागर॥
सतगुन-मण्डित पण्डित-रंजन; वृन्दावन-निज-नागर।
किरित विमन यश शुनतहि माधो सतत रहल हिये आगर॥[4]
(प० क० त० पद २३६५)

---

१. एक माधवदास का परिचय भक्तकाल में मिलता है : जैसे—
बिने व्यास मनो प्रकट ह्वे जन को हित माधो कियो—छंद ७०,पृ०१६३ : श्री सतीशचन्द्र राय "पदकल्पतरु" के पाँचवे खण्ड में पृ० १६२ पर इनको हिन्दी का कवि मानते हैं एवं श्री जगदबंधु भद्र के मत का समर्थन करते हैं—'माधो भनितार पदगुलि ब्रजमण्डलेर प्रचलित ब्रजभाषा सुतराम् ताहाके ऐ अंचले लोक बलियाई मने हय। माधव नामेर अपभ्रंश नामटी ओ हिंदुस्तानेरइ विशेषत्व (गो० प० त० भूमिका, पृ०२२७)
डा० जार्ज ग्रियर्सन ने भी माधोदास नाम के कवि को ब्रजभाषा का कवि माना है, और उसका जन्मकाल १५२३ सन् दिया है (वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान।)
डॉ० सुकुमार सेन भी इन्हें हिन्दी का कवि मानते हैं। ग्रियर्सन का उल्लेख करते हुए उन्होंने यह सन्देह भी प्रकट किया है कि क्या ग्रियर्सन के माधोदास ये ही माधो हैं।

२. माधो के आदि पदों के यहाँ आरम्भिक चरण दिये जाते हैं। ये पद भी हिन्दी (ब्रजभाषा) के हैं।
(१) जड कलि रूप शरीर ना धारत—(माधो प०क०त० पद २३६४, भ० र० पृ० ४७२)
(२) धन्य गोकुल धन्य मथुरा धन्य यदुकुल-अवतरी—(माधो प०क०त० पद २६६८)
(३) तेज मन हरि-विमुखन के संग—(प०क०त० पद ३०३५)
देखिये—सूरदासजी का भी एक पद इससे मिलता जुलता है—
तजो मन हरि विमुखन के संग (सूरदास सू० सा ३३२)

३. पाठ, "उज्जवल"।

४. पाठ, "जागर"।

५. गोपाल भट्ट[1] या गोपालदास (१५०६-१५४२ वि० १४२५-१५०० शकाब्द)

ये गोपाल भट्ट न तो हिन्दी क्षेत्रीय कवि है न बंगाली क्षेत्रीय, किन्तु ये दक्षिणात्य-ब्राह्मण थे। दाक्षिणात्य होते हुए भी चैतन्य मत में दीक्षित हो ये बंगाली वैष्णव माने जाने लगे। इनके पदों का समावेश बंगाली वैष्णव-पदावलियों में हुआ है। नीचे जो पद दिया जा रहा है वह इनकी हिन्दी-कृति तो है, पर स्पष्टतः बंगाली आवरणयुक्त है। इसी कारण इन्हें इस प्रसंग में स्थान दिया गया है। उदाहरणार्थ इनका एक पद इस प्रकार है[2] :—

---

१. देखिये—**वृन्दावन की माधुरी छन मिलि आस्वादन कियो।**
सर्वस राधारमन भट्ट गोपाल उजागर—
(हि० म० छंद ६४, पृ० २०४)
हृषीकेस भगवान विपुल वीठल रस सागर
ज्ञानेश्वरी जगन्नाथ लोकनाथ महामुनि मधु श्री रंग
कृष्णदास पंडित उमें अधिकारी हरि अंग
घमडी जुगलकिसोर मृत्य भूगर्भ जीव दृढ़ व्रत लियो
वृन्दावन की माधुरी इन मिलि आस्वादन कियों।

अथवा—
अष्ट व० स० पृ० ५५-५७
सौ० श० के० हि० अं० बँ० कवि, पृ० ४७
प० क० त० पद पृ० ५०।

२. **वृषभानु-नन्दिनिते, मनमोहन, केमन लागि बसि—**
(प० क० त० पद २८३३)

अंतिम पद गोपालदास की भणिता के नाम से है। पदकल्पतरु के संपादक श्री सतीशचन्द्रराय इस पद को भी गोपाल भट्ट का ही मानते हैं। पदकल्पतरु पंचम-खण्ड (परिशिष्ट) में लिखते हैं—गोपालदास की भणिता के साथ पाँच पद पदकल्पतरु में उद्धृत हुए हैं। उनके बीच में २९६६ संख्यक पद बगाल की ब्रजबुलि का नहीं है, सोलहवीं शताब्दी की विशुद्ध ब्रजभाषा का है। बंगाली पदकर्त्ताओं के निकट ब्रजभाषा में कविता करना कुछ कठिन था, तो हम इस पद को श्री वृन्दावनवासी षड़-गोस्वामियों में अन्यतम गोपाल भट्ट गोस्वामी की रचना ही अनुमान करते हैं पद इस प्रकार है :—

श्री राधे कृष्ण गोबिंद हरे।
गोपीनाथ मदन-मोहन-वर— (प० क० त०, पद २९६६)

देखिरि सखि कडल नयन कुंज में विराज है।
वामेते किशोरि गोरि, अलस-अंग अति विभोरि
हेरि श्याम-वयन-चंद मंद, हास हैं।
अंगे अंगे वाहे भीड़, पुछत बात अति निवीड़
प्रेम-तरंगे ढ़रकि पढ़त, कडल मधुपसंग हैं।
शारि, शुक, पिकु करत गान भमरा भमरि धरत तान
शुनि धनि धनि उठि बैठत, चौर चपल जात है।
श्री गोपाल भट्ट आश, वृन्दावन कुंजे वास
शयन सपन नयन हेरि, मूलल मन आप है।
(प० क० त०, पद १०८८)

६. सुन्दर कवि[1]

भक्तिकाल के फुटकर रचनाकारों में सुन्दर-शृंगार के लेखक सुन्दर कवि का एक पद अप्रकाशित-पद-रत्नावली में मिलता है, वह बंगला और हिन्दी-पाठ भेद के साथ इस प्रकार है :—

बंगला पाठ :—

अलसात जम्भात लगे नखगात, किधों तुतराहू बोलत हूँ
कवि सुन्दर उत्तर सों शुन उत्तर, एतनहु सों करे अज हूँ।
उनसे कह क्या कहिये सजनी, सपने नहि लाज भई कबहूँ ॥
जगये सखि ओखद हैं सबकि, पत सोभा ओखद नहिं कहूँ।
(४६४ सा० प० पृथि १४४)

हिन्दी पाठ :—

अरसात जम्भात लगे नखगात (कितौ) तुतरात सुबोलन हूँ।
कवि सुन्दर ऊलटि और सुनो इतने पर सोंह करें अज हूँ ॥
तिनसों ब कहा कहिये जिनके सुपने हूँ न लाज भई कबहूँ।
जग में सखि औषधि है सबकी पै स्वभाव की औषधि नाहीं कहूँ ॥[2]
(हि० म० पृ० १०३)

७. आगरवाली[3] (आगरओआलि)

आगरवाली के सम्बन्ध में यह निश्चितरूपेण नहीं कहा जा सकता है कि

---

१. हिं० सा० इ०, पृ० २६६।

२. इन दोनों पदों की तुलना से यह विदित होता है कि बंगला के क्षेत्र में हिन्दी पद को किस प्रकार अपनाने की चेष्टा की गयी है।

३. देखिये—सा० प० प० २ संख्या बं० १३१६ 'प्राचीन पदावली ओ पद कर्त्तगण' शीर्षक प्रबंध तथा प० क० त०, पं० खं०, पृ० २१।

यह हिन्दू या मुसलमान कवि या कवयित्री हैं। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में आगरवाली नामक किसी कवि का नाम नहीं मिलता है। इनके दो व्रजभषा के पद वैष्णव ग्रंथावलियों में प्राप्त हुए हैं, वे इस प्रकार हैं :—

पिया मुख देखो श्याम नेहारी।
कही ना जाति आनन की शोभा रही बिचारी॥
दे देख प्रीतम प्यारिक सोहागे।
स्वहस्ते बीड़ श्याम देत, खंडित आध आपलेत
पोंछत पट पीत पीक अतिशय अनुरागे॥
कांचन के गड़त काण; भाँति भाँति राखतमान
निरखत बदनारविंद पलकर नाहि लागे॥
कुंज में रस-पुंज केलि धाण पाओये चछकि झाँलि
वुंहु श्रीमुख ताम्बुल पाइ, आगरओआली भागे।

(प० क० त० पद २८३४)

८. व्यासजी (१५६७ वि० सं०)

हरिराम व्यासजी के हिन्दी पद 'भक्ति-रत्नाकर' में प्रवेश पा गये हैं, वे इस प्रकार हैं[1] :—

बँगला उच्चारण को देखने से तो यह विदित होता है कि यह कोई 'अग्रवाल' हैं। किसी 'अग्रवाल' के रचित ये पद हैं। फिर भी यह एक संभावना मात्र है। निश्चय पूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

१. व्यास जी के पद का हिन्दी पाठ इस प्रकार है :—

जै जै मेरे प्राण सनातन रूप
अगतिन की गति दोऊ मैया, जोग-यज्ञ के जूप···

(भक्तकवि व्यासजी, पृ० १६४)

उनके अन्य पद बँगला और हिन्दी ग्रन्थों में किस प्रकार हैं :—

जय मेरे साधु शिरोमनि रूप सनातन
जिनके भक्ति, एकरस निवहि। प्रीत कृष्ण राधातन···

(भ० र०, पृ० ४७३)

साधु-सिरोमनि रूप-सनातन।
जिनकी भक्ति एक रस निवही, प्रीत कृष्ण राधा तन···

(भक्तकवि व्यास जी, पृ० १६८)

जय मेरी प्राण सनातन रूप।
अगतिन के, गति दोउ माया; योग यज्ञ के रूप।
वृन्दावन के सहज माधुरी प्रेम सुधा के कूप।
करुना सिंधु अनाथ बंधु, भक्त सभा के भूप।
भक्ति भागवत, मतहि आचरन कुशल सुचतुर चमूप।।
भुवन चतुर्दश विदित विमल; यश रसना के रस तूप।
चरन कोमल, कमल रच छाया, मीटत कलि रवि धूप।
व्यास उपासक, सदा उपासे, राधा चरन अनूप।।

(भ० र०, पृ० ४७३)

यहाँ तक हमने उन पदों और पदकर्ताओं का उल्लेख किया है जो बंगाली वैष्णवों को प्रिय थे और जिन्हें उन्होंने अपनी पदावलियों में स्थान दिया है। ये पद वैसे उनके ही हो गये हैं। और जैसे इन पदों के माध्यम से हिन्दी ने उनके हृदय में ही स्थान प्राप्त कर लिया है, और यह हिन्दी पद उनकी प्रेरणा के स्रोत बने हैं। हिन्दी के प्रभाव का यह रूप अत्यन्त भावपूर्ण है। आगे बँगला-वैष्णव पदकर्ताओं द्वारा हिन्दी के विरचित पदों का उल्लेख किया जा रहा है।

२. बंगाल वैष्णव-पदकर्ताओं के पद

दूसरे प्रकार के वे पद हैं जो अहिन्दी-क्षेत्रीय कवियों द्वारा विरचित हैं; क्योंकि गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदाय के यह गोस्वामी तथा अन्य आचार्यगण ब्रजमण्डल में निवास करते थे। उनके अनुयायियों के दल के दल बहुधा मथुरा-वृन्दावन तीर्थ-यात्रार्थ आया जाया करते थे। वृन्दावन-प्रवासी वैष्णव-महन्तों के बीच में किसी-किसी ने तब प्रधानतः ब्रजबुलि एवं ब्रजभाषा में पद लिये थे।[1]

पहले कहा जा चुका है कि बंगाली-वैष्णवों का एक बड़ा तीर्थ-स्थान वृन्दावन था। अतः उस प्रदेश की भाषा के साथ भी उन पदकर्ताओं में घनिष्ठ अनुराग की वृद्धि हुई। कुछ पदकर्ता तो स्थायी रूप से वृन्दावन-वासी हो गये थे, जिस प्रकार वह परम्परा आज तक जीवित है। कुछ तीर्थयात्रा के लिये आते थे और अपने प्रदेश को लौट जाते थे। किन्तु ब्रजभाषा के सम्पर्क और प्रभाव से नहीं बच पाते थे। बँगला पदों के साथ हिन्दी पदों की रचना भी स्वतः ही करने लगते थे। इस प्रकार बहुत हिन्दी पद बंगाली वैष्णव पदकर्ताओं द्वारा विरचित हैं। बंगाली-वैष्णव पदावलियों में जो गौरवपूर्ण स्थान बंगला पदों का है, वही स्थान हिन्दी पदों का भी है। वे बंगला साहित्य की स्थायी निधि बन गये हैं। इस प्रकार हिन्दी प्रभाव

१. वृन्दावन-प्रवासी वैष्णव महान्तदेर मध्ये ओ केह केह पद लिखियाछिलेन, तबे प्रधानत ब्रजबुलिते एवं ब्रजभाषाय। (डा० सुकुमार सेन-बाँ०सा०इ०, प्र०खं०, पृ० ३२४)

की परम्परा गौड़ीय वैष्णवों में मध्यकाल से लेकर वर्तमान काल तक विद्यमान है। इसको हिन्दी का वास्तविक एवं आन्तरिक स्थायी प्रभाव कहा जा सकता है।

गौड़ीय वैष्णव साम्प्रदाय के वैष्णव भी इसके अपवाद नहीं हैं। ब्रज के प्रभाव के कारण बँगला कवि या ब्रजबुलि के पदकर्ता ब्रजभाषा में भी कविता करने लगते थे। क्योंकि जैसा भाषायी वातावरण होता है, उसके अनुसार ही कवि काव्य-रचना करने लगते हैं। अतः उस काल में बंगाली चैतन्य-सम्प्रदाय के आचार्यों एवं अनुयायियों में भाषा की त्रिविध-गंगा बह रही थी।

यह कहना सरल नहीं है कि कितने बंगाली या अहिन्दी-क्षेत्रीय चैतन्य-मतानुयायी वैष्णवों ने हिन्दी के पदों की रचना की है। साथ में यह कहना भी कठिन है कि संख्या में कितने पद हिन्दी में विरचित हैं और अमुक कवि ने कितने पदों का सृजन किया है। प्रस्तुत प्रबंध में उन महानुभाव पदकर्ताओं के कृत्तित्व पर निम्न चित्र द्वारा एक विहंगम-दृष्टि डाली गई है।[1] यहाँ कुछ ऐसे बंगाली पदकर्ताअ

क्रमांक	पदकर्त्ता	पद सं०	प्रसंग अथवा पृष्ठ	ग्रंथ का प्रकाशन, सन्
१	कृष्णदास—४	१	प० क० त० पद २८५९	बं०सा०प० १३३८बं०
		१	,, पद २८६०	,, ,,
		१	,, पद २८६१	,, ,,
		१	,, पद १०८५	,, ,,
२	कृष्णकांत तनया-१	१	,, पद २८६६	,, ,,
३	परमानन्द—३	१	,, पद १५८५	,, ,,
		१	,, पद २८५८	,, ,,
		१	,, पद २८७१	,, ,,
४	रघुनाथदास—४	१	,, पद २३८७	,, ,,
		१	,, पद २४६७	,, ,,
		१	,, पद २८६९	,, ,,
५	रामराय—१	१	,, पद २८४४	,, ,,
६	राधावल्लभदास--१	१	गो० प० त० ६।३।३७	जगदबंधु भद्र बं०सा०प० १३१० बंगाब्द
७	शिवराम—१	१	प० क० त० पद १५५७	बं०सा०प० १३३८ बं०
८	रोहिनीनंदनदास--१	१	,, पद ७७०	,, ,,
९	अकबर शाह— १	१	गो० प० त० ४।२।८९	,, १३१० बंगाब्द
१०	घनश्यामदास—१	१	,, ३।१।३०	,, ,,

१. इस संबंध में 'हिन्दी के बंगाली-वैष्णव कवि' श्री सुदर्शन-भाद्र १३५७ बंगाब्द के लेख में भी यह बात है।

के नाम दिये जाते हैं जिन्होंने ऐसी भाषा में पद रचना की जो या तो यथार्थतः ब्रज भाषा थी या ब्रजभाषा के अत्यन्त निकट थी[1]।

उक्त कवियों का कुछ विस्तृत विवरण यहाँ दिया जाता है :—

१. कृष्णदास[2]

कृष्णदास ने चार ब्रजभाषा के पद ब्रजबुलि की रंगीनी के साथ लिखे हैं वे इस प्रकार हैं :—

जय राधे श्री राधे कृष्ण जी राधे जय राधे।
नंदनंदन वृष-भानु-दुलारी सकल-गुण अगाधे ॥
नव-घन-सुन्दर-नओल किशोरी निज गुण हीतम साधे।
चांचर केशेमओर शिखंडक कुंचित केशिनि जादे ॥
पीताम्बर-घर ओढ़े नील शाड़ि घन सौदामिनि राजे।
कानु-गलेबन-माला-विराजित राइ गले मोति साजे ॥
अरुणित चरणो मंजित-रंजित खंजन-गंजन लाजे।
कृष्णदास मने श्री वृंदावने जुगल-किशोर विराजे ॥[3]

(प० क० त० २८५९)

---

१. ब्रजभाषा पदाज इन वैष्णव ऐन्थोलोजीज़ : हिस्ट्री आव ब्रजबुलि लिटरेचर उक्त सूची का आधार है।

२. हि० बु० लि०, पृ० १०३ तथा ३७६, प० क० त०, पंचम खंड, पृ० ३९।

३. शेष तीन पदों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

(१) जय राधे कृष्ण गोविन्द गोपाल
गिरिवरधारी, कुंज बिहारी, ब्रज जीवन नंदलाल
(कृष्णदास प० क० त० पद २८६०)

\+ \+ \+

(२) जय राधा गिरिवरधारी।
नंदन नंदन वृषभानु-दुलारी ॥ (कृष्णदास प० क० त० पद २८६१)
बाँ० सा० इ०, पृ० ३२३।

तथा (३) अंतिम पद 'दीन कृष्णदास' के नाम से है। यह 'दीन कृष्णदास' कोई अन्य कवि हैं, या प्रस्तुत कृष्णदास से अभिन्न हैं, निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। यह पद इस प्रकार है :—

सोङरो नव गौरचन्द्र नागर-बनयारि।
नवद्वीप इन्दु करुणासिंधु भक्त-वत्सलकारी—।
(दीन कृष्णदास प० क० त० १०८५)

२. कृष्णकांत तनया[1]

कृष्णकांत तनया का एक पद मिलता है जो इस प्रकार है :—

नागरि नागर सबगुन-ग्रागर ग्रानन्द सागरे भासि
सुभग-विलोचन भाव-सुलूचन वचनहि रंग-तरंग परकाशि
सखि है किये इह ग्रपरूप रंग।
चाहनि भाग्रोनि ग्रंग मोड़ायनि गाग्रोनि एकहि संग॥
श्यामर काय ग्रचाहे हिलायत बात घटित वन-माल
चम्पक-गौरि सुग्रंग सुकम्पई ता सगे जैसन बिजुरिक जाल॥
चरनक भाल विशाल मिशाग्रोत शोभा वरनि न होय।
ए कृष्णकांत नितांत निधारल निशिदिशि ग्रन्तर जागि रहूउय॥
(प० क० त० २८८६)

३. परमानंद[2]

परमानंद के छः पद ब्रजभाषा के मिलते हैं,[3] जिनमें से एक इस प्रकार है:—

---

१. हि० बु० लि०, पृ० ३७५।

२. परमानन्द कई हैं, किन्तु यहाँ जिनके पद दिये गये हैं उनका उल्लेख 'चैतन्य-चरितामृत' में परमानंद सेन या दास के नाम से मिलता है।

प० क० त० पं० खं०, पृ० १४५। बाँ० सा० इ०, प्र० खं०, पृ० २३८।

इन परमानन्द के सम्बन्ध में डा० सेन ने पृ० ३७६ पर जो पाद टिप्पणी दी है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इनके सम्बन्ध में इन्हें भ्रम रहा। उसी भ्रम में इन्होंने इसी ग्रंथ के पृष्ठ ६१ पर इन्हें परमानन्द कवि कर्णपूर मान लिया। इनकी ६ ब्रजबुलि कविताग्रों का उल्लेख पृ० ६२ पर उन्होंने किया है। पृ० ३७६ पर इनका ग्रत्यन्त जोरदार कथन यह है कि 'कर्णपूर' ने देशी भाषा में कुछ भी नहीं लिखा ग्रौर इन्होंने ग्रपनी रचनाग्रों में कभी 'परमानंद' का उपयोग ही नहीं किया। ग्रतः इसके बाद उल्लेख को ग्रधिक प्रामाणिक मानना होगा। ग्रतः ये परमानन्द १५२७ वाले कर्णपूर परमानंद नहीं। न ये वल्लभाचार्य जी की ग्रष्टछाप वाले परमानंद हैं। डॉ० सेन के ग्रनुसार ये वे परमानंद भट्टाचार्य हैं जो रूप गोस्वामी के शिष्य थे ग्रौर वृन्दावन में रहते थे। एक परमानंद गुप्त का भी संकेत चैतन्यदेव के ग्रनुयायियों में मिलता है। संभावना है कि इन्होंने भी कुछ ब्रजबुलि पद रचे। परमानंद के, यहाँ जो पद दिये जा रहे हैं वे किसी एक ही परमानन्द के हैं, यह ऐसी स्थिति में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

आजु बनि नव अभिषेक गोविन्द की।
परमानन्द प्रेम-सुख-कन्दकि ॥
झलकत नील-नलिनि मुख-शोहा।
हेरइते अखिल भुवन-मन-मोहा ॥
गोरस दधि घृत हलदिक नीरे।
गागरि भरि भरि ठारइ शिरे ॥
बाजत घंटा ताल मृदंग।
जय देइ सुर नारीगण रंग ॥
बलि बलि जातहि चरणारविन्द।
परमानन्द के पहुँ श्रीगोविन्द ॥

(परमानन्द, प० क० त० पद १५८५)

४. रघुनाथदास[1] (१५०६–१५८२)

रघुनाथदास का ब्रजभाषा का एक पद मिलता है। इनके दो पद और भी हैं पर वे ब्रजबुलि में हैं। ब्रजभाषा का एक पद इस प्रकार है[2] :—

हरत सकल संताप जनम को, मिटत तलप यम कालिकि।
आरति किये मदनगोपालकि ॥
गोघृत रचित कपूरकि बाति झलकत कांचन थारकि।
घंटा ताल मृदंग झाँझरि बाजत वेणु विषाणकि ॥
चन्द्र-कोटि ज्योति भानु-कोटि छवि मुख शोभा नंदलालकि।
मयुर-मुकुट पिताम्बर शोहे उरे वैजयंती मालकि ॥
चरण कमल पर नपुर बाजेरि कुसुम गुलाबकि।
सुन्दर लोल कपोलक चबिसों निरखत मदनगोपालकि ॥

---

१. इनके नाम के शेष दो उपलब्ध पदों के आरम्भिक चरण नीचे दिये जाते हैं:—

(१) आरति युगल किशोरि की कीजे
तन मन धनहुँ निछावरि दीजे।—(प० क० त० पद २८५८)

(२) आरति जय वृषभानु कुमारि।
झलकत मुख-शोभा उजियारी ॥ (प० क० त० पद २८७१)

२. प० क० त० प्र० खं०, पृ० १६७। हि० बु० लि०, पृ० ४२।

३. 'ब्रजबुलि' के दो पदों का संकेत यहाँ दिया जाता है।

जय जय श्रीजयदेव दयामय पदमावति-रति कांत।
राधा-माधव-प्रेम भकति-रस उज्जल मुरति नितांत ॥ (प०क०त० पद २३८७)

+ + +

चन्द्र वदनि धनि······················आदि (प० क० त० पद २४६७)

सुर-नर-मुनिगण करतहि आरति भक्त-वत्सल-प्रतिपालकि ।
हुं बलि बलि रघुनाथदास प्रभु मोहन गोकुल बालकि ॥
(रघुनाथदास प० क० त० पद २८६१)

५. रामाराय

रामाराय का एक पद २८४४ संख्यक पदकल्पतरु में मिलता है ।

६. राधावल्लभदास के विषय में[1] मतभेद है ।

राधावल्लभदास का एक ब्रजभाषा का पद[2] मिलता है ।

७. शिवराम[3]

शिवराम ने अनेक पद ब्रजबुलि में लिखे हैं, जिनमें ब्रजभाषा का पुट भी है ।[4] शिवराम का एक पद ब्रजभाषा का इस प्रकार है :—

नओल नओल नओ रंग में । सुख शोहानि सब संगमें ॥
रस माधुरि धरु अंग में । दउ नृत्यत प्रेम तरंग में ॥
उह संगे भामिनि दमके दामिनि । मधुर यामिनि अति बनि ॥
सुभग शाङन बरिखे भाङन । बुन्द सुन्दर नहिन नहनि ॥
बदत मोर चकोर चातक । कीर कोकिल अनगनि ॥
रटत दरदर तोये दादुर । अम्बुदाम्बरे गरजनि ॥
गाओये सखि रि जोरि जोरि । रसहेरि हाइस थोरि थोरि ॥
थोरि थोरि चंग उपांग आओज । बाजे पाखायज झि झि झिना ॥
झनन झन नन झग् ना झागर नन नाग्रधि नागरधि दिमि दिनां ॥
उह दृष्टि ठेरण पहिर भूषण, झलके झाइरि झलमलम् ॥
उघट घट घट थो दिग् दिग् थो दिग् दिग् दिग् ।
थुंग थुंग निधि धि धि नंग ।
बाजे दृं दृं घीना । स्वर मण्डल बांशरि बीना ॥
वर वीन ताल प्रवीण पूरल, प्रेम भरे हिया हरखनि ।
मनि बिन्दु शरद-इन्दू । करत अमृत बरखनि ॥
हंस सारस बदत पावस चारु चातक रस-धनि
विहरे जे जन शिवराम के प्रभु परम सुघड़ शिरोमणि ॥
(शिवराम प० क० त० पद १५५७)

---

१. देखिये—प० क० त०, पं० खं०, पृ० २००
तथा—हि० ब्र० लि०, पृ० १६६ । बाँ० सा० इ०, पृ० ४४१ ।
२. गो० प० त० ६।३।३७
३. हि० ब्रि० लि०, पृ० १८७ तथा बाँ० सा० इ०, पृ० खं०, पृ० ४४४ ।
४. देखिये—प० क० त०, पं० खं०, भू०, पृ० २१२ ।

७. नृप-रघुनाथ या रघुनाथ राय[1]

नृप रघुनाथ का एक हिन्दी का पद अप्रकाशित-पद-रत्नावली में मिलता है, यह इस प्रकार हैं :—

अतिहुं उनींदे शोभत अलसानि, सखि जागाओने आइ हो विहाने।
उलटि वेशर लटन पटानि, मोहन हार टूटि छितरानी॥
शिखहि अलका शिथिल करि डोरि, कनक लता गई पओने झकोरि।
आलि उठायत मुचकानि थोरि, उठहन झलके रुचन हारि।
हेरि शशिमुखी उठलि लजानि, नृप रघुनाथ के मनहि समानि।
(४४६ सा० प० २०१ पुथि १४१)

८. रोहिनीनन्दनदास

रोहिनीनन्दनदास का एक पद ब्रजभाषा का मिलता है :—

भज मन राधे राधे कृष्ण गोबिन्द। जा को नामहि मुक्ति भव बन्ध
ए शुक शंकर सनक सनातन आन्त नाहि पाओये अनत
जाको नामहि त्रिभुवन समाना अहर्निश पाओये जनउ।
चाको नामहि नरवर मुनि जन करत धेयान।
जाको नाम रटत नारद सदा भुवन फिरत कर गान॥
वेदहि जाको जाको यश गाओत करतहि नामकि आश
जाको नामहि पातिजन वंचित रोहिनी नन्दन दास॥

९. अकबरशाह

अकबरशाह का ब्रजभाषा का एक पद इस प्रकार है :—

जीओ जीओ मेरे मनचोरा गोरा।
आपहि नाचत आपन रस मोरा॥
खोल करताल बाजे झिकि झिकि झिकिया।
मपत आनन्दे नाचे लिकि लिकी लिकिया।
पद दुई चारि चलू नटखट नटिया।
फिर नाहिं होयत आनन्दे मातुलिया।
ऐछन पहुँके जाहु बलिहारि। शाह अकबर तेरे प्रेम भिखारी॥
(गो० प० त० ४।२।२६)

---

१. देखिये—अप्रकाशित पद रत्नावली की भूमिका तथा हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटेचर।

१०. घनश्यामदास[1]

घनश्यामदास का ब्रजबुलि और ब्रजभाषा मिश्रित पद इस प्रकार है :—

को कहे अपरूप प्रेमसुधा निधि, कोई कहत रस गेह।
कोई कहत इह सोई कल्पतरु, मझु मने सन्देह।।
पेखलू गोरचन्द अनुपाम । जाचक जाक मूल नाहिं त्रिभुवने।
ऐछे रतन हरि नाम जो एक सिन्धु बिन्दु नाहिं जाचत।
परवस जलधि सचार, मानस अवधि बहुत कल्पतरु।
को कछु करुना अपार, जछू चरितामृत श्रुति पथे संचरू।
हृदय सरोवर पुर उमड़ई नयन अधम मरु भूमहि।
होयत पुलक अंकुर, नामहि जाक ताप सब मेटय।
ताहे कि चाँद उपाम, मन घनश्याम दास नाहि होयत।
कोटि कोटि एकु ठाम।

(गो० प० त० ३।१।३०)

इस प्रकार अनेक हिन्दी के पद बंगाली-वैष्णवों द्वारा विरचित हैं। आगे के प्रकरण में बंगाली पदों के साथ-साथ हिन्दी का कितना प्रभाव है, अर्थात् कवि-विशेषगत और ग्रंथ-विशेषगत हिन्दी के प्रभाव का दिक्दर्शन है।

३. कुछ विशेष बंगाली गौड़ीय-वैष्णव पदकर्ता और उन पर हिन्दी प्रभाव

अन्य सुप्रसिद्ध बंगाली-गौड़ीय वैष्णव पदकारों पर भी हिन्दी प्रभाव पड़ा है। कई विशेष कवियों चैतन्य चरितामृत के लेखक कृष्णदास कविराज, गोविन्ददास कविराज और नरहरि चक्रवर्ती आदि पर यह गंभीर प्रभाव स्पष्ट है। बँगला गौड़ीय वैष्णव पदावलियों में भी हिन्दी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अतः इनके विषय में कुछ प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है :—

१. कृष्णदास कविराज (१४९७-१५८३ ई०)

कृष्णदास कविराज चैतन्य-चरितकारों में सर्वश्रेष्ठ हैं। कृष्णदास कविराज, द्वारा विरचित श्रीचैतन्यचरितामृत में हिन्दी प्रभाव के थोड़े उदाहरण मिल सकते हैं, इसका कारण यह है कि इस ग्रन्थ की रचना वृन्दावन में हुई थी। अतः कुछ हिन्दी प्रयोग अनायास ही इसमें आ गये हैं। कुछ हिन्दी सर्वनामों और किंचित क्रिया रूपों में ग्रन्थ का कलेवर कहीं-कहीं कुछ-कुछ बदल गया है।

चैतन्य चरितामृत में हिन्दी प्रभाव के सम्बन्ध में बँगला साहित्य के सुप्रसिद्ध इतिहासकारों के मत द्रष्टव्य हैं। डा० दीनेशचन्द्र सेन लिखते हैं कि वैष्णव समाज की कथित—बँगला भाषा उस समय वृन्दावनी भाषा से मिश्रित हो गयी थी, सुतराम्

१. देखिये—प० क० त० पं० खं० भू० पृ० ८४-८८
तथा बाँ० स० इ०, प्र० ख०, पृ० ४०४-४०५।

जो लोग मुख से जो बोलते थे, लेखनी से भी वही लिखते थे। चैतन्य-चरितामृत ही इस स्थान पर द्रष्टान्त है। दीर्घ काल से वृन्दावन में रहने के कारण कविराज गोस्वामी की बँगला वृन्दावनी (ब्रजभाषा) द्वारा इसी तरह आवृत हो गई थी[1]।

डा० सुकुमार सेन लिखते हैं, 'दीर्घकाल ब्रजवास के कारण कविराज की कलम से कुछ हिन्दी शब्द और प्रयोग आ गये हैं[2]।' वास्तव में चैतन्य-चरितामृत में हिन्दी के कुछ शब्दों, सर्वनामों, विशेषणों एवं क्रिया रूपों का समावेश हुआ है। केवल कुछ हिन्दी शब्द ही हैं, जो बँगला पदों को हिन्दी का शरीर प्रदान कर देते हैं, उदाहरण स्वरूप कुछ शब्दों और क्रिया रूपों की बानगी इस प्रकार है[3] :--

जैछे, तैछे, जाहाँ, तांहा, ऐछे, कैछे, तैछे, जाहांके, काहाँ, जाहाँ, जाहाँ, करो, धरौं, सेवौं इत्यादि—

---

१. वैष्णव समाजेर कथित बाँगाला तखन वृन्दावनी—भाषा-मिश्रित हइयाछिल सुतराम् ताँहारा मुखे जाहा वलितेन, लेखनीते ओ ताहाई व्यवहार करियाछेन। चैतन्य चरितामृत ए सम्बन्धे दृष्टान्त स्थलीय। दीर्घकाल वृन्दावने थाकाते कविराज गोस्वामीर बाँगला वृन्दावनी द्वारा एरूप आवृत हइयाछिल।

(बँ० भा० सा०, प्र० ख०, पृ० ३९२)

२. दीर्घकाल ब्रजवास हेतु कविराजेर कलमेर मुखे कुचित दुइ एकटी हिन्दी शब्द वा प्रयोग आसिया गियाछे जेमन 'नाहि काँहाँ सो विरोध नाहि काँहाँ अनुरोध।

(बाँ० सा०, इ०, प्र० खं०, पृ० २५१)।

३. (१) अनंत स्फटिक यैसे एक सूर्य भासे।
तैछे जीवे गोविंदेर अंश प्रकाशे॥

(आदिलीला, द्वितीय परिच्छद १३, पृ० ११२)

(२) काहाँ करों, काहां पाङ ब्रजेन्द्रनंदन।
काहां मोर प्राणनाथ मुरली वदन।

(मध्यलीला, प्रथम खंड, दूसरा परिच्छेद १४, पृ० ४९)

(३) कहं ताहां कैछे रहे रूप सनातन?
कैछे रहे वैराग्य कैछे वा भोजन?

(मध्यलीला, परिच्छेद १९,११३, पृ० ७७४)

(४) हा हा सखि कि करि उपाय,
काहाँ मरौं काहाँ जाओं काहाँ गेल कृष्ण पाओं।
कृष्ण बिनु प्राण मोर जाय॥ (मध्य लीला)

२. गोविन्ददास कविराज (१५३५–१६१३ ई०)

गोविंददास नाम के तीन-वैष्णव-पदकर्त्ता हैं[1], किन्तु हमारे अभीष्ट गोविन्ददास के जीवन-वृत्त के विषय में बड़ा विवाद है। मैथिल-विद्वान इनको मैथिली कवि मानते है[2], बँगाली विद्वानों में एक सज्जन को छोड़कर सब गोविंददास-कविराज को बंगाली कवि मानते है[3]। किन्तु इस ऊहापोह में पड़ना अनावश्यक एवं अप्रासंगिक है, किन्तु अंत में, यह कहा जा सकता है, कि भाषा ही कवि की परिचायक है, गोविन्ददास कविराज की ब्रजबुलि भाषा बंगला की अपेक्षा हिन्दी या मैथिली के अधिक पास है, इस तथ्य को बंगाली-विद्वान[4] भी स्वीकार करते हैं। डॉ० सुकुमार सेन महोदय का मत है कि गोविंददास कविराज बंगाली कवि होते हुए भी बँगला भाषा में उन्होंने कविता नहीं की है[5]। यह स्पष्ट है कि गोविन्ददास कविराज विद्यापति की काव्य-परम्परा के अनुयायी हैं। वे स्वयं लिखते हैं :—

विद्यापति पद-युगल-सरोरुह-निष्यन्दित-मकरंद।
तछु भजहु मनसा मातल मधुकर, पिबत करू अनुबंध ॥

डा० सुकुमार सेन महोदय फिर लिखते हैं, "इस विषय में मैथिल कवि विद्यापति का कविराज के साथ बहुत मेल है। प्रधानतः गोविन्ददास कविराज की

---

१. गोविन्द चक्रवर्ती, गोविन्ददास, गोविंददास कविराज।
२. हि० मै० लि० प्रथम भाग, पृ० २३४।
३. देखिये—नगेन्द्रनाथ गुप्त इनको मैथिली कवि मानते हैं, बँ० सा० प०, पृ० १३३५ बंगाब्द।
श्री सतीशचन्द्र राय एम० ए०, डा० दीनेशचन्द्र सेन, डॉ० सुकुमार सेन इनको बंगाली कवि मानते है, क्रमश :—
श्री सतीशचन्द्र राय एम० ए०—प० क० त० पं० खं० भू०, पृ० ५९—८१।
डॉ० दीनेशचन्द्र सेन बं० भा० सा० पृ० ३००, हि०बं०ला० लि०, पृ० ४६४।
डॉ० सुकुमार सेन बं० सा० प० प० १३३६ बं०, हि० ब्र० लि०, पृ० १०५, बॉ० सा० इ० प्र० खं० पृ० ३२४—३३०।
४. वि० सा०, प्र० भा० पृ० १३८—२०० तथा डा० सुकुमार सेन उनके २७, गोआ बागान लेन कलकत्ता के निवास स्थान पर वार्तालाप के प्रसंग में उन्होंने गोविन्ददास की भाषा को हिन्दी के अधिक पास माना है, श्री विष्णुपद भट्टाचार्य ने भी नेशनल लायब्रेरी में वार्तालाप के प्रसंग में गोविन्ददास की कविता को हिन्दी के अधिक निकट माना है।
५. हि० बु० लि० पृ० १०५, बां० सा० इ० प्र० ० खं० पृ० ३२६। वि० सा० पृ० १३८—२००।

गोविन्ददास कविराज ब्रजबुलि के अन्यतम कवि हैं, उनके लगभग ४५० पद पदकल्पतरु में संगृहीत है, उन्होंने विद्यापति की काव्य-शैली का अनुकरण भाव एवं भाषा दोनों रूपों में किया है। वास्तव में गोविन्ददास के विषय में तटस्थ एवं स्वतंत्र अनुसंधान की आवश्यकता है। बंगाली कवि होते हुए भी इनकी भाषा हिन्दी या मैथिली से अधिक मिलती जुलती है। इनकी ब्रजबुलि कविता और अन्य पदकर्ताओं की ब्रजबुलि कविता में आकाश-पाताल का अंतर है। अन्य पदकर्ता अपनी ब्रजबुलि कविता में बँगला शब्द, क्रिया एवं कारकों का समावेश करते हैं किन्तु गोविन्द कविराज के पदों से स्पष्ट है कि उनकी भाषा कुछ हिन्दी अथवा मैथिली के समरूप है। कुछ पदों के नमूने इस तथ्य की सत्यता को सिद्ध कर देते हैं—

कांचा कांचन—कांति—कमल-मुखि कुसुमित कानन जोइ।
कुंज—कुटीरे कलावति कातर कान करि रोइ॥
कि कहब कितव कतये-कुल-कामिनि कठिन कुसुम-शर सहई।
करहि कपोल कंठ करि कुंचित कालिंदि-कूलमें रहई॥
कर-केयूर कटि-किंकिणि कंकण काढ़ल कंठकि माला।
को जाने-कुच-तट कौन कामायल कांजरे कालिम हारा।
केवल कांत-कथा कहि कांदये काम-कलंकिनि गोरि।
किंचित काल कलय करि मानये गोविंददास पहुँ छोड़ि॥

(प० क० त० पद १८८६)

कविराज के कई पदों में इस प्रकार अनुप्रास की छटा है। एक और उदाहरण देते हैं:—

मुखरित मुरलि-मिलित मुख-मोदने मरकत-मुकुर मेलान।
मानिनि-मान-मथन मुचुकायनि मुनि-मान मुरछान॥
माइ मोहन-मूरति मुरारि, मनइते मरये मनोरथ
माधुरि मनमथ—मनमथ मारि।
मुकुलित मल्लि मधुर मधु-माधुरि मालति—मंजुल-माल।
मंद—मरंद—मुदित—मत्तमधुकर मंडित—मौलि--मंदार॥
माथहि मोर—मुकुट मद-मंथर मणिमंडित मन मान।
मंजु मंजीर—महिम महिमामय गोविंददास गुनगान॥

(प० क० त० पद २४२६)

---

१. "एइ विषये मैथिल कवि विद्यापतिर सहित कविराजेर अनेकटो मेल देखाय जाय। कविराजेर काव्य-प्रेरणा आसियाछिल प्रधानत विद्यापतिर कविता-हइत-(बाँ० सा० इ०, प्र० खं०, पृ० ३२६)।

मैथिल-साहित्य के इतिहासकार निम्नलिखित पद को अपनी भाषा का मानते हैं :—

मैथिली पाठ :—

जहँ पहु अरुण चरण चल जात, तहँ तहँ धरणि होअग्रो मोर गात।
जे दरपण पहुँ निज मुख चाह, मोर अंग सलिल होअग्रो तसुमाँह ॥
जे सरोवर पिय नितनित नाह, मोर अंग सलिल होअग्रो तसुमाँह।
जे बीजन पहुँ बिजइत गात, मोर अंगताहि होअग्रा मृदु बात ॥
जे पहुँ मरमय जलधर श्याम, मोर अंग गगन होअग्रो तसु ठाम।
गोविंददास कह काँचन गोरि, से मरकट तनु तोहि कि छोड़ि ॥

(हि० मैं० लि०, फ० वा०, पृ० २३८)

गौड़ीय-वैष्णव-पदावली के वेद कल्प पदकल्पतरु ग्रन्थ में यह पद इस प्रकार है :—

बंगला पाठ—

जाहाँ पहु अरुन चरणे चलि जात, ताहा ताहा धरनी हइ मझुगात ॥
जो सरोवरे पहु निति निति नाह, हाम भरि सलिल होइ तथिमाह।
जे ए सखी विरह मरन निद्वन्द्व, एछे मिलायब गोकुल चंद ॥
जो दरपने पहु निज मुख चाहा, मझु अंग ज्योति होइ तथि माह ॥
जो बीजने पहु बीजइ गात, मझु अंग ताहे होइ मृदु बात ॥
जाहाँ प्रभु भरमइ जलवर श्याम, मझु अंग गगन हौ तछू ठाम।
गोविन्ददास कह कांचन गोरि, सो मरकत तनु तोहे कि छोड़ि ॥

(प० क० त० पद १९५३)

गोविंददास कविराज के अधिकतर पद हिन्दी पदों में सरलता से आत्मसात हो सकते हैं। अतः कविराज पर गंभीर हिन्दी प्रभाव माना जा सकता है।

३. नरहरिदास चक्रवर्ती[1] (सतरहवीं शताब्दी)

नरहरिदास चक्रवर्ती को यदि 'उभय-भाषा-कवि' कहें तो कोई अत्युक्ति नही होगी। नरहरिदास चक्रवर्ती बंगला के कवि होते हुए भी हिन्दी के बड़े कवि हैं। श्री सतीशचन्द्र राय एम० ए० लिखते हैं ''घनश्याम नरहरि के संबंध में यह स्वाभाविक तथ्य है कि उनके ब्रजबुलि के पद अधिकांश स्थलों पर ब्रजमण्डल की विशुद्ध ब्रजभाषा में रचित हैं। उन्होंने वृन्दावनवास काल में प्रतीत होता है, विशेष यत्न के साथ ब्रजभाषा की शिक्षा प्राप्त की, तब ही हम उनकी रचना में अनेक स्थलों पर तथाकथित ब्रजबुलि तथा मैथिल-

१. बाँ० सा० इ०, प्र० खं० ६५६।
हि० बु० लि०, पृ० २७७।

ब्रजभाषा मिश्रित कृत्रिम भाषा के परिवर्त में तत्सम् शब्द-बहुल ब्रजभाषा का व्यवहार देखते है। हिन्दी-भाषा की प्रादेशिक-विभाषाओं में ब्रजमण्डल की भाषा सर्वाधिक सुमधुर कही जाने पर समस्त हिन्दुस्तान में स्वीकृत हुई हैं। इस भाषा के सहित स्वल्प परिचित बंगाली के निकट, यह अनेक स्थलों पर जटिल और मिश्रित विरचित हो जाये तो यह आश्चर्य का विषय नहीं है। हमारी विवेचना में नरहरि चक्रवर्ती की यह इस श्रेणी का पद-समुदाय ब्रजभाषा के अभिज्ञाता अथवा जानकर पाठकों की अप्रीति-जनक न होकर, वरन् उनकी विशेष प्रीतिजनक ही होगी[1]। नरहरि चक्रवर्ती संगीत शास्त्र के अच्छे ज्ञाता हैं, जहाँ कहीं संगीत-शास्त्र का वर्णन आता है, तब उनकी लेखनी हिन्दी उगलने लगती है। अंत में हम यों कह सकते हैं, कि सब पदकर्ताओं में हिन्दी का सर्वाधिक प्रभाव नरहरिदास चक्रवर्ती पर है, उनकी भक्तिरत्नाकर, गीतचन्द्रोदय और गौरचरित चिंतामनि हिन्दी से ओत-प्रोत हैं। इस प्रसंग में उपर्युक्त ग्रन्थों में हिन्दी प्रभाव का कुछ सोदाहरण विवेचन आवश्यक है। भक्तिरत्नाकर बंगला साहित्य और संगीत शास्त्र का अनुपम भण्डार है। बंगला एवं ब्रजबुलि के साथ-साथ हिन्दी का अत्यधिक प्रभाव इस ग्रंथ-रत्न में है। पहले कहा जा चुका है, कि यह ग्रंथ तरह-तरह की कविताओं का भाण्डार है। संगीत-शास्त्र की दृष्टि से यह ग्रंथ एक पथप्रदर्शक है। जहाँ संगीत का वर्णन कवि करता है, वहाँ हिन्दी पर्वत के निर्झर के समान स्वतः ही बहने लगती है। यदि यह कहें तो कोई बड़ी बात नही है कि इस ग्रंथ में संगीत-शास्त्र और हिन्दी का चोली-दामन का साथ है। कुछ उदाहरणों से इस तथ्य की सत्यता प्रकट करते हैं:—

---

१. घनश्याम नरहरि सम्बन्धे ओइहाइ प्रकृत तथ्य वटे। ताँहार ब्रजबुलीर, पद अधिकांश स्थलेइ ब्रज-मण्डलैर खाँटि ब्रजभाषाय रचित। तिनि वृन्दावने वास कराकाले बोद्दहय विशेष यत्न-सहकारे ब्रजभाषा शिक्षा करियाछिलेन, ताइ आमरा ताँहार रचना अनेक स्थलेई तथा कथित ब्रजबुलीर वा मैथिल-ब्रजभाषा मिश्रित कृत्रिमय भाषाकार परिवर्तें (तत्सम्) शब्द बहुत ब्रज-भाषार व्यवहार देखिते पाई। हिन्दी भाषार प्रादेशिक रूपान्तर गुलिर (Dialects) मध्ये ब्रजमण्डल भाषा सर्ववापेक्षा सुमधुर वलिया समस्त हिन्दुस्ताने स्वीकृत हइलेओ, एईभाषार सहित एवल्प-परिचित बांगालीर निकट उहा जे अनेक स्थलेइ जटिल ओ खटमट विवेचित हइवे, इहाते आश्चयेर विषय नाई। आमादेर विवेचनाय नरहरि चक्रवर्ती एइ श्रेणीर पदगुलि ब्रज-भाषा अभिज्ञ पाठकदिगेर अप्रीतिजनक ना हइया, वरन् ताँहादेर विशेष प्रीति जनकई हइवे।

(प० क० त० पं० खं० भू०, पृ० १३७)

सुरधनी तीर, परम निरमल थल, तहि उलसत सब भकत उदार।
गायत कत कत, गीत अमिय मय, बाजत वाद्यय विविध परकार ॥
नाचत गुनिमनि गौर किशोर।
चन्दन चरचित, रुचिर अंग अति, अपरूप, रमनि मनचोर।
अमल कमल दल, लोचन डगमग, भाव भंग नव अलक विलास।
शरद निशाकर, निकर निंद मख, कोटि मदन भट हास ॥
चंचल ललित, विलास वक्षपरि, झलकत जिनि भामिनि मणिहार।
नरहरि पहुँ पग धरत ताल जब तब कि मधुर रव, नुपुर झनकार।
(भ० र० पृ० ८६१)

नरहरिदास की ब्रजबुलि-कविता हिन्दी से अत्यधिक प्रभावित है—जैसे,
सुरधनी-तीर, तरुन तरु वल्लरी, पल्लव नव नव कुसुम विकाश,
परिल मुगध, मधुप कुल कूजत कोकिल कीर फिरत चहुँ पाश
नाचत तहिं नट, गौर किशोर। केशर मृग मद,चंदन चरचित,
फागु अरुन तनु अधिक उजोर ॥
निरुपम वेश,वसन मनि भूषन झलकत चारु चपल वनमाल।
अभिनव भंगि, भुवन मन मोहन, घन घन धरत चरन तले ताल ॥
गायत परम, मधुर परिकर-गन, निरखि वदन शशि उलस अभंग।
सुरगने गगने, मगन, मन जय जय, बाजत नरहरि मधुर मृदंग ॥
(भ० र० पृ० ८६२)

भक्ति रत्नाकर संगीत-शास्त्र के लिये एक प्रामाणिक-ग्रन्थ है। संगीत का जहाँ कहीं वर्णन आता है, वहाँ कवि की लेखनी से संगीत की स्वर लहरी का शरीर हिन्दी का ही होता है। उदाहरण देना प्रासंगिक ही होगा :—

जय जनरंजन कंज नयन धन अंजन मित्र नव नागर ऐ ऐ।
गोकुल कुलजा कुलवति मोचत चन्द वदन गुन सागर ऐ ऐ ॥
नन्द तनुज ब्रजभूषण रसमय मंजुल भुज मुद वर्द्धन ऐ ऐ।
गीत निपुन निधुवन नय नन्दित निरुपम ताण्डव पंडित ऐ ऐ ॥
भू तनयी पुलिनांगन परिसर समनी निकर मनिमंडित ऐ ऐ।
बंशीधर धरनीधर कृत वन्धुर अधरारुन सुन्दर ऐ ऐ।
कृष्ण केलि कलहैक धुरंधर धा धा धि धि तग धेन्मा ऐ ऐ।
स स्वरि गरि नरहरि नाथ ए ई अ इति अई अई अतेन्मा ऐ ऐ।
(भ० र०, पृ० ३७२)

भक्ति रत्नाकर ग्रंथ में लगभग १०० ऐसे पद हैं जिनमें बँगला और ब्रजबुलि के साथ हिन्दी का मिश्रण है, ये सरलता से बँगला साहित्य की निधि के साथ हिन्दी-

साहित्य की संपत्ति भी कहे जा सकते हैं। भक्ति रत्नाकर के अतिरिक्त गौरचरित चितामनि और गीतचन्द्रोदय नामक चरितकाव्यों एवं पदसंग्रहों पर भी हिन्दी का प्रचुर प्रभाव है। जैसे—

यथा राग

को बरनब बर गोर सरस उत्तान शयन शोभा सुखकारी,
झलकत अंग सुललित ललित थिर दामिनी पुंज पुंज मदहारी॥
शरद सुधाकर—निकर विनिर्जित युवति विजय
श्रुति अति विमल गण्ड मण्डित नव कुण्डल अतुल जटित मणि मोती॥
बिम्ब अरुन कर कदन वदन छद किंचित मिलन रुचिर रुचिपुर।
विकसित दन्त किरनसित सुन्दर तारक वृन्द कुन्द रहू दूर॥
प्रसर रक्ष परिहार प्रचुर तहि कर करयुक्त लसत अनिवार।
नरहरि मन अनुभव न होत बुझि मानिनी निकट करत परिहार॥

(गो० च० चि० पृ० ३?)

गोरचरित चिन्तामणि में अनेक पद ऐसे हैं, जिनको हिन्दी पद कहे जा सकते हैं। जैसे—

ललित राग

लसत परिकर मध्य गोर किशोर निरुपम साज।
दलित-कुंकुम कनक चम्पक-पुंज जिनि रुचिराज॥
चारु-चाँचर चिकुर चमकत चिकन काजर-कांति।
वदन-मण्डल विमल झलकत दन्त मौतिम पाँति॥
नेत्र कमल विशाल भुरु श्रुति नासिका मृदु गण्ड।
सिंह ग्रीव नव-भंगि निरुपम मजुतम भुज दण्ड॥
वक्ष परिसर खीन कटियुग जानु मुनिमन चोर।
दास नरहरि—पहुँक पद नख भुवन उजोर॥

(गो० च० चि०, प० १४३)

गीत चन्द्रोदय

गीत चन्द्रोदय में भी दिन्दी का प्रभाव है। कुछ उदाहरण देकर स्पष्ट किया जाता है:—

भरि भरि कि नव गोर हरि वरना, अभिनव भंगि मदन मद हरना।
निरुपम अमिय झरई शनि वचने, टलमल जल जल जारुन नयने।
भाव-विभोर धिरज नाहि रहई, गरजि सघने घन हरि हरि करई।

धूसर धूरि धरणि तले लुठई, पवने बेगे पहुँ चहुँदिश छुटई ।
सुरगण-दुलह चरित अनुपाम, एक वदने कि भाव घनश्याम ।।
(गी० च०, पृ० ६३)

गीत चन्द्रोदय में कई पद घनश्याम की भनिता के साथ हैं, कई नरहरिदास की भनिता के साथ हैं, जैसे—

पेखलु परम मुदित सुकुमारी, झलकत अंगकिरण रुचिकारी ।
निरजनै बैठि मुकुर लई हात, मुख अवलोकने अवनत माथ ।
सखी कछु पूछई यतने हसि थोरि, शुनइते लाजे रहई मुख मोड़ि ।
नयने कोने करु रस परकाश, कि कहब नरहरि प्रेम विलास ।
(गी० च० पृ० ६२)

गीत चन्द्रोदय में अनेक ऐसे पद है जिनमें अन्य वैष्णव-पदकर्त्ताओं के पदों का भी समावेश हुआ है और अन्य पदावलियों में नरहरिदास चक्रवर्ती या घनश्यामदास के पदों का मिश्रण हुआ है। गौर-पद-तरंगिनी से एक पद का उदाहरण देना अप्रासंगिक नहीं होगा :—

होत शुभ अधिवास शुभ खने
गगने सुरगन मगन गण सने
परस्पर रहु चरित अनिवार मुव मति गति नयी ।
गौर रसमय रसिक-शेखर सरस आसने विलसे रुचिर ।
कर कनक दरपन दरप-भर-हर मृदुल तनु मनमय जयी ।।
वदन विधु विधु गरव-भंजन हास मृदु मृदु हृदय रंजन
मंजु दिठि-युग-कंज झलकत भाले तिलक सुशोहये ।।

तथा—

भेजग भुजवर-रक्ष परिसर क्षीण कटि प्रति अंग सुरुचिर ।
चिकन चांचर चिकुर निरुपम भुवन जन-मन-मोहये ।।
ऐछे माधुरि हेरि गुनिगन मानि सुकृति उछाह घन-घन ।
विविध राग अलापि गायत, बीण गहि श्रुति सरसये ।
सुघड़ वादक-वृन्द भायत मधुर मृदंग मुजर वायत ।
थोंग थोक्कन झिकिक झाँकिट ठिदठि ठन नन न नाये ।
नटत नर्तक हस्त-अभिनय ललित भंगि विथारि अतिशय ।
वदत तक तक थैत थैतत धा धि लिलि लिलि लललई ।
निरत जय जय शरद भुवि भरु भूरि भूसुर वेद धनि करु ।
बेत उलु लुलु नारि-गण घनश्याम-हिय सुख उथलई ।।
(प० क० त० पं० खं०, भू०, पृ० १३७)

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त अन्य बहुत पदकर्त्ता हैं जिन पर हिन्दी का कुछ-कुछ प्रभाव है, यह ब्रजबुलिगत प्रभाव के शीर्षक के अन्तर्गत अगली-पक्तियों में द्रष्टव्य है। उनमें से रायवसंत[1] के २९६१ से २९२० इत्यादि पद पदकल्पतरु में हिन्दी से प्रभावित ब्रजबुलि के उत्कृष्ट पद हैं, ऐसा प्रतीत होता है, रायवसंत बहुत दिन तक ब्रज प्रदेश में रहे थे। उसी कारण उनके पदों में हिन्दी की झलक है, एक उदाहरण से इसका स्पष्टीकरण हो सकता है :—

नागर नाचत नागरि संग, विविध यंत्र कत शब्द तरंग।
द्रिमि द्रिमि द्रिमि द्रिमि बाजे मृदंग डंफ रबाव बिन मुरलि उपांग॥
वलय नुपुर मणि किंकिण कलने, घुंघरु रुनझुन बाजत भरने।
आनंदे अंग-भंग अवलम्ब, रस भरे गिरत मिल परिरंभ।
कमले मोति किये मुख श्रमवारि, रसिक कलागुरु कहे बलिहारि॥
वहसि विलोकइ दुँहुँचित चोरि, राय वसंत पहुँ रहुहिय जोरि॥

(प० क० त०, पद २९२९)

४. गौड़ीय वैष्णव पदावली (ग्रन्थ) विशेषगत हिन्दी प्रभाव——

कवि विशेषगत प्रभाव के साथ-साथ समस्त ग्रन्थ या पदावलीगत हिन्दी प्रभाव का मूल्यांकन हो सकता है। इसका एक संकेत ही पर्याप्त है। बँगला-वैष्णव पदावली-साहित्य किसी व्यक्ति विशेष की देन या कृतित्व नहीं है। शताब्दियों तक सामान्यतया समस्त बंग प्रदेश एवं विशेषतया गौड़ीय-वैष्णवों का मेघदान इस साहित्य निर्माण में अनुपम है। समस्त ग्रंथों अथवा पदावलियों में या पाण्डु-लिपियों अन्यान्य अप्रकाशित पदावलियों, पदों एवं संकीर्तनों में थोड़ा बहुत छुटपुट रूप में हिन्दी प्रभाव प्राप्त हो सकता है।[2]

: ५ :

४. भाषागत प्रभाव (मिश्रित भाषा-ब्रजबुलि)

संसार की संस्कृतियों, धर्मों और भाषाओं में यह बहुधा देखा जाता है कि दो संस्कृतियों के सम्पर्क से एक संकर-संस्कृति का जन्म होता है। इसी प्रकार दो भाषाओं के सम्पर्क से एक संकर भाषा का भी आविर्भाव हो जाता है। विश्व में ही नहीं किन्तु भारत में भी संकर भाषा की यह परम्परा प्राचीन काल (वैदिक

---

१. देखिए—प० क० त०, प्र० खं०, भू०, पृ० १५८।
तथा —हि० वृ० लि०, पृ० ४२४-२६।
बाँ० सा० इ०, प्र० खं०, पृ० ४४७।

२. देखिये—पदावलियों के परिचय के लिए प्रस्तुत प्रबन्ध में प्रथम अध्याय, पृ० ३०।

काल) से ही चली आ रही है। गाथा या बौद्ध संस्कृत इसका अच्छा उदाहरण है। आधुनिक भारतीय-आर्य भाषाओं की पूर्ववर्ती अपभ्रंश भाषा और साहित्य भी इसका अच्छा दृष्टांत है। इसी तरह शौरसैनी अपभ्रंश की भाषायी-परम्परा ब्रजबुलि के रूप में दृष्टिगोचर होती है।

ब्रजबोली (ब्रजबुलि) पर हिन्दी-प्रभाव का दिग्दर्शन कराने के पहले उसके उद्भव और विकास पर कुछ प्रकाश डालना प्रासंगिक है। ब्रजबुलि के नाम-करण के विषय में विद्वानों में मतभेद है, डॉ० दीनेशचन्द्र सेन इसको वृज्जियों की भाषा मानकर इसका नाम ब्रजबुलि करते है[1]।

डा० सुनीतिकुमार चटर्जी इसको इसलिये ब्रजबुलि मानते हैं कि इसमें ब्रज-भूमि में अवतरित होने वाले राधा-कृष्ण की पवित्र लीला का वर्णन है[2]। ब्रजबुलि नाम का उल्लेख सर्वप्रथम ईश्वरचन्द्र गुप्त के लेखों से मानते हैं[3]। किन्तु डा० चटर्जी का दृष्टिकोण ही हमें ठीक जंचता है। ब्रजबुलि इसको इसलिये कहा जाता है, ब्रज + बोली—अर्थात् ब्रज की बोली, किन्तु ब्रजबोली का शाब्दिक अर्थ है, ब्रजभाषा। ब्रजभाषा और ब्रजबुलि एक भाषा नहीं है। ब्रजभाषा शताब्दियों से एक स्थान विशेष की भाषा होते हुए भी किसी समय उसका ऐतिहासिक महत्त्व रहा है। वह साहित्यिक भाषा एवं बोलचाल के रूपों में भी प्रचलित रही है। अब भी है, किन्तु ब्रजबुलि साहित्यिक भाषा तो रही है, संभवतः वह कभी बोलचाल की भाषा रही हो, यह निश्चयपूर्वक नहीं नहीं कहा जा सकता है। ब्रजबुलि इसको इसलिये कहा जाता होगा कि भगवान कृष्ण एवं राधा की प्रेम-लीला का स्थान ब्रजमण्डल ही रहा है। पहले कहा जा चुका है कि बंगाली वैष्णवों का सम्पर्क भी ब्रजभूमि के साथ गंभीर रहा है। अतः यह एक भावनात्मक एवं श्रद्धा या आदरसूचक दृष्टिकोण है। चैतन्य महाप्रभु एवं बंगाली वैष्णवों के आराध्यदेव तथा इष्टदेव भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रहे हैं। अतः कृष्ण लीलागान के कारण इसका नामकरण ब्रजबुलि हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है। पहले लिखा जा चुका है कि ब्रजबुलि का जन्म विद्या-पति ठाकुर की कोमल-कांत पदावली के आधार एवं अनुकरण पर हुआ है। जैसा कि डा० सुकुमार सेन का मत हैं, ब्रजबुलि में मैथिली मूलाधार है, हिन्दी और ब्रजभाषा के मिश्रण से तत्कालीन बँगला ने इसका ढाँचा प्रस्तुत किया है[4]। (ब्रजबुलि एक

१. बं० भा० सा०, पृ० २२६।

२. ओ० डी० बी० ऐल०। बं०, भा०, भू०, पृ० १३१।

३. भा० सा० पृ० ७२, ब्रजबोली की कहानी (डा० सेन) जनवरी १९५६ प्रथम अंक।

४. "Maithili is the basic part, while Bengali, with oddments of Hindi and Brajabhaka forms the Super structure"
—A History of Brijbuli literature: Page 1.

मिश्रित भाषा है, मैथिली इसका मूलाधार है, बँगला और हिन्दी के मिश्रण से इसका स्वरूप निर्मित हुआ है। 'आगे फिर लिखते हैं, 'ब्रजबुलि में रचित वैष्णव पदावली में सर्वांश नहीं तो अधिक परिमाण में जिसमें मैथिली-पदावली का अनुसरण किया है, वह अविसंवादित है। ब्रजबुलि के गठन में मैथिली ही प्रधान उपादान है[1], अवश्य अवहट्ठ का प्रभाव भी माना जा सकता है। ब्रजबुलि में जो पश्चिमी हिन्दी के पद और वाक्य-रीति पाई जाती है वह प्रधानतः अवहट्ठ से आई हुई कह सकते हैं[2]। वे उसी मत का पुनः समर्थन करते हैं, "वैष्णव-गीतिकाव्य रचना की प्रथम बँगला में दी विशिष्ट भाषा रीतियाँ रही हैं। एक शुद्ध बँगला एवं दूसरी ब्रजबुलि या मिश्रित बँगला। 'ब्रजबुलि' नाम आधुनिक है, ईश्वरचन्द्र गुप्त के पहले इस नाम का व्यवहार किसी ने किया था या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम भाग में प्रायः इसको 'ब्रजभाषा' कहा गया है। राधा-कृष्ण-पदावली की भाषा ब्रज की 'बोली' अर्थात् भाषा यह अनुमान होने पर ब्रजबुलि नामक उद्भव हुआ है। ब्रजबुलि मुख्यतः अवहट्ठ और मैथिली के विकृत रूप के ऊपर प्रतिष्ठित है। मैथिल गीतिकवियों का अंधानुकरण ही इस विकृति का अन्यतम कारण है। किन्तु ब्रजबुलि के मूल में शुद्ध मैथिली ही नहीं है इसमें अवहट्ठ का भी पुट है[3]।"

क्रमशः डा० सेन अपने मत का परिवर्तन करते हुए आये हैं, अब उनका नवीनतम दृष्टिकोण ब्रजबुलि के सम्बन्ध में इस प्रकार है—'प्रायः बीस वर्षों पूर्व जब मैंने 'ब्रजबोली' साहित्य का इतिहास लिखा था तब मैंने ब्रजबोली की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रचलित मत का ही समर्थन किया था। उस मत के अनुसार बंगाली पद रचयिताओं ने मैथिली विद्यापति की पदावली का अनुकरण कर ब्रजबोली भाषा की सृष्टि की। अर्थात् मैथिली भाषा ब्रजबोली की माँ तथा बंगला भाषा उसकी 'धात्री' हुई। यही सर्वत्र मान्य है। किन्तु विविध कारणों से उपर्युक्त मान्यता का समर्थन अब मैं नहीं कर पाता हूँ। प्रथमतः विद्यापति के समय की

१. सा० प० प० ३६, पृ० १४३-१४४।

२. ब्रजबुलितै रचित वैष्णव पदावली सर्वांशे ना हओक अधिक परिमाणे जे मैथिलपदावलीर अनुसरण करिया है ताहा अविसंवादित। ब्रजबुलि भाषार गठने मैथिली इप्रधान उपादान अवश्य अवहट्ठेर प्रभाव ओ मानितै हय। ब्रजबुलितै जे पश्चिमा हिन्दीर ओ वाक्यरीति पाओया जाय ताहा प्रधानतः अवहट्ठ हइते आगत वलिया मने करि। (बाँ० स० इ०, प्र० खं०, पृ० ८१)

३. बाँ० सा० इ०, प्र०, खं०, पृ० १६१-१६२।

मैथिली भाषा के साथ 'ब्रजबोली' का सादृश्य अनेक स्थानों पर होते हुए भी अनेक स्थानों में नहीं है। द्वितीयतः मैथिली पदावली के अनुकरण पर बंगाली कवियों की ब्रजबोली में पदरचना बिल्कुल अनुमानिक है[1]।' अपने मत का पुनः स्पष्टीकरण करते हुए लिखते हैं—'इसी अवहट्ठ से ब्रजबोली की उत्पत्ति हुई है, बंगला, मैथिली, हिन्दी, राजस्थानी एवं गुजराती आदि भाषाओं का पूर्ण परिणत रूप अवहट्ठ के प्रचलित दरबारी साहित्य में था। विशेषकर राधा-कृष्ण पदावली में। इसी परवर्ती अवहट्ठ ने जिसके ऊपर मैथिली आदि स्थानीय भाषाओं का प्रभाव पड़ा था, १५वीं तथा १६वीं शताब्दी में ब्रजबोली का रूप धारण किया था। सूरदास आदि प्राचीन ब्रजभाषा के कवियों की रचना में जो अहिन्दी शब्द या पद हैं वे इसी प्राचीन अवहट्ठ या प्राचीन ब्रजबोली के हैं। इसलिये ब्रजबोली किसी प्रान्त-विशेष की सम्पत्ति नहीं है, वह आदि भाषा की संपत्ति है, और एक प्रकार से अंतिम सर्व भारतीय आर्यभाषा है[2]।

पहले अध्याय में कहा जा चुका है कि अवहट्ठ-शौरसैनी-अपभ्रंश का बाद का स्वरूप माना जा सकता है। अवहट्ठ का सादृश्य हिन्दी के साथ बहुत है। यदि इसको पुरानी हिन्दी का पूर्व भी कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। अतः यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि ब्रजबुलि का मूलाधार शौरसैनी-अपभ्रंश-प्रसूत पुरानी हिन्दी है। अतः इस रूप में इसका प्रभाव बंगाल के साथ-साथ उड़ीसा एवं असाम व मिथिला में भी रहा है। असमिया के शंकरदेव[3] और माधवदेव की कविता इसकी साक्षी है। पश्चिमी हिन्दी तथा ब्रजभाषा में भी उसी शौरसैनी अपभ्रंश का प्रेरणास्रोत था। वैष्णव काल में ब्रजभाषा के प्रभाव के कारण ब्रजबोली की कविता में त्वरा उत्पन्न हो गई थी। एक ओर मैथिल कोकिल विद्यापति की पदावली की झंकार भी आ रही थी। डा० विश्वनाथप्रसादजी ब्रजबुलि की प्रवृति को अखिल भारतीय प्रवृत्ति (All Indian tendency) कहते है[4]। यह हिन्दी की ही प्रवृत्ति है, जो युग-युगान्तर से आधुनिक काल तक अक्षुण्ण रूप में चली आ रही है। अतः ब्रजबुलि परम्परागत रूप से प्रवाहमान संकर भाषायी गंगा का एक रूप है। हिन्दी और मैथिल तथा बंगला की त्रिधाराओं ने मध्यकाल में इसको गति प्रदान की।

---

१. भा० सा०, प्र० अं०, पृ० ७४ जनवरी १९५६।
२. भा० सा०, पृ० ७७, जनवरी १९५६।
३. बाँ० सा०इ०, प्र० भा०, पृ० १५३-१५६।
४. हिन्दी-विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय में लेखक के साथ रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रसंग में विचार-विमर्श करते हुए डा० प्रसाद जी ने अपना मत ब्रजबुलि के सम्बन्ध में प्रकट किया।

डॉ० सत्येन्द्र जी तो ब्रजबुलि पर ब्रजभाषा का प्रत्यक्ष प्रभाव मानते हैं। इस तथ्य की सत्यता अनेक वैष्णव पदकर्त्ताओं के पदों से स्पष्ट हो जाती है। कई कवि एक साथ तीन-तीन भाषाओं बँगला, ब्रजबुलि, ब्रजभाषा में कविता करते आये हैं[१]। जहाँ भाषामूलक प्रभाव का प्रश्न है वहाँ ब्रजबुलि में हिन्दी का बहुत ताना-बाना है। उसके भाषा-वैज्ञानिक एवं व्याकरणिक-स्वरूप पर भी हिन्दी का प्रभाव है[२]।

ब्रजबुलि के ऐतिहासिक एवं साहित्यक स्वरूप पर दृष्टि डालना अभीष्ट है। ब्रजबुलि के पदों की संख्या पाँच हजार से ऊपर है। यह समस्त साहित्य गेय-पदावली के रूप में है। डॉ० सुकुमार सेन के अनुसार ये पद दो सूत्रों से प्राप्त होते हैं।

(१) वैष्णव गीति-साहित्य के रूप में।

(२) ऐसे पद जो किसी दार्शनिक या सैद्धांतिक ग्रंथ में उदाहरण स्वरूप में उद्धृत हैं।

१. वैष्णव गीति-साहित्य के रूप में :

१. क्षणदा-गीत चिंतामणि
२. पदामृत समुद्र
३. पदकल्पतरु
४. कीर्तनानंद
५. संकीर्तनामृत
६. पदरससार
७. पद-रत्नाकर
८. पदकल्पलतिका
९. गौरपद-तरंगिणी
१०. अप्रकाशित पदरत्नावली
११. पदमेरु (हस्तलिखित ग्रंथ)
१२. पदसंग्रह (हस्तलिखित)
१३. गौरचरित चिंतामणि
१४. गीत चन्द्रोदय

२. ऐसे पद जो किसी दार्शयिक या सैद्धांतिक ग्रंथ में उदाहरण स्वरूप में उद्धृत हैं :

१. श्री राधाकृष्ण-रस-कल्पवल्ली
२. रसमंजरी
३. भक्ति रत्नाकर
४. सिद्धान्त चन्द्रोदय
५. नायिका-रत्नमाला
६. अन्य

---

१. देखिये—'ब्रजबुलि और ब्रजभाषा' पर तुलनात्मक अध्ययन, पी-एच० डी० स्वीकृत प्रबन्ध डा० कुमारी कणिका-विश्वास (ब्रजभाषा और ब्रजबुलि साहित्य) हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी सन् १९५७ ई०।

२. देखिये—प० क० त०, पं० खं०, भू०, पृ० २३३-२४३। बं०.सा० प० प० १३३७। भाषार इतिवृत पृ० २५२, २६० (ब्रजबुलि व्याकरण तथा हि० बं० वै० कवि, पृ० ४६७-४८०)।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से बँगला साहित्य में ब्रजबुलि का सृजन और प्रचलन १५वीं शताब्दी से अठाहरवीं एवं १९वी शताब्दी तक अविच्छिन्न-धारा के रूप में मिलता है। वैष्णव-पदकर्ता तो ब्रजबुलि पदावली में आकंठ रस-मग्न थे किन्तु बहुत वैष्णव-भावापन-मुसलमान कवि भी इस पदावली के प्रेमी थे। दौलत काज़ी की 'सतीमयना ओ लोर चन्द्रानी' में भी ब्रजबुलि के पद हैं। भारतचन्द्र रायगुणाकर की 'अन्नामंगल' में भी ये पद पाये जाते हैं। हालांकि दोनों ही कवियों का वैष्णव-काव्यधारा के साथ कभी प्रत्यक्ष संबंध नहीं रहा। वे भी ब्रजबुलि के प्रभाव से नहीं बच सके।

उन्नीसवीं सताब्दी के ऋषि बंकिमचन्द्र की मृणालिनी एवं बंग-दर्शन में भी ब्रजबुलि के पद हैं। आधुनिक काल में अनेक बँगला-साहित्यकारों का झुकाव इसकी ओर रहा है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी ब्रजबुलि के गीत अपनी भानुसिंह ठाकुरेर पदावली में वैष्णवों के भावों एवं भाषा में गाये हैं।

ऐतिहासिक नामावली[1] की दृष्टि से संम्भवतः ब्रजबुलि के दो सौ से अधिक पदकर्त्ता हैं। ऐतिहासिक क्रम से कुछ प्रतिद्ध कवियों के पदों के उदाहरणों से हिन्दी प्रभाव ब्रजबुलि साहित्य में अधिक स्पष्ट हो सकेगा।

१. **यशोराज खाँ**—इनका निम्न पद ब्रजबुलि का सर्वप्रथम बंगला पद माना जाता है :—

एक पयोधर चंद-लेपित आरे सहजइ गोर।
हिम-धराधर कनक-भूधर कोले मिलत जोर।

—कीर्तनगीत-रत्नावली

२. गोविंददास कविराज[2]

गोविददास कविराज बजबुलि के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। जो स्थान विद्यापति का मैथिल-साहित्य में है वही स्थान गोविन्ददास कविराज का ब्रजबुलि पदावली में है। एक उदाहरण दिया जाता है।

कुवलय-कंदल-कुसुम कलेवर कालिम-कांति कलोल।
कोमल केलि-कदम्ब-करम्बित, कुंडल-कांत कपोल।
जय जय कृष्ण कृष्ण कमलेश। कालिय-केशि-कंस-करि-कर्षन
केशव कुंचित-केश, कुल-वनिता-कुच-कुसमाचित कुसुमित-कुंतल-बंध
कालिन्दि-कमल-कलित कर-किशलय कौतुक कंदल कंद॥

---

१. देखिये—'हिस्ट्री आव ब्रजबुलि लिटरेचर' में पदकर्त्ताओं की नामावली।

२. देखिये—प्रस्तुत प्रबंध में पृष्ठ ८८-९२।

कमला-केलि कलप-तरु कामद कामिनि कोटि-कवीन्द्र कृपन-कृपा-कर
कलुषम् कष कह कवि दास गोविंद ।। (प० क० त० पद २४३७)

३. शिवराम[1]

शिवराम ने ब्रजभाषा और ब्रजबुलि दोनों में ही पद लिखे है। ब्रजबुलि का एक उदाहरण देखिये—

आजुरगे होरि खेलत श्याम गोरि
सखिगन मिलि गाओत बाओत।
किशोर किशोरि नाचि नाचाओत आनदे मनभोरि।
विविध यंत्र ताल मृदंग, कोइ मोचंग,
बाजये उपांग, तन नन तोरि।
तथ तथ तथ तत थैया दृमति दृमति द्रिमि थैया,
चड० लड० लड० लोरि।
कुहु गुडु गुडुदाम दिमिद्राम, किट किट किट धाम
ुगधाम शिवगाम गाओये होरि।

(प० क० त० पद १४३६)

तथा—

रगे हो हो होरि, खेलत नओल किशोरी।
बाजत ताल रवाब पाखाओज सखिगण घन करतालि।
कुंकुम चंदन आबिर उड़त घन, बरिखन जनु पिचकारि।
दुहुँ पर दुहुँ पड़ू भोरि, जितलुँ घन दुअुं जन गरजन सखिगन भौ वरजोरि।
खेने खेने थकित वदन दुहुँ निरखन, जेछन चांद कोकरि।
तहिं शिवराम दासमन आनदे, हेरि हासे थोरि थोरि ।।[2]

(प० क० त० पद १४४१)

४. रायवसन्त

रायवसन्त के पदकल्पतरु में ५१ पद हैं। इनमें हिन्दी का मेल है। एक उदाहरण देते हैं :—

नागर नाचत नागरि संग, विविध यंत्र कत शब्द तरंग,
दृमि दृमि दृमि बाजे मृदंग, डंक रवाब बिन मुरलि उपांग।
वलय नुपुर मनि किंकिणि-कलने, घुंघरु रुनुझुनु बाजत चरणे।
आनदे अंग-भंग अवलम्ब, रसभरे गिरत मिलत परिरंभ।

---

१. देखिये—प्रस्तुत प्रबंध में पृष्ठ ८४-८५।

२. शिवराम के पदकल्पतरु में १४३७, १४४२, १४४३, १४४४, १४४६, १४५२ संख्यक पदों में हिन्दी का प्रभाव है।

कमले मोति किये मुख श्रमवारि, रसिक-कला-गुरु कहे बलिहारि।
विहसि विलोकह दुहुँचित चौरि, रायवसंत-पहुँ रहुहिय जौरि।[१]

(प० क० त० पद २९२९)

५. रायशेखर

रायशेखर के पद भी कुछ हिन्दी का आभास लिए हुए हैं। एक पद इस प्रकार है :—

मधुर मधुर गौर किशोर मधुर मधुर नाट।
मधुर मधुर सब सहचर मधुर मधुर हाट॥
मधुर मधुर मृदंग बाजत मधुर मधुर तान।
मधुर हैलन मधुर दोलन मधुर मधुर गति।
मधुर मधुर वचन सुन्दर मधुर मधुर भाति।
मधुर अधर जिनि शशधर मधुर मधुर हास।
आरति पिरिति चरिति मधुर मधुर भाष।
मधुर युगल नयान रातुल मधुर इंगित चाय।
मधुर प्रेमेर मधुर वारर वंचित शेखरराय।

(प० क० त० पद २०९२)

६. जयकृष्णदास

इनके निम्न पद में हिन्दी की छाया है :—

धेनु चरायत वेनु बजायत यमुना तीर पुलिन वने।
(प्रिय) सुदामा श्रीदाम सुबल महाबल एसब गोपसखा सगने॥
(नट) वेश सुकेश चुड़ा शिखि साजनि मालतीमाल प्रसन्न गले।
(श्रुति) पाशविलास—मनिमकराकृति कुंडल मंडित गडे दोले।
कटि घटि पीत वलय निकछनि किंकिणि कांचनदाम घने।
चरणकमल दले शशिमंडित खंडित ताप भजंत जने।
जयकिशनदास पहुँ गोवर्धन धारन धीर देवेन्द्रमनि।
अखिल ब्रह्मांड भांड करि मंडित लाकर आगे काहाको गनि।

(पद कल्पलतिका पद २९)

७. सुबलचन्द्र ठाकुर

इनका निम्न पद हिन्दी प्रभाव गर्भित है :—

देख नटवर नाचे शचीर कोंवर है।
हेमवरगोरातनु प्रेमभरा भोरा जनु मधुरहसन कनजगमनोहर हैं।

---

१. रायबसन्त के पदकल्पतरु में २९१६ से २९३२ तक के पदों में हिन्दी का भाव है।

अरुण वरण धर नयनहि नीरढ़र तरुण करुन मनु मतिलर भर हैं ।।
देखि प्रिय गदाधर विपुल पलकभर एछोटे : ढ़ीठ भांड० घर का धेनु भर हैं ।
हेरि फेरि नित्यानंद लाजे हैट वयनचन्द इह रसगंध पाओये सुबल सुघड़ है ।
(पदामृत-समुद्र पृ० ८५)

८. नरहरि चक्रवर्ती[1]

नरहरिदास चक्रवर्ती बंगला, ब्रजबुलि और ब्रजभाषा के प्रवीण कवि हैं। इनके नरोत्तमविलास, भक्तिरत्नाकर, गौरचरित चिन्तामणि एवं गीतचन्द्रोदय आदि ग्रंथों में हिन्दी का प्रचुर प्रभाव है । सम्भवतः समस्त पदकारों में ये हिंदी प्रभाव के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं । इनके ब्रजबुलि के कुछ पद द्रष्टव्य हैं :—

जय जय रामकृष्ण, आचार्य सुधीर, महाशस सुखद उदार ।
भावावेश निरन्तर, कीर्तन लम्पट, अतिशय सूधर प्रचार ।।
सुखमय रसिक, जनमन रंजन, ताप पुंजतम भंजन कारी ।
द्विजकुल मंडल, गुनगन मण्डित, पण्डितवर दुरमुख मद हारी ।।
श्री मन मोहन राय, सूविग्रह सेवा, सतत नियुक्त प्रधान ।
अद्भुत रति, उल्लसित दिवानिशि, गौरचन्द्र चरितामृत पान ।।
परम दयाल, नरोत्तम पद युग, जहु सर्वस्व न जानत अन्य ।।
को समुझाव उह, रीति रुचिर यश, गायत नरहरि मानत धन्य ।।
(म० र० पृ० १०६२)

तथा—

कौन बरणब गौर परिकर चरित अति अनुपामरे ।
भुवन-विदित विशेष असीम हि महिम ललाम रे ।।
विपद वृन्द विनाशकर वरनित्य नवगुण ग्रामरे ।
सकल मंगल मूल सुखमय परम मधुरिम नामरे ।
(गौ० च० चि० पृ० १४)

९. नशीर मामुद

हिन्दू पदकर्त्ताओं के अतिरिक्त मुसलमान वष्णव भावापन्न कवि भी हैं, जिन्होंने राधाकृष्ण लीला के सम्बन्ध में अपने गान ब्रजबुलि में गाये हैं। नाशीर मामुद का एक पद द्रष्टव्य है :—

धेनु संगे, गोठे रंगे, खेलत राम, सुन्दर श्याम,
पांचनि कांचनि वैत्रवेणु मुरली खुराली गानरि ।
प्रिय दाम श्रीदाम सूदाम भेलि, तरुणी तनया तीरे केलि
धवलि साङली आओरि आओरि, फुकरि चलत कानरि ।

१. देखिये—प्रस्तुत प्रबन्ध में पृष्ठ ९२-१०० ।

वयस किशोर मोहन भांति ववन इन्दु जलद कांति ।
चारु चन्द्रि गुंजाहार वदने मदन-भानरि ।
आगम निगम वेदसार लीलाय करत गोठ विहार ।
नशीर मामुद करत आश, चरने शरण दानरि । (प० क० त० पद १३२६)

विस्तार भय से अधिक उदाहरण देना उपयुक्त नहीं है। उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि ब्रजबुलि के निर्माण में हिन्दी का योगदान अनुपम है। अन्त में विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि विशेषकर ब्रजबुलि पर और सामान्यतः समस्त गौड़ीय वैष्णव पदावलियों पर और चरित-काव्यों पर हिन्दी का गम्भीर सर्वाङ्गीण प्रभाव है ।

अगले पृष्ठों में हिन्दी भक्तकाल के आधार पर विरचित बंगला भक्तमाल का प्रसंग है।

: ६ :

५–अनुवादावतरणगत (श्रीभक्तमाल) हिन्दी-प्रभाव

पिछले पृष्ठों में हम बंगला पर हिन्दी के मध्यकालीन सामान्य प्रभाव की बात कर चुके हैं। वैसे तो सामान्य-प्रभाव १५वीं शताब्दी से १८वीं शताब्दी तक आता है। किन्तु हिन्दी के विशेषगत प्रभाव का प्रमाण हमें अठारहवीं शताब्दी में मिलता है[1]। जबकि लालदास (कृष्णदास) बाबाजी ने नाभादासजी के मूल हिन्दी भक्तमाल (रचनाकाल संवत् १६४२--१६८० वि० सं०[2]) एवं उनके शिष्य प्रिया-दासजी की भक्ति-रस-बोधिनी टीका (रचनाकाल १७६६ वि० सं०) को आधार मानकर बँगला भक्तमाल का निर्माण किया है। डा० सुकुमार सेन महोदय का मत है, "मूल भक्तकाल नाभाजी ने ब्रजभाषा में लिखा था, प्रियादास ने टीका लिखी थी, इसी मूल और टीका का अवलम्बन करके अनेक भक्त-कहानियों को जोड़कर लालदास ने, 'गौड़-भाषा-छद' में सत्ताईस मालाओं के सुबृहत् भक्तमाल का गुम्फन किया था[3]।"

---

१. डा० चटर्जी इसका अनुवाद सत्रहवीं शताब्दी का मानते हैं। देखिये बं० भा०, भू०, पृ० १३६।

२. मि० ब० वि०, प्र० सं०, पृ० ३६१।

३. "मूल भक्तमाल लिखियाछिलेन नाभाजी ब्रजभाषाय शकाब्दे (१५६०—६१) टीका लिखियाछिलेन प्रियादास। एइ मूल ओ टीका अवलम्बन करिया एवं अनेक नूतन भक्तकाहिनी योग करिया लालदास "गौड़भाखा छंदे" साताश "माला" य सुबृहत "भक्तमाल गाँथियाछिलेन (बाँ० सा० इ०, पू० खं०, पृ० ६८८)। मुद्रण १८५८ बंगवासी कार्यालय से प्रकाशित संस्करण।

भक्तमाल के सर्वप्रिय होने के कारण उस समय भक्तमाल के बंगालीकरण की बड़ी आवश्यकता थी, जैसे कि ग्रंथकार स्वयं स्वीकार करते हैं, "मूल भक्तमाल ग्रंथ ब्रजभाषा में होने के कारण सर्व-साधारण नहीं समझ सकते थे। इसलिये गौड़ीय वाक्य (बंगला) में मालानुसार कहा है, रचना के अनुसार कहना ठीक नहीं समझा। यथाशक्ति जोड़कर कहा है। कोई इस पर उपहास नहीं करें। जैसा मुझे आता था वैसा वैष्णवों का गुणगान किया है। अतएव टीका का अर्थ भी मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार किया है। रचना मन संतोष के अनुसार की है। प्रियादासजी ने अतीव संक्षेप में वर्णन किया था। अतः जन-साधारण की मति से बाहर थी, किसी-किसी स्थान पर कुछ-कुछ विस्तार से उनके पीछे-पीछे कहा है[1]। बंगला भक्तमाल के ग्रंथकार (लालदास या कृष्णदास बाबाजी) नाभादास के मूल और प्रियादास की टीका का ऋण स्वीकार करते हुए लिखते हैं :—

"बंदो श्रीअगरदास जाँर शिष्य नाभा।
तेंहो केला भक्तमाल सज्जनेर लोभा।।
चारियुगेर भागवक गणेर चरित्र।
भक्तमाल ग्रंथ केल परम-पवित्र।।
जाहार श्रवणे उपजये कृष्ण रति।
वैष्णव चरण रजे हय दृढ़मति।।
महातमोमति अतिनिन्दूक वा हय।
श्रवणे अवश्य तार श्रद्धा उपजे।।
(बँ० भ०, पृ० २)

अर्थात् मैं श्री अगरदासजी की वंदना करता हूँ जिनके शिष्य नाभादासजी हैं। जिन्होंने भक्तों के लुभाने के लिये भक्तमाल का निर्माण किया था। चार युगों के भक्तजनों के चरित्र पवित्र भक्तमाल ग्रंथ में मिले हैं। जिनके स्मरण से कृष्ण भगवान् में प्रेम उत्पन्न होता है। वैष्णवों की चरण रज में दृढ़मति होती है। कोई यदि महातमोर्मति, अतिनिन्दुक भी हो, उसकी भी इसके श्रवण करने से श्रद्धा उत्पन्न होती है।

---

१. ग्रंथ हय ब्रजभाषा सबे बुझे नाहि। सेहेतु गौंड़ीया वाक्ये श्रेणीमत कहि।।
रचना पूर्व्वक कहिवारे नाहि जानि। यथाशक्ति योड़ेयाड़े मिलाइया मनि।।
उपहास केह नाहि करिह इहाते। वैष्णवेर गुणगान करि कौन मते।।
अतेव टीकार अर्थ बुद्धि-साध्यमते। रचिया कहिव मात्र मन बुझाइते।।
यथा यथा प्रियादास संक्षेपेते अति। वर्णिला ना प्रवेशय साधारणमति।।
सेइ सेइ कौन कौन स्थाने किछु किछु। विस्तार करिया कहितौंर पाछु पाछु।।
(बँ० भ०, पृ० २)

भक्तमाल का प्रभाव बँगला-साहित्य, बँगाली वैष्णवों एवं बंग समाज पर युग-युगान्तर से गंभीर और आशातीत रहा है। यह भक्तों की माला का मंदार-कुसुम है। जिसकी सौरभ दिग्दिगान्तर को आनंदमय करती रही है। इस बँगला भक्तमाल ग्रंथ से ही बँगाली-हृदय में बिल्वमंगल, जयदेव, तुलसीदास, रघुनाथदास, प्रबोधानंद सरस्वती, रूप, सनातन और जीव गोस्वामी, श्रीधर स्वामी, बोपदेव, शंकर, रामानुज, मीराबाई, करमेतीबाई और कबीर आदि तत्व रस-निमग्न महापुरुषों की ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की वैचित्र्यमयी जीव-लीला जगमगा रही है। भक्तमाल की महिमा को प्रकट करने वाला एक मर्मस्पर्शी बँगला प्रवाद* है।

"यदि थाके किछु मने गोलमाल, तवे पड़ भक्तमाल।"

अर्थात् यदि मन में कुछ गोलमाल हो तो, तब भक्तमाल पढ़ना चहिये।

बँगला भक्तमाल ग्रंथ हिन्दी भक्तमाल का अक्षरशः अविकल अनुवाद नहीं है। बँगला भक्तमाल ग्रंथ को हिन्दी भक्तमाल के आधार, अनुकरण एवं अवलम्बन (Adaptation) पर विरचित कह सकते हैं। अतः हिन्दी भक्तमाल का बँगला भक्तमाल पर प्रभाव का स्पष्टीकरण करने के लिये अध्ययन की रूपरेखा इस प्रकार हो सकती है :—

(१) प्रमुखतः हिन्दी भक्तमाल के भक्तों की नामावली का आधार लेकर लालदास बाबाजी ने अपने ग्रंथ का निर्माण किया है।

(२) बँगला भक्तमाल की बहुत मालाओं का गुम्फन हिन्दी भक्तमाल के प्रसंगों के आधार पर हुआ है।

(३) हिन्दी भक्तमाल से बहुत हिन्दी पद (लगभग ४५ पद) बँगला भक्त-माल में अक्षरशः उद्धृत हैं। हिन्दी के अनेक पदों का बँगानुवाद भी बँगला भक्तमाल में हुआ है।

(४) बंगला भक्तमाल में अनेक प्रसंगों का प्रसार हिन्दी भक्तमाल के चरित्र लघुवर्णनात्मक पदों के आधार पर हुआ है। अर्थात जिस चरित्र एवं प्रसंग का वर्णन हिन्दी भक्तमाल के ग्रंथकारों ने अतीव संक्षेप में किया है, बँगला भक्तमाल के रचियता ने बहुत विस्तार के साथ किया है। मूलगत तथ्य या साराँश तो हिन्दी भक्तमाल का है, किन्तु विशेष वर्णन कौशल बँगला भक्तमाल का अपना है।

(५) लालदास बाबाजी ने भी अपने ग्रंथ में कुछ हिन्दी पदों की रचना की है। गोविंददास और हरिरामव्यासजी अर्थात भक्तव्यासजी के भी एक दो हिन्दी पद बँगला भक्तमाल में उदृत हैं।

(६) शेष प्रसंग, चरित्र, वर्णन बँगला भक्तमाल के मौलिक हैं, किन्तु सम्पूर्णतया, प्रेरणा, छाया अनुकरण एवं वर्णनशैली हिन्दी भक्तमाल से ही उधार

*प्रवाद—लोकोक्ति, बाँ० भा० अत्रि पृ० १००५।

ली गई है। अन्त में यह कहा जा सकता है, "बंगला भक्तमाल के गुम्फन में कुछ सूत्र और फूल-पंखड़ियाँ हिन्दी भक्तमाल से उधार ली गई हैं, और कुछ रंगबिरंगे सूत्र और सौन्दर्य-सुगन्ध सम्पन्न प्रसून लालदास बाबाजी के अपने है, अतः दोनों के मणिकाँचन संयोग से ही बंगला-भक्तमाल का सृजन एवं गुम्फन हुआ है, जिसका सौन्दर्य सौरभ आज तक बंग देश में अविरल रूप में प्रवहमान है।"

अतः किंचित-विस्तार के साथ उपर्युक्त-रूपरेखा का विवेचन वाँछनीय है।

१. हिन्दी भक्तमाल की वह भक्त-नामावली जो बँगला-भक्तमाल में गृहीत (Adopted) है, निम्न प्रकार है:—

प्रथम माला:—

१.	(बँ०भं०) श्री नाभादास जी	पृ० ३ =	(हि०भ०) श्री नाभाजी	पृ०११,१५
द्वितीय माला:—				
२.	(बँ०भ०) महाप्रभु चैतन्य	" ६ =	" कृष्ण चैतन्यप्रभु	" १७१
३.	" श्री नित्यानन्द	" ६ =	" श्री नित्यानंजी	" १७०
४.	" रघुनाथदास गोस्वामी	" ११ =	"श्री रघुनाथगोसाईजी"	१६६
५.	" श्री रूप	" १३ =	" श्री रूपजी	" १८६
६.	" श्री सनातन	" १३ =	" श्री सनातन जी	" १८६
७.	" श्री जीव गोस्वामी	" १३ =	" श्रीजीव गोसाईजी "	२०३
८.	" श्री गोपाल भट्ट	" २३ =	" श्रीगोपाल भट्टजी "	२०४
९.	" श्री मधु पंडित ठाकुर	" २४ =	" श्री मधु गोसाईंजी "	२०६
चतुर्थ माला:—				
१०.	(बँ०भ०) श्री अजामिलजी	" ४१ =	" श्री अजामिलजी "	२०
११.	" हनुमानजी	" ४४ =	" श्री हनुमान जी "	२३
१२.	" बभीषनजी	" ४५ =	" श्री विभीषणजी "	२४
१३.	" श्री शबरीजी	" ४६ =	" श्री शबरीजी "	२५
१४.	" खगपति जटायु	" ४८ =	" श्री जटायु जी "	२८
१५.	" अम्बरीष महाराजा	" ४६ =	" राजा अम्बरीषजी "	२८
१६.	" श्री विदुर जी	" ५२ =	" श्री विदुर जी "	३३
१७.	" श्री सुदामाजी	" ५३ =	" श्री सुदामा जी "	३४
१८.	" श्री चंद्रहास राजा	" ५४ =	" राजा चंद्रहास जी "	३८
पंचम माला:—				
१९.	(बँ०भ०) श्री कुन्तीजी	" ५७ =	" श्री कुन्ती जी "	४२
२०.	" श्री द्रोपदीजी	" ५७ =	" श्री द्रोपदीजी "	४३

	(बँ०भ०)			(हि० भ०)		
२१.	श्री श्रुतदेव	पृ०	५९=	" श्रुतिदेव जी	पृ०	४४
२२.	"श्री प्राचीन वर्हिराजा	"	५९=	" प्राचीन वर्हिराजा	"	४४
२३.	" श्री बाल्मीकिजी	"	६२=	" श्री बाल्मीकजी	"	४५
२४.	" द्विबाल्मीकजी	"	६२==	" श्वपच बाल्मीकि	"	४५
२५.	" श्री रुक्मागदराजा	"	६५=	" राजा श्री रुक्मांगद	"	४६
२६.	" श्री हरीश्चंद्र राजा	"	६७=	" हरीचंद	"	४४
२७.	"श्री विंध्यावलीजी	"	६७=	" रानी विंध्यावली	"	५०
२८.	,, श्री मोरध्वज राजा	,,	६७=	,, राजा श्रीमोरध्वजजी	,,	५०
२९.	,, अलर्कजी	,,	६८=	,, श्री अलर्कजी	,,	५३
३०.	,, श्री रंतिदेव	,,	७०=	,, श्री रंतदेवजी	,,	५३
षष्ठम् माला :—						
३१,(बं०भ०)	श्री गृह राजा	,,	७२=	,, राजा श्री गृहजी	,,	५४
३२.	,, श्री परीक्षित महाराज	,,	९२=	,, राजा श्री परीक्षितजी	,,	५७
३३.	,, श्री शुकदेव गोस्वामी	,,	९३=	,, श्री शुकदेवजी	,,	५७
सप्तम माला :—						
३४.(बं०भ०)	भक्तराज श्रीप्रह्लाद	,,	९६=	,, ,, प्रह्लादजी	,,	५८
अष्टम् माला :—						
३५. (बं०भ०)	भक्तराज श्रीअक्रूर	,,	११२=	,, ,, अक्रूरजी	,,	६०
नवम् माला :—						
३६.(बं०भ०)	श्री बलि महाराज	,,	११२=	,, ,, बलिजी	,,	६०
दशम् माला :—						
३७.(बं०भ०)	श्री वोपदेव गोस्वामी	,,	१४६=	,, वोपदेवजी	,,	६८
३८.	,, श्री रामानुज स्वामी	,,	१४७ =	,, श्री रामानुजजी	,,	६८
३९.	,, श्री निम्बादत्त स्वामी	,,	१४८==	,, ,, निम्बादत्तजी	,,	६७
४०.	,, श्री लालाचार्य	,,	१४९=	,, ,, लालाचार्यजी (श्री रामानुजजी के नामाता)	,,	६०
एकादश माला :—						
४१.(बं०भ०)	गुरुभक्त वैष्णव	,,	१५१ =	,, श्रीपाद पद्मजी	,,	७२
४२.	,, श्री रंग वणिक	,,	१५२=	,, ,, रंगजी	,,	७४
४३.	,, श्रीकृष्णदास साधु	,,	१५३=	,, पयहारी श्रीकृष्णदासजी	,,	७४
४४.	,, श्री कल्हजी	,,	१५३=	,, श्री कील्हदेवजी	,,	७५
४५.	,, श्री अग्रदासजी	,,	१५४=	,, स्वामी श्री अग्रदासजी	,,	७७

	(बँ०भ०)		(हिं०भ०)	
४६.	श्री शंकराचार्य	पृ० १५५ =	श्री स्वामी शंकराचार्यजी	पृ० ७८
४७.	" " वामदेवजी	,, १५७ =	,, ,, नामदेवजी	,, ७६
द्वादश माला :—				
४८.	" " जयदेव गोस्वामी	,, १६४ =	,, ,, जयदेवजी	,, ८६
४६.	,, " श्रीधर स्वामी	,, १७२ =	,, ,, श्रीधीर स्वामीजी	,, ६५
५०.	,, ,, बिल्वमंगल महाशय	,, १७४ =	,, ,, बिल्वमंगलजी	,, ६५
तृयोदश माला :—				
५१.	,, ,, विष्णुपुरी गोस्वामी	,, १८४ =	,, ,, विष्णुपुरीजी	,, १००
५२.	,, ,, ज्ञानदेवजी	,, १८५ =	" " ज्ञानदेवजी	" १०१
५३.	,, ,, लोचनजी	,, १८५ =	" " तिलोचनजी	" १०२
५४.	,, ,, वल्लभाचार्य	,, १८६ =	" " वल्लभाचार्यजी	" १०५
५५.	,, ,, भक्तदास राजा	,, १८७ =	" " भक्तदासजी	" १०६
५६.	,, ,, लीला अनुकरण	,, १८८ =	" " लीलाअनुकरण भक्त	" १०७
५७.	,, ,, रतिवंतबाई	,, १८६ =	" " रतिवन्तीजी	" १०७
५८.	,, ,, पुरुषोत्तमवासी महाराज	,, १८६ =	" " प्रसादनिष्ठ राजा	" १०८
५६.	,, ,, करमाबाई	,, १६० =	" " कर्माबाई जी	" १०६
चतुर्दश माला :—				
६०.	,, श्रीशिल्ला पिल्ला सेवि कन्याद्वय	,, १६२ =	" सिल्ले पिल्ले भक्त उभय बाई	" ११२
६१.	,, अन्य भक्तनिष्ठ राजा	,, १६४ =	" भक्तों के हित हेतु जिन्होंने सुत को विष दिया वे दो बाई	" ११२
६२.	,, श्री मामा-भागिनाद्वय	,, १६६ =	" मामू भानजा जी	" ११५
६३.	,, , महाराज हंस प्रसंग	,, १६७ =	" हंस भक्तों का आख्यान	" ११६
६४.	,, ,, महाजन सदाव्रती	,, १६६ =	" महाजन सदाव्रतीजी	" ११८
६५,	,, ,, भुवन चौहान	,, २०० =	" श्री भुवनजी चौहान	" ११६
६६.	,, ,, रूप चतुर्भुज ठाकुर पुजारी	,, २०१ =	" पंडादेबा जी	" १२२
६७.	,, ,, कमधुज	,, २०३ =	" श्री कामध्वजजी	" १२३
६८.	,, ,, महाराज जयमल	" २०३ =	" श्री जयमलजी	,, १२४
६६.	" ,, गोपाल भक्त	" २०४ =	,, एक ग्वाल भक्तजी	,, १२५

	(बँ०भ०)		(हिं०भ०)	
७०.	श्री निष्किंचन ब्राह्मण	पृ० १६४=	श्री विप्र हरिपालजी	पृ० १२६
पंचदश माला :—				
७१.	" " छोटे विप्र औ वड़ विप्र	" २०५=	" " छोटे विप्र औ वड़ विप्र	" १२७
७२.	" " क्षेत्रराज रानी	" २०६=	" " साखी गोपालजी	" १२६
७३.	" " रामदास साधू	" २१०=	" " रामदासजी	" १२६
७४.	" " जसु स्वामी	" २१२=	" " जसु स्वामीजी	" १३१
७५.	" " नन्ददास साधू	" २१२=	" " नन्ददासजी	" १३२
७६.	" " अल्हजी	" २१३=	" " अल्हजी	" १३२
७७.	" " वारमुखी	" २१३=	" " वारमुखीजी	" १३२
७८.	" राजा भक्तप्रिय	" २१५=	" " एक मेषनिष्ठ राजा	" १३५
७९.	" हरिभक्त रानी	" २१५=	" एक अन्तनिष्ठ राजा तथा इनकी रानी	" १३६
८०.	" " गुरुनिष्ठ साधू	" २१६=	" " गुरु शिष्य	"
८१.	" " कबीरजी	" २१७=	" " कबीरदासजी	" १४३
षोडस माला :—				
८२.	" " रुईदास	" २२३=	" " रैदास	" १४७
८३.	" " पिपाजी	" २२७=	" " पीपाजी	" १४९
उन्नीस माला :—				
८४.	" " जगन्नाथ माधवदास	" २६८=	" " माधवदासजी	" १६४
८५.	,, " सूरदास	" २७६=	" " सूरदासजी	" १७४
८६.	" केशव भट्ट	" २७७=	" " केशव भट्टजी	" १७६
८७.	" " हरिव्यासजी	" २७७=	" " हरिव्यासजी	" १७८
विंश माला :—				
८८.	" " त्रिपुरदास	" २८०=	" " त्रिपुरदासजी	" १७९
८९.	" " कृष्णदास महानुभाव	" ३०५=	" " कृष्णदासजी	" १८२
९०.	,, ,, विट्ठलदास	,, २८२=	,, ,, विट्ठलदासजी	,, १८४
९१.	,, ,, नारायण भट्ट	,, २८३=	,, ,, नारायण भट्टजी	,, १८८
९२.	,, ,, सनातन पुनश्च	,, २८४=	,, ,, रूपजी सनातनजी	,, १८९
९३.	,, ,, हरिवंश गोस्वामी	,, २८६=	,, ,, हित हरिवंशजी	,, १९२
९४.	,, ,, हरिदास स्वामी	,, २८७=	,, ,, हरिदासजी रसिक	,, १९६
९५.	,, ,, हरिराम व्यासजी	,, २८८=	,, ,, व्यासजी	,, १९९

	(बँ०भ०)			(हि०भ०)	
९६.	,, श्री अलि भगवान	पृ० २९०==		,, श्री अलि भगवानजी	पृ० २०५
९७,	,, ,, रसिक मुरारीजी	,, २९१=		,, ,, रसिक मुरारीजी	,, २०८
९८.	,, ,, सधना	,, २९२=		,, ,, सदन जी कसाई	,, २१२
९९.	,, ,, काशीश्वर गोसाई	,, २९४=		,, ,,गोसाई श्रीकाशीश्वरजी	,,२१३
१००.	,, ,, खोजेजी	,, २९५=		,, ,, खोजेजी	,, २१४
एकविंश माला :—					
१०१.	,, ,, रांकापति बांकास्त्री	,, २९६=		,, ,, राँकाजी श्री बाँकाजी	,, २१५
१०२.	,, ,, लडु भक्त	,, २९७=		,, ,, लड्डु भक्तजी	,, २१६
१०३.	,, ,, संत भक्त	,, २९७=		,, ,, सन्तजी	,, २१७
१०४.	,, ,, त्रिलोक सोनार	,, २९७=		,, ,, त्रिलोकजी	,, २१७
१०५.	,, ,, प्रताप रुद्र राजा	,, २९९=		,, ,, रुद्रप्रताप गजपतिजी	,, २१९
१०६.	,, ,, गोविंददास गोस्वामी	,, ३०२=		,, ,, गोविंददास स्वामीजी	,, २२०
१०७.	,, ,, कृष्णदास गुंजामाली	,, ३०५=		,, ,, गुंजामालीजी	,, २२२
१०८.	,, ,, गणेश दे रानी	,, ३०७=		,, ,, गणेश दे रानी	,, २२३
१०९.	,, ,, लाखाजी	,, ३०८=		,, ,, लाखाजी	,, २२६
द्वाविंश माला :—					
११०.	,, ,, नरसी भक्त	,, ३१०=		,, ,, नरसी मेहताजी	,, २२९
१११.	,, ,, अंगद भक्त	,, ३१४=		,, भक्त श्री अंगदजी	,, २४२
११२.	,, ,, करुविर राजाचतुर्भुज,	,, ३१८=		,, राजा चतुर्भुजजी	,, २४४
११३.	,, ,, मीराबाई	,, ३२०=		,, ,, मीराबाईजी	,, २४७
११४.	,, ,, पृथ्वीनाथ राजा	,, ३२१=		,, ,, पृथवीराजजी	,, २५२
११५.	,, ,, मधुकर शाहा	,, ३२२=		,, ,, मधुकर शाहाजी	,, २५५
त्रियोविंश माला :—					
११६.	,, ,, अन्य सूरदास	,, ३२७=		,, ,, सूरदास मदनमोहनजी,	,, २६३
११७.	,, ,, मुरारिदास भक्त	,, ३२८=		,, ,, मुरारिदासजी	,, २६६
११८.	,, ,, तुलसीदास महान्त	,, ३२९=		,, ,, तुलसीदासजी	,, २६८
११९.	,, ,, करमानन्द	,, ३३६=		,, ,, करमानन्द जी	,, ८४०
१२०.	,, ,, परशुराम राजगुरु	,, ३३८=		,, ,, परुषराम जी	,, २७८
१२१.	,, ,, गदाधर भट्ट	,, ३३९=		,, ,, गदाधर भट्ट जी	,, २८०
चतुर्विंश माला :—					
१२२.	,, ,, माधवसिंहेर रानी	,, ३६४=		, ,, रत्नावती जी	,, २८९
१२३.	,, ,, विदुरनाम भक्त	,, ३६९=		,, ,, जयतारन विदुरजी	,, ३००

(बँ०भ०)			(हि०भ०)	
१२४.	,, श्री चतुर स्वामी	पृ० ३६७=	,, श्री स्वामी चतुररोनगन नागा (चतुरदासजी)	पृ० ३००
१२५.	,, ,, केवल कुवा	,, ३६८=	,, ,, कूवाजी (केवलदास)	,, ३०२
१२६.	,, ,, हरिदास वणिक	,, ३७१=	,, ,, हरिदासजी (वणिक)	,, ३०८
१२७.	,, ,, करमेतिबाई	,, ३७१=	,, ,, करमैतीजी	,, ३११
१२८.	,, ,, खड़गसेनजी	,, ३७४=	,, ,, खड़कसेनजी (कायस्थ)	,, ३१७
१२९.	,, ,, प्रेमनिधि	,, ३७४=	,, ,, प्रेमनिधिजी	,, ३२१
१३०.	,, ,, केशवराम भक्त	,, ३७५=	,, ,, केशव लटेराजी	,, ३२५
१३१.	,, ,, नरवरेर राजा	,, ३७६=	,, ,, राजा नरवर गढ़का	,, ३२६
१३२.	,, ,, जगदेव पमार	,, ३७६=	,, ,, जगदेव	,, ३२९
पंचविंश माला :—				
१३३.	,, ,, कृष्णदास सोनार	,, ३७९=	,, ,, कृष्णदासजी	,, ३३१
१३४.	,, ,, कृष्णदास साधु	,, ३७९=	,, ,, स्वामी कृष्णदास पयहारी	,, ३३४
१३५.	,, ,, गदाधर भक्त	,, ३८०=	,, ,, गदाधरदासजी	,, ३३५
१३६.	,, ,, भगवानदास	,, ३८०=	,, ,, भगवानदासजी	,, ३३७
१३७.	,, ,, सूबार दिवान	,, ३८१=	,, ,, नृपमणि जगतसिंह	,, ३४०
१३८.	,, ,, लालमतिबाई	,, ३८२=	,, ,, लालमतिजी	,, ३४५

बँगला भक्तमालकार ने इस प्रकार हिन्दी भक्तमाल और प्रियदासजी की टीका का अवलंबन कर अनेक चरित्रों को अपनाया है और उन्हीं के आधार पर अपने अदभुत ग्रन्थ बँगला भक्तमाल का निर्माण किया है।

बँगला भक्तमाल की अधिकाँश मालाओं का आधार हिन्दी भक्तमाल है। अतः मालागत प्रभाव पर विहंगम दृष्टि डालना उपयुक्त है। प्रथम, द्वितीय और तृतीय मालाएँ हिन्दी भक्तमाल की अनुवाद मात्र हैं। द्वितीय माला में चैतन्य पार्षद गुण-वर्णन, तीसरी माला में श्री गौराँग गणोद्देश्य आदि बँगला के अपने हैं। चौथी और पाँचवीं माला का आधार भी हिन्दी भक्तमाल है। छटी माला में चरित्र श्री गुहराजा, श्री परीक्षित महाराज और चरित्र श्री शुकदेव गोस्वामी आदि सब हिन्दी भक्तमाल के अनुसार हैं। सातवीं माला में लालदासजी स्वयं स्वीकार करते हैं :—

नाभाजीर वर्णन आर प्रियाजीर टीका।
संक्षेप कहिला किन्तु अमृत अधिका।

किंचित विस्तार करि कहिवारे चाहि।
चांद धरवारे मति कीटसम नाहिं ।।
(बँ० भ०, पृ० ६६)

अर्थात् 'नाभाजी का वर्णन और प्रियादास जी की टीका संक्षेप से वर्णित हैं, किन्तु अमृत से भी अधिक है। मैं किंचित विस्तार के साथ कहना चाहता हूँ किन्तु मेरी मति बहुत छोटी है।' आठवीं माला में चरित्र अक्रूर भक्तराज, चरित्र श्री बलि महाराज आदि प्रसंग हिन्दी भक्तमाल के अनुसार हैं। नवम माला में हिन्दी का केवल निम्न पद है :—

बाल वृद्ध नर-नारी जिते हों अर्थी उन पाद रज
गोपनंद उपनंद ध्रुव धरानंद महरि यशोदा।······
(बँ० भ०, पृ० १२१)

दसवीं माला में श्री सम्प्रदाय प्रणाली, श्री निम्बादित्य स्वामी, श्री लालाचार्य आदि प्रसंग हिन्दी-भक्तमाल के अनुसार गुम्फित हैं। एकादस समस्त माला के प्रसंग हिन्दी भक्तमाल से गृहीत हैं। बारहवीं माला में चरित्र श्री जयदेव गोस्वामी, चरित्र श्रीधर स्वामी एवं चरित्र श्री बिल्वमंगल महाशय आदि का आधार हिन्दी-भक्तमाल है। तेरहवीं माला में लीलानुकरण चरित्र के अतिरिक्त सब बंगला भक्तमाल का मौलिक है। चौदहवीं माला में मीननाथ गोरखनाथ के प्रसंग के अतिरिक्त समस्त प्रसंग हिन्दी-भक्तमाल के हैं। पन्द्रहवीं माला में चरित्र छोटे विप्र और बड़े विप्र, हरिभक्त यवन श्री श्रेष्ठता आदि प्रसंगों के अतिरिक्त समस्त हिन्दी भक्तमाल के अनुसार हैं। सोलहवीं माला में रविदास एवं पिपाजी के चरित्र हिन्दी-भक्तमाल के आधार पर हैं। सत्रहवीं माला में हिन्दी का केवल निम्न पद है :—

'भजहूँ रे मन, श्रीनन्दनन्दन अभय चरणारविंद रे······'
(बँ० भ०, पृ० २३८)

अठारहवीं माला पूर्णतय: बँगला भक्तमाल की है। उन्नीसवीं माला में श्री जगन्नाथ माधवदास, श्री सूरदास, श्री केशव भट्ट तथा श्री हरिव्यासजी आदि चरित्र हिन्दी-भक्तमाला से लिए गए हैं। बीसवी माला पूर्णरूपेण हिन्दी-भक्तमाल के अनुकरण पर विरचित है। इक्कीसवीं माला में एक दो प्रसंग के अतिरिक्त सब हिन्दी-भक्तमाल का अवलबन हैं। बाइसवीं माला में श्री प्रकाशानंद सरस्वती के प्रसंग के अतिरिक्त समस्त प्रसंग हिन्दी-भक्तमाल के हैं। तेइसवीं माला में श्री मुरारीदास, भक्त श्री तुलसीदास, श्री करमानंद, श्री परुषराम राजगुरु और श्री गदाधर भट्ट आदि चरित्र हिन्दी भक्तमाल से उद्धृत हैं। रस प्रकरण बँगला भक्तमाल का मौलिक विषय है। ग्रंथकार स्वयं लिखते हैं :—

नाभाजीउ रसतत्व स्पष्ट ना वर्णिला।
केवल कहिला मात्र भट्टे शुनाइला॥
अतएव नाभाजीर आशय अमृत।
बुझिया जे लिखि किछु शुद्ध रसरीत॥
कर्ण-रसायन राधाकृष्णेर चरित।
श्रील जीव गोस्वामीर श्रीमुख गलित॥
रस-प्रकरण अन्य साधुर चरित।
दोहा आदि लिखिया वर्णिब मनोनीत॥

(बँ० भ०, पृ० ३३९)

अर्थात् नाभाजी ने रसतत्व का स्पष्ट वर्णन नहीं किया, केवल कथन मात्र भट्ट को सुनाया था। अतएव नाभाजी के आशय-अमृत को समझकर कुछ शुद्ध रसरीत लिखता हूँ। कर्ण-रसायन राधाकृष्ण का चरित है जो श्री जीव गोस्वामी के मुखारविन्द से निकला है। रस-प्रकरण अन्य साधु का चरित है। दोहा आदि लिखकर अपना मन्तव्य प्रकट करता हूँ।[1] चौबीसवीं और पच्चीसवीं दोनों मालाएँ हिन्दी-भक्तमाल के अनुकरण पर विरचित हैं। शेष छब्बीसवीं और सताईसवीं दोनों मालाएँ बँगला भक्तमाल की मौलिक विषय हैं।

---

१. देखिये— लालदास जी का हिन्दी दोहा रस-प्रकरण के सम्बन्ध में—

रसमय मूर्ति श्रो गोकुल नित्य बिहार।
मन में उपजि वासना गौर भय अवतार॥

राधा प्रेम निज माधुरी और आपने हि सीत।
यह आस्वादन-हेतवे मन में उपजे प्रीत॥

निशि दिन राधाभाव धरि श्याम भेय श्रुति गौर।
मन और आनन नयन में राधा विनु नाहीं और॥

मन में राधाभाव धरि आस्वादत निज प्रीत।
हिय वसि रूप गोसाईं के प्रकटिये रसरीत॥

तिनि करि उज्ज्वलनीलमणि निजगम के हिय-हार।
दरसाये सब रसिकको रससागर के पार॥

सो अनुमति लय यथाशक्ति तिहि पदपंकज आश।
युगलप्रेमरसबोधिका रचतु हैं हरिदास॥

(बँ० भ०, पृ० ३३९)

पहले कहा जा चुका है लगभग ४५ हिन्दी पद बँगला भक्तमाल में उद्धृत हैं। वे ज्यों के त्यों बँगला-भक्तमाल में अपना लिए गए हैं। बँगला और हिन्दी के उच्चारण भेद के कारण कुछ पाठान्तर अवश्य हो गया है। निम्न उदाहरण से स्पष्ट होता है :—

बँगला भक्तमाल—

रतन अपार सार सागर उधार किये।
लिये हित चायके बनाये माल करी है॥
सब सुख साज रघुनाथ महाराजजु को।
भक्तसों विभीषणजु आनि भेंट धरी है॥
सभाही की चाह अवगाह हनुमान करे।
डारि दई सुधि भई मति अववरी है॥
राम विन काम कौन फोरि मणि दीने डारि।
खोलि त्वचा नामहि दिखायो बुद्धि हरी है॥

(बँ० भ०, पृ० ४४)

हिन्दी भक्तमाल—

रतन अपार क्षीरसागर उधार किये,
लिये हित चायके बनाई माला करी है।
सब सुख साज रघुनाथ महाराजू के,
भक्तसों विभीषण जू आनि भेंट धरी है॥
सभाही की चाह अवगाह हनुमान गरे,
डारि दई सुधि भई मति अरवरी है।
रामबिन काम कौन फौरि मणि दीनो डारि,
खोलितुचा नाम हौ दिखायो बुद्धि हरी है॥ छंद २३॥

(हि० भ०, पृ० २३)

अनेक हिन्दी पदों का अनुवाद भी हुआ है और अनुकरण व विस्तार भी हुआ है। निम्न उदाहरण से स्पष्ट है :—

बँगला भक्तमाल :—

श्रील सूरदास साधु जगते विख्यात।
परम रसिक कृष्ण निष्ठ सदाव्रत॥
ताहार कवित्व शुनि हेन के आछय।
अन्तर-पुलक-भावे शिर ना चालय॥
महा-अनुभव हय विरक्त महा प्रेमी।
श्रीकृष्ण-साक्षात वास वृन्दावन भूमि॥

अष्टादश सिद्धि थेह उपेक्षा करिल।
चारि मुक्ति आदि चतुर वर्ग तेयागिल।
शिष्यअनुशिष्य क्रमे जगत तारिल।
जार नाम-भेना लोके आश्रय करिल॥
श्रीमान सूरदास साधु त्रिजगत-शूर।
जगतेर आराध्य मानुष्य-सुरासुर॥

(बँ० भ०, पृ० २७६)

हिन्दी भक्तमाल—

सूर कबित सुनि कौन कबि जो नहिं सिर चालन करै॥
उक्ति चोज अनुप्रास बरन अस्थिति अति भारी।
बचन प्रीति निर्बाह अर्थ अद्भुत तुकधारी॥
प्रतिबिंबित दिबि दिष्टि हृदय हरिलीला भासी।
जनम करम गुन रूप सबै रसना परकासी॥
बिमल बुद्धि गुन और की जो यह गुन स्रवननि धरै।
सूर कबित सुनि कौन कबि जो नहिं सिर चालन करै॥७३॥

(हि० भ०, पृ० १४७)

बँगला भक्तमाल में अनेक प्रसंगों का प्रसार हिन्दी भक्तमाल के लघु-वर्णनात्मक पदों के अनुसार हुआ है। अर्थात् हिन्दी भक्तमाल में जिस चरित्र का छोटे से छोटे पद में वर्णन किया है, बँगला-भक्तमाल में उसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। निम्न उदाहरण से स्पष्ट है :—

बँगला भक्तमाल—

निम्बादित्य एक दण्डी गृहे निमंत्रिला।
द्रव्य-आयोजन-पाके सन्ध्या आषि हेला॥
यति शास्त्र-वचन पढ़िया कहे तवे।
रात्रे भिक्षा दण्डीर निषेध विधि रवे॥
इहा शुनि चिन्ति निम्बादित्य महाशय।
निज भक्ति बले साधु सृजिला उपाय॥
आंगिनाय आछये बृहत निम्बवृक्ष।
उदय करिला आसि बृक्षोपरि अर्क॥
कृष्ण भक्त अनुरोधे सूर्यदेव आसि।
प्रहरेक दिवा आछे एमत प्रकाशि॥
भोजन करिया तथा वैसे जबे यति।
सूर्य निजस्थाने गेला लइया सम्मति॥

तखन प्रहर निशि प्रतीत हइला।
यतिर आश्चर्यय बोध तखन जन्मिला।
कृष्ण भक्त निम्बादित्य प्रभाव देखिया॥
चरणे पड़िला यति शरण लइया।
साधुसंग महिमा देखये अद्‌भुत॥
कृष्णभक्त हैला जति छाड़ि ज्ञानमति।
ताँहार चरण-रज मस्तके धारणा॥
करिया कृतार्थ हइ पाई एक कणां॥

(बँ० भ०, पृ० १४८-१४९)

हिन्दी भक्तमाल—

निंबादित्य नाम जाते भयो अभिराम कथा,
आयो एक दंड ग्राम न्यौतो करि आये हैं।
पाक को अवार भई संध्या मान लई यती,
रतीहू न पाऊ वेदवचन सुनाये है॥
आँगन में नीम तापै आदित्य दिखायो वाहि,
भोजन करायो पाछे निशिचिह्न पाये है।
प्रगट प्रभाव देखि जान्यो भक्ति भाव जग,
दाव याव नाम परयो हरयो मन गाये है॥१०५॥

(हि० भ०, पृ० ६७)

लालदास बाबाजी ने भी अपने ग्रंथ में कुछ हिन्दी पदों की रचना की है[1]। हरीराम व्यासजी के भी एक-दो हिन्दी पद बँगला भक्तमाल में उद्धृत है[2]।

---

१. देखिये—बँगला भक्तमाल में पृष्ठ संख्या ९१, १२१, १४५, १४६, १४७, ३२७, ३३९, ३४५ व ३५०।

जल बरोवर मीन रमे जाति बुझके बुद्धि।
जाको जेछे गुरु मिले ताको तैछे सिद्धि॥ (बँ० भ० पृ० ९१)

२. हरिराम व्यासजी का पद इस प्रकार है :—

नवकुमार चन्द्रचूड़ा नृपति सामरो
श्री राधिका तवन मन पटरानी।
× × ×
पलन हिरत दोऊँ जहां ना पोंहचे कोउ।
श्री व्यास महलन निया पीकदानि॥

(बँ० भ०, पृ० २९०)

देखिये हिन्दी पाठान्तर : नवकुँवर······दोऊ व्यास महलन लिए पीकदानी।

(भ० क०, पृ० २१०)

अन्त में श्री अविनाशचन्द्र मुखोपाध्याय के शब्दों में हिन्दी-भक्तमाल की महिमा और बँगला भक्तमाल पर उसका प्रभाव निम्न प्रकार है। वे लिखते हैं —"भगवत भक्त महापुराण नाभाजी ने मानवों के कल्याण साधनोद्देश्य से जाति-धर्म निर्विशेष प्रकृत भगवद् भक्त गणों के चरित्रों को संग्रह करके जन-साधारण के हृदय क्षेत्र में भगवत भक्ति बीज वपन करने के लिए, इस परमोपादेय ग्रंथ की रचना की थी। चरित्र-माधुर्य में इसका एक-एक भक्त एक-एक स्वर्गीय मन्दार कुसुम है। देवभोग्य कुसुमराशि को भक्तिसूत्र में गुम्फन कर उन्होंने जिस माला की रचना की वह इस भूलोक में एकान्त दुर्लभ है। उन महोदय प्रणीत हिन्दी-भक्तमाल और प्रियादास कृत टीका का अवलम्बन लेकर एवं श्री चैतन्य चरितामृत, षटसंदर्भ, लघु भागवतामृत प्रभृति लोकमान्य ग्रंथराजि से लेकर व विविध तत्व संकलन कर, भक्त प्रवर श्री लालदासजी ने इस भक्तमाल ग्रंथ की रचना की थी[1]।"

: ७ :

उपसंहार

आरम्भिक भक्ति आन्दोलन तथा भारत में भक्ति-विकास का संक्षिप्त परिचय देकर प्रस्तुत अध्याय में मध्यकालीन गोड़ीय-वैष्णव बंगला पदावलियों में हिन्दी के प्रभाव का प्रतिपादन किया गया है। भक्ति-आन्दोलन के प्रसिद्ध प्रवर्तकों एवं आचार्यों में चैतन्यदेव का प्रमुख स्थान है। बंगला एवं ब्रजमण्डल के घनिष्ठ सम्पर्क का एक प्रमुख कारण चैतन्य महाप्रभु हैं।

उस समय बंगाली वैष्णव और ब्रजमण्डल के वैष्णव लगभग एक जैसे वातावरण में साँस ले रहे थे, कृष्ण-भक्ति एवं उसके साथ-साथ ब्रजभाषा का प्रचार एवं प्रभाव देशव्यापी हो रहा था। अत. बंगाली वैष्णव ब्रजभाषा के सम्पर्क में आकर

१. भगवद भक्त महाप्राण नाभाजी मानवेर कल्याण साधनोद्देशे जाति धर्म निर्विशेषे प्रकृत भगवदभक्तगणेर चरित्र संग्रह करिया, जन-साधारणेर हृदय-क्षेत्रे भगवद्भक्ति बीज वपन करिवार प्रयासे, एइ परमोपादेय ग्रंथ प्रणयन करेन। चरित्र-माधुर्य ईहार एक एकटि भक्त एक एकटि स्वर्गीय मन्दार कुसुम। एइ दैवभोग्य कुसुमराजि भक्तिसूत्रे गाँथिया तिनि ये माल्य रचना करियाछेन, ताहा भूलोके एकान्त दुर्लभम्। सेइ महोदय-प्रणीत हिन्दी भक्तमाल, प्रियादास कृत टीका अवलम्बन करिया एवं श्री चैतन्य चरितामृत, षड़संदर्भ, लघु भागवतामृत प्रभृति लोकमान्य ग्रंथराजि हइते-विविध तत्व-संकलन करिया, भक्तप्रवर श्री लालदासजी एइ भक्तमाल ग्रंथ प्रणयान करियाछेन।

(बं० भा० भू० पृ० २)

उससे प्रभावित हुये। गौड़ीय-वैष्णव-पदावलियाँ इसकी साक्षी हैं। उस समय ब्रज-भाषा का प्रभाव बंगला भाषा और साहित्य पर पड़ा। यह प्रभाव विशेषकर शब्दावली में अधिक है। इस प्रभाव का विवेचन इस प्रकार हुआ है:—

(१) बंगला-वैष्णव पदावलियों में शब्दगत हिन्दी प्रभाव।
(२) ,, ,, वाक्य विन्यासगत हिंदी प्रभाव।
(३) ,, ,, पदगत (रूपावतरणगत) हिंदी प्रभाव।
(४) भाषा रूपगत हिंदी प्रभाव (मिश्रित भाषा ब्रजबुलि)।
(५) अनुवादावतरणगत हिंदी प्रभाव (श्री भक्तमाल ग्रंथ)।

हिन्दी भक्तमाल के अवलम्बन एवं आधार पर बंगला भक्तमाल और भक्ति-रसामृत सिन्धु का सृजन हुआ था।

अतः उपर्युक्त पंचमुखी प्रभाव विशेषतया १५वीं शताब्दी ई० से लेकर अठारहवी शताब्दी ई० तक और सामान्यतया आधुनिक काल तक आता है।

१. बँगला वैष्णव-पदावलियों में शब्दगत हिन्दी प्रभाव*

शब्द	अर्थ	प्रयोग एवं प्रकरण बंगला और हिन्दी
(अ)		
अओध	ओंधा	बं० अओध आनन, हठ न मानये······ (भूपति, प० क० त०, पद १६९८)
अगोर	रखवाली करना	बं० रामचरण भुज पुन पुन अगोरइ (प० क० त०, पद २७४२)
अगोरइ	रखवाली या प्रतीक्षा करना	,,
अचाहे	दैवात्	बं० श्यामर-काय अचाहे हिलायत······ (कृष्णकान्त, प० क० त०, पद २८८६) हिं० हरिपद विमुख परम गति चाहा······ (तुलसी, रा०च०मा०, बा०२६७, पृ० १३२)
अछु	अस	बँ० को अछु वेदन सहइ······ (गोविन्ददास, प० क० त०, पद १७४) हिं० अस बिचारि जिअँ जागहु ताता······ (तुलसी, रा०च० मा०, लं० ६१, पृ०४३८)

*मूलत अधिकाँश शब्द इस शब्दावली में हिन्दी के हैं, कुछ बँगला के भी हो सकते हैं, कुछ सामान्य भी हैं, अतः इस शब्दावली में हिन्दी और बंगला के कुछ शब्द इतने सामान्य और घुलेमिले हैं कि उनमें भेद करना सरल कार्य नहीं है।

अधिकाइ	अधिकता	बँ० कामु युनुराग बाढ़ये अधिकाइ (प० क० त०, पद २५६०) इकटक नैन हइ छवि की अधिकाइ (पृ०३१८)
अनगनि	असंख्य (अगणित)	बँ० मोरबल अनगनि (प० क० त०, पद १५५७) हिं० मुक्ति-मुक्ता अनगने फल (१,३३८)
अनत	अन्यत्र	बँ० से तुमि अनत गिया ····· (चैतन्यदास, प० क० त०, पद १६६०) हिं० मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै। (सूरदास, सू० सा०, १।६८)
अनुमानलुँ	अनुमान करूँ	बँ० जो हाम हेरलूँ तें अनुमानलुँ (प० क० त०, पद १६१६) करत कोटि विधि उर अनुमाना (मा० २।१२१।२)
अनुमोदइ	समर्थन करता है	बँ० कत विदगधजन रस अनुमोदल (प० क० त०, पद ६३७) हि० कहहिं सुतहिं अनुमोदन करहीं (मा ७।१२६।३)
अनुरोधइ	अनुरोध करता है	बँ० नीलज चीत पिरिति अनुरोधई (प० क० त०, पद ३६१) हि० राखहुँ सुत करउँ अनुरोधूँ (मा० २।५५।२)
अनुसरइ	अनुसरण करता है	बँ० खेने खेने नयन कोने अनुसरइ (प० क० त०, पद ६६१) हिं० नहिं कर लकुटि सुमति सतसंगति, जिहिं आधार अनुसरइ (१।४८)
अपशोसइ	अफसोस करता है	बँ० राधा-कान्ह एक सग बिलसत मनही मन आसोसो (प० क० त०, पद १२२७)
अब	अब	बँ० अब विहि सौ सब, बेकत कयल सखि— (ज्ञानदास, प० क० त०, पद २३०) हिं० अब कैसें ब्रज जात बस्यौ— (सूरदास, सू०, १०।३८५०)
अवगाइ	अवगाहन करता है	बँ० प्रेम तरंगे अंग अवगाई (प० क० त०, पद ५३) हिं० प्रेमवारि अवगाह सुहावन (मा० श०, २६२१;१)

अवगाहइ	अवगाहन करता है	बँ० पिरितिक रीत कौन अवगाहइ (प० क० त०, पद ६४०) हिं० उभय, अपार उदधि अवगाहा (मा० १६।१)
अवगाहि	डूब कर के	बँ० माधव बुझलु तोहे अवगाहि (प० क० त०, पद ३७६) हिं० वदन हरि मूथो, माता मन अवगाहि (सू० सा० १०।२५३)
अवगुण	अपगुण	बँ० सो सब सगुन एकपिक बोलत मधुरिम वाणी (प० क० त०, पद ४८१) हिं० प्रभु मेरे अवगुण चित न धरो (सू०सा०)
अवतरि	अवतार लिया	बँ० द्वीपे अवतरी रंगे (प० क० त०, पद १३) हिं० धन्य सो दिन जिहि अवतरि। (५८६)
अवधारलु	धारण करलूँ	बँ० मन अवधारि कह सुसम्वाद (प० क० त०, पद १६८)
अवधारि	धारण करके	बँ० शुन हे कानूक इह अवधारि (प० क० त०, पद २५६)
अवलम्बई	अवलम्बन करता है	बँ० दूहूँ रसे भासि दूहूँ अवलम्बई (प० क० त०, पद २७५) हिं०राम नाम अवलम्बन एकु (मा० १।२७।४)
अवलोकई	देखता है	बँ० अवलोकइ तहिं उलसित नयने (प० क० त०, पद २६२३) हिं० निसिदिन नहिं अवलोकहिं कोका (मा० १।८५।३)
अवहन	मै०, ऐसे	बँ० अवहन यबहुँ मोहे परि होयत (प० क० त०, पद १६६६)
अवहिं	अब	बँ० अवहिं कानु से करबि प्रेम भोगे (प० क० त०, पद ६७१)
अवहुँ	इस समय	बँ० अबहुँ राजपथे पुरजन जागि (प० क० त०, पद १०१२)
आजाने	अज्ञात भाव से	बँ० आजाने सुललित बाहु आजाने (प० क० त०, पद १४६४)

		हिं० बिपति विषय न तजतहों, तोतें अधिक आजान्यों (वि० प० ६२)
अभागिया	दुर्भाग्य-व्यक्ति	बँ० मुञि अभागिया विष विषये मातिया (प० क० त०, पद २६८५)
		हिं० देइ अभागहिं भाग को, को राखे सरन सभीत (वि० १६१)
अभिलापइ	अभिलापा करना	बँ० राधामोहनदास अभिलाषइ (प० क० त०, पद २५६३)
		हिं० अस सुकृति नर चाह जो मन अभिलापहि (जा० ७६)
अभिसारइ	अभिसार करता है	बँ० घनि इह पावन भूमि जहाँ गोविंद अभिसारि (प० क० त०, पद ३४४३)
अभिसिंचइ	अभिषेक करता है	बँ० को आने काहे लागि अभिसिचई (प० क० त०, पद १५७६)
अरु	और	बँ० स्तम्भ काछ अरु अगे पलक मरु (प० क० त०, पद १५६)
		हिं० दानि कहाउब अरु कृपनाई (मा० २।३५।३)
अलकारि	ललकार के	बँ० मीरि रोयत नाह धनि अलकारि (प० क० त०, पद २५०२)
अलसाइ	आलस्य करता है	बँ० जागि बोल अलसाइ (प० क० त०, पद २८३८)
		हिं० जपत जीह रघुनाथ को नाम नहिं अलसातो (वि० १५१)
अहिरिनि	अहीरी	बँ० नें कहुँ न थकते पानि, निरदई अहीरि (प० क० त०, पद ३४८)
		हिं० अहिरिन हाथ दहड़ि सगुन लैई आवइ हो (रा० ५)

(आ)

आँखर	अक्षर	बँ० गावों हरि को सोहिलों ही मन आखर दे मोहें (१०।४०)
		हिं० ढाई आखर प्रेम के पढ़े सो पंडित होय (कबीर)

आँखि	आँख	बँ० अरे कमल दल आँखि (प० क० त० १८६६) हिं० अब न आँखि सर आवत कोऊ (मा० १।२६।३)
आँटि	दृढ़ करके	बँ० कटि आँटि परिपाटि परे निल घाटिया (प० क० त०, पद २७८)
आइलुँ	आऊँ	बँ० आइ आज कलु मलु किरूप देखिया अइलुँ (प० क० त०, पद २७६)
आओलुँ	आजाऊँ	हिं० बरसा विगत शरद रितु आई (मा० ४।१६।१)
आग	अग्नि	हिं० आगि अग्नि सहना सुगम, सुगम खड़्ग की धार (कबीर)
आगरि	आगर	बँ० अमृत पुतलि रूपेर आगरि (प० क० त०, पद १८७) हिं० मोहन ते रस रूप आगरी करतिन यानि निकाइ (सू० सा० १२३५)
आगि	आगे	बँ० सहज अबल आगे अनुसरे (प० ब० त०, पद ६५८) हिं० पाछिले करम सभारत नाहिं कछु आगे
आगिला	अगला	बँ० कर जोड़ आगे दाँड़ाइयाँ (प० क० त०, पद २२३३) हिं० श्रीदामा चले रोइ जाइ कहियो नंद आगे (सू० सा० ५८६)
आगु	आगे	बँ० मो यदि सिनाड आगिला घाटे (प० क० त०, पद ६७६)
आगुवाढ़ि	आगे बढ़ के	बँ० आगुवाढ़ि देखिला गोविन्द (प० क० त०, पद २८६७)
आगुओनि	अगवानी	बँ० हाम आगुवानी आगुनि पठव (प० क० त०, पद ७१) हिं० सेवक सदन स्वामि आगमनु (मा० २।६।३)

आगुयान	अगला	बँ० आगरे एकलि चललि धनि आगुयान (प० क० त०, पद २११)
आगे	आगे	हिं० धरनि सिधारिय सुधारिय आगिलो काज (वि० ११८२)
आगोर	अगौर, स्नान	बँ० हेर इते प्रति अंग उनंग आगौर (प० क० त०, पद ७५)
आगोरि	स्नान करके	बँ० तब हाम करे आगौरि (प० क० त०, पद २६१)
आघन	अगहन	बँ० आघन मासे आश बहु आछिल (प० क० त०, पद १७४८)
आँगुटि	अँगूठी	बँ० अँगुलक आँगुटि सोभल बाहुटि (प० क० त०, पद ६७०)
आजु	आज	बँ० आजु मझु शुभ दिन मेला (प० क० त०, पद २०६) हिं० आज विराजत राज हैं दसकंठ जहाँ को (वि० प० १५२)
आजुक	आजका	हिं० मुनि पद बंदि करिज आजु (मा० २।२१४।२)
आनत	अन्यत्र	हिं० हरि चरणारविंद तजि लागत अनकतहूँ तिनकी मति काँची (११।१८)
आनमन	अनमना	हिं० धरै धीर अनमने रूदन बल सो हठ करनि परे (पृष्ठ ३३१)
आँधायारि	अँधेरी	बँ० मुख शशि भर किये रोये आँधियार (प० क० त०, पद २०७) हिं० भय उदधि जमलोंक दरसे निपट ही अँधियार (रामचरित मा० १।८८)
आप	स्वयम्	बँ० ताक गौरव कनु आप (प० क० त०, पद १३८८) हिं० जाके हृदय साँच है, ताके हृदय आप (कबीर)

आपना	अपना	बँ० अपना सजाअन दिवाली (प० क० त०, पद २७९)
आपनाहि	अपनाहि	बँ० आपनक बात आपनाहि समुझवि (प० क० त०, पद ४५४) हिं० भजि रघुपति करू हित आपना (मा० ६।५६।३)
आविर	अबीर	बँ० आविर अरुण सब (प० क० त०, पद १४५८) हिं० चोवा, चंदन अविर, गलिनि छिरकावन रे (सू० सा० १०।१८)
आयलुँ	आऊँ	बं० कहइते आयलुँ (प० क० त०, पद १८८) हिं० तिहि धर देव, पितर काहे आयो
आयानी	नासमझ	हिं० सो भावी वस रानि अयानि (मा० २।२०७।३)
आये	आये	बँ० निके बनि आये हो नंददुलाल (गोविददास प० क० त०, पद २४२५) हिं० आनंद सहित सबै ब्रज आये सूरदास (सू० सा० १।५०८)
आराधिलुँ	आराधना करूँ	हिं० कैसे परताप छैटें, रघुपति, आराध्याँ (रा० म० च० ६।६७)
आलस	आलस्य	हिं० मायँ कुमायँ खनख आलस हूँ (मा० १।२८।१)
आलाई (बालाई)	अलाय-बलाय	बँ० आलाइ-बालाइ तारनिये (प० क० त०, पद २५२५)
अलापई	अलाप करना	बँ० ना जानिये को एछे मुरूलि आलापइ (प० क० त०, पद ३९) हिं० अलापति सुर धारति पिय-संग (वि० ३५१ [७६])
आलिंगई	आलिंगन करता है	बँ० दुहुँ आलिंगइ कतवार (प०क० त०, पद ७५८)
आसु	आँसू	बँ० जटिला शाशु आसु भरि रोयइ··· (बलराम, प० क० त०, पद २४८९)

		हिं० मुख आँसू अरु माखन-कनुका निरखि चैन छवि देत ।। (सूरदास, सू० सा०, १०।३४६)
आहीर	अहीर	हिं० नैकहूँ ना थाकते पानि, निरदह आहीरी (सू० ब्र० भा० श० को० ३४८) (प० क० त०, पद ३४८)
(इ)		
इतिउति	यहाँ वहाँ	बँ० उभये चकित भुजे इतिउति पेखलुँ (प० क० त०, पद २४४) हिं० पग न इतउत धरन पावत, उरझि मोह सिंवार (सू० सा० १।६६)
इनके	इनके	बँ० इनके क्षीण उनहीं अवलम्ब (प० क० त०, पद १०६) हिं० इन्हके दसा न कहैऊँ बखानी (मा० १।८५।४)
इनहि	इन्होंने	(बँ० तुँहि पुराह इनके साथ (प० क० त०, पद २८८४) हिं० इन्हीं हरषप्रद बरसा एका (मा० ३।४४।२)
इह	यह	बँ० दुहुँ एक योग इहके कहे (प० क० त०, पद ८२) हिं० तासौ भिरहु तुमहि मों लायक इह हैरानि (वि० २४२)
इहाँ	यहाँ	बँ० मझु चीत गेओ तहाँ देह रहुँ इहाँ (प० क० त० पद, २०२५) हिं० इहाँ लागिहि राउर माया (मा० २।३३।३)
(उ)		
उगइते	उगता है	बँ० हिमकर उगइते दिनकर तेज (प० क० त०, पद १८५७) हिं० मैं तैं मूँदयों मोहतम, उगो आय भानू (वै० ३३)

उगये	उदय होकर	बँ० उगये उगये कत तारा (प० क० त०, पद ५४९) हिं० जिहिं सरूप मोहे ब्रह्मादिक, रवि ससि कोटि उगैया
उगरइ	उगलते हुए	बँ० बारि निश्वास मधुर विष उगरइ (प० क० त०, पद ७०८) हिं० मनों क्रोध बस उगलित नाहीं (मा० १५६।३)
उघट	उघाड़इ	बँ० उघट घट धारे दिग दिग (प० क० त०, पद १५५७) हिं० कोउ निरततकोउ उघाटित रवे (सू० सा० ४४८)
उघाड़िया	उघाड़ कर	बँ० भाति रतन खनि उघाड़िया प्रेम मनी (प० क० त०, पद २३१०) हिं० नयन उघारि सकल दिसि देखी (मा० १।८७।२)
उछलइ	उछलते हुए	बँ० ताहाँ ताहाँ उछलइ (प०क०त०, पद ८६) हिं० उछरत उतरात हहरात जरि जात
उछाह	उत्साह	हिं० ताकत सराव में विवाह के उछाह कछू (क० ७।१४८)
उजागर	जागरण	बँ० रजनि उजागर नाह पंथापर (प० क० त०, पद ३६९) हिं० पंडित मूढ़ मलीन उजागर (मा० १।२८।३)
उजारइ	उज्जल करते हुए	हिं० मानहुँ पयनिधि मथत, फेन फटिचंद उजारयो।
उजारलुँ	उज्जल करूँ	बं० ताम्बूल साजालूँ दीप उजारलुँ (प० क० त०, पद २८२)
उजारा	उजाला	हिं० हरि के गर्भवास जननी को वदने उजारो लाग्यो (सू० सा० १०।४)
उजियाला	प्रकाश	बँ० गोरा रूप हिये उजियाला (प० क० त०, पद ९७४) हिं० तुलसी भीतर बाहिरो जो चाहसि उजियार (दो० ६)

उठइ	उठते हुए	बँ० स्वामिक शयन मंदिरे नहि उठइ (प० क० त०, पद ३६) हि० उठइ न कोटि भाँति (मा० १।२५०।४)
उड़न	उड़ान	बँ० मांहाँसे चुड़ार ठान शिखि पूछेर उड़ान (प० क० त०, पद १६५१) हि० ससि निसि अलि उड़न न पावे (सू० सा० १०।६५)
उढ़नी	ओढ़नी	बँ० शिथिल राइ कुच कंचुक उढ़नी (प० क० त०, पद २६२३) हि० पीत उढ़नियाँ कहा बिसारी (सू० सा० ६६४)
उतरलुँ	उतर जाऊँ	हिं० उदधि अपार उरत नहिं लागी बार (क० ६३४)
उतारलुँ	उतारलूँ	बँ० नैनन सम्रें जब वसन उतारलुँ (प० क० त०, पद २६१) हिं० उदधि अपार उतरत नहीं लागी कपिदल छिनक बिलंब (मा० श० ६।१०६)
उदयत	उदय होते हुए	बँ० निति निति उदयते गगनहिं चंद (प० क० त०, पद १७५२) हिं० अरुणोदय समुझे कुमुद, उड़गन जोति मलीन (मा० १।२३८)
उनहि	उन्होंने	बँ० इनके क्षीन उन्हीं अवलम्ब (प० क० त०, पद १०६) तसु फल उन्हीं देउँ कर सामा (मा० ३३।४)
उपजे	उत्पन्न हो	बँ० रहि रहि धनि हिये उपजे तरास (प० क० त०, पद २२१) हिं० प्रेम नाबाड़ी उपजे नाहिं हाट बिकाय
उपेखलुँ	देखलूँ	बँ० सखि हे कोहे उपेखलुँ मान (प० क० त०, पद ४४३)
उवटन	उवटना	बँ० उवटने तुलि मैला (प० क० त०, पद २५३५) हिं० भइन्ह सहित अन्हावाए (मा० १३।३६।२)

उवरे	फिरे	बँ० परवश जीउना उवरे धनु मान (प० क० त०, पद ६४७) हिं० जे राखै रघुवीर ते उवरे तेहि काल महुँ (मा० १।८५)
उभारि	उत्साहित किया	बँ० ताड़ि पत्र खण्डे उभारिला वीरवर (कवि कंक०)
उमगु	उमंग	बँ० उमगि कहइ सखि करह पयान (श्री० की०)
उमड़इ	उमड़ते हुए	हिं० तबहुँ क्षीर उमड़ि पड़ तापे विरह वियोग आगे देई झाँपे (वि० प० १४६१)
उरझाइ	उलझाकर	बँ० चलइल राजपथे दुहुँ उरझाइ (शेखर प० क० त० पद २५५५) हिं० छूट न अधिक अधिक अरूझाई (तु० रा० च० मा० उ० ११७, पृष्ठ ५५७)
उलट	उल्टा	बँ० उलट पालट करे बार पाँच छय (प० क० त०, पद ६४)
उलटि	उलटकर	बँ० उलटि धरिलेक हाथ (श्री० की, प० क० त०, पद ४६)
उलसइ	उल्लखित हो	बँ० उलसित दुहे दोहाँ हेरि, उलसित भेल गोरि (प० क० त०, पद २१३५)
उह	वह	बँ० सखि काहे कहलि उह नाम (प० क० त०, पद ७८) हिं० उहे काछनि कटि पीताम्बर सीस मुकुट अति सोहत (सू० सा० ५६५)
उन्हके	उनके	बँ० परम प्रकथ फेर उन्हके नेल (प० क० त०, पद १०६) तसु फलु उन्हहिं दे अकरि सामा (मा० २।३३।४)
(ऊ)		
ऊड़त	उड़ते हुए	बँ० पवनक अंग संग करि उड़त (प० क० त०, पद १७३३) हिं० उड़त उड़त सुक पहुँचयो (१।२२६ सू० सा०)

ऊपर	ऊपर	बँ० हृदय ऊपर सोहे कुच युग (प० क० त०, पद २१) हिं० लंका शिखर उपर आगारा (मा० ६।१०।४)
(ए)		
एकतान	एक स्वर	बँ० एक तान हइया कछुर करिया (प० क० त०, पद २५५७)
एकला	अकेला	बँ० वसिया विरले थाकये अकेले (प० क० त०, पद ३०) हिं० एकला संग लगाइ बीचहि छाड़यो, निपट अनाथ अकेलो (सू० सा० १।१७५)
एकलि	अकेली	बँ० एकलि तोहारि नाम (प० क० त०, पद २१७) हिं० विपिन अकेली फिरहु केहि हेतु (मा० १।५३।४)
एतहुँ	इसको	बँ० गोविन्ददास कह एतहुँ ना जानह (प० क० त०, पद १९०४) हिं० एतहुँ सुनु अजहूँ सिखावन एह (रा० च० मा०)
एता	इतना	बँ० धनि ऐ अवश्य एता (प० क० त०, पद १९१८) हिं० एतने बड़ो अपराध (वि० ७२)
एतनि	इतना	बँ० नाइ आओल एतनि भाखण (जगदानन्द, प० क० त०, पद १९७५) हिं० नंदनंदन सौ इतनो कहियो, सूरदास (सू० सा० १०।४०६६)
एतैनैं	इतना	बँ० भनहुँ विद्यापति एतैनैं (प० क० त०, पद ९११) हिं० राज धरम सरबसु एतनोइ (मा० २।३१६।१)
एवे	अब	बँ० पूर्वेर पापी तराइले एवे ना तराओ (प० क० त०, पद ११६) हिं० हो रघुनाथ, निशाचर कइ संग अवै जातहौं देखि (मा० श० ९।६४)

एह	यह	बँ० एसखि बिहरये को पुन एह, (घनश्याम प० क० त०, पद १५०) हि० सुनु अजहुँ सिखावन एह (तु० वि० प०, पद १९०)
एहेन	ऐसे	बँ० ऐहेन रजनि केनने गँवाँर (प० क० त०, पद ३४५) हि० एहुँ मिस देखो पद जाइ (मा० १।२०६।४)
(ऐ)		
ऐछन	ऐसा	बँ० ऐछन मधुरिम नाम (प० क० त०, पद १०) हि० साधु अवज्ञा कर फलु ऐसा (मा० ५।२६३)
ऐछे	ऐसे	बँ० राइत ऐछे बसा हेर एक सखि (प० क० त०, पद ३७) हि० ऐसे को ऐसो भयो कबहुँ न भजेबिन बानर के चरवाहे (क० ७।५६)
(ओ)		
ओ	वह	बँ० भावना ओ तुया अन्तरे अन्तरु (प० क० त०, पद ३७१) हि० यद्यपि मीन पतंग हीन मति मोहि नहिं पूंजहिं ओऊ (वि० ९२)
ओझा	उपाध्याय	बँ० केह कहे माई ओझा रे (प० क० त०, पद १३५) हि० तुलसि रामहि परिहरे निपट हानि सुनुओझ (दोहा ६८)
ओआरों	वारों	बँ० मदन कोटि उवारी (ओआरों) (प० क० त०, पद १०८६) हि० वारों हों वे करजिन, सूरदास (सू० सा० १०।३६२)
ओर	तरफ	हि० होउ नात यह ओर निबाहू (तुलसी मा० २।२४।३)

(क)

कङन	कौन	बँ० माधे निदाघ कङन पातियायब, (गोविन्ददास प० क० त०, पद १८१४) हिं० कौन सुने यह बात हमारी (सूरदास सू० सा०, पद १।१६०)
कछ	कुछ	बँ० कछुइ नाहि अवधाय (भूपति प० क० त०, पद ११४) हिं० नाथ न कछु मोरि प्रभुताई (तु० रा० च० म० सु० ३३, पृ० ३८८)
कतये	कितना	बँ० तोहारि निदान हाम कतये शुनाइलुँ (परमानन्द प० क० त०, पद १८३) हिं० यह लघु जलधि तरत कति बारा (सु० रा० च० मा० लं० १, पृ० ४०३)
कतहुँ	कहीं	बँ० कतहुँ प्रेमधन हिय माहा साँचि, (गोविन्ददास प० क० त०, पद ३६२) हिं० मू दे आँखि कतहुं कोउ नाहीं (तुलसी रा० च० मा० बा० २८०)
कतिहुँ	कहाँ	बँ० रमणिक हुँकति कतिहुँना पेखलुँ (प० क० त०, पद १७१)
कतेक	कितने	बँ० ना जानि कतेक—मधु श्याम नामे आछे गो (प० क० त०, पद १४१)
कनेठ	छोटा	बँ० लखइ ना पारिये जेठ कनेठ (प० क० त०, पद ८३)
कब	कब	बँ० कबहि गेयान शुन होइ चाहइ (प० क० त०, पद १७१) हिं० सकल कहहिं कब होइहि माली (मा० २।११।३)
कबरि	कबरी	बँ० फुयल कबरी—उरहिं लौटायत (प० क० त०, पद १५८)
कबलइ	ग्रास करता है	बँ० तुया मुख चाँद कमल आहि कबलइ (प० क० त० पद १०४३)
कबहुँ	कब	बँ० जल बिनु मीन जैन कबहुँ ना जिये (प० क० त०, पद ९१२)

		हिं० जो पाय कबहुँ मुनि कोइ (मा० २।१२४।४)
कयलुँ	करूँ	बँ० हामं कयलुँ परिहार (प० क० त०, पद ४८) हिं० नीर क्षीर ज्यों दोउँ मिलि गये । न्यारे होत न न्यारे कये (११-६)
कर	करना	बँ० कृश-कटि कर अवगाह (प० क० त०, पद ७०६) हिं० कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा (क०२)
करई	करता है	बँ० मनहि करये अनुताप (प० क० त०, पद १) हिं० सुन्दरता कहुँ सुन्दर करइ (मा० १।२३०।४)
करत	करता है	बँ० ताहे करत उपदेश (प० क० त०, पद १) हिं० बिनु बदले उपकार करत
करतारि	करतल-ध्वनि	बँ० चोदिगे सखिगन देइ करतारि (प० क० त०, पद २८७०) हिं० रामकथा सुन्दर करतारी (मा० १।११४।१)
करलुँ	करूँ	बँ० कुसुमक हार कयलुँ कतराये (प०क०त०, पद ४०४)
करौं	करूँ	बँ० ताहार चरनैं करौं सेव। (प० क० त०, पद ११८) हि० रसना एक अनेक स्याम गुन कहँ लगी करौं बखानौ (सू० सा० १।११)
कलिजा	कलेजा	बँ० कलिजा कागज करि लिखि चाँद—मुखे (प० क० त०, पद १७३७) हिं० करेजो कसकतु है (क० ६।१६)
कहइ	कहता है	हिं० धरि धीरजु तब कहइ निषादु (मा० २।१४३।१) बँ० बिरले बसिया सखीरे कहइ (प०क०त०, पद ३५)
कहि	कहाँ	बँ० हृदय आनंद मुख कहि ना जाय (प० क० त०, पद २५५६) हिं० काहुक कहि नादोष

केहों	कहाँ	बँ० तोहे केहों सुबल साँगाति (प०क०त०, पद ५६) हिं० कहा कहौं हरि केतिक तारे पावन पद-परतंगी (सू० सा० १०२१)
(का)		
का	क्या	बँ० का देइ कहइ सम्वाद (गोविन्ददास, प०क०त०, पद १७४) हिं० का छति लाभु जूनु धनु तोरे (रा० च० मा० बा० २७२)
काड़िया	बाहर किया	बँ० रतान काड़िया श्रति यतन करिया गो (प० क० त०, पद ७६०)
काढ़ई	बाहिर करते हैं	बँ० सो गुण गाइ श्वास खेने काढ़इ (प० क० त०, पद ७७०)
कानया	कन्हैया	बँ० श्राकुल भइ बहु कानया (प०क०त०, पद १६६८)
काहाँ	कहाँ	बँ० सो हैन रसिक पिया काहाँ रहु (गोविन्ददास, प० क० त०, पद ४५३) हिं० कहु कँह तात कहाँ सब माता (रा० च० मा० श्र० १५६)
काहिं	किसको	बँ० कि करह ए सखि श्रायलि काहिं (प० क० त०, पद ४५८)
काहुँक	किसको	बँ० बँचवि काहुँक संग (प० क० त०, पद ४३६)
काहा	क्या	बँ० से हैन रसिक पिया काहाँ रहुँ काहा करू (गोविंददास, प० क० त०, पद ४५३)
काहि	किसको	बँ० दोख देयब श्रब काहि (प० क० त०, पद ६३६)
काहु	किसको	बँ० श्रनुभव काहु न पेखि (प० क० त०, कविलूलभ, पद ६३७)
काहुक	किसको	बँ० हरि श्रब हासि रभसे पुन काहुके (गोविंददास, प० क० त०, पद ६२)
(कि)	की	षष्ठी-विभक्ति का चिह्न
किजै	कीजै	बँ० कृष्णदास प्रभु एइ कृपा किजै (प० क० त०, पद २८६०)

		हिं० मैं मेरी कबहुँ नहिं कीजै, कीजै पंच-सुहावे (सू० सा० १।३०२)
किया	किया	बँ० मिटत तलप जम कालकि, आरति किये मदन गोपाल कि (रघुनाथदास, प० क० त०, पद २८६९)
		हिं० अंतर-दाह जु मिट्यो व्यासको, इकचित् हो भागवत किये (सूरदास, सू० सा० १।८९)
कीजै	कीजिए	बँ० ए दुहुँ मंगल आरति कीजै, रामराय (प० क० त० पद २८४४)
		हिं० अति व्याकुल अकुलाति विरहिनी सुरति हमारी कीजै (सूरदास सू० सा० १०।४०६४)
कुंदन	कुंदन, सोना	बँ० कुंदन मनया जिनि अंग झलमलि (प० क० त०, पद १०२)
		हिं० औसन एक हुतासन बैठी, ज्यों कुंदन अरू नाइ (सू० सा० ९।१६२)
कूजई	कूजती है	बँ० कूजये चौदिश होइ, आकुल (प० क० त०, पद २४७९)
		हिं० कूंजहि कोकिल गुंजहिं भृंगा (मा० १।१२६।१)
केशो	केशव	बँ० मथुरा में केशवराय विराजे (प० क० त०, पद २९९८)
		हिं० करि गहि छीर पियावत अपनो, जानति केसवराई (सू० सा० १०।५२)
केह	कौन	बँ० मत परबोधव केह (प० क० त०, पद १८३१)
		हिं० सो मैं बरनि कहौं विधि केंही (मा० २।१३९।४)
केहो	किसको	बँ० एमत ना हउ केह (प० क० त, पद ८१६)
		हिं० कहई काहुहि लात चपेटन्हि केहू (मा० ६।४४।४)
केछन	कैसे	बँ० केछन ऐछन साहस होय (प० क० त०, पद ४३)

		हि० काहि, जाकों ऐसो सुत बिछुरे, सो कैसे जीवे महतारी (सू० सा० १०।११)
को	विभक्ति, कौन	बँ० रूप शिल गुण ताहे सुन्दर कोहे (गोपालदास, प० क० त०, पद २९६६)
		हि० तुमहिं अछत को बरने पारा (रा० च० मा० बा० २७४)
कोई	कोही	बँ० जिउ निकसब यब राखव कोई (प० क० त०, पद ६४)
		हि० हरि सों मीत न देख्यो कोइ (१।१०)
कोङन	कौन	बँ० कौन विहि मभु नाह ले गेओ (गोविददास, प० क० त०, पद १८१०)
		हि० कौन बात यह कहत कन्हाई (सूरदास सू० सा०, १०।१५३९)
कोंवर	कुमार	बँ० कालिया कोंवर नामे काँपि झांपि उठे (प० क० त०, पद ११८)
		हि० ये उपहि कोउ कुंवर अहेरी (गी० २।४२)
कौन	कौन	बँ० कौन गेलाम जल भरिवारे (प० क० त०, पद १२४)
		हि० नैन कौन की अंजन रखा दितर कहूँ छीजै (सू० सा० २१९७)
कोय	कोई	बँ० ए घाद साधिल जानि कोय (प० क० त०, पद ३६३)
		हि० निश्चय किए मुक्त सब माधव तातें जिये न कोय (सा:रा० २९५)
कोयिल	कोयल	बँ० सकल कठे नहि कोयिलवना वानी (प० क० त०, पद १०९)
		हि० तुलसी पावस के समयधरी कोकिलन मौन (दो० ५६४)
कोहे	कोही	बँ० रूप शिल गुन ताहे सुंदर कोहे (प० क० त०, पद २९६६)
कौन	कौन	बँ० कौन विहि मभू नाहले गेओ (प० क० त०, पद १८१०)

		हि० तहँ तुलसी के कौन को काको तकियारे (त्रि० ३३)
(ख)		
खमक	वाद्य-यंत्र विशेष	बँ० खमक डफ रवाब खमक सर-मण्डल (प० क० त०, पद २७१६)
खरग	खड़ग	बँ० कंकण खरगहि तौपउ तौडि सबहुँ तनु (प० क० त०, पद २४६३)
		हि० कुसल अति आड़न खाड़े (मा० २।१६१।३)
खाइलूँ	खाया	बँ० बहुत भजनि बल होइ तुम्हारें (प० क० त०, पद ११७)
		हि० पान खाऔत पिक गीमत ढ़रकत (मा० २।२२२)
खायत	खाया	हिं० चलत पयादे खात फल पिता दीन्ह तजिराजु (मा० २।२२२)
खुनि	खान	बँ० उथलिल आगुनेर खुन (ज्ञानदास, प० क० त० पद ६६०)
		हि० उघरि आए कान्ह कपट की खानि (सूरदास, सू० सा० १०।३८५७)
खैयाति	ख्याति	बँ० आचार्य ठाकुर खैयाति जाहार (प० क० त०, पद १७)
खेल	खेल, क्रीड़ा	बँ० सौ आन जन सऐं करू आन खेलि (प० क० त०, पद ७६)
खेलत	,,	बँ० खेलत ना खेलत लौक देखि लाज (प० क० त०, पद ८०)
खोजलूँ	खोजा	बँ० ना खोजलूँ दूति ना खोजनुँ आन (रामानंद, प० क० त०, पद ५७६)
खोई	खोकर	बँ० सखिक संगहि खोइरि (प० क० त०, पद १८११)
(ग)		
गँवार	ग्रामीण	हिं० गोंड गँवार नृपाल महि (दो० ५२६)

गठई	गढ़ता है	बँ० मांगल गठई भवन परताव (प० क० त०, पद ६६६) हिं० हों दीन वित्त हीन कैसे दूसरी गढ़ाइयों (क० २।८)
गदगद	गदगद	बँ० गदगद वचन नयन जल (सा० ३४६) बँ० कहइत कह गदगद (प० क० त०, पद ६३६)
गरजत	गर्जना	बँ० चलत खलत पुनपुन उठि गरजत (प० क० त०, पद ६३६) हिं० गरजत नभ घनघोरा, प्रियाहीन डरपत मन मोरा (रा० म० च०)
गरजई	गरजता है	हिं० गरजई मेघ भूमि नियराये (रा० म० च० कि०)
गलई	गलता है	बँ० जहाँ जाहाँ धनु चंदन श्रमजले गलइ (प० क० त० पद, २३५) हिं० गरै-गलानि कुटिल कैकेई (रा० म० च० अ०)
गहना	ग्रहण	हिं० भगत हेतु लीला तनु गहइ (मा० १।१४४।४)
गहि	पकड़ कर	बँ० प्रेम हेम गहि आपन रंग दइ (प० क० त०, पद ३७१) हिं० गहि वद भरत मातु सब राखीं (मा० २।१७०।१३)
गाँठि	गाँठ	बँ० गाँठिक हेम वदनमहँ झलकइ (प० क० त०, पद २२७) हिं० मनि गिरि गहि छुटि जनु गाँठी (मा० १।१३५।३)
गाथिलुँ	ग्रंथन करूँ	हिं० मंगलय मुकुता मनि गाथें (मा० १।३७।५)
गाइ	गा-कर	हिं० भक्त-बछ्ल नाम निगम गाइ गये हैं (सू० सा० १।२३)

गागर	कलसी	बँ० कुच युग गिरि कनक गागरि (प० क० त०, पद २०६) हिं० ज्यों जल माँह तेल की गागरि सिरतें अब ऐसी बूँदन (सू० सा० ३३३५)
गाढ़ा	गंभीर	हिं० कहसीता धरि धीरजु गाढ़ा (मा० ३।२८।७)
गिरह	गिरना	हिं० गिरहि न तब रसना अभिमानी (मा० ६।३३।४)
गेडुया	गेंद	बँ० फूलेर गेडुवा लुफिया घूरये (प० क० त०, पद २०५) हिं० करत गगन को गेंडुआ सो सठ (तुलसीदास-दो० ४।४९१)
गोइ	छिपाई	हिं० नाथ जथामति भाषेउँ राखउँ नहिंकछु गोइ (मा० ७।१२३)
गो	गाय	हिं० गोखग, खेखग, वारि खग, तीनों नाहि विसेक (दो० ५३८)
(घ)		
घूँघट	पर्दा	हिं० घूँघट के पट खोलरे तोहे पिय मिलेगे। (कबीर)
घूँघुरओलि	घूगूंरवाली	बँ० घूंगुरओलि अलके झलके (कृष्णदास प० क० त०, पद २८६०) हिं० घुँघराली लटें लटकें मुख ऊपर (तु० क० व० बा० ५)
घोरि	घोलकर	बँ० कुकुमघोरि चीत मेल आकुल (गोविंददास, प० क० त०, पद २५७८) हिं० देउ आपने हाथ बल मीनहि माहुर घोरि (तु० दो० ३।१७)
(च)		
चोंङक	चोंक	बँ० वरल कुल कामिनि, चोंङक पड़त जग भरिया, (रायशेखर, प० क० त०, पद १०६४) हिं० चोंके त्रिरंचि संकर सहित (क० व० बा० ११)

चछकि	चस्का	बँ० पान पाओये चछकि झेलि (प० क० त०, पद २८३४)
चटकिनि	चिड़िया	बँ० येछे चटकिनि (प० क० त०, पद २१)
चढ़ायई	चढ़ाकर	बँ० घनघन अमरन अगे चढ़ायइ (प० क० त०, पद ३५८) हिं० रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरहु गएँ दिनचारि (मा० २।८१)
चतुरपन	चातुर्य	बँ० आपन चतुरपन परहाते सौपलु (प० क० त०, पद ६३६) हि० लखहिं न भूप कपट चतुराइ (मा० १।२७।३)
चतुराई	चातुर्य	बँ० ना कह सुधा मुखि गेओ चतुराइ (प० क० त०, पद २५६) हि० ताहू के खदै-पीवै को कहा करति चतुराइ (सू० सा० पद १०।३१५)
चमक	प्रकाश	बँ० दामिनि चमक नेहारिनि रे (प० क० त०, पद २७०) हि० रिषि दृग चमकत देखत भई (६।३)
चम्पा	चपाफूले	बँ० संपायन कन्या कम्पित चम्पा (प० क० त०, पद १५१८)
चरचा	प्रसंग	बँ० लोक-चरचाते भासुर भाओइ (प० क० त०, पद ७५७) हिं० हरिजन हरि चरचा जो करे (सू० सा० ७।८)
चराओत	चराता है	बँ० धेनू चराओत वेन बाजाओत (प० क० त०, पद १२०४) हिं० सोइ गोप की गाइ चरावै (सू० सा० १०।३)
चलई	चलता है	बँ० पद दुह चारि चलह पुन (प० क० त०, पद ५५८) हिं० चलइ ओंक जल बक्रगति जद्यपि सलिलु समान (मा० २।४२)

चाखइ	चखता है	हिं० यह जग प्रीति सुवा-सेंमर ज्यों, चाखत ही उड़ि जात (सू० सा० १।३१३)
चीनलु	पहिचानलूँ	बँ० अब तोहें चीनलुँ हाम (प० क० त०, पद ८५८) हिं० पै इन मौंकों कबहुँ न चीन्हों (सू० सा० ४।१२)
चुनि	चयन कर	बँ० सब जन एक एक चुनि सँचरू (प० क० त०, पद ७२१) हिं० एक बार चुनि कुसुम सुहाए (मा० ३।१।२)
चोंक	चोंकि	बँ० चोंक पडल जग भरिया (प० क० त०, पद १०६४) हिं० चोंकि परी तन की सुधि आइ (मा० ५४८)
चोलि	चोली	बँ० खसत वसन रसन चोलि (गोविंददास, प० क० त०, पद १२५५) हिं० नील लहँगा लाल चोली कसि (सूरदास, सू० १०।२८३२)
चौतरा	उच्च वेदी	बँ० वृन्दावने चौतरा ताहे मोर वन भौरा (प० क० त०, पद ३०४२)
चौयानपना[1]	चतुरपना	बँ० शुन साँगातिनि नागर चौयानपना (प० क० त०, पद ६०६)
(छ)		
छटपटि	छटपटाकर	बं० अंग छटपटि केछे मीटव (प० क० त, पद १७२०)
छबीले	सुंदर	बँ० छयल छबीले रसबरसीले (गोपालदास, प० क० त०, पद २६६६) हिं० छबीले मुरली नेंकु बजाउ (सूरदास, सू० सा० १०।१२१६)
छैल	चतुर	बँ० सजनी कानु से छैल सौनार (प० क० त०, पद ७०७)

१. चोयान शदटी कि हिन्दी चोउ छलार्थक आन शदेर योगे विस्पन्न ? श्री सतीशचन्द्र राय।

		हिं० तैरन केहरि केहरि के विदले अरि-कुंज छेल-छवसे
छलछल	आँसूपूर्ण नेत्र	बँ० पंथ घटित दुल लोचन छल-छल (प० क० त०, पद १८३)
छलिया	प्रवंचक	बँ० कि पैखलुं सइ छलिया नागरकान, (गोविंदास, प० क० त०, पद १४६) हिं० छली मलीन हीन सब अंग (तु० वि० प०, पद ६६)
छाति	वक्षस्थल	बँ० तुया मुख हेरि ज्वलत मुझ छाती (घनश्यामदास, प० क० त०, पद ५५) हिं० कुलिस कठोर निठुर सोई छाति (रा० च० मा० बा० ११३)
छापायलुँ	छिपाऊँ	बँ० अनेक जतन करि प्रेम छापायलुँ (प० क० त०, पद ६६२) हिं० तुम सों कहा छिपी करूनामय (सू० सा० ३४३५)
छिरकत	छिड़कते हैं	बँ० कोइ मसृणघुसृण सुगंधि छिरकत (उद्धवदास, प० क० त०, पद १५६१) हिं० छिरकति जल अपनें अपनें रंग (सूरदास, सू० सा० १०।२८८०)
छीकने	छींकना	बँ० छीकने कोई रहई जन जाव (प० क० त०, पद १६११) हिं० छीक सुनत कुसगुन कह्यो (क० ५८६)
छूटत	छूटता है	बँ० तालल तनु नाहि छूटेई (प० क० त०, पद १७४) मेरी देह छूटत जम पठए दूत (सू०सा० १।१५१)
छैल	धूर्त	हिं० तै रन केहरि के बिदले अरि कुंजर छैल-छवाई (ह० १८)
छोड़लुँ	छोडूँ	बँ० छोडत दीघ निश्वास (प० क० त०, पद १७२) हिं० उतर देत छोड़उँ बिनु मारे (मा० १।२७।४)

(ज)

जगाइ	जगाकर	बँ० जागाइ पान—पियारि
		(प० क० त०, पद २४८६)
		हि० तेहि समाज रघुराज के मृगराज जगाइ
		(गी० १।१०१)
जनि	ना	बँ० चुम्बन बेरि जनि मुख मोड़वि
		(गोविंददास, प० क० त०, पद २३६)
		हि० जनि तेहि लागि विदूषहि केहूँ
		(वि० प० पद १२६)
जपइ	जप करता है	बँ० जपतहिं तुया गुनमाला
		(प० क० त०, पद १६६)
जाग	यज्ञ	बँ० पयसि जाग शत जागइ
		(प० क० त०, पद १६६)
		हि० सती जाइ देखेउ तब जागा
		(मा० ६।५६।४)
जागलुँ	जागूँ	बँ० सखि परसंगे निशि जागलुँ हाम
		(प० क० त०, पद २४७)
		हि० महामोह निसि सतल जाग
		(मा० ६।५६।४)
जात	जाना	बँ० जम की तास सब मिटी जातो
		(प० क० त० १६१२)
जानता	जानता है	बं० दिन रजनी किये कछु नाहि जानत
		(प० क० त०, पद १६४)
		हि० जानत तुम्हहि तुम्हह होजाइ
		(मा० २।१२७।२)
जानन	जानना	बँ० जानलुँ रे हरि तोहारि सोहाग
		(प० क० त०, पद २४५५)
जानलुँ	जानूँ	हि० जानूँ जानतहूँ अस स्वामि बिसारी
		(मा० ५।८)
जामि	जिमि	बँ० चाँद जीति जामि जले
		(प० क० त०, पद २४५५)
		हि० अंजलि गत शुभ सुमन जिमि सम सुगंध करदोइ (मा० १।३)

जार	जलाना	बँ० करई विलास दीप लई जार (विद्यापति) जारत नगरू कस न धरि साहू (मा० ६।६।२)
जारई (त)	जलाता है	बँ० मनमथ पाप दहते तनु जारत (प० क० त०, पद २०४)
जिउ	जीव	बँ० जिउ निकसब तब राखब कोइ (प० क० त०, पद ६४) हिं० सकल तनय चिर जीवहु तुलसिदास के ईस (मा० १।१६६)
जीयलुँ	जीवित रहूँ	बँ० रस पहुँ बीते जिलूँ (प० क० त०, पद ६८१) हिं० जब लगि जिग्रों कहऊँ कर जोरी
जैङ	जैसे, जनू	बँ० मेहते जैङ विजुरि गोप्यो, (गोपाल भट्ट, प० क० त०, पद २८३३) हिं० ज्यों करि कृपा पाउँ धारत हो (सूरदास, सू० सा० १०।४०५१)
जोइ	प्रतीक्षा करता है	बँ० कर जुड़ि ठाड़ि वचन पुन जोय (प० क० त०, पद ५१२) हिं० छिरछी चितवन ग्रानन्द मुनि मुख जोहइ हो (रा० १४)
जोय	प्रतीक्षा करके	बँ० जलधार जितिया जोति यहु जौहित (प० क० त०, पद २४२८) हिं० सब हमार प्रभु पग पग जोहा (मा० १३६३)
जो रहि	जोड़ करके	बं० करे कर जोरहिं मोरा (प० क० त०, पद ६१) हिं० मिरे सकल जोरिहि सम जोरी (मा० ६।५३।२)
जोहि	प्रतीक्षा करके	बँ० दुरूजन रह पथ जोहि (प० क० त०, पद २४८५)

(झ)

झकोर	झोका	बँ० दुइ दिगे दुइ सखि देइ झकोरे (यदुनंदनदास, प० क० त० पद, १५२६) हिं० आवै सौधे की झकोरे (सूरदास, सू० सा० १०।२८३६)
झगड़त	झगड़ता है	बँ० झगड़त गोविन्ददास, (गोविन्ददास, प० क० त०, पद १७४१) हिं० वग उलूक झगरत गए (तु० रा० प्र० ६।६।२)
झक	जंजाल	बँ० कर कंकन मैल झक (प० क० त०, पद ३१६) हिं० सज्जन चख-झख निकेत (गी० ७।४)
झकन	झंक	बँ० कंकन झंकन किंकिणि शकिनी (प० क० त०, १८६३) हिं० नूपुर, धुनि, मंजीर मनोहर कर कंपन झनकार (गी० १।२)
झंकरु	झंकार करना	बँ० चंचल चरण कमलतल झंकरु (प० क० त०, पद ६७)
झटकई	बलपूर्वक आकर्षित करना	बँ० झटकत कर कंकन झनझान (प० क० त०, पद ३७७)
झमकित	झमक कर	बँ० चमकि झमकित काँतिवा (प० क० त०, पद १७७१)
झरक	झरोखा	बँ० सखिगण हैरइ झरकहि झाँकि (प० क० त०, पद ५६४) हिं० लागि झरोखन्ह झौकहिं भूपति भामिनि (मा० ८०)
झरझर	सदा बरसने वाले	बँ० झरझर अनखन ए दुइ नयान (प० क० त०, पद ८७) हिं० झरझर सुन्दर गिरि निर्झर झर (गी० २।४४)

झरए	झरना	बँ० अधर अरूए अमिया झरए (प० क० त०, पद ३८२) हिं० झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं (मा० २।२३६।४)
झरत	झरता है	हिं० बोलत बचन झरत जनुफूला (मा० १।२८०।२)
झलक	प्रकाश	बँ० झलके दामिनि बीजई (प० क० त०, पद २१) हिं० मुकुता झालरि झलक जनु रामसुजस (सू० सा० १९०)
झलकई	झलमल करता है	बँ० दशन काँति कत दामिनि झलकत (प० क० त०, पद १९९) हिं० भाल विसाल तिलक झलकाहि (मा० १।२४३।३)
झाँकि	झाँक कर	बँ० सखिगए हेरइ झरकहिं झाँकि (प० क० त०, पद ५६४) हिं० विकल विधि बधिर दिसि विदिसि झाँकी (क० ६।४४)
झाँपलु-झाँपू	एक नजर देखना	बँ० हेरइते रूप नयन जग झाँपलु (प० क० त०, पद ४३५) हिं० झापउ भानु कहसि कुलचारी (मा० १।११७।१)
झाइ	प्रकाश द्युति	बँ० पहिर भूखए झलके झाइरि झलमलम (शिवराम, प० क० त०, पद १५५७) हिं० ससि महुँ प्रगट भूमि के झाँई (तुलसी, रा० च० मा०, लं०१२)
झाकत	प्रलाप करता है	बँ० झाकत झीकिए झर झर लोचने (गोविन्ददास, प० क० त०, पद १८८७) हिं० एहि विधि राउ मनहिं मन झाँखा (तुलसी, रा० च० म०, अ० ३०)
झीकए	झींक करके	बँ० झकए झर झर लोचने (प० क० त०, पद १८८७)
झुँड	समूह	हिं० गुरूप जोवन सींव सुन्दरि चलि झुँडनि झारि (गी० ७।१७)

झूमत	झूमता हुआ	हिं० झूमत द्वार अनेक मतंग जंजीर जरे (क० ७।१४१)
झूलन	झलना	हिं० झूलत राम पालनें सोहें (गी० १।२१)
झुलाअौत	झुलाता हुआ	हिं० पट उड़त भूषन खसत हँसि-हँसि अपर-सखी झुलावती (गी० ७।१)
झेलि	झेलकर	बँ० पान पाओये चछकि झेलि (प० क० त०, पद २८३४)
झोक	हिल्लोल	बँ० झूलनार झोके अलि झाके झाके (प० क०त०, पद २६१६)

(ट)

टंकारि	टंकार करके	बँ० टंकारि काम्मुकि साहि मनसिज (प० क० त० पद १८२०) हिं० प्रथम कीन्हीं प्रभु धनुष टंकारा (मा० ६।३४।६)
टलमल	चंचल	बँ० टलमल कुण्डल झलमल गण्डू (प० क० त०, पद १६)
टारल	टुलाना, बिताया	बँ० टारल है मन शिशिरक अन्त (गोविन्ददास, प० क० त०, पद १७१८) हिं० सम्भु सरासन काहुँ न टारा (तुलसी, रा० च० मा० बा० २६२)
टूटइ	टूटता है	हिं० टूट न द्वार परन कठिनाइ (मा० ६।४३।२)
टिके	टिक कर	बँ० चले कि वाहने टिक कौन स्थाने (प० क० त०, पद ८७३)
टूटई	टूटता है	हिं० जनक मुदित मन टूटत पिनाकके (गी० १।६२)
टेंटि	टेंट	बँ० टेंटि मिठि करकटि (प० क० त०, पद २६५१)
टेंढ़ा	बाँका	बँ० पैच सखि टेड़ा करि बाँधा (प० क० त०, पद १३६०) हिं० टेढ़ जानि सब बंदइ काहु (मा० २८१।३)

टेड़ि	बाँकी	बँ० सुरंग पाग शिरे टेड़ि शोभे (प० क० त०, पद १३६०)
टेरि	बुला कर	बँ० ता० सम्रें कहतहिं थेरि (प० क० त०, पद १८७६) हिं० वरखे सुमन जय-जय कहें टेरि-टेरि (कं० २।१०)
टोयत	खोज करता है	बँ० टोयत अब धनि समय बसंत (प० क० त०, पद १७१८)
(ठ)		
ठटा	ठाठ	बँ० वरमोति ठटा अंवर अमर हरषत वरषत फूल (प० क० त०, पद १५१८) हिं० गोप गोपइन्ह के ठट हहें (क० १।२०)
ठमक	अंगभंगी	ठमके जाय रहिया चाय (प० क० त०, पद ७६०)
ठमकि	ठमक कर	बँ० ठमकि झाँपये मुख पटाँचल दिया (प० क० त०, पद ६३३)
ठाँइ	स्थान	बँ० फुकरि काँदिते याहि ठाँई (प० क० त०, पद ११७) हिं० ते सब तुलसिदास प्रभु ही सोहोहुसि मिटि एक ठाँइ (वि० १63)
ठाकुराल	ठकुरायत	बँ० जगाई माधाइ नाचे बड़ ठाकुराल (प० क० त०, पद ६६५)
ठाड़इ	खड़े होकर	बँ० ठाड़इ थरहरि काँपि (उद्धवदास, प० क० त० पद २०३६) हिं० सुनि सुर विनय ठाढ़ि पछताती (तुलसी, रा० च० मा०, अ० १२)
ठाड़ि	खड़ी	बँ० दूरहि एकलि ठाड़ि (भूपति, प० क० त०, पद ४८३) हिं० ठाढ़ी अजिर जसोदा अपनें (सूरदास, सू० सा० १०।१८८)
ठाड़े	खड़े होकर	हिं० ठाड़ भए उठी सहस सुभाएं (मा० २५४।४)

ठाम	स्थान	बं० जाइ मिलल सोइ ठाम (प० क० त०, पद ३७) हिं० जिन्ह लगि निज परलोक बिगारियो ठाड़ ठामे (वि०)
ठिकन	ठिकाना	हिं० तुलसिदास सीतल नितयहि बलपड़े ठैकाने ठौर काहौं (वि० २२६)
ठेलइ	ठेलता है	बं० परशिते तरसि करहि कर ठेलइ (प० क० त०, पद १००) हिं० ढ़कनि ढ़केलि पेलि सचिव चलते ठेलि (मा० ५।८)
ठौर	स्थान	बँ० तुलना दिवार नाहि ठौर (जगदानंद, प० क० त०, पद १०३२) हिं० बड़े ठेकाने ठौर कौ हौं (तुलसी, वि० प०, पद २२६)
(ड)		
डगमग	अस्थिर	बँ० डगमग लोचन कमल डुलायत (प० क० त०, पद ४) हिं० छुमित सिंधु डगमगात महीधर (गी० ५।२२)
डारइ	फेंकता है	बँ० दूरहि डारलुं (प० क० त०, पद ५७३) हिं० नील कमल सर श्रेणि मयन जनु डारइ (मा० ६२)
डारलुँ	डारूं; डालूँ	बँ० गुरुजन गौरव दूरहि डारलुं (प० क० त०, पद ३६५) हिं० बेगि सौ मैं डारि हऊ उखारी (मा० १।१२६।३)
डाला	उपहार	बँ० आपना साजा आदिव डालि (प० क० त०, पद २७६)
डूबलुँ	डूब जाऊँ	बँ० डूबलुँ गंग अगाधे (प० क० त०, पद १३६०)
डोलत	हिलता हुआ	हिं० डोलत धरनि साचखर खसे (मा० ६।३२।२)

(ढ)

ढरइ	गिरता हुआ	हि० गए कोल दुर दिनकर ढरके (मा० २।२२६।१)
ढरकत	बहता हुआ	बँ० ढरकत लोचन लोर (माधव घोष, प० क० त०, पद ६६०) हि० ढीली पाग ढरक रही (नददास, परिशिष्ट, पृ० ४०१)
ढारइ	ढालती है	बँ०सुरधुनि वारि झारि भरि ढारइ (गोविंददास, प० क० त०, पद १५७९) हि० नारि चरित करि ढारइ आँसू (तुलसी, रा० च० मा०, अ० १३)
ढीठ	शठ, धृष्ठ	बँ० ढीठ कानाइ कतए भगि जानत (गोविन्ददास, प० क० त०, पद ५३६) हि० मै जानति हौं ढीठ कन्हाई (सूरदास, सू० सा० १०।१४२४)
ढीठपना	शठता, धृष्ठता	बँ० कत ढीठपना जाने (प० क० त०, पद ६४५) हि० तुलसिदास प्रभु सो एकहि बल वचन कहत अति ढीठे (वि० १६९)
ढुँढइ	खोज करता है	बँ० ढूँढइ सबहुँ कुंजे मतिहीन (प० क० त०, पद १५०३)
ढुलाइ	ढुलाता हुआ	बँ० निज रसे नाचत नयन ढुलायत (प० क० त०, पद २७५) हि० ढील तेरी, धीर, मोहि पीर ते फिरति है (ह०५।३)
ढुलिया	हिलना	बँ० गधादर अगे पड़े ढुलिया (प० क० त०, पद १५१३) हि० तैसो कवि कौतूकी डरात ढीलो गात (क० ५।३)
ढ़ेरि	ढ़ेर	बँ० दास उद्धव, करत कुसुमक ढेरि (उद्धवदास, प० क० त०, पद १५६१) हि० नेकु धका देहैं ढैहैं ढेलन की ढेरीसी (तु० कविता, ल० १०)

ढोरि	ढ़लिया	बँ० श्याम उपरैं पड़े ढौरि (प० क० त०, पद २६४०)
(त)		
तङ	तो	हिं० नाहि त मौन रहब दिन राती (मा० २।१६।१)
तछु	तसु	बँ० तछु मकु मानस मातल मधुकर (प० क० त०, पद १२)
ततहिं	वहाँ	बँ० ततहिं, मधुकर झंकरू ततहि रसाल (प० क० त०, पद १६)
तन	शरीर	बँ० बाला घन तन वसन निभाङन (गोपालदास, प० क० त०, पद २६६६)
		हिं० दुसह साँसति कीजै आगे दे या तनकी (तु० वि० प० पद ७५)
तनि	तनिक	बं० खेलै तनि गदगद भाष, (ज्ञानदास, प० क० त०, पद १६६७)
		हिं० तनक बदन बोलै तनक सो बोल (सूरदास, सू० सा० १६।१५२)
तब	तब	बँ० तब गाश्रोइ दुहुँ मेलि (प० क० त०, पद १५)
तबहिं	उस समय	बँ० तबहुं मनोरथ पूर (प० क० त०, पद ४५)
		हिं० तबहिं सपूत रिसि सिव सहिं आए (मा० १।७७।४)
तबहुँ	तबसे	बँ० तबहुँ मनोरथ पूर (प० क० त०, पद ४५)
		हिं० चलेहुं प्रसंग दुराएहु तबहुँ (मा० १।१२७।४)
तरासई	त्रास देकर	बँ० ताहे बिन तिल एक तलपे तरासइ (प० क० त०, पद १८६६)
		हिं० तेतेहि बहुविध त्रासइ देस निकासइ (मा० १।१८३।६१)
तलपई	तड़पते हैं	बँ० एछन दुहुँ—मन तलपइ पुनपुन (शेखर, प० क० त०, पद २७२२)

		हिं० तलफत विषम मोह मन माया (त० रा० च० मा० अ० १५३)
तलपाय	तलफना	बँ० पलके पलके तलपाय (प० क० त०, पद २३८२)
		हिं० तलफत मीन मलीन जनु सींचत सीतल वारि (मा० २।१५४)
तलोयार	तलवार	बँ० मदन लेइ तलोयार (प० क० त०, पद १८२३)
तहि	उनसे	बँ० तरुणि पाइ परिहास तहि करइ (प० क० त०, पद १०५)
		हिं० तँहइ मिलें महेस, दियो हित उपदेस (गी०५।२७)
ताड़ि	ताड़ करके	बँ० ताड़ि तड़ित रूचिहार (प० क० त०,)
		हिं० ढ़ोल गंवार शुद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी (तु० रा० च० म०)
तातल	तत्ता	बँ० तातल तन नाहि छुटइ (प० क० त०, पद, १७४)
		हिं०तुलसी रामप्रसाद सो तिहु ँनाम ताप नतातो (वि० १५१)
ताहाँ	तहाँ	बँ० जाहाँ नाहि ऐछन रस निरबहइ ताहाँ परिवाद (गोविन्ददास,प० क० त०, पद २३५)
		हिं० नाथ तहाँ कछु चारो (तु० वि० प०, पद ९४)
तितल	भिजना	बँ० तितल वसन तनु लागी (प० क० त०, पद २०७)
तिहों	वे	बँ० तिहों जगन्नाथ आपने साक्षात (प० क० त०, पद १८५२)
तू ँ	तूं, तेरे	बँ० तू ँ बिनु सुखमय शेज तैजल, (गोविंद, प० क० त०, पद ५३१)
		हिं० हो तो तुव निदेस तें न्यारों (तु० वि० प०, पद ९४)

तूँहि	तुम	बँ० सुन्दरि तुहूँ बड़ि हृदय पाषाण (वल्लभदास, प० क० त०, पद ६७) हिं० तुँहु सराहसि करसि सनेहू (तु० रा० च० मा०, अ० ३२)
तेरा	तेरा	बँ० पंथ नेहारत तेरा, (गोविंददास, प० क० त०, पद ३१८) हिं० तुलसी पर तेरी कृपा (तु० वि० प०, पद ३४)
तेरि	तेरी	बँ० कहतहि हासि सरस तनु तेरि (प० क० त०, पद २८८६) हि० नीको तुलसीदास को तेरि ही निकाइ (वि० ३५)
तैहार	त्यौहार	बँ० इह सब बड़इ तैहार (प० क० त०, पद १४७५)
तैछन	तैसे	बँ० तैछन नूपुर चरणे (प० क० त० पद २७२) हि० तेसइ सील रुप सुविनीता (मा०३।२४।२)
तो	तुम्हारे	बँ० तो तुम्हारे बिनु आकुल कानाई (ज्ञानदास, प० क० त०, पद ६५) हि० मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसों (तु० वि० प० पद ६७)
तोलों	तोल कर	बँ० लाजे मुख नाहि तोलों सतीर समुखे (प० क० त०, पद ८१२) हि० देव, पितर ग्रेह, पूजिये तुला तोलिए धीमे (गी० १११०)
तोहि	तुम	बँ० दहन मनोभवे तोहि जिया यवि (प० क० त०, पद ४०६)
तोहे	तुमको	बँ० तोहे अनुखन हेरिये तोहि आनचीत (प० क० त०, पद ५६)
तोलाइलूँ	तुलवालूँ	बँ० पिरिति पिरिति तुले तोलाइलुँ (प० क० त०, पद ६१६)
(थ)		
थरकये	थिरकना	बँ० थरकए मौरक पाख (प० क० त०, पद २०१०)

थरहरि	थरथर काँप कर	बँ० थरहरि थरहरि काँपये गदगद् भाष (प० क० त०, पद ५१) हि० बोलि फिरि लिखि सखि हि काँपु तन थरथर (मा० ६६)
थारि	खड़ी	बँ० कानु द्वार भाहा थारि (शेखर, प० क० त०, पद २४०) हि० ठाड़ी अजिर जसोदा अपनें, (सूरदास, सू० सा० १०।१८८)
थिर	स्थिर	बँ० सखिर बचने थनि थिर कर चीत (यदुनंदनदास, प० क० त०, पद २२१) हि० लषन कह्यो थिर होहु धरनि (तु० गी० व० १।८८।४)

(द)

दारि	स्त्री	हि० दारिका परिचारिका करि पालिवी करना नइ (मा० १।३२६।२)
दिये	दिया	बँ० तछु नाहि दिये डोर (प० क० त०, पद १६६५) हि० मनहुँ कारि मनसिज पुरारि दित ससिही (गी० ७।१६)
दीजै	दीजिए	बँ० तन मन धनहुँ निछायरि दीजै (उद्धवदास, प० क०, त० पद २८५८) हि० दीजै कान्ह काँधे को कंवर (सूरदास, सू० सा० १०।१६६१)
दुखति	दुखियारी	बं० रुखलि, भूखलि, दुखलि, देखलि (प० क० त०, पद १६१८) हि० अति आरत, अति स्वारथी, अतिदीन दुखारी (वि० ३४)
दुन	दोनों	बँ० गजराज जिनी दून भाई चले (प० क० त०, पद २३३३) हि० विप्र श्राप तें दूनउ भाइ (मा० १।१२२।३)

दुबर	दुर्बल	बँ० परम दुबर देह (प० क० त० पद १६२) हिं० देह दिनहु दिनदूबरि होइ (मा० २।३२५।१)
दुलह	दुर्लभ	बँ० परिचय दुलह दूरूरे रहू केलि (प० क० त०, पद ५२) हिं० नहिं बरात दुलह अनुरूपा (मा० १।९२।४)
दुलहिनि	दुलहिन	हि० दुलहिन कहत दोरि दी जहु द्विज पाती नद के (१०।३।२०)
दुलारी	दुलारी	बँ० दुलारी नंद-नंदन वृष-भानु दुलारि (प० क० त०, पद २८५६) हिं० यह सुनिकैं वृषभानु मुदित चित हँसि हँसिबात दुलारी। (सू० सा० ७०६)
दुलाल	दुलारा	बँ० शचीर दुलाल बुझाति देखिलुँ (प० क० त०, पद २७७) हि० मिटि जु गयो संताप जनम को, देख्यो नंद-दुलारी (सू० सा० १०।१५)
दुहाई	दोहाई	हि० देत मदन मारूत मिलि दसों दिसि दुहाई (सू० सा० ६५०)
दुहुँ	दोनों	बँ० दुहुँ रूप निति दुहुँ हिये जाग (गोविन्ददास, प० क० त, पद २८७) हिं० वेद विहित कुलरीति कीन्हीं दुहुँ कुलगुर (तु० जा० म० छद १४२)
दूध	दुग्ध	बँ० दूधक परशे पँवार धरत मेल (प० क० त, पद २४५) हिं० ताक सो दूध दँतुलिया (सू० सा० १०।८२)
दे	देह	बँ० स्वपन देखिलूँ जे श्यामल वरण दे, (ज्ञानदास, प० क० त, पद १४४) हिं० सेक्ष्य रहित सनेह देह भरि (तु० वि० प० पद २२)

दौन	दोनों	बँ० यमुना तीरेर छाप खेले दौन भाई (प० क० त, पद ११६५) हि० दधि ओदन भरि दोनों देहें अरू अंचल की (सू० सा० २६४८)
दोसर	दूसरा	बँ० दोसर मनमथ करे फूलवान पाग (प० क० त०, पद ७२८) हि० आदि निरंजन निराकार, कोइ, हुतो नदूसर
(ध)		
धक धक	घबराहट	बँ० पराग ना धरे धकधक करे (प० क० त०, पद ३२) हिं० सकसकात तन धक धकात डर, अकबकात सब (सू० सा० २६६६)
(न)		
न	बहुवचन	बँ० तेजमन हरि-विमुखन के संग, (माधो, प० क० त०, पद ३०३५) हि० तजो मन हरि बिमुखनि को सग (सू० सा०)
नओल	नवीन	बँ० नओल नओल नओ रंग में (शिवराम, प० क० त०, पद १५५७) हि० नवल नेह—नव पिया नयो-नयो, (सूरदास, सू० सा० १०।६६१)
नदहि	नाद करते हैं	बँ० नदहिं विहँग-पातिया (बलराम, प० क० त०, पद २४६७) हि० बधायरे-ब्रज नित नए, नादत बाढ़त सब (तु० क० गी० पद १६)
ननदी	ननद	बँ० एक दिन जाइते ननदिनी बने (प० क० त०, पद ७३६) हि० ननदी तो न दिया बिनुगारी नेंकहू रहति (सू० सा० १४६२)
नयना	नयन	बँ० अंजने रँजलु ए दुइ नयना (गोविन्ददास, प० क० त०, पद २७३८) हि० प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना (तु० रा० च० मा० उ० ८८)

नन्हि	नन्ही, छोटी	बँ० बुंद सुन्दर नन्हि नन्हि (शिवराम, प० क० त०, पद १५५७) हिं० ठाढ़े हरि हँसत नान्हि दँतियन छवि छोज (सूरदास, सू० सा० १०।१४६)
नागरपना	चातुर्य, नागरिकता	बँ० कतना नागरपना जाने (प० क० त०, पद ७८२) हिं० मथुराबड़ो नगर जन हिन्हजातहि जदुनाथ पढ़ाये (कृ० ५०)
नाचइ	नाचता है	बँ० नाचत गौरांगराय (प० क० त०, पद २६६) हिं० तहँ तहँ नाचइ परि हरि लाजा (मा० ६।२४।१)
नाचन	नृत्य-विद्या	बँ० पुरुष नाचनि करे किवा से अंतर (प० क० त०, पद १०२) हिं० जो कछु कुविजाके मन भावै सोइ नाच नचावै (सू० सा० ३४४१)
नाशइ	नाश करता है	बँ० दैई देशिनि नाशइ (प० क० त०, पद ५७३) हिं० नासहिं वेगि नीति अस सुनी (मा० ३।२१।६)
नाह	नाथ	बँ० काह्नू काहुक कछु नाहि कहई (प० क० त०, पद १७४) हिं० तब नर नाहँ वसिष्ठु बोलाए (मा० २।६।१)
निकसइ	बाहर निकलना	बँ० सब जन निकसलि बाहिरे बैठल पुरल मन काम (प० क० त०, १७४) हिं० ग्राम निकट जब निकसहिं जाई (मा० २।१०६।४)
निके	सुन्दर	बँ० निके बनि आये हो नंदु-दुलाल (प० क० त०, पद २४२५) हिं० सुन्दर तनु सिसु बसन-विभूषन नख सिख निरखि निकैया (गी० १।६)

निचोरि	निचोड़कर	बँ० को रस नेल निचोरि (रायशेखर, प० क० त०, पद २५१५) हिं० बरनहु रघुवर विसद जसु श्रुति सिद्धात-निचोरि (तु० रा० च० मा, बा० १०६)
निछोरि	निछावर	बँ० श्री पद पादुक धरु भरतानुजचा भरछत्र निछोरि (प० क० त०, पद २४०७) हिं० करि आरती निछावरि बरहिं निहारहिं (मा० १५२)
निन्द	नींद	बँ० बिगलित लोचन निन्द (प० क० त०, पद ४०) हिं० तुरत जाइ पौढ़े दोउ भैया, सोवतआइ निन्द (सू० सा० १०।२३०)
निपट	नितांत	बँ० माधव निपट कठिन मन तोर (भू० प० क० त०, पद ४७८) हिं० बिवरन भएउ निपट नरपालू (तु० रा० च० मा० अ० २९)
निरखइ	निरीक्षण करता है	बँ० अनिमिख नयनहि निरखइ दश-दिश (प० क० त०, पद १७३) हिं० निरखहि-छवि जननी तृनतोरी (मा० १।१९८।३)
नेह	प्रेम	बँ० कि पूछसि रे सखि कानुक-नेह (प० क० त०, पद ६८०) हिं० विपति-काल कर सतगुन नेहा (मा० ४।७।३)
नेहारइ	देखता है	बँ० सचित नयने नेहारइ दश-दिश (प० क० त०, पद २८१) हिं० मानहुँ सरोष भुजंग भामिनि विषम भाँति निहारह (मा० २।२५।६)
नौतुन	नूतन	बँ० नितुइ नौतुन रंग (ज्ञानदास, प० क० त०, पद ६१६) हिं० जिमि नूतन पट पहिरइ नर (तु० रा० च० मा० उ० १०९)

न्यायली	नवल, नवेली	बँ० कौन पुरुख न्यायलि नेहा (प० क० त०, पद २५३) हिं० का घूँघट मुख मुँदहु नवलानारि (ब० १६)
(प)		
पओरव	पार करके	बँ० विरह जलधि कत पओरव हाम (प० क० त०, पद ७६७) हिं० तुलसीदास दस पद परसि भवसागर पौ
पकान	पकवान	बँ० कर्पूर चंदन विविध पकवान (प० क० त०, पद २५८८) हिं० विविध भाँति मेवा पकवाना (मा० १।३३३।२)
पग	पैर	बँ० दिठिज जलै कलघौत करि (प० क० त०, पद १६७५) हिं० ताके पग की पगतरी मेरे तनको चाम (वै० ३७)
पङरलुँ	पार हो जाऊँ	बँ० निज मरियाद सिंधु सञ्च पङरलुँ (प० क० त०, पद ६८८) हिं० पावत न पेरि पार पेरि पेरि थाके हैं (गी० १।६२)
पङरि	पार होना	बँ० पङरि उतारब पार (प० क० त०, पद ४३६)
पटकत	पटक कर	बँ० श्याम चिकुर हेरि मुकुर करै पटकत (प० क० त०, पद ४८२) हिं० गहि पद पटकेउ भूमि भँवाइ (मा० ६।१८।३)
पटकिते	,,	बँ० पटकिते पंजर झटकि पटकि कर पटकिते (प० क० त०, ४८२) हिं० महि पटकत भजे भुजा मरोरी (मा० ६।६८।५)
पढ़इ	पाठ करता है	बँ० पढ़इ ऐछन अमिया गीर चल (प० क० त०, पद २४६७)

		हिं० चलै पढ़त गावत गुन-गाथा (मा० १।३३७।४)
पढ़ाइ	पढ़ाकर	बँ० पंचम वेद पढ़ाइ (प० क० त०, पद १४६२)
		हिं० हारेउ पिता पढ़ाइ-पढ़ाइ (मा० ७।११०।४)
पन	प्रत्यय विशेष	बँ० शुन साँगीतिक नागर चोयारपना (प० क० त०, पद ६०६)
पंथ	पथ	बँ० आन छले अंगन आन छलै पंथ (प० क० त०, पद ७०)
		हिं० तेहि परिहरिहि विनोदबस, कल्पहिं पंथ अनेक (दो० ५५५)
पंथिक	पथिक	बँ० राधानाम कहई जब पंथिक (प० क० त०, पद ४८६)
पन्नारि	पौंनारी	बँ० जनु पन्नारि गज गेह बढ़ायल (प० क० त०, पद २४५)
पपिहा	चातक	बँ० दारुण पपिहा पिउ पिउ सौङरण (प० क० त०, पद १७३०)
		हिं० मोहि प्रण प्रेम, यह नेमि निजि रामघन-श्याम तुलसी पपिहा (वि० १५)
परकाशह	प्रकाश करता है	बँ० जगते करल परकाश (प० क० त०, पद १५)
		हिं० गदगद मुख बानी प्रकाशतइह दशा विचारि (सू० सा० १४७८)
परदेशिया	प्रवासी	बँ० प्रान-प्रिया परदेशिया (प० क० त०, पद १८१५)
		हिं० कहा परदेशी को पतियारो (सू० सा० २७३१)
परवेशइ	प्रवेश करके	बँ० कर गहि सकेत लेइ परवेशइ (प० क० त०, पद १०४२)
		हिं० भरत नलनि बूँद ज्यौं जल बचन नहिं परवेश (सू० सा० ३४७६)

परशइ	स्पर्श करके	बँ० गिरिवर गुरुया पयोधर परशत (प० क० त०, पद १४४२) हिं० लजे सुभग तरु परसत धरनी (मा० क० १।३४४।४)
परिखत	परख करता है	बँ० परिखत गोविन्ददास (प० क० त० पद १६३४) हिं० तबलगि मोहि परैखेहु भाई (मा० ५।१।१)
परिपालह	परिपालन करके	बँ० प्रानपियारि पदवि परिपालह (प० क० त०, पद ५५३) हिं० वसीस सदाहम कहुँ परिपालय (मा० ७।३४।४)
परिहर	परित्यागकर	बँ० पामि परशितेप्राण परिहार (प० क० त०, पद ११४) हिं० जारेहु सहजु न परिहर सोइ (मा० १।८०।३)
पलकना	पलक मारना	बँ० पलकन नारे आँखि (प० क० त०, पद २८३३) हिं० पलकन्हि हूँ परिहरी निमेषे (मा० १।२३२।३)
पहिरइ	पहनता है	बँ० पहिरत तेजत ताहि (प० क० त०, पद २८१) हिं० पहिरहि सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग (मा० १।११)
पहिरण	परिधान	बँ० पहिरण वसन धवल जब हाते (प० क० त०, पद २२३) हिं० पहिरावन जो पाइहिहैं सो तुमहुँ दह
पहिरलुँ	पहनलूँ	बँ० हिया घनसार हार नाहि पहिरलुँ (प० क० त०, २५७५) हिं० पहिरहिं सज्जन विमल उर सोभा अति अनुराग (मा० १।११)
पहिराओये	पहनावो	बँ० पहिराओये सब गोपाल (प० क० त०, पद २६६६)

		हिं० पाटम्बर अम्बर तजि, गूदरि पहिराऊ (सू० सा० ११६६)
पहिल	पहला, प्रथम	बँ० देख देख, पहिल समागमरीता पाइ (प० क० त०, पद २२०) हिं० मन ममता सभिसों रखवारि, पहिलै लेहु बिरि (सू० सा० ११५१)
पाइ	प्राप्त करके	बँ० देख देख पहिल समागमरीता पाइ (प० क० त०, पद २२०) हिं० विरिति विशेष लेपई नाहि पाई
पाओलूं	प्राप्त करूं	बँ० राधा मोहन बिन्दु ना पाओल (प० क० त०, पद ३८)
पाकड़ि	पकड़ कर	बँ० बाहु पाकड़ि कत साधत मान (प० क० त०, पद ३११) हिं० मन-क्रम वचन नंद-नंदन उर यह दृढ़करी पकरी (सू० सा० ३३६०)
पाखालइ	धोकर	बँ० चरण पाखालइ शेखर सहचरि (प० क० त०, पद ६१५) हिं० उत्तम विधि सो मुख-पखरायो
पाग, पागड़ि	पगड़ी	बँ० नरपति पाग शरे (प० क० त०, पद ६४५) हिं० एते पर अखियाँ रससानी अरु पगीया लपटानी (सू० सा० १६६७)
पाछु	पीछे	बँ० मझु अभागिनी पाछु ना गनिलाम (प० क० त०, पद ८०२) हिं० ब्रह्मलोक लगि गयऊँ मैं एत यहूं पाछ उड़ात (मा० ७।७९)
पातल	पतला	बँ० अँगहि लागल पातल चीर (प० क० त०, पद ७२७) हिं० मचला अकल भूल पातर खाऊं
पतियाइ	विश्वास करके	बँ० करब कि मन पतियाय (प० क० त०, पद १७९१)

		हिं० सुर माया बस वेरिहि सहृदय जानी पति-आनि (मा० २।१६)
पानी	जल	बँ० नहे जानि डूबह पानि (प० क० त०, पद ५०८)
		हिं० राम प्रेमहि पोषत पानी (मा० १।४३।१)
पापिया	पापी	बँ० पापिया पाड़ार लोक करे ठाराठारि (प० क० त०, पद ८५०)
		हिं० पापिउ जाकर नाम सुमिरही (मा० ४।२९।२)
पावइ	प्राप्त करके	बँ० पुनवति पावइ कोइ (प० क० त०, पद ५५३)
		हिं० सुरसारद से करत विचारा नारद से नहिं पावहिं पारा (रा० च० मा०)
पालटि	पलट कर	बँ० सरवस लेइ पालटि पुन (प० क० त०, पद २००)
		हिं० उलटि पलटि लंका जारी (मा० ५।२६।४)
पालना	पालन	बँ० पूरव-प्रेमक पालना (प० क० त०, पद १२७७)
		हि० रहत न बैठे ठाड़े पालने झुलायत हँसी (सू० सा० १।१२)
पाश	पास	बँ० सघने देखराय पाश (प० क० त०, पद २०५)
पाशोयाल	पाशावाला	बँ० चालिरे चालिरे पाशोयाल (प० क० त०, पद २७८४)
पाहुन	पाहुना-पत्थर	बँ० काँत पाहुन काम दारुण (प० क० त०, पद १७३५)
		हिं० पाहन बीच कमल विकसावै, जल में अगिन जरे (सू० सा० १।१०५)
पिअ	पपीहे की आवाज	बँ० पपिआ दारून पिउ पिउ सोङरन (प० क० त०, पद १७३०)

पिश्रोलि	पीली गाय	बँ० साङलि पिश्रौलि वलिया (प० क० त०, पद १७३०)
पिचका	पिचकारी	बँ० कुंकुम पिचका लेह केह केह धाय (प० क० त०, पद १४२५) हिं० राधा सखि जवाइए कुमकुमा छिरकत भरि केसरि पिचकारी (सू० सा० २३६१)
पिछिला	पीछे वाला	बँ० पिछला घाटे से नाम (प० क० त०, पद ६७६) हिं० अढ़कि परहिं फिरि हरहिं पीछे (मा० २।१४३।३)
पिवइ	पान करता है	बँ० जब तुया रूप नयन भरि पिवई (प० क० त०, पद १६८३) हिं० चरित सुरसरित कवि मुख्य गिरिनिसरित पिवत (वि० ४०)
पिय	प्रियतम	बँ० पिय अधर सुधा प्रिय प्रेम लछमि हिय (प० क० त०, पद ७०५)
पियारि	प्रिया, प्यारी	बँ० प्राण-पियारि पदवि परिपालइ (गोविन्ददास, प० क० त०, पद ५५३) हिं० ससुरारि पियारि लगी जब तें (तु० रा० च० मा० उ० १०१)
पियासा	पिपासा-युक्त	बँ० भुजगि निश्वास पियासा (प० क० त०, पद १०५८) हिं० परम गंग को छाँड़ि पियासो दुरमति कूम खनावैं (सू० सा० १।१६८)
पिय	पान करे	बँ० ना खाए आहार ना पीये नीर (प० क० त०, पद ६८) हिं० सावन मास पपीहा बोलत पिय पिय करि जो पुकारइ (सू० सा० २८१०)
पिरीत	प्रेम	बँ० ताहार प्रीते हइया तूरी ते (प० क० त०, पद ६) हिं० हा रघुनन्दन प्रान पिरीते (मा० २।१५५।४)

पीक	रसपान या पान का रस	बँ० पोछत पटु पीत पीक (प० क० त०, पद २८३४) हिं० कबहुक बैठि अब भुजधरि कइ पीक कपोलनि पागे (सू० सा० ६८६)
पीव (वइ)	पान करता है	बँ० दुहुँक अधर मधु दुहुँ जन पीवइ (प० क० त०, पद ३५१) हिं० पीवउ छाँछ अघाइ कह कबके रैंवारे (सू० सा० १।२३८)
पीयलुं	पान करूं	बँ० अमृत तेजि किये हलाहल पीयलूं (प० क० त०, पद ३०१८) हिं० मज्जत पय पावन पीवत जलु (वि० २४)
पूछइ	पूछता है	बँ० पुछत सू बल हेरिया मुख जाति पाति (प० क० त०, पद २५७) हिं० मुख जात पात कोइ पूछत नाहिं श्रीपति के दरबार (सू० सा० १।२३१)
पुतली	पुतली	बँ० चीत पुतली सन्देह (प० क० त० पद, ६५) हिं० रसब भइ चित्र की पुतरी सून सरीरहिं डाहत (सू० सा० ३०६५)
पूर	पूरा	बँ० वेष भूषन तौर सब छिल पूर (प० क० त०, पद २५०) हिं० देखि पूर विधु बाठइ गोइ (मा० १।८।७)
पेखलुं	देखलुं	हिं० भूमि विवर एक कौतुक पेखा (मा० ४।२४।३)
पेड़ा	मिठाई विशेष	बँ० पुरिपुया खाजा, पेड़ा सरमाजा (शेखर, प० क० त०, पद २५६५)
पैंठ	प्रवेश	बँ० आइ कुंज माहा पैठ (प० क० त०, पद २५०५) हिं० पैठि भवन रथु राखि दुआरे (मा० २।१४७।३)

पैंठलुँ	पैठूँ	बँ० मन्दिर तेजि कानन माहा पैंठलुँ (प० क० त०, पद ३३४) हि० पैठा जगर सुमरि भगवाना (रा० च० म०)
प्यारी	प्रिया	बँ० प्यारि पाकड़ि पिरिति पावके (प० क० त०, पद १७४०) हि० मैं बरजि कहूँ जाति री प्यारि (सू० सा० ७४४)
प्रकटई	प्रगट करके	बँ० श्याम निरखइ गौरव प्रकटइ (प० क० त०, पद ५७३) हिं० प्रकटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि (मा० १।३४७।२)

(फ)

फन्द	फाँसा	बँ० दुरजन नयन पदहि पद फंद (प० क० त०, पद १०१४) हिं० काटो न फंद मो अंध के अब विलंब कारण कवन (सू० सा० १।१५०)
फाटि	फटकर	बँ० सहचर मेलि मरत जिउ फाटि (प० क० त० पद ६०) हिं० सरिता दूध फाटि जैसे क्यों बचों कांजी कौन स्वाद करि खाइ (सू० सा० ३३३४)
फारलुँ	फाड़ूँ	बँ० फारलुँ काँचलि (प० क० त० पद १४२२) हिं० डारलूँ हार धरिमला फारहिं उर विदारहिं (मा० ६।८१।६१)
फीरत	घूमता है	बँ० मनमथ राज साज लेइ फीरये (प० क० त०, पद १४२२) हिं० बोलतब गज निकेत गरजु अति मानो फिरत दुहाइ (सू० सा० २८३६)
फुकरत	आवाज करता है	ब० बानहि शरद शारि शुक फुरकत (प० क० त०, १४८१) हिं० तब चले बान कराल फुकरत जनु बहुव्याल (मा० ३।२०।१)

फूटत	फूटता है	बँ० दिन सोंङरि फुटत छाति सौं सुख (प० क० त०, पद १७६६) हिं० उमटत अति अंगार, फुटत फर, झटपट लपट कराल (सू० सा० ६१५)
फुतकार	ऊंची आवाज	बँ० फुतकारहिं धनि तेजब देहा (प० क० त०, पद १७२१) हिं० कंसकोटि जरि जाहिगे, विष की एक फुंकार (सू० सा०)
फुरओ	फुरना	बँ० बलराम चिते फुरउ कीत (प० क० त०, पद २४६७)
फुलि	पुष्पित, फूलकर	बँ० फूलि वयनि शोहनि (प० क० त०, पद २७१५) हिं० कबहुंक फुलि सभा में बैठ्यो मूंछनि ताप दिवायो
फेनि	खाद्य पदार्थ विशेष	बँ० मछरी मारिया फेनि (प० क० त०, पद २५५७) हिं० घेवर फेनी और सुहारी खोवा सहित खाहु बलिहारि (सू० सा० १०।११४)
फेर	फिर	बँ० वरण प्रकट फेर उन्हके नेल (प० क० त०, पद १०६) हिं० प्रभु आगवन जनाव जनु नगर राम चहुं फेर (मा० ७।१। दो० २)
फोरि	फोड़कर	बँ० नरवर शक्ति हिया फोरि (प० क० त०, पद २४६३) हिं० फोरि फारि, तोरि तोरि गगन होत गाजे (८।१३)
(ब)		
बजायत	बजाता है	बँ० श्यामानन्द आनन्दे बजायत तोर (प० क० त०, पद २८४३) हिं० हठ अन्याय, अधर्म सूर नित नौबत द्वार बजायत (१।१४१)
बटोरलु	बटोरूं	बँ० यतन जतक धन पाये बटोरलुं (प० क० त०, पद ३०१८)

		हिं० कबहुंक मग मग धूरि बटोरत (२।२२)
बड़ि	वृद्धा स्त्री	बँ० तुमि एखन कैन ना बोल शुनना गो बड़ि माइ (प० क० त०, पद १२२)
बनई	सजी हुई	बँ० धवल विभूषण अम्बर बनई (प० क० त०, पद ३०५)
		हिं० समुझत बनइ न जाइ बखानी (मा० ७।११)
बनग्रोग्रारि	बनविहारी, बनवारी	बँ० चीर हरण नागर बनग्रोग्रारि (गोपालदास, प० क० त, पद २६६६)
		हिं० मथुरा जन्म लियो बनवारी (गोविन्द; की० र० भाग बीजो पृष्ठ ८६)
बनाइया	बनाया	बँ० यतन हि वेश बनाइ (प० क० त०, पद २२०)
		हिं० तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वे (सू० सा० १।५२)
बनयालु	बनालूं	बँ० सजनि माहे बनायलुं वेश (प० क० त०, पद ३६५)
		हिं० तुमरे भूषन मोकों दीजै अपने तुमहिं बनाउं
बरके	बल्कि	बँ० बरके जीवन कमल पराधीन (प० क० त०, पद ८३६)
बरखत	बरसता है	बँ० बरखत दुहुं दिठि नेह सघन बरखनिया (प० क० त०, पद २१४५)
		हिं० कतहुं विटाप भूधर उपारि परसेन बरक्खत (क० ६।४७)
बरताय	बरकरा	बँ० एहि एहि बरताय (प० क० त०, पद २८८०)
		हिं० वामदेव सन काम वाम होइ बरतेउ (पा० २६)
बलिहारि	बलिहार होना	बँ० उद्धवदास बलिहारि (प० क० त०, पद ५६७)
		हिं० बेर मेरे क्यों ढील दीन्हीं, सूरब लिहारी (सू० सा० १।१७६)

बहार	आनन्द	बँ० बाहर कुंज से निकसे बहार (प० क० त०, पद २५०४)
बहि	वही	बँ० विहि बहि तोहे देय (प० क० त०, पद १३३६) हि० त्यों त्यों सुकृत सुमेर कलि भूपहिं निदरि लगे बहि गाढ़न
बहुत	अनेक, अधिक	बँ० जटिला बहुत भगति करि हरषित (प० क० त०, पद २४०) हि० बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानि (मा० २।२६५।३)
बाँका	बक्र	बँ० चाहनि चंचल बाँका (प० क० त०, पद १२०) हिं० सकल सगुन मंगल कुसल, होइहि बारू न बाँक (मा० ६।३।४)
बाओरि	पगली	बँ० हइल बाओरि पारा (प० क० त०, पद १३४) हि० बावरि न होइ वानि कपिनाह की (क० ७।२६)
बाटोयार	बटमार	बँ० तुहुंसति वृन्दावन बटमार (प० क० त०, पद २४६२) हिं० मैं एक अमित बटमार (वि० १२५)
बाड़ई	बढ़ई	बँ० रूपसनातन ताहे रसेर बाढ़इ (प० क० त०, पद २२००)
बात	बातचीत	बँ० शुनिते तोहारि बात (प० क० त०, पद ६४) हिं० भए विकल मुख आव न बाता (मा० १।७३४४)
बाधाइ	बधाई	बँ० सबहुं आनंदे बाधाइ (प० क० त०, पद २०८०) हिं० भूपति पुण्य-पयोधि उमंग, घर-घर आनंद बधाई (गो० १।६)

बाँधइ	बाँधता है	बँ० नयनक नीर थिर नाहि बाधइ (प० क० त०, पद १३८) हिं० मा मन पट मनहिं बरिडोरि बाँधई (मा० ५।४७।३)
बालाइ	बलाय, अमंगल बलिहारी	बँ० चिकन श्यामेर बालाइ लैया (प० क० त०, पद १२४) हिं० कहहुँ तात जननी बलिहारी (मा० २।५२।छ०१)
बाहु	भुजा	बँ० अगे अगे बाहे भीड़ बैठारे (प० क० त०, पद १०८८) हिं० रघुपति गहि बाहों (म० २।७७।३)
बाहुड़	फिरना, लौटना	बँ० बारेक बाहुड़ तोमार चाँद मुख देखि (प० क० त०, पद १८६६)
बिचारइ	बिचारना	बँ० बिरमित बचन बिचारइ वाउरि (प० क० त०, पद १६२०) हि० सुर असुर मुनि कर कान दीहे सकल बिकल विचारि ।
बिचारों	सोचूं	बँ० निरख मन विचारों (प० क० त०, पद १०८६) हिं० आस रावरोये, दास रावरो विचारि (ह० २१)
बिछाइ	बिछा कर	बँ० किसलय शैज बिछायह पुनः पुनः (प० क० त०, पद २८२)
बिछुरत	बिछुड़ते हैं	बँ० बिछुरत मरमे मरम माहा पैठत (प० क० त०, पद ६१०) हिं० विछुरत एक प्रान हरि लेंही (मा० १।५।२)
बिछुरि	बिछुड़कर	बँ० ताहा कि बिछुरि पार (प० क० त०, पद २६०) हिं० बिछुरे ससि रवि, मन नयनि ते पावत दुख बहुतेरो (वि० ८७)

बिन	बिना	बँ० बिन परिचय मोर प्रान केमन करे (प० क० त०, पद १२५) हिं० गुरू बिन ज्ञान नाहीं (संतों की कहावत)
बिनोदिया	मनोहर	बं० गले दोले बिनोदिया माला (प० क० त०, पद २६१)
बिभोर	विह्वल	बँ० देखलुँ गौराग चन्द्र बिभोर (प० क० त०, पद १३२)
बिरचइ	रचता है	बँ० निरजने विरचइ मूरति तोहारि (प० क० त०, पद ३१५) हिं० बिलइ रचइ परपंच विधाता (मा० २।२३२।३)
बिरसइ	निवृत्त होता है	बँ० बिरसइ रगि निगन भय लागे (प० क० त०, पद २१३५)
बिराजइ	बिराजता है	बँ० अंग हि अंग विराज (प० क० त०, पद ११)
बिलपइ	विलाप करता है	बँ० बिलपइ ताये तापायत अन्तर (प० क० त०, पद ७७०)
बिलसइ	विलास करता है	बँ० कुसुम सेज माहा विलसइ दुँहुँजन (प० क० त०, पद ३५१)
बिसारे	भुलाकर, बिसरना	बँ० शिव शुक नारद व्यास बिसारे (प० क० त०, पद २८६८) हिं० मतिमन्द तुलसीदास सो प्रभु मोह बस बिसरायो (मा० ६।१२१)
बिहरइ	विहार करता है	बँ० करे सखि विहरये कों पुन एह (प० क० त०, पद १५०) हिं० अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन-मन्दिर में विहरे (क० १।४)
बिहान	प्रात:काल	बँ० आयलि राति विहान (प० क० त०, पद ३९५) हिं० भयो मिथिलेस मानों दीपक विहान को (गी० २।८६)
बिख	विष	बँ० मृगमद चन्दन लेपन बिख (प० क० त०, पद १८५७)

बीच	मध्य	बँ० बीच हि सुरधुनि मुक्ता हिलोल (प० क० त०, पद १०२३) हिं० सून बीच दसकन्धर देखा (मा० ३।२६।४)
बीजइ	पंखा करता है, बोता है	बँ० बीजइ वने वने भ्रमइ दुँहुँ (प० क० त०, पद ६४६) हिं० तुम्ह कहँ विपत्ति बीजू विधि बयउ (मा० २।२१।३)
बीड़	बीड़ा	बँ० ललिता ताम्बूल बीड़ बनाइ (प० क० त०, पद १२६०)
बीण	बिना, वीणा	बँ० तोहारि परश रस बीणे (प० क० त०, पद ५०७) हिं० तेंहि अवसर मुनि नारद आइ करतल बीन (मा० ३।५०)
बीतओ	बीत गया	बँ० लाखे लाखे किछिनी मुझ पर वीतउ (प० क० त०, पद १५६६) हिं० देखत रघुवीर प्रताप, बीते संताप पाप (रा० च० मा०)
बूझलु	समझलूँ	बँ० तबे से बुझिलु शोथास आछे (प० क० प०, पद ६८) हिं० जग बूझत बूझत बूझे
बुढ़ा	वृद्ध	बँ० बुढ़ां तुमि कि और (प० क० त०, पद ३०३७) हिं० जामवन्त मन्त्री अति बूढ़ा (मा० ६।२३)
बुढ़िया	बुढ़िया औरत	बँ० नन्दरेर जननी नाचे अरयसी बूढ़ियारे (प० क० त०, पद ११३२)
बुन्द	बूँद	बँ० बुँद बुँद करुण पात (प० क० त०, पद १५५३) हिं० जरहिं पतंग मोह वस भार वहहिं खर बूँद (मा० ६।२६)
बूड़ब	डूबना	बँ० बूड़ब सागर माझे (प० क० त०, पद ७१)
बेचलूँ	बेचूँ	बँ० बेचलूँ तनमन जाति (प० क० त०, पद ३६१)

		हिं० बेचहिं लेहु धरमु दुहि लेहीं (मा० २।१६८।१)
बोलत	बोलता है	बँ० बोलत भूतल पाँती (प० क० त० पद २७५४) हिं० सीस परे गहि जय जय बोलहिं (मा० ६।८८।५)
बोलि	बोल कर	बँ० नहि नहि बोलि ढूलायत माथ (प० क० त०, पद ५३) हिं० गुरु बोलाइ पढ़यउ दोउ भाई (मा० २।१५७।२)
(भ)		
भई	हुआ	बँ० सो तनु ताप भसम भइ जाय (प० क० त०, पद ६०) हिं० उमादिक सुरतिय सुनि प्रेमुदित भइ (जा० १५७)
भइसा	भैंसा	बँ० कोलेर कुमार तार गाइ भइसा आर (प० क० त०) हिं० आहुति देत रुधिर अरु भैंसा (मा० ७।७६।१)
भरई	भरता है	बँ० खेने खेने वसन धूलि तनु भरइ (प० क० त०, पद २३) हिं० तब तब वारि विलोचन भरहिं (मा० ७।१०६।६)
भरमई	घूमता है	बँ० जाहा पहु भरमई जलधर श्याम (प० क० त०, पद १६५३) हिं० हाय, हाय राम बाम विधि भरमाए (गी० २।३६)
भरूंचक्क	भोंचक्क	बँ० झलकत बिजुरि नयन भरूँचक (प० क० त०, पद १००३)
भरोसा (भरसा)	विश्वास	बँ० दास मनोहर करत भरोसा (प० क० त०, पद २८७०) हिं० नाथ देव कर कवन भरोसा (तु० रा० च० मा०, सु० ५१)

भाँड़या	भाँड़िया, लताड़ा	बँ॰ भाड़ विभंगि विलास (प॰ क॰ त॰, पद ५६)
भाग्रोत	अच्छा लगता है	बँ॰ लोक परभाते भासुर भाग्रोइ (प॰ क॰ त॰, पद ७५७) हिं॰ रघुपति हि यह मत भायउ (मा॰ ५।६०।छं॰ १)
भाखत	कहता है	बँ॰ चाँदक हेरि सूरज करि भाखये (प॰ क॰ त॰, पद, ७७०) हिं॰ वेद पुरान संत मत भाषऊँ (मा॰ ७।११६।१)
भाँड़ु॰	भौं	बँ॰ भाड़ु विभंगि विलास (प॰ क॰ त॰, पद ५६)
भाट	चारन	बँ॰ तार पर दिने भाटेर बर्नने (प॰ क॰ त॰, पद ३३) हिं॰ चले भाट हियँ हरपुन थोरा (मा॰ १।२४)
भाड़िया	भड़ुआ	बँ॰ से भाड़िया गाड़या शूकर (प॰ क॰ त॰, पद २२०६)
भादो	भाद्र	बँ॰ आग्रोय भादवो बेगव माघौ (प॰ क॰ त॰, पद १७३६) हिं॰ राम राम नाम वर वरन जुग सावन भादव मास (मा॰ १।१६)
भायत	अच्छा लगे	बँ॰ शीतल पवन मोहे नाहि भायत (प॰ क॰ त॰, पद १८१४) हिं॰ मनु भावतो धेनु पथ स्रवहीं (मा॰ ७।२३।३)
भिगायइ	भिगाकर	बँ॰ वयनक लोरहि बसन भिगाय (प॰ क॰ त॰, पद २५०६) हिं॰ करुपा वारि भूमि भिजइ है (वि॰ १३६)
भीजइ	भिजता है	बँ॰ नयनक नीरहिं शयन भिगायइ (प॰ क॰ त॰, पद २४६१)

भेजाइ	भेजकर	बँ० आनल भेजाई घरे (प० क० त०, पद ७१५)
भेंटलुँ	भेंट करूँ	बँ० ए सखि काहे भेंटलु नंद-नंदना (प० क० त०, पद ७५) हिं० भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई (मा० २।८४।१)
भइया, भैया	भाई	बँ० भैया अभिराम वदन घन आओइ (प० क० त०, पद १२१६) हिं० भैया भरत भावते के संग (गी० २।६३।४)
मति	निषेधार्थक अव्यय	
मओर	मोर	बँ० चुड़ाय उड़ये मत मओर शिखंड (प० क० त०, पद १६) हिं० कनक रतन मनि मोर लिहे मुसुकातहि हौ
मझु	मुझे	बँ० लँछु मझु मानस मातल मधुकर (प० क० त०, पद १२)
मथ	मथकर	बँ० मनमथ मनमथ मारि (प० क० त०, पद २४२६) हिं० तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता (मा० ७।११७।८)
मनई	मानता है	बँ० मनइ मनसिज शांति (प० क० त०, पद १७३२) हिं० हँसि मरि है परतीत भगत सिरोमनि मनि है (वि० ६५)
मनहि मन	मन ही मन	बँ० भाविनि-भाव, मनहि मन गणइते (गोरसुन्दरदास, प० क० त०, पद १८८) हिं० मन हि मन अक्रूर सोच भारी (सूरदास, सू० सा० १०।३०१२)
मनाइ	मनाकर	बँ० आकुल नागर कतहुँ मनाइ (प० क० त०, पद २७२६) हिं० इस मनाइ असीसहिं जय जस यावहु (मा० ३२)

मरमि	मर्म्मज्ञ	बँ० मरमी जनार मरमे बाजे (विद्यापति, प० क० त०, पद २२६) हिं० पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइय मर्म (मा० ३।३९।क)
मरौ	मर कर	बँ० बालाइ लइया यो मरौ बलिया (बलराम, प० क० त०, पद ६८३) हिं० मुइ मरत मरहिं सकल (दो० २०४)
महा	मध्ये, बड़ा	बँ० साधि साधि छरमि धरमि महावीकल (वृन्दावनदास, प० क० त०, पद ४६८) हिं० प्रकटे नर केहरि खँभ महा (क० ७।८)
माइ	माता	बँ० तुमि एखन केन बन-बोल, शुन गो बड़ि माइ (वंशीदास, प० क० त० पद १२२) हिं० सत्य कहहुँ, मोहे जानदे माइ (मा० ६।५।२९३)
मांगौं	मांग लो	बँ० एइ मांगातुया ठाय (प० क० त०, पद १६) हिं० देवि मांगौ वर जो रुचि तोरे (मा० १।१५०।२)
माधाइ	माधव	बँ० हसि मुख मोड़इ ढ़ीख माधाइ (विद्यापति, प० क० त०, पद ७२७)
माधौ	माधव	बँ० आग्रोये मादौ वैगर माधौ (प० क० त०, पद १७३६)
मानलुँ	मान लिया, मानूँ	बँ० बिज कुल-दूषन भूषन करि मानलुँ (गोविन्ददास, प० क० त०, पद ३६१) हिं० मान्यो मैं न दूसरो न मानत न मानिहैं (क० ७।६३)
माह	महीना	बँ० एभर बादर माह भादर (विद्यापति, प० क० त०, पद १७३५)
मिटायत	दूर करता है	बँ० खायत मिटायत वयना (धनरामदास, प० क० त०, पद ११५२) हिं० मिट्यो महामोह जी को छट्यो पोच (गी० १।८६)

मिठाइ	मिष्ठान	बँ० रूपे भरल दिठि सोङरि परश मिठि (गोविन्ददास, प० क० त०, पद ७६४) हिं० मीठी अरू कठनत भरो रोलाइ अरू खेय (दो० १५)
मिनति	विनति	बँ० दौतिक मिनति तुया पाये (प० क० त०, पद २२२)
मिलाओ	मिलाया	बँ० के मोरे मिलाओं दिवे चाँद-वयान (प० क० त०, पद १६४५) हिं० अस वरू तुम्ह हि मिलाउब आजी (मा० १।८०।२)
मीलइ	सम्मिलित हुआ	बँ० कँछेने मीलव माधव साथ (प० क० त०, पद १११) हिं० गगन मगन मकु मेघहिं मिलइ
मु	मैं	बँ० पर मू जाइतेनारिलुँ सेइ (गोविन्ददास, प० क० त०, पद १४६)
मूचकि	मुसकाना	बँ० मुचकि मुचकि हास (चंडीदास, प० क० त०, पद २०५) हिं० जाय बलिक बोले मुसुकाइ (मा० १।४७।४)
मुचुकायनि	मुसुकानि	बँ० मानिनि—मान—मथन मुचुकायनि (गो० प० क० त०, पद २४२५) हिं० भगिनी मिली बहुत मुसुकाता (मा० १।६३)
मुझे	मुझको	बँ० तौहारि नियड़े मुझे मेजल कान (प० क० त०, पद १२६) हिं० ताँहि मोंहि नाते अनेक मानिए जो भावे (वि० ७६)
मुटकि	मटकी	बँ० रंग मुटकी भर साज, (उद्धवदास, प० क० त०, पद १४४४)
मुड़ायलुँ	मुड़ालूं	बँ० आपन करे हाम मूड़ मुड़ायलुँ (विद्यापति, प० क० त०, पद ६६८)

मुँह	मुख	बँ० तमालक रोखे आपन तनु झापिनि रहलहि मुँह छापाइ (प० क० त०, पद २१४)
		हि० बोलों बात मुँह भरि (गी० ७।३७)
मूल	मोल	हिं० गजगुण मोल अहार बल (दो० ३८४)
मैं	मैं	बँ० मौ मैंन गोराचान्देर देखिया (नरहरि, प० क० त०, पद १०३)
		हि० मैं मोर तोरे तैं माया (मा० ३।१५।१)
मैंन	मानो	हिं० मैंन के दसन कुलिस के मोदक (कृ० ५१)
मेला	आगमन	हि० तुरत बिभिषन पाछें मेला (मा० ६।६४।१)
मेह	मेघ, वर्षा	बँ० मेह बरिखे जन मोतिममाला (विद्यापति, प० क० त०, पद २०६)
		हि० मोर सिखा बिनु मूरिहू पलुहत गरजत मेह (दो० ३१६)
मोतियन	मोती	बँ० उरे मोतियन कि माल (कृष्णदास, प० क० त०, पद २८६०)
		हि० मोतिनि सहित नासिका (सूरदास, सू० सा० १०।१०५)
मोय	मुझे	बँ० किशोर पुछसि मोय (प० क० त०, पद १५४)
		हिं० मोको और ठोर न सुटेक एक तोरिए (वि० १८१)
मोर	मोर	बँ० ऐछन होयब मोरि (राधामोहन, प० क० त०, पद ११३)
		हिं० लघु मति मोरि चरित अवगाहा (मा० १।८।३)
मोरा	मेरा	बँ० आग पाछे नाहि मोरा हापतीर पत तोरा (प० क० त०, पद २५६६)
		हिं० खल परिहास होइ हित मोरा॰ (मा० १।६।१)
मोरि	मोड़कर	वँ० जोरि भुजयुग मोरि बेढ़ल (विद्यापति, प० क० त० पद ५७)

		हिं० बोलि बिहसि नयन मुँह मोरी (मा० २।२७।४)
मोरे	मुझे	बँ० मोरे उपेखिल श्याम सुनागर (यदुनंदनदास, प० क० त०, पद १८४) हिं० मुनि मन हरष रूप अति मोरें (मा० १।१३३।३)
(य)		
यंङ	जो	बँ० यङ कलि-रूप नाधारत (माधो, प० क० त०, पद २३६४) हिं० यातें सबै सुधि भूलि गईं (क० १।१।१७)
यछु	जसु	बँ० यछु लागि कलियुग प्रकट शचीसुतसोई भाव प्रकाश (प० क० त०, पद ७६) हिं० यहि कहा मैया मुँह लखति (कृ० १२)
यतहुँ	यहाँ से	बँ० ऐछन यतहुँ परम अभिलाष (गोविन्ददास, प० क० त०, पद ३९) हिं० राम लषन मेरी यहैं भेंट, बलि जाऊँ जहाँ मोंहि मिलि लीजे (गी० २।१२)
यव	जब	बँ० यव-गोधूलि समय बेलि (विद्यापति, प० क० त०, पद २०१) हिं० तुलसीदास भव त्रास मिटे तब जब मति यहि सरूप अटके (वि० ६३)
यबहुँ	जब से	बँ० यबहुँ ये भाव उदय करू अन्तरे (प० क० त०, पद ३९) हिं० सुरूभि कह्यो सोह सत्य, तात अति परुष बचन जबहुँ (वि० ६३)
यहिं	यहाँ	बँ० जर जर जाहा विलपय बरकाज (प० क० त०, पद ४८) हिं० त्रिवली उदर गंभीर नाभि सर जहँ उपजे विरं मसानी (वि० ६३)
यांक	जिसका	हिं० तेंहि कि दरिद्र परसमनि जाके (मा० ७।११२।१)

याङ	जाओ	बँ० जर जर अंतर ना जाये पराण (प० क० त०, पद ८७)
याहाँ	जहाँ	हिं० से तुम्ह कहुँ मातु न बन जाऊँ (मा० २।२६।४)
येङ तेङ	ज्यों त्यों	हिं० अब येङ तेङ पररोष, जहाँ तहाँ ते सब आवेंगे (सू० सा० १।१६१)
येछा	ऐसा	बँ० मन माहा बचन करि जेछन (प० क० त०, १०८) हिं० निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसा (मा० ४।१५।१)
येछे	ऐसे	बँ० वैणि बिलम्बित येछे फणिमणि (प० क० त०, पद २१) हिं० सोंक बनिक मनि गुन गन जैसे (मा० १।३।६)
यो	जो	बँ० दूरगति अति सतगति जो जन (प० क० त०, पद १) हिं० जो तोंसों होती फिरो मेरी हेतु हियारे (वि० ३।३)
योइ	जो	हिं० तुलसीदास यहि जीव मोह-रजु जोइ बाध्यों सोइ छोरे (वि० १०२)
(र)		
रंगिया	रसिक	बँ० हासिया रंगिया सोगिया संगे (प० क० त० पद २७७) हिं० तिहुँ काल जिनको भले जे राम रंगीले (वि० १०२)
रंगिला	रसिक	बँ० रंग रंगिले रंग बिहरे (रायबसंत, प० क० त०, पद २९२१) हिं० तिहुँ काल तिनको भलो जे राम रंगीले (तुलसी वि० ३२)
रचइ	रचता है	बँ० पिवइते अधर रचइ सितकार (प० क० त०, पद ५३) हिं० मिलइ रचइ प्रप्रंच विधाता (मा० २।२३२।३)

रंजलु	आनन्द करूँ	बँ० जाहे लागि गुरू, गंजने मन रंजलुँ (प० क० त०, पद १६०४)
		हिं० बुध बिसराम सकल जन रंजनि (मा० १।३१।३)
रटइ	रटता है	बँ० रंगि निगन रस रंगहि रटइ (प० क० त०, पद १५०१)
		हिं० राम राम रट बिकल भुग्रालु (मा० २।३७।१)
रणरणि	रुनुझुनु	बँ० किंकिण रणरणि रंगा रंकराज धनि (प० क० त०, पद २९७)
रयना, रात रयनी, रैन		हिं० कहत कथासिय रामलखन की बैठहि रैनि बिहानी (गी० २।६८)
रसिकपन	रसिकता	बँ० दोहार रसिकपन शुनि शुनि दुँहुँ जन (प० क० त०, पद २३८८)
रह	रहकर	बँ० जीवन रहे रहे किये जावत (प० क० त०, पद १५८)
		हिं० लोचन जलु रह लोचन कौन (मा० १।२५९।१)
राजत	सुशोभित होता है	बँ० परिहरि गोरचंद्र कोंहों राजत (प० क० त, पद १७९६)
		हिं० कसै है बनाइ नीके राजत निषंग हैं (क० २।१५)
रि	सम्बोधन का चिह्न	बँ० आलि रि हामरा तोहारि किये नहिये (प० क० त०, पद १)
		हिं० अरी अरी सुन्दर नारि सुहागिनि (सू० सा० ९।४४)
रिझत	प्रसन्न होता है	बँ० चम्पक बरनी रीझ रिझाओन (प० क० त०, पद २९६६)
		हिं० तुलसी जेहि रघुनाथ से नाथ समार्थ सुसैवत रीझत थोरे (क० ७।४९)
रिमि-झिमि	रुमे झुमे झम झम ध्वनि	बँ० रिमझिम शरदे वरिषे (प० क० त०, पद १४४)

रूह	वृक्ष	बँ० सो मभ हृदय चंदन रूहै लागल (प० क० त०, पद ७०८) हिं० रूख कलपरू, सागर खारी नीरै (वि० २३४)
रेग्रोड़ि	रेवड़ी	हिं० कँड़ला करम्ब रेग्रोड़ि पदमा (मा० २।११६।२)
रोकलुँ	रोकूँ	हिं० रोकिहों नयन बिलोकन ग्रौरहि
रोय	रोकर	बँ० ग्रहनिसि तुया लगि रोय (प० क० त०, पद ३७) हिं० सुनु दसकंठ कहऊँपन रोयी (मा० २।६।३)
(ल)		
लखइ	देखता है	बँ० चलिल कुजे लखइ नाहिनाहि कोइ (प० क० त०, पद ३२६)
लछिमि	लक्ष्मी	बँ० हातक लछिमि चरण पर डारलुँ (प० क० त०, पद ४३६) हिं० एहि विधि उपजे लीच्छि जब सुंदर तासुख भूल (मा० १।२४७)
लटकत	लटकता है	बँ० कुसुत चंप वर हार लटकत (प० क० त०, पद १५६१) हिं० गमुग्रारी ग्रलकावली लसे, लटकन ललित ललाट (गी० १।१६)
लपटाइ	लपेटकर	बँ० ग्राया ग्राप लपटाइ (प० क० त०, पद २८६१) हिं० जनम जनम ग्रायास विरच चित ग्रधिक लपटाइ (वि० ८२)
ललकाय	ललक कर	हिं० ललकात ललिख ज्यों कंगाल पातरी सुनाज की (क० ६।३०)
लाजाइ	लज्जाकर	बँ० तेयजिया लाज भय भयमान (प० क० त०, पद १५३) हिं उपमा कहति लजाइ भारती भाजइ (जा० १५८)

लाड़लि	आदरणीया	बँ० लाला लाड़लि रूप रसायण (प० क० त०, पद २६६६) हिं० लाड़िले लषन हितु हो जनके (वि० ३७)
लिये	निमित्त	बँ० केलि—कला लिये करत संधान (प० क० त०, पद २८१५) हिं० जै जनवासहि कौसिक राम लषन लिए (जा० १३६)
लियो	लिया	बँ० बंकिम नयने चित्त हर लियो मोर (प० क० त०, पद ५१०) हिं० लियो सकल सुख हरि अंगसंग में (कृ० २५)
लीखत	लिखता है	बँ० वासिनी मानिनि अवनत-वदनहि लीखत (प० क० त, पद ५५१) हिं० लिखत सुधाकर गालिखि राहू (मा० २।५५।१)
लीजै	लीजिये	बँ० मंगल-वयने, निरखि मुख लीजै (प० क० त०, पद २८४४) हिं० असमंजस में मगन हों लीजे गहि वाही (वि० १४७)
लुकायलूँ	छिपालूँ	बँ० पाश मोड़ि हाय लुकायलुँ हास (प० क० त०, पद ७२८) हिं० लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे वाज के (क० ६।६)
लूठइ	लौटता है	बँ० एकलि गहन कुंज माह लुठइ (प० क० त०, पद ३६)
लुबधाइ	लुटकर, मोहित होता है	बँ० आपन गुन लुवधाइ (प० क० त०, पद १६८७)
लेपइ	लेप करता है	बँ० आगरे लेपइ अंग (प० क० त०, पद १२८)
लेह	स्नेह	बँ० करुना करिया लेह उद्धारिया (प० क० त०, पद १७)

(श)

शतघरिया	जार	बँ० ना करह चातुरालि तुहुँ शतघरिया (प० क० त०, पद ४११)

शाकर	शक्कर	बँ० सुवासित वारि खीरि शाकर (प० क० त०, पद २८६४)
शिंगार	श्रृंगार	बँ० मुकुर लेई अब करत शिंगार (प० क० त०, पद ८२)
शुनइ	सुनकर	बं० शुनइते चमकइ गृहपति वार (प० क० त०, पद ३९)
शुनायलुँ	सुनाऊँ	तोहारि निदान हाम कतये शुनायलुँ (प० क० त०, पद १८३)
शोहइ	सुशोभित हो	बँ० शा गौर वरन तनु शोहन मोहन (प० क० त०, पद १३२)
(ष)		
षँड	साँड	बँ० बिछुरल युदुक षंड(प०क०त०,पद २५५२)
(स)		
सड़े	सहित	बँ० कतकत केलि बिलासवि कानू सड़े (प० क० त०, पद ८१)
संगाति	संगति	बं० मरम ना कह काहे प्रान सांगाति (प० क० त०, पद ५५)
संत	सज्जन	बँ० संत असंत पुजायल घरे घरे (ज्ञानदास, प० क० त०, पद १४९२) हिं० संत समाज पयोधि रमासी (तुलसी, रा० च० मा०, बा० ३१)
सबकोइ	सबलोग	सबहिं समरथहिं सुखद प्रिय (दो० ७४)
सबहुँ	सबको	बँ० दिनमणि किरण सबहुँ रहु व्यापि (प० क० त०, पद ९९७) हिं० सबहि समरथहि सुदख प्रिय (दो० ७४)
समझायलुँ	समझालूँ	बँ० सहचरि मोह लषन समुझायल (प० क० त०, पद ४३४) हिं० एहिंविधि राम सबहिं समुझावा (मा० १।८१)
सयानि	समझदार	बँ० ओ मुख कर देखव सयानि (प० क० त०, पद २९१७) हिं० ओ मुख करि नृप लखि कुँवरि सयानि बोलि गुरू-परिजन (गी० ८)

सरे	चले	बँ० आया समाकार ना सरे साति (प० क० त०, पद २७००)
साँच	सत्य	बँ० साँचकि मिछ इहजान (प० क० त०, पद ३७३) हिं० साँची कहों कलिकाल (क० ७।१०१)
साँज	साँझ	बँ० अनेक साधेर दीप विमाइल साँझेर बेल (प० क० त०, पद ३७३) हिं० मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना (मा० १।३५८।१)
साँभारि	सँभाल करके	बँ० खेने पुलकित तनु कहसि साभारि (प० क० त०, पद २२८)
साधायलुँ	साधलूँ	बँ० एत दिन तनू मोर साथ साधायलुँ (प० क० त०, पद १७१२)
सिधारल	सिधारना	बँ० मलयानिल हिम-शिखरे सिधारल (प० क० त०, पद १७१३) हिं० पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई (मा० ६।१००।१)
सिधारि	गमन किया	हिं० गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइके (कं० २।६)
सियानी	बुद्धिमान	बँ० चातुरी ना कर कानाइ चतुर सियान (प० क० त०, पद १३८५)
सिरजि	बनाकर	बँ० तबहुँ रसिक-राजे सिरजिया मन-माथे (प० क० त०, पद ४१६) हिं० जगदीश जुवति जिनि सिरजहिं (मा० २५)
सीधे	सीधा	बँ० सीधे पिन्धायह नुपुर जोर (प० क० त०, पद २७३४) हिं० लिए छरी बेंत सीधे विभाग (गी० ७।२२)
सुगड़-सुघड़	सुन्दर	बँ० राधा करि वरि सुगढ़ शिरोमणि (प० क० त०, १०७२) हिं० सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका (गी० ७।१७)

सुतन	पोशाक विशेष	बँ० सूक्ष्म सुतन-पून देउल गाय (प० क० त०, पद २६६२)
सुहाग	सौभाग्य	बँ० देख देख प्रीतम प्यारिक सोहागे (प० क० त०, पद २८३४) हि० अनुराग भाग सौहाग सील सरुम बहु भूषनभरी (बा० १८)
सूध बुध	होश-हवास	बँ० सूध-बुध सब खोय (प० क० त०, पद ७१)
सें	से	बँ० तुया प्रेम विष सें जड़ित मेल अन्तर (राधामोहन, प० क० त०, पद १६५) हि० रघुवर के से चरित (वि० १६)
सँचइ	सिचन करके, सींच कर	हि० बीथी सींची सुगंध सुमंगल गावहीं (जा० २०४)
सेवइ	सेवा करता है	बँ० रायवसंत-मन सेवइ अनुखन (प० क० त०, पद २४४६) हि० सेवत सुरपुर वासी (वि० २२)
सों	से	बँ० जनु बाँधि व्याधा विपिन सों मृगि (भूपति, प० क० त०, पद ११४)
सौंपि	सौंपकर	बँ० जाहे शिर सौंपि कोर पर शुतिये (गोविन्ददास, प० क० त०, पद ३२०) हि० पतिन्ह सौंपि विनती अति कीन्हीं (मा० १।३३६।४)
सौ	से	बँ० सौ चरणाम्बुज रति नाहि होयल (वैष्णवदास, प० क० त०, पद १) हि० सौ नित सौ सानि सानि (क० ६।५०)
सोतनि	सपत्नी	बँ० अभरण सौतिनि मान (गोविन्ददास, प० क० त०, पद ३०६) हि० मैं न लखी सौति सखी भगिनी ज्यों सेइ है (क० २।३)
स्मरइ	स्मरण करता है	बँ० स्मरइ श्रो नव रूप (प० क० त०, पद १६२) हि० पद सरोज सुमिरौ (वि० १४१)

(ह)

हंसन	हंसगम	बँ० जसु तुम्हार मानस विमल हंसानि जीहा जासु (मा० २।१२८)
हठ	बल-प्रयोग	बँ० हठ करि नाह कयल यत काज (विद्यापति, प० क० त०, पद २३६) हिं० बिन बाँधे निज हठ सठ परवस परयो वीर की नाँइ (वि० १२०)
हम	हम लोग	बँ० समय बुझि हाम सब समाधव (प० क० त०, पद १६७५) हिं० हमसन सत्य मरमु किन कहहु (वि० १।७८।२)
हमारा	हमार	बँ० मृत तनू राखवि हामार (राधामोहन, प० क० त०, पद ४५) हिं० पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा (मा० २।११।२)
हमें	हमको	बँ० हामे हेरइते तनु झाँप (शेखर कवि, प० क० त०, पद २५६) हिं० कंत सिख देइ हमहिं कोउ भाइ (मा० २।१४।१)
हरि	हरन करके	बँ० जनु मझु मन हरि कनया-कुंभ भरि (प० क० त०, पद २००) हिं० करि कृपा हरि भ्रम फंद काम (वि० १४)
हासत	हँसता है	बँ० खेने मंद हासि खेने उतरोल (नरहरि, प० क० त०, पद १०३) हिं० सित सुमन हास लीला समीर (वि० १४)
हासनि	हँसी	बँ० लहु लहु हासनि गदगद भाषनि (गोविन्ददास, प० क० त०, पद ३) हिं० तिन्ह कहँ सुखद हासरस एहू (मा० १।६।२)
हिंडोर	झूला	बँ० तहिं बनि अपरूप रतन-हिंडोर (प० क० त०, पद १५५२)

		हिं० पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा (मा० २।५६।३)
हिय	हृदय	बँ० हिय अगेयान तिमिर (प० क० त०, पद १)
		हिं० हरषहिय समुझायत सब आये (मा० १।११।४)
हिलन	हिलना	बँ० हिलन कल्पतरू ललित-त्रिभंग (प० क० त०, पद १६)
		हिं० बार बार हिलिमिलि दुँहुँ माइ (मा० २।३२०।३)
हिलायत	हिलाना	बँ० श्यामर काय अचाहे हिलायत (प० क० त०, पद २८८६)
		हिं० राम प्रेम बिनु नेम जाय जैसे मृगजल जलधि हिलोरे (वि० १६४)
हिलोर	झूलना	बँ० दौलत-मदन हिलोर (प० क० त०, पद ५८)
हिलोल	तरंग	बँ० तहाँ ताहाँ उछलई कालिदी हिलोल (प० क० त०, पद ८६)
हैं	है	बँ० मूल मन आप हैं (प० क० त०, पद १०८८)
		हि० हहिं पुरारि तेउ एकनारि व्रत-पालक (मा० १०४)
हैट	नीचे	बँ० सचकित नयने वचन करू हैट (प० क० त०, पद ११५)
हैरइ	देखकर	बँ० दूरे हैरइ यदुनंदन दास (प० क० त०, पद २२१)
		हिं० सीय सनेह-सकुच बस पियतन हेरइ (रा० च० मा०, बा० १२१)
हेरिलुँ	देखलूँ	बँ० ना हेरहुँ विच निज नाह (प० क० त०, पद १२५)
		बँ० कि हेरिलूँ कदम्ब तलाते (प० क० त०, पद १२५)

हो	प्रत्यय विशेष	बँ० निके बनि आये हो नंद-दुलाल (गोविन्ददास, प० क० त०, पद २४२५) हिं० प्यारे नंदलाल हो (सूरदास, सू० सा० १०।१८२४)
होइ	होकर	हिं० होनहार सहजान सब विभव बीच नहिं होत (सं० १५६)
होत	होता है	बँ० सो पुन होत संदेह (प० क० त०, पद ३०८) हिं० जानत हो कछु मल होनिहारा (मा०१।१५६।४)
होयत	होता है	बँ० शुनहते गर्व्व खर्व्व तब होयत (प० क० त०, पद १८) हिं० निज निज मुखनि कही निज होनी (गी० २।२२)
होये	होकर	बँ० कि कहिते पुन होय ना जानि (प० क० त०, पद १८३३) हिं० बीती है वय किसोरी जोबन होनी (गो० २।२२)
हो हो	आनंदसूचक अव्यय	बँ० रंगे हो होरि (प० क० त०, पद १४४१)

तृतीय अध्याय

वैष्णवोत्तर (चैतन्योत्तर) काल

: १ :

इस्लामिक-बंगला साहित्य की परम्परा

१७००-१८५० ईस्वी

भारत में मुस्लिम आक्रमण तथा मुसलमानी राज्य-विस्तार ने भारतीय साहित्य को एक नया मोड़ प्रदान किया है। बँगला और हिन्दी साहित्य की धारायें, प्रवृत्तियाँ भी इससे प्रभावित हुई हैं। बंगला से पहले मुसलमानी राज्य हिन्दी-प्रदेश में स्थापित हुआ था। अतः हिन्दी के माध्यम से बँगला पर भी इसका प्रभाव पड़ा है। किन्तु लोक-कथायें परम्परागत रूप में पहले भी विद्यमान थी, वैसे उनका इस्लामीकरण बाद में हुआ। सतरहवीं शताब्दी के पहले बँगला में हिन्दू वैष्णव-कवियों की रचना होती रही है। वैष्णवों का समस्त साहित्य धार्मिक है। लौकिक-शृंगार को भी वैष्णव भक्तों ने आध्यात्मिक-दृष्टिकोण प्रदान किया है। राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला, उनके लिए साधारण नर-नारी का काम-कला विलास नहीं है। वैष्णवों के लिये वह भगवान की लीला है। उनके लिये पूजनीय, अर्चनीय, वंदनीय है। कृष्ण यदि वैष्णवों के लिये अवतार हैं, भगवान हैं तो राधा भगवती हैं। अतः समस्त वैष्णव तथाकथित शृंगारिक-साहित्य धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता से ओतप्रोत है। किन्तु इस्लामी बँगला-साहित्य पूर्णतया लौकिक प्रेम से ओतप्रोत है। दौलत काजी और आलाओल इसके थोड़े अपवाद हो सकते हैं, जिनके विषय में आगे विचार किया जायेगा। हिन्दी प्रेमाख्यानक साहित्य ही बँगला-इस्लामिक सूफी और प्रेममूलक साहित्य का उत्स है। जैसा कि समादरणीय डा० सुकुमार सेन महोदय लिखते हैं, "बँगला-गीति-कविता पर यदि कुछ सूफी प्रभाव पड़ा है, वह सतरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से पहले नहीं है, किन्तु वह हिन्दी के माध्यम से आया है"।[1]

---

१. बांगला गीति-कविताय सूफी प्रभाव यदि किछु पड़िया थाके तवे ताहा सप्तदश शतकेर शेषाधेर पूर्वेर नय, एवम् ताओ आसिया छिल हिन्दीर माध्यमे।

(बां० सा० इ०, प्र० खं० पृ० २८७)

बंगाल में सिलहट, चटगाँव, ढाका आदि प्रदेशों और लोअर बर्मा के रोसांग, आराकान आदि प्रदेशों में हिन्दी की सूफी प्रेममार्गी-परम्परा के आख्यानों का बहुत प्रचार हुआ है। हिन्दी-प्रभाव के कारण ही इस प्रदेश में बँगला-साहित्य के इतिहास में एक नये युग का प्रवर्तन हुआ है। जैसा कि डा० सत्येन्द्रनाथ घोषाल जी भी लिखते हैं, "इन मुसलमान कवियों को केवल धर्मात्मक काव्य-रचना की धारा परिवर्तन करने ही से शांति नहीं हुई, किन्तु फारसी और प्राचीन हिन्दी से आगत अज्ञात पूर्व अभिनव आख्यान समूह के द्वारा बँगला-साहित्य में उन्होंने एक नये युग की सृष्टि की[1]"। अतः क्रमशः इस काल में हिन्दी प्रभाव बँगला में निम्न मानचित्र द्वारा स्पष्ट किया जाता है :

वैष्णवोत्तर (चैतन्योत्तर) काल में बँगला पर हिन्दी-प्रभाव

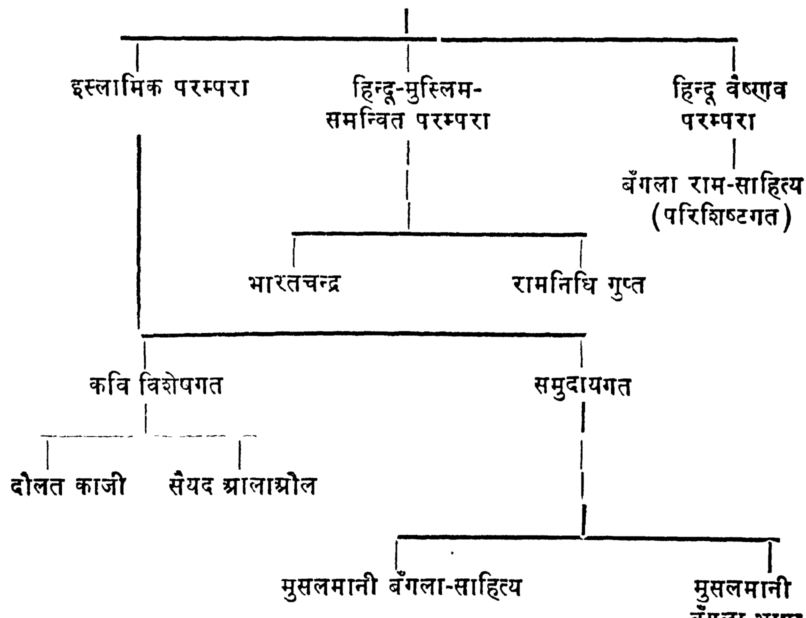

उपर्युक्त मानचित्र को विस्तारपूर्वक विवेचन से इस प्रकार हृदयंगम किया जा सकता है।

१. एइ मुसलमान कविरा शुधु जे निछक धर्मात्मक काव्य-रचनार धारा परिवर्तन करियाइ—शांत हइलेन, ताहा नहे, फार्सि ओ प्राचीन हिन्दी साहित्ये हइते अज्ञात पूर्व अभिनव-काहिनी समूह बँगला-साहित्ये एक नव-युगेर सृष्टि करिलेन।

(स० म० लौ० च०, भू० पृ० १)

: २ :

दौलत काजी[1]

इस्लामिक बंगला-साहित्यकारों में सर्वप्रथम साधन विरचित हिन्दी-काव्य 'मैनासत' का अवलम्बन (Adaptation) लेकर सूफी साधक दौलत काजी ने आराकान राजसभा में सतरहवीं शताब्दी (१६२२-१६३८ ई०) में श्रीसुधर्मा (थिरि-थु-घम्मा) के राजत्तव-काल में अपनी 'सतीमयना और लौर चन्द्रानी' काव्य की सृष्टि की थी। 'मैनासत' का बंगला सतीमयना और लौरचन्द्रानी का प्रभाव दिखाने के पूर्व किंचित हिन्दी प्रेमाख्यानक साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालना समीचीन जान पड़ता है। क्योंकि किंचित हिन्दीमूलक प्रेमाख्यानों का उत्स गौड़-दरबार (पश्चिमी बंगाल) हुसैनशाह के राजत्वकाल में होता है। अवधी काव्य-परम्परा ही इनका मूल है, जैसे डा० सेन भी इसी मत से सहमत हैं, वे लिखते हैं, "किन्तु पश्चिमी बंगाल (गौड़-दरबार) से उत्तरी-पूर्वी बंगाल के प्रदेशों सिलहट और चटगाँव के अंचलों से स्थानीय मुसलमान जागीरदारों के दरबारों में स्थानांतारित हुई, वहीं से आराकान, रोसांग के राजाओं और मंत्रियों की सभा में इन हिन्दीमूलक कहानियों का प्रवेश हुआ।"[2] हिन्दी में यह काव्य-परम्परा अपभ्रंश काल में अब्दुर्रहमान के सन्देशरासक से शुरू होती है, मुल्ला दाउद का चंदायन, कुतबन की मृगमालती, मंझन की मुग्धावती से लेकर मलिक-मोहम्मद जायसी में परिपूर्णता और परिपक्वता को प्राप्त होती है, किन्तु अपभ्रंश-प्रेमाख्यानक-काव्य और अवधि-प्रेममार्गी सूफी साहित्य में एक सूक्ष्म अन्तर है। अपभ्रंश प्रेमकाव्य-पूर्णतया लौकिक-शृंगार से ओतप्रोत है, किन्तु हिन्दी सूफी प्रेम-काव्य में लौकिक शृंगार की रस-रंगीनी के आवरण में सूफी सिद्धान्तों की अभिव्यंजना है। हिन्दी में यह सूफी साहित्य १३वीं, १४वीं और १५वीं शताब्दी तक चलता रहा है। साधन की मैनासत भी इसी परम्परा की उपज है।

मुसलमानों का राज्य लगभग सारे उत्तरी-भारत में जम चुका था। पहले कहा जा चुका है कि बंगला में सूफी साहित्य और शृंगारिक साहित्य की लौकिक परम्परा का श्रीगणेश मुसलमानों के द्वारा ही लौकिक प्रेम-कथाओं और प्रणय-काव्यों द्वारा १७वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होता है। हिन्दी में भी उस समय रीतिकालीन शृंगारिक परम्पराएं पनपने लगी थीं। बंगाल में वैष्णव-भक्तों की पदा-

१. देखिये—विशेष अध्ययन के लिये 'लौर चन्द्रानी ओ सतीमयना' तथा Beginning of secular Romance in Bengali Literature (I Book)

२. बाँ० सा० इ० प्र० खं०, पृ० ५६४।

वलियों की झनकारों की गूंज कम होती जा रही थी। उस समय यह मुसलमानी प्रेमात्मक (Romantic) साहित्य बंगला भाषा एवं साहित्य के इतिहास में एक नया मोड़ उत्पन्न करता है।

आराकान राजसभा में इस समय दो महाकवि दौलत काजी और सैयद आलाओल उत्पन्न हुए।[1] जिन्होंने हिन्दी फारसी काव्यों का अवलम्बन, ग्रहण, अनुरण एवं अनुवाद से बंगला-साहित्य जगत में नवयुग का सूर्योदय किया।

दौलत काजी सूफी साहित्य का ही नहीं अपितु समस्त बंगला-साहित्य का शक्तिशाली प्रकाश-स्तम्भ है। डा० सुकुमार सेन जी हमारे मत की पुष्टि करते हुए लिखते हैं, "दौलत काजी—बंगाली मुसलमान कवियों में ही नहीं, बल्कि उसके पूर्ववर्ती प्राचीन बंगला-साहित्य के शक्तिशाली कवियों में वे सर्वश्रेष्ठ एवं अन्यतम हैं।[2]" दौलत काजी ने रोसाँग राजसभा में राजा श्री सुधर्मा के लश्कर वजीर अशरफ खाँ के अनुरोध से साधन विरचित हिन्दी काव्य मैनासत का अवलम्बन (Adaptation) लेकर अथवा किंचित स्थलों का अविकल एवं अक्षरशः अनुवाद कर अपने बंगला काव्य 'सतीमयना ओ लोर चन्द्रानी' का प्रणयन किया। इसी प्रसंग में साधन का दौलत काजी पर प्रभाव दिखाने के पूर्व साधन एवं उनके काव्य पर कुछ पंक्तियों से प्रकाश डालना आवश्यक जान पड़ता है।

साधन के व्यक्तित्व के विषय में मतभेद है। श्रीहरिहर निवास द्विवेदी इनको पुरुष कवि न मान कर स्त्री कवि, (कवयित्री) मानते हैं।[3] मैनासत के साथ में मुल्ला दाउद के चन्दायन का कथानक भी सम्पृक्त है। श्री हरिहरनिवास द्विवेदी साधन और उनके मैनासत की भाषा को अवधी न मान कर गोहारि शब्द के वजन पर ग्वालियरी-भाषा[4] मानते हैं। जबकि डा० सुकुमार सेन इसकी भाषा को गोहारि-शब्द के वजन पर गँवारी प्राचीन अवधि मानते हैं।[5] भाषा विषयक प्रसंग में ग्वालियरी भाषा की तो कोई सुदृढ़-साहित्यिक परम्परा नहीं प्रतीत होती। अवधी

---

१. बाँगलाय हिन्दी-फारसी रोमाँटिक काव्यधारार भागीरथ हच्छेन रोसांग दरबारे दुजन सभा कवि, दौलत काजी ओ आलाओल। स० म० लो० च०, भू०, पृ० २।

२. दौलतकाजी बाँगाली मुसलमान कविदेर मध्ये श्रेष्ठ तबटूरे पुरानों बाँगला साहित्येर शक्तिशाली कविदेर अन्यतम तिनि। इ० बाँ० स०, पृ० १५।

३. देखिये—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी सम्पादित 'साधन कृत' 'मैनासत' साधन का परिचय पृ० ७१-७८।

४. देखिये—मैनासत, पृ० ११, ग्वालियरी∠ग्वारियरी∠ग्वाइयरी∠गोहारि∠पृ० १०१-१२७ (भाषा-विवेचन)।

५. बाँ० सा० इ०, प्र० खं०, पृ० ५६६।

की काव्य-परम्परा तो इतिहास सिद्ध तथ्य है। किन्तु इस विषय पर अधिक लिखना अप्रासंगिक है।

मैनासत बहुत छोटा काव्य है, किन्तु दौलत काजी ने इसका कुछ शाब्दिक कुछ भावानुवाद किया है। इस रूपान्तर का अभिप्राय लौकिक-प्रेम की कहानियों का प्रचार तथा जन-रंजन था। दौलत काजी स्वयं लिखते हैं, "अरबी, फारसी के अनेक उत्तम उपदेश थे। विविध-प्रसंग और अनेक कथाएं थी। गौहारि (गंवारि), अवधी और (खोट्टो), ठेठ ग्राम्य-हिन्दी वाली कहानियाँ थीं। जिनको सुनकर सभा-सदस्य रसास्वादन करते थे।[1]" अशरफखाँ हिन्दी-कविता अवधी के मैनासत को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए थे तब उन्होंने दौलत काजी से अनुरोध किया यदि इसकी रचना देशी भाषा, (बंगला) में हो जाये तो सर्वसाधारण भी इसका आनन्द ले सकेंगे। तब दौलत काजी ने मैनासत का अनुवाद "सतीमयना श्रो लोर चन्द्रानी" के नाम से किया क्योंकि साधन ने ठेठ दोहा-चौपाई में अपनी कथा कही थी। बहुत लोग उस गोहारि भाषा को नहीं समझ सकते थे। देशी भाषा (बंगला) में पाँचाली छन्द में यदि इसकी रचना हो जाये तब सब लोग इसको सुनकर आनन्द ले सकेंगे। तब दौलत काजी ने उस प्रार्थना को सुनकर पाँचाली छन्द में मयना की भारती का वर्णन किया।[2]

अवधी काव्य मैनासत पहले लुप्तप्राय: था, किन्तु अब उसकी कई पाण्डु-लिपियों का पता लगा है।[3] कई जगहों से प्रकाशित प्रतिलिपियाँ भी मिलती हैं।[4]

---

१. **अरबी फारसी नाना उत्तम उपदेश**
विविध प्रसंग-कथा आछिल-विशेष।
गुनिगन गौहारि औ खोट्टो बहुतर
सहजे महन्त सभा आनन्द लोक बहुतर।

सती० म० लौ० च०, पृ० ४८।

२. **ठेठा चौपाइया दोहा कहिला साधने।**
ना बूझे गोहारि भाषा कौन कौन जने॥
देशी भाषे कह ताके पाँचालीर छन्दे।
सकले शुनिया जेन बुझय सानन्दे॥
तबे काजि दौलत बुझिया की आरति।
पाँचालीर छन्दे केहे मयनार भारती॥

(स० म० लौ० च०, पृ० ४९)

३. देखिये मैनासत पृ० १३।

४. देखिये—आगरा विश्वविद्यालय की हिन्दी-विद्यापीठ की ग्रंथ-वीथिका में प्रकाशित, सन् १९५६। तथा विद्यामन्दिर प्रकाशन ग्वालियर, १९५९।

दौलत काजी ने अपने-अपने काव्य 'सतीमयना औ लौर चन्द्रानी' का आधार 'साधनकृत मैनासत' को बनाया है। दोनों के कथानकों में बहुत समानता है। मैनासत का वर्णन सीधा है, किन्तु लौरचन्द्रानी तीन खण्डों में विभक्त है। इनकी कथा पर सिंहावलोकन करना प्रासंगिक हो सकता है। प्रथम खण्ड में सती मयना और गौहार देश के राजा लौरक का विवाह होता है। एक दिन एक योगी ने मोहरा देश की राजकुमारी चन्द्रानी (चन्द्राली) का चित्र लौरक को दिखाया। चन्द्रानी विवाहिता थी, किन्तु उसका पति वामन और नपुंसक था, लौरक सती मयना को छोड़कर चन्द्रानी के देश को गया। वहाँ वामन को मार कर लौरक ने चन्द्रानी से विवाह किया। चन्द्रानी के पिता ने लौरक को राज भी दे दिया।

दूसरे खण्ड में मयना का विरह वर्णन है, किन्तु पड़ोसी राज्य का राजकुमार सातन मालनि को दूत मानकर मयना को अधर्म पथ पर ले जाना चाहता है किन्तु मयना दूती को पीट कर निकाल देती है।

तीसरे खण्ड में सखी के परामर्श से एक ब्राह्मण के हाथ में शुक पक्षी भेजकर सती मयना पति को अपनी पूर्व स्मृति याद दिलाती है। राजा लौरक अपने पुत्र के हाथ मोहरा का राज्य समर्पित कर चन्द्रानी के साथ मयना से आ मिलता है।

दौलत काजी ने केवल एक खण्ड पूरा लिखा था; दूसरे खण्ड में ग्यारहवें महीने का वर्णन लिखते ही कवि दौलत काजी का स्वर्गवास हो गया। दूसरे खण्ड का शेष और पूरा तीसरा खण्ड सैयद आलाओल ने बीस साल बाद मगनठाकुर के अनुरोध से पूर्ण किया था। पहले कहा जा चुका है कि मैनासत का अवलम्बन (Adaptation) लेकर दौलत काजी ने सतीमयना औ लौरचन्द्रानी का सृजन किया। कुछ का आक्षरिक एवं भावानुवाद भी है। सम्पूर्ण कथानक तो साधन विरचित मैनासत से लिया गया है। साधन के मैनासत एवं दौलत काजी की सती मयना औ लौर चन्द्रानी के तुलनात्मक अध्ययन से मैनासत के प्रभाव का सतीमयना औ लौरचन्द्रानी के ऊपर स्पष्टीकरण हो सकेगा।

साधन का मैनासत एक छोटा छाव्य है। आज के खण्ड काव्यों की श्रेणी में परिगणित किया जा सकता है। पहले लुप्तप्रायः एवं अप्राप्य था। केवल कवि एवं काव्य का नाम ही शेष रह गया था। आजकल इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ पाठान्तरों के साथ उपलब्ध होती हैं। किन्तु दौलत काजी की सतीमयना औ लौर-चन्द्रानी एक बड़ा काव्य है। यह महाकाव्य और खण्डकाव्य के मध्य में ठहरता है। इसको हम एक बृहद्-प्रेमाख्यान काव्य कह सकते हैं। साधनकृत 'हिन्दी-मैनासत' का प्रभाव दौलत काजी पर भाव एवं भाषा दोनों रूपों में है। विशेष कर दौलत काजी की सतीमयना का द्वितीय खण्ड तो साधन की मैनासत का अनुकरण है।

दौलत काजी की भाषा का साधन की भाषा के साथ बहुत मेल है। कुछ उदाहरण देकर इस कथन की सत्यता प्रकट करते है।

१. दौलत काजी—

नरेन्द्र नृपति सुत, कपट लक्षण युत, नाम तार छातन कुमार।

(स० म० लो० च०, पृ० १११)

साधन—

सातन कँवर नगर कर धूतू कपट रूप नारद कर पूतू। (मैं० स०, पृ० ५)

२. दौलत काजी—

'तोमार जनकवरे, धाई करि दिल मोरे, शिशु काले दुग्ध दिलुँ लोके,

(स० म० लो० च०, पृ० ११३)

साधन—

'तोर पिता धाइ हौं कीनी, बार पनें तोहि चूची दीनी'

(स० मैं०, पृष्ठ ६)

३. दौलत काजी—

'शत्रु ना करे हेन जे करिल लोरे, वयसे विरह दुःखदिया गेल मोरे'

(स० म० लो० च०, पृ० ११५)

साधन—

'करहि न बैर चाँद जो कीन्हा, बारि बैसि मोहि दुखदीन्हा'

(स० मैं०, पृष्ठ ८)

दौलत काजो ने साधन के शब्दों का भी हु-बहु अनुकरण किया है। कुछ परिवर्तन के बाद वे पद हिन्दी के ही प्रतीत होने लगते हैं। कुछ दृष्टान्तों से सिद्ध किया जाता है :—

१. दौलत काजी—

तोर दुःख देखि मुइ भरि याम, बोलों सहृदय वाणी।
मालती भ्रमर जेन समागम, चारु छैला देम आनि॥

(स० मैं० लो० च०, पृ० ११७)

साधन—

बोल छाड़ि देहि मोह, मनु मैना साचो कहों।
आनि मिलावों तोहि, मालति कौं भौंरा जिसे॥[1]

(स० मैं०, पृ० १०)

---

१. पाठ भेद—तेरे दुख भरत हूँ, बोल बचन दै मोहि।
जस मालति कों भ्रमरा, आनि मिलाओं तोंही।
पंक्तियाँ १२४-१२८।

२. दौलत काजी—

श्रावण मासेते मयना बड़ सुख लागो।
रिमझिम बरिखय मनोभव जागो ।।
घरती वह्य धारा रात्रि श्रांधियारी।
खेलय वधुर सने प्रेमेर धामारी ।।
श्यामल अंबर श्यामल खेत खेति।
श्याम लखि दशदिश निवसक युति ।।

(स० म० लौ० च०, पृ० १२०)

इन पंक्तियों में मासेते 'से' 'ते' वधुर में से 'र' सने का सन और प्रेमेर के 'र' निकाल देने पर यह पद हिन्दी का बन जायेगा। जिन पदों को हम भावपक्ष के उदाहरण स्वरूप लेते हैं उनमें भाषा एवं भाव दोनों का ही प्रभाव है। जैसे—

१. दौलत काजी—

मंदिरेते से मालिनी प्रवेश करिल जानि सिंहासने वसिला कुमारी।
हास्य मुखे पूछे रानी, सत्य कउ ओ मालिनी, कौथा हनते आगमन तोमारि ।।

(स० म० लौ० च०, पृ० ११३)

साधन—

मालिनी जाय मंदिर महि पैठी, मयना जहाँ सिंहासन बैठी।
चंपक फूल चौसर हारु, दीन्हा भेंट अरु कीन्ह जुहारु।
हँसि करि पूछे मयना रानी, कहु आवागमनु कौनि जगमानी ।।

(स० मैं०, पृष्ठ ६)

२. दौलत काजी—

ना रहे दारुण मन चित दहे अनुक्षण, कृपा मात्र स्मारिते तोमार।
देखिलूं वदन-चाँद, घुचिल मनेर धान्द, एतजानि आइलुं देखिबार ।।

(स० म० लौ० च०, पृ० ११३)

साधन—

मनु न रहे हियरा उठायो आगी जरे तन मोहि।
सिवरि सिवरि दुख उपजै, देखन आई तोहि ।।[1]

(स० मैं० पृष्ठ ६)

---

१. पाठ भेद—मनु न रहे जिउ गइबरै, आग परे तन मोहि।
सुमिरि मोह चित उपजै, देखनि आई तोहि ।।

३. दौलत काजी—

कुटनी वचन शुनि धाई हेन सत्य जानि।
नापित बोलाई ततक्षणे ॥
सुगंधि कुसुम्ब रंगे, मार्जन कराइल ग्रंगे।
स्नान कराइला सखी गणे ॥

(स० म० लौ० च०, पृ० ११३)

साधन—

मैना बात साचु करि जानि, कुटनी के बोलं पतियानी।
तबहीं नाईनि बेग बुलाई, कुंकुम मरदन कुटनि नहवाई॥

(स० मैं०, पृष्ठ ७)

४. दौलत काजी—

जे पालय प्रेमांकुर जावत जीवन।
तार संगे प्रीति सूत्र बाड़ाय सुजन।
कांचा सुता प्राय छिण्डे प्रेमांकुर जार।
कहन्त दौलत काजि से कि प्रेमसार॥

(स० म० लौ० च०, पृष्ठ ११५)

साधन—

तिह सों कीजं नेह, जिह सों उर नीवा हीये।
साधन कौन सनेह, टूटे काचे सूत जौ।

(स० मैं०)

इस प्रकार भावपक्ष एवं कलापक्ष के अनेक उदाहरण दौलत काजी ने साधन से लिये हैं। जैसे—

१. दौलत काजी—

मरु सम मोर एइ मास। येइ बल हास्य बिलासे चोदिस।
विरहीक सेइ उपहास। पिया विहीन युत मधुरल करि कत
माधुरीह बिषसम ताहे।

(स० म० लौ० च०, पृष्ठ १३७)

साधन—

रितु बसंत मालिनि जो ग्रावे, बात कहत मोहि नेकु न भावे।

(स० मैं०, पृष्ठ २३)

अथवा—

रितु अनुरितु रस अनरसह, मोहि मनहि न भाव।
रितु बसंत तबमनि, जब लोरकु घरि आव।[1]

दौलत काजी का समस्त बारहमासा हिन्दी मैनासत के बारहमासा के आधार पर विरचित है।[2] दौलत काजी ने साधन के काव्य की नाटकीयता, पात्रों का मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण, एवं नारी चरित्र के सूक्ष्म-निरीक्षण को आत्मसात किया है। प्रकृति वर्णन, मानव एवं प्रकृति का साहचर्य, प्रकृति-परिवर्तन के साथ मनोभावों का उतार-चढ़ाव और विरहणी की प्रकृति के प्रति प्रतिक्रिया आदि में 'मैनासत' का अनुकरण'सतीमयना श्रो लोर चन्द्रानी' में है।

भाषा की दृष्टि से तो दौलत काजी साधन के शब्दगत, वाक्य-विन्यास, कहीं-कहीं विद्यापति ठाकुर, ब्रजबुलि के पदकर्त्ता वैष्णवों एवं कहीं-कहीं गीत गोविन्द के रचियता जयदेव का भी ऋणी है। विद्यापति की शैली के अनुकरण पर दौलत काजी के एक ब्रजबुलि के पद का उदाहरण देते हैं:—

चका-चकीत जिनि रजनी दम्पति विनि,
एकाकिनी जागि प्रेम त्रासेरे।
लोर विने लोर घोर नयने वारिखे मोर,
तनु दहे मदन — हुताशेरे॥
अविरत लोर इति जपयति कलावती,
आन मने समतूल न हेरे।

(स० म० लो० च०, पृष्ठ १२२-१२३)

: ३ :

"महाकवि सैयद आलाऔल"[3]

बँगला के मुस्लिम साहित्यकारों में महाकवि आलाओल सर्वप्रसिद्ध एवं सर्वप्रिय कवि हैं। साहित्य-सौन्दर्य की दृष्टि से उनका स्थान मुस्लिम-बंगाली

१. पाठ भेद—

रित अनरित रस अनरस मोहि चित और न भाव।
रितु सबै रस भावहीं जब लालन घर आव॥ (स० मै०, पृ० २८)

२. देखिये—स० म० लो० च०, पृष्ठ ११६-१४० दौलत काजी ने साधन के मैनासत के कारण बारहमासा का अनुकरण किया है।

३. बाँ० सा० इ०, प्र० खंड, पृ० ५७४, पृ० ८४, देखिये विशेष अध्ययन के लिए डा० सत्येन्द्रनाथ घोषाल का डी फिल्० कलकत्ता विश्वविद्यालय का प्रबन्ध— Begginning of secular Romance in Bengali Literature (II Book).

साहित्यकारों में दौलत काजी से दूसरा है। जिस प्रकार दौलत काजी ने अशरफखाँ के अनुरोध से साधन-विरचित मैनासत का अवलम्बन कर बंगला "सतीमयना ओ लौर चन्द्रानी" की रचना की थी। उसी प्रकार सैयद आलाओल ने श्रीचन्द्र सुधर्मा (साउद मंदार अर्थात् खदो-मिन्तार) के राजत्वकाल (१६४५-१६५२ ई०) में श्री कुरेशी मगन ठाकुर के आग्रह से हिन्दी के सुप्रसिद्ध महाकवि मलिक मोहम्मद जायसी के महाकाव्य पद्मावत का अवलम्बन अर्थात् आधार लेकर बँगला पद्मावती का सृजन किया था। आलाओल की पद्मावती कुछ मौलिकता लिये हुए है। किन्तु वह हिन्दी महाकाव्य का अविकल अनुवाद नहीं है। सचमुच इसमें भाषा एवं भावों का ग्रहण (Adaptation) है। डा० सुकुमार सेन के शब्दों में आलाओल की प्रथम एवं श्रेष्ठ रचना पद्मावती पाँचाली काव्य जायसी की पद्मावती (पद्मावत् अथवा पद्मावती) काव्य का क्वचित-स्वाधीन क्वचित-मूलानुगत अनुवाद है।[1]

कवि ने स्वयं स्वीकार किया है, सभा में जायसी के काव्य के प्रसंग में प्रसन्न होकर मगन ठाकुर ने आलाओल को आज्ञा प्रदान की कि इसका बंगानुवाद करो, जैसे "इस पद्मावती की सरस रसकथा को शेख ने (जायसी ने) हिन्दुस्तानी अर्थात् हिन्दी भाषा में लिखा था। रोसांग प्रदेश में दूसरे लोग इस भाषा को नहीं समझते थे। यदि पयार छन्द में इसकी रचना हो तो सब लोगों की आशा पूरी हो सकती है। जिस प्रकार दौलत काजी ने चन्द्राली (लौर चन्द्रानी) की रचना लश्कर वजीर अशरफखाँ की आज्ञा से लिखी थी, इसी प्रकार मेरी आज्ञा (मगन ठाकुर) के अनुसार पद्मावती की रचना करो।"[2]

बँगला पद्मावती की हस्तलिखित प्रति दुर्लभ है, डा० मोहम्मद शहिदुल्ला के पास अब्दुल करीम साहित्य विशारद द्वारा संगृहीत ४० प्रतियाँ फारसी अक्षरों में

---

१. "आलाओलेर प्रथम एवं श्रेष्ठ रचना "पद्मावती पाँचाली, काव्य जायसीर (पद्मावत, पद्मावती) काव्येर कवचित स्वाधीन, कवचित-मूलानुगत अनुवाद"। (बाँ० सा० इ०, प्र० खंड, पृ० ५७४)

२. एह पद्मावतीर सरस रस कथा
हिन्दुस्थानी भाषे शेखे रचियाछे पोथा।
रोसांगेते आन लोक ना बूझे एभाष
पयार रचिले पूरे सभाकार आश।
जेहेन दौलत काजी चन्द्राली रचिल
लश्कर उजीर आशरफे आज्ञादिल।
तेन पद्मावती रच मोर आज्ञाधरि। —पद्मावती, पृ० २२।

लिखित पद्मावती की प्रतियां बतलाई जाती हैं।[1] किन्तु परस्पर प्रभाव दिखाने के लिए कुछ तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है। ग्रंथकार स्वयं स्वीकार करते हैं :—

"एह सूत्रे कवि महाम्मदे करि भक्ति
स्थाने स्थाने प्रकाशित निजमन उक्ति"

(पद्मावती, पृ० १६)

अर्थात् इसी सूत्र से मोहम्मद कवि की भक्ति करता हूँ, स्थान-स्थान पर अपने मन की उक्ति का भी प्रकाश डालता हूँ। अतः यह कवि की स्वीकारोक्ति है कि वह जायसी का ऋणी है। मूलतः मूलाधार जायसी ही है। आलाओल में केवल (Adaptation) है। स्वयं कवि का कथन है, जायसी के काव्य का प्रचार आराकान प्रदेश तक था, मगन ठाकुर ने इसके प्रचार से प्रभावित हो आलाओल को लिखने का अनुरोध किया। डा० सत्येन्द्रनाथ घोषाल भी हिन्दी कवि का गम्भीर प्रभाव मानते हैं।[2] अतः किंचित तुलनात्मक दृष्टि से प्रभाव का प्रकाशन उदाहरणों के साथ वाँछनीय है।

बँगला पद्मावती के दो वयान, प्रथम, एवं द्वितीय तो जायसी के पद्मावत के अविकल शब्दशः अनुवाद हैं, जैसे—

बिसमिल्ला प्रभुर नाम आरंभ प्रथमे।
आद्यमूल शिर सेइ शोभित उत्तमे॥ (पद्मावती, पृ० १)

तथा आलाओल— **प्रथमे प्रणाम करि एक करतार,**
जेई प्रभु जीवदाने स्थापिल संसार।
करिल पूर्वेत आदि ज्योतिर प्रकाश,
तारपरे प्रकटिल सेई कविलास। (पद्मावती, पृ० १)

---

१. सर्वप्रथम पद्मावती का प्रकाशन १८६६ में हबीबी प्रेस से हुआ, तीसरा संस्करण (१३३८ बंगाब्द) में प्रकाशित हुआ, सर्वाधिक प्रमाणिक प्रति अभी तक यही मानी जाती है। डा० सत्येन्द्रनाथ घोषाल अध्यक्ष बंगला विभाग, पटना विश्वविद्यालय देवनागरी अक्षरों में हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय से एक प्रति प्रकाशित करा रहे हैं। घोषाल जी के अनुसार यह सर्वाधिक प्रामाणिक प्रति है। इसका पाठ ६६ प्रतिशत वे शुद्ध मानते हैं, लेखक के साथ शांति निकेतन में विचार-विमर्श करते समय उन्होंने अपना मत प्रकट किया।
देखिये—पुंथि-परिचिति-बाँगला-विभाग-ढाका विश्वविद्यालय द्वारा १६५८ में प्रकाशित तथा बांगला पुंथि साहित्य, पृ० ७३।

२. देखिये—Beginning of Secular Romance in Bengali Literature (II Book).

जायसी—

संवरो आदि एक करतारु,
जहँजिउ दीन्ह कीन्ह संसारु ।
कीन्हेसि प्रथम जोति परगासू,
कीन्हेसि तेहि पिरीत कविलासू ।। (पद्मावत, पृ० १)

आलाओल ने ईश्वर-महिमा वर्णन में जायसी की पद्धति को अपनाया है। हजरत मोहम्मद की प्रशंसा में भी हिन्दी कवि का आक्षरिक अनुकरण है।

आलाओल —

निज सखा मोहम्मद प्रथमे सृजिला ।
सेइ से ज्योतिर मूले भुवन निर्म्मिला ।।
से सकल ज्ञान कथा कहिते अपार ।
स्वमुखे पुस्तक कथा आछे अतिभार ।

(पद्मावती, पृ० १३,५)

जायसी—

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा, नाउँ मुहम्मद पूनिउँ करा ।
प्रथम ज्योति विधि तेहि कैसाजी, औतेहि प्रीति सिष्टि उपराजी ।।

(पद्मावत, पृ० ६)

आलाओल ने हिन्दी पद्मावत का अनुकरण किया है, यह अनुकरण कहीं शाब्दिक अनुवाद में है, कहीं भावानुवाद में है। समस्त प्रेरणा तो हिन्दी काव्य की है। बंगला पद्मावती में लौकिक पदार्थों के वर्णन में एवं सूफी-दार्शनिक प्रवृत्ति की अभिव्यंजना में हिन्दी पद्मावत की झलक है। कथानक पात्रों का कथोपकथन और मानव-भावनाओं का मनोवैज्ञानिक आरोह-अवरोह में लगभग जायसी की छाया है। नागमती शुक संवाद में नारी-सुलभ रूप-सौन्दर्य गर्व और ईर्ष्या का चित्रण आलाओल ने जायसी की परिपाटी पर किया है :—

आलाओल—

सत्य कह शुकवर आमार गोचर, पद्मिनि सिंहलद्वीपे कैमन सुन्दर ।
नृपति समक्ष शुक यदि बल आन, संसारे किरूप आछे आकार समान ।
पद्मावती रूप शुक भाविया अंतरे, राणीर वदन हेरि कहे धीरे धीरे ।।
जेह सरोबरे नाहि हंसेर गमन, तथा बक हंस तुल्य भावे से आपन ।।

(पद्मावती पृ० ४३)

जायसी—

जौं न कहसि सत सूग्रटा तोहि राजा के आन ।
है कोई एहि जगत महँ मोरे रूप समान ।

सँवरी रूप पद्मावती केरा, हँसा सुप्रा रानी मुख हेरा।
जेहि सरवर महँ हंस न प्रावा बकुली तेहि जल हंस कहावा ॥
(पद्मावत पृ० ८१)

नारी-सहज ईर्षा एवं सपत्नी भाव का नमूना द्रष्टव्य है।

ग्रालाग्रोल—

हलाहल तुल्य हैल मोर एहि पाखि,
सर्व्व सुख भ्रष्ट हैब यदि तोर राखि।
ग्रथवा
जे जन पोषय पुनि ना हैल ताहार,
एहि दोषे हाटे तुलि बेचे बारेबार।
मुखे कहे एक कथा हृदेतार ग्रान,
मार शुकनिया साक्षी नाहि जेइ स्थान।
(पद्मावती, पृ० ४३)

जायसी—

देखु यह सुग्रटा है, मँदचाला, भएउ न ताकर जाकर पाला।
मुख कह ग्रान पेट बस ग्राना, तेहि ग्रोगुन दस हाट बिकाना।
पंख न राखिग्र होइ कुमाखी, तहँ ले मार जहाँ न साखी ॥
(पद्मावत, पृ० ८३)

जायसी के मुहावरों (प्रवादों) उपमा, रूपकों का भी ग्रालाग्रोल ने ग्रपने काव्य में प्रयोग किया है। जैसे—

ग्रालाग्रोल—

कर्ण टुटे हेन स्वर्ण की लगि परिल।
(पद्मावत, पृ० ४४)

जायसी—

कान टुटे जेहि ग्रभरन का ले करब सो सोन।
(पद्मावत, पृ० ८५)

ग्रालाग्रोल—

किवा राणी किवा दासी किवा ग्रन्य जनि,
जाके स्वामी दया करे सेइ से भार्यानी।
(पद्मावती, पृ० ५०,४६)

जायसी—

का रानी का चेरी कोई। जा कहँ मया करहु भलि सोई।
(पद्मावत, पृ० ८६)

आलाओल—

तोमारे जिनते पारे कौन व्यास भोज,
आपन करिले नाश पाय लोमा खोज
(पद्मावती, पृ० ४६)

जायसी—

तुम्ह सौं कोइ न जीता हारे बररुचि भोज।
पहिलें आपु जौ खोवे करे तुम्हारा खोज।
(पद्मावत, पृ० ८९)

इसी प्रकार अनेक उदाहरण हैं।

पुरुषोचित कातरता का दिग्दर्शन आलाओल ने जायसी के अनुसार किया है। राजा की शुक के प्रति जिज्ञासा में द्रष्टव्य है।

आलाओल—

सत्य कह शुकवर सत्य जगमूल,
सत्येर कारणे तोर बदन रातुल।
सत्येते बांधिछे सृष्टि सत्यवादी जन,
सत्य हन्ते लक्ष्मी वश जानिओ (ए) कारण।
यथा सत्य तथाते साहस सिद्धि पाय,
सत्य हेते सतीनारी स्वामी संगे जाय।
(पद्मावती, पृ० ४६)

जायसी —

राजे कहा सत्त कहु सुआ, बिनु सत्त कस जस सेंवर भुआ।
होइ मुखरात सत्त की बाता, जहाँ सत्त तहँ धरम संघाता।
बाँधी सिस्टि अहै सतकेरी, लखिमि आहि सत्त की चेरी।
सत्त जहाँ साहस सिधि पावा, जौं सतवादी पुरुष कहावा।
(पद्मावत, पृ० ९०)

पद्मावती के रूप-सौन्दर्य वर्णन में आलाओल ने जायसी के नख-शिख वर्णन का अनुकरण किया है। आलाओल भी जायसी की तरह सूफी साधक थे। पद्मावती के रूप सौन्दर्य वर्णन में सूफी-दर्शन (प्रेम-तत्त्व) का प्रतिबिम्ब समस्त विश्व में झलकता है। पद्मावती विश्व सौन्दर्य का मूर्तिमान स्वरूप है। प्रेम की पीर सूफीवाद का प्राण तत्व है। दोनों ही काव्यों में इसकी अभिव्यंजना है।

आलाओल के काव्य में जायसी की पद्मावती का काव्य-सौन्दर्य एवं भावा-गाम्भीर्य स्वतः ही आगया है। सचमुच यह जायसी की पद्मावती का बंगालीकरण है। भाषा तथा Local-colour भिन्न-भिन्न हैं, किन्तु उनका काव्यामृत एक ही

है। राजा रतनसेन (प्रियतम साधक) प्रियतमा पद्मावती (ब्रह्म) का रूप-सौन्दर्य हिरामन सुग्रा (गुरु या पीर) से सुन कर भाव-विभोर हो समस्त ब्रह्माड में उसके ही नूर की झलक देखता है। जैसे—

ग्रालाग्रौल—

शौनिया कन्यार रूप नृप उल्लसित,
प्रेम भावे शरीर हइल पुलकित।
पंडितेर वचन जानिल तत्वसार,
चित्र रूप रहिलेक हृदय माझार।
मोहन मूरति यदि हृदे प्रवेशिल,
घट पूर्ण हइल जोतिर्मय प्रकाशील।
चितेर नयन निरखिल रूप छाया,
जल मीन दुग्ध ननी जेन एक काया।

(पद्मावती, पृ० ४७)

जायसी—

सुनि रबि नाऊँ रतन भा राता, पंडित फेरि इहै कहु बाता।
तुई सुरंग मूरति वह कही, चित्त महँ लागि चित्र होइ रहि।
जनु होइ सुरुज ग्राइ मन बसी, सब घट पूरि हिएं परगसी।
ग्ररुब हौं सुज चाँद वह छाया, जल बिनु मीन रकत बिनु काया।

(पद्मावत, पृ० ६३)

पहले कहा जा चुका है कि बंगाली कवि ने जायसी के भाव, भाषा, एवं दार्शनिक गांभीर्य का बहुविध ग्रनुसरण किया है। पद्मावती के रूप-सौन्दर्य का वर्णन समस्त जगत को ग्राधार मानकर किया है। पद्मावती विश्व हृदय एवं ग्रनन्त सौन्दर्य, दिव्य ज्योति का प्रतीक है। बंगाली कवि ने जायसी के रूपक (सूफी दर्शन) को ग्राधार मान कर ग्रपने महाकाव्य का सृजन किया है।[1]

ग्रालाग्रौल ने जायसी के मानव-भावनाग्रों के सूक्ष्म-पर्यवेक्षण (Minute observation) को ग्रपनाया है। उनके काव्य में मानव-जीवन का सूक्ष्म

१. जायसी के रूपक "तनचित उर मन राजा कीन्हा···को ग्राचार्य रामचन्द्र शुक्ल पद्मावत का प्रामाणिक ग्रंश मानते हैं। (जां० ग्रं०) हि० सा० इ०, पृ० १०५। डा० सुकुमार सेन महोदय भी ग्रालाग्रौल के काव्य में इसका ग्रहण मानते है। देखिये—बाँ० सा० इ०, प्र० खं०, पृ० ५८१। डा० वासुदेवशरण ग्रग्रवाल इसको प्रक्षिप्त मानते हैं, पद्मावत संजीवनी-टीका। डा० सत्येन्द्रनाथ घोषाल उनका समर्थन करते हैं।

अध्ययन है, कन्याओं का तीर्थ-स्थान में स्नान इसका ज्वलंत उदाहरण है। मानव-जीवन की अस्थिरता दोनों काव्यों में समान है।

आलाओल—

आपना मनेते कन्या देखह विचारि,
पितार गृहेते कन्या रहे दिन चारि।
जे किछु खेलिते योग्य पाओ आज खेलि,
कालि शशुराले गेल कोथा पाये रसकेलि।
निज गत ना हइव आपन इच्छामन,
सखिगण संगे पुनि कोथा से मिलन।

(पद्मावती, पृ० ३१, ३७)

जायसी—

ऐ रानी मनु देखु बिचारी, एहि नैहर रहना दिन चारी।
जौ लहि अहै पिताकर राजू, खेलि लेहु जों खेलहु आजू।
पुनि सासुर हम गोनब काली। कित हम कित एह सरवर पाली।

(पद्मावत, पृ० ६१)

आलाओल ने जायसी के प्राकृतिक सौन्दर्य एवं मानव-हृदय की उसके प्रति स्वाभाविक आकर्षण को भी हु-बहु अपनाया है। पद्मावती के संग लड़कियों की जल क्रीड़ा इसकी साक्षी हैं।

आलाओल—

एक चन्द्र देख गगने निशाकाले, दिवसे दोसर चन्द्र प्रवेशिल जले।
हेनकाले पद्मावती शशधर मुखि, मधुर वचने कहे शुन सब सखी।
श्यामल श्यामल संगे गौरी संगे गौरी, जुटे जुटे हार लइ खेदवाद करि।

(पद्मावती, पृ० ३२)

जायसी —

लागी केलि करे मंझ नीरा। हंस लगाइ बैठ होइ तीरा।
पद्मावती कौतुक करि राखी। तुम्ह ससि होहु तराइन साखी।
बाहि मेलि कै खेल पसारा। हारु देइ जो खेलन हारा।
सँवरहि साँवरि गोरिह गौरी। आपनि आपनि लीन्हिं सो जोरी।

(पद्मावत, पृ० ६३)

जायसी के परम्परागत भाग्यवाद का ग्रहण भी बँगला पद्मावती में है।

आलाओल—

आय प्रभु निरांजन त्रिभुवन कर्त्ता।
जत जीव जन्तु सकलेर भक्ष दाता।

पाषाणेरमध्य कीट नहिं विस्मरण,
यथा तथा भक्षदाने करह पालन ।
(पद्मावती, पृ० ३४, ३६)

जायसी—

ए गोसांई तू ऐस विधाता । जांवत जीउ सबक मख दाता ।
पाहन महँ न पतंग विसारा । जहँ तोहिं सँवर दीन्ह दुई चारा ।
(पद्मावत, पृ० ६६)

रत्नसेन के प्रेम एवं विरह, साहसिक कार्यों का वर्णन आलाओल ने जायसी के अनुसार ही किया है ।

आलाओल—

रत्न तुल्य प्राप्ति हैव अमूल्य माणिक ।
चन्द्र सूर्य मिलने आनन्द हैव धिक ।
मालति भ्रमरा प्राय हइया वियोगी ।
राज्य पाट त्यजि जाइव हइल महायोगी ।
(पद्मावती, पृ० ३८)

जायसी—

पदिक पदारथ लिखी सो जोरी ।
चाँद सुरुज जसि होइ अंजोरी ।
(पद्मावत, पृ० ७२)

डा० सुकुमार सेन का मत है, "आलाओल ने हिन्दी पद्मावत का आधार ग्रहण (Adaptation) किया है[1] ।" बंगानुवाद में कवि की कुछ मौलिकता भी है । किन्तु थोड़ी गहराई से दोनों काव्यों का तुलनात्मक-दृष्टि से अध्ययन किया जाये तो आलाओल की मौलिकता नाममात्र की ही मिलेगी । हाँ, कुछ प्राकृतिक दृश्य अवश्यमेव बंगभूमि के हैं । नारी सौन्दर्य चित्रांकन में कुछ बंगत्व है । ऐसा होना स्वाभाविक है, क्योंकि कोई भी कवि वर्तमान देशकाल परिस्थितियों से मुँह नहीं मोड़ सकता है । प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में उनका प्रभाव होना अवश्यंभावी है ।

आलाओल—

जखने सृजिल विधि जगतेर ज्योति,
किंचित झलक पाइल हिरा रत्न मोति ।
(पद्मावती, पृ० ५१, ५६)

---

१. लेखक की डा० सेन से इस विषय पर चर्चा हुई । उन्होंने इसको स्वीकार किया ।

जायसी—

वह जो जोति हीरां उपराही।
हीरादिपहि सो तेहि परिछाहिं।
जेहि दिनदसन जोति निरमई।
बहुतन्ह जोति जोति ओहि भई।

(पद्मावत, पृ० १०४)

विरह, पीड़ा या प्रेम की पीर ही काव्य की आत्मा है। बँगला कवि ने हिन्दी काव्य की इस आत्मा को भली प्रकार सुरक्षित रखा है।

आलाओल—

तार वाम पाशे एक तिल मनोहर,
पोतलिर छाया किवा दर्पण अंतर।
जेइ लोक तिल सेइ तिले हय दरशन,
तिले तिले करि अंग करय दाहन।

(पद्मावती, पृ० ५६, ५२)

जायसी—

तेहि कपोल बाँएँ तिल परा, जेईं तिल देखसो तिल तिल जरा।

(पद्मावत, पृ० १०६)

नख-शिख वर्णन में भी हिन्दी काव्य का अक्षरशः अनुकरण है। शरीर के अंगों के वर्णन की समस्त उपमाएँ जायसी ही से ली गई हैं। भुजा की उपमा कमल दंड से, कुचों की कनक कटोरा से, उदर की कमल पाटल से तथा कटि की सिंह से इत्यादि सब हिन्दी-काव्य परम्परा के अनुसार हैं। प्रेम का आदर्श भी जायसी का ही है।

आलाओल—

प्रेमेर सागरे शत उठिल हिल्लोस प्रेम रूप मूल प्रेम बिनहेर मूल।

(पद्मावती, पृ० ५७)

जायसी—

परा सो प्रेम समुंद अपारा, लहरहिं लहर होइ विसम्भरा।

(पद्मावत, पृ० ११५)

आलाओल—

गुरुर दातव्य शिष्य हृदे अग्नि कण मेला।
प्रज्ज्वलित करे जेइ शिष्य महाजना॥

(पद्मावती, पृ० ६१)

जायसी—

गुरु विरह चिनगी मेला, जो सुलगाइ लेइ सो चेला।

(पद्मावत पृ० १२०)

रत्नसेन के योगी भेष का वर्णन दोनों महाकवियों का एक जैसा है।

आलाओल—

राज्यपाट त्येजिया नृपति हैल योगी।
करेते किन्नूर (किंगरी) लइ बाजाय बियोगी।
शिरे जटा कर्ण मुद्रा भष्म कलेवर।
कक्षै सिंगा डुम्बूर त्रिशूल लैया कर।

(पद्मावती पृ० ६१, ६५)

जायसी—

तजा राज राजाभा जोगी, और किंगरी करगहें बियोगी।

(पद्मावत पृ० १२१)

शकुन-अपशकुन का विचार दोनों कवियों में है, मातृ-प्रेम की झलक दोनों में समान है। माता कहती है—

आलाओल—

राजा चक्रवर्ती तूमि संसार माझार।
तोमाधिक केवा सुख आछय संसार।

पाठ—

राज चक्रवर्ती तुमि संसार माझारे।
तोमाधिक केवा सुखी आछय संसारे।

(पद्मावती, पृ० ६३, ६६)

रत्नसेन कहता है:—

आलाओल—

यदि भाल हइत संसार सुख भोग।
राज्य त्यजि गोपीचन्द्रना साधित योग॥

(पद्मावती पृ० ६३, ६७)

जायसी—

जो भल होत राज औ भोगू।
गोपीचन्द कस साधन जोगू।

(पद्मावत, पृ० १२६)

नारी हृदय का चित्रण बंगला कवि ने जायसी से ग्रहण किया है—

आलाओल—

देशान्तरे जायुपति शुनि नागपति।
सजल नयने आसि करिल मिनति।

(पद्मावती, पृ० ६४)

जायसी—

रोवे नागमती रनिवासू। केइ तुम्ह कंत दीन्ह बनबासू।

(पद्मावत पृ० १२६)

राजा के साथ वनगमन उद्यत अन्य राजकुमारों का वर्णन भी आलाओल ने हिन्दी काव्य के अनुसार ही किया है।

आलाओल—

नृपति गमन शुनि हइया वियोगी।
षोलशत राजार कुमार हैल योगी।

(पद्मावती पृ० ६६)

जायसी—

राय राने सब भये वियोगी। सौरह सहस कुँवर भए जोगी।

(पद्मावत, पृ० १२९)

प्रेमी राजा का चित्रण बँगला काव्य में हिन्दी काव्य के अनुसार ही है।

आलाओल—

रात्रि हैले बन मध्ये करेन्त वसति।
सवे निद्रा जायन्त जागेन्त नरपति।
जार हृदे प्रज्ज्वलित प्रेम हुताशन।
किवा तार निद्रा सुख शयन भोजन।

(पद्मावती, पृ० ६८)

जायसी—

ठांवहि ठाँव सोवहि सब चेला।
राजा जागे आपु अकेला।
जेहि के लिए प्रेम रंग जामा।
का तेहि भूख नींद बिसरामा।

(पद्मावत, पृ० १३५)

राजा गजपति का उपाख्यान दोनों महाकाव्यों में समान है।

आलाओल—

रत्नसेन हइल योगि जति सम्भाषिते आइल शुनि नृप गजपति।

(पद्मावती, पृ० ६८)

जायसी—

रत्नसेनि भा जोगी जती। मुनि भेंटे आएउ गजपति।

(पद्मावत, पृ० १३६)

रत्नसेन राजा गजपति की जिज्ञासा का उत्तर भी हिन्दी काव्य के अनुसार ही देते हैं—

आलाओल—

हिन्दुस्तानी भासे नाम धरे एइमत। संस्कृत भासे जेइ शुनह वेकत।
प्रथमे लवण इक्षु सुराघृत आर, दधि-दुग्ध जलान्तर शुनि कहि सार।
ए सब समुद्र तेजि साहस संयोग, शत मध्ये एक जाय पुण्य फल भाग्य।
एमन संकट मध्ये गमन तोमार, आपने भाविया याह की वलिव आर।
+ + + +
राजा बले गजपति मने शक्ति शिव, जार घटे प्रेमानल किवा तार जीव।
प्रथमे जीवन तेजि प्रेम पथे गम, मृत्युक जनेर कि करिते पारे जय।
सुख संकलिपया कैल दुःखेर सम्बल, तबे पदविल पन्थे नगर सिंहल।
जे जन परिल प्रेमसागर गंभिरे। खाल जल सम वेखे एइ समुद्ररे।

(पद्मावती, पृ० ६६)

जायसी—

गजपति यह मन सकती सीऊँ। पै जेहि प्रेम कहां तेहि जीऊँ।
जौं पहिलें सिर दे पगुधरई। मुए केर मीचुहि का करई।
सुख संकलपि दुख सांवर लीन्हेउँ, तौपे भान सिंघल कहँ कीन्हेउँ।
भँवर जान पै कँवल पिरीती, जेहिं महँ विथा पेम कै बीती।
ग्रो जेइँ समुँद पेमकर देखा, तेइँ यह समुँद बुन्द बरु लेखा।

(पद्मावत पृ० १३८)

अधिक उदाहरण देना समीचीन नहीं जान पड़ता है। सारांश में उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि आलाओल ने जायसी के कथानक, नाटकीयता व कथनोपकथन का भी समावेश अपने काव्य में किया है। लगभग सब रसों का परिपाक आलाओल के काव्य में हुआ है। क्या कलापक्ष, क्या भावपक्ष, क्या अलंकार विधान, क्या प्रेम की पीर एवं क्या सूफियों की आध्यात्मिक व्यंजना सभी क्षेत्रों में आलाओल की कला-कल्पना जायसी से आवृत एवं अलंकृत है। पद्मावत की महिमा डॉ० सुकुमार सेन के शब्दों में इस प्रकार है—जायसी का पद्मावत केवल अवधी साहित्य का ही नहीं अपितु समस्त नवीन भारतीय साहित्य की एक श्रेष्ठ रचना है।[1]

१. जायसीर पद्मावती काव्य शुद्ध अवधी साहित्येर नय-समग्र नवीन भारतीय साहित्येर एकटि श्रेष्ठ नचना। इ० बाँ० सा० पृ० १०।

: ४ :

"मुसलमानी बंगला साहित्य"[१]

दौलत काजी और आलाओल की साहित्यिक परम्परा शैली की दृष्टि से उनके पूर्ववर्ती साहित्यकारों (वैष्णव पदकर्त्ताओं) से भिन्न नहीं थी। केवल साहित्यिक मानदण्डों में ही अन्तर आया था। वैष्णव-साहित्य धार्मिक (राधा-कृष्ण-प्रणय विषयक) था। किन्तु परवर्तीकालीन मुस्लिम बँगला-साहित्य का विषय लौकिक (इश्क-मजाजी) के आवरण में आत्मा-परमात्मा (इश्क हकीकी) प्रेम था। जायसी के आधार पर आलाओल ने अपने काव्य की रचना की थी। दोनों सूफी-साधक थे।

उनके परवर्ती जो मुसलमान लेखक आये वे अधिकतर अनुवादक थे। उनका साहित्यिक धरातल पूर्ववर्ती कवियों के समान ऊँचा नहीं था। फिर भी बँगला-साहित्य में उनका स्थान गौरवपूर्ण है। उनका साहित्य पूर्णरूपेण लौकिक प्रेम पर ही आधारित था। उनकी भाषा में भी अन्तर आ गया था। उनकी भाषा संस्कृत-गर्भित बँगला से कुछ सरल हो गयी थी। वह साधुभाषा से चलित भाषा के अधिक निकट आ गयी थी। उसका कारण मुसलमानी-साहित्य का सम्पर्क और मुसलमानी राज्य विस्तार है।

पहले कहा जा चुका है; बहुत मुसलमान उत्तरी पश्चिमी भारत पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा बिहार से आकर बंगाल के कई प्रदेशों में बस गये थे। विशेषकर चटगाँव, ढाका, सिलहट एवं लोअर बर्मा के रोसांग, आराकान आदि प्रदेशों में बस गये थे। उनकी भाषा बोलचाल के रूप में हिन्दी ही थी। अतः उत्तर प्रदेश एवं बिहार से वे परम्परागत लोक-प्रचलित लोक-कथायें भी साथ लाए थे। मुस्लिम काल में फ़ारसी के साथ-साथ हिन्दी को भी प्रोत्साहन मिला था। अतः अरबी, फ़ारसी एवं हिन्दी के सम्पर्क से उस भाषा का जन्म हुआ जिसे हम मुसलमानी बँगला कहते हैं। डा० दीनेशचन्द्र सेन का मत है, "जो शैली मुसलमानी बंगला कहलाती है, उसमें अरबी, फारसी और उर्दू शब्दों का विकृत बँगला के साथ सम्मिश्रण है[१]।" सत्रहवीं शताब्दी से वह परम्परागत साहित्यिक एवं चलित भाषा के रूप में अविरल रूप से चली आ रही है। जिस प्रकार हिन्दी की खड़ी बोली (कौरवी) के शैलीगत हिन्दी या उर्दू दो भेद हैं। उसी तरह बँगला का एक शैलीगत भेद

१. Style known as Musalmani Bengali which shows an admixture of Urdu, Persian and Arabic words with corrupt Bengali.

H. B. L. L. Page. 683.

२. इस प्रकार का अधिकाँश साहित्य बड़नला प्रैस कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है।

मुसलमानी बँगला कहलाता है। किन्तु साहित्यिक परम्परा एवं भाषा की दृष्टि से उर्दू हिन्दी से थोड़ी अलग मानी जाने लगी है। किन्तु व्याकरण एवं भाषातत्त्व की दृष्टि से दोनों एक ही भाषा के दो शैलीगत भेद हैं। उसी तरह आज परम्परागत मुसलमानी बँगला में भी यह प्रवृत्ति पनपने लगी है। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी लिखते हैं, "हिन्दुस्तानी अपने आप ही फारसी और मुस्लिम-भावना (Spirit) की उत्तराधिकारिणी और प्रचारक तथा जनक भारत में बनी, सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में उसका प्रवेश बँगाल में हुआ, फारसी शब्दावली जो पहले बँगला में अधिकतर प्रत्यक्ष रूप में आयी थी, किन्तु अब बहुत परिमाण में हिन्दुस्थानी के माध्यम से बँगला और भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं में प्रवेश पाने लगी।[1] किन्तु मुसलमानी बँगला में तो यह प्रवृत्ति पहले से ही चली आ रही है। अरबी, फारसी एवं हिन्दी या उर्दू शब्दों का इसमें बाहुल्य है। वाक्य-विन्यास भी हिन्दीनुमा है। कई पद हिन्दी-मिश्रित बँगला के हैं। ऐतिहासिक क्रम से साहित्य एवं भाषा का विवेचन निम्न प्रकार है :—

कुतबन की मृगावती का अनुकरण

कुतबन की मृगावती का अनुकरण भी बँगला में हुआ है। मुहम्मद खातर की मृगावती यामिनीभान की कहानी से परवर्तीकाल के इस्लामी बँगला साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा है। कहानी छोटी है, मालूम पड़ता है कि यह किसी हिन्दी काव्य से ली गई है। इसमें हिन्दी मिश्रित बँगला का प्रभाव है।[2]

विविध रोमान्टिक कहानी

मनोहर मालती उपाख्यान का उल्लेख लोर चन्द्रानी काव्य के आलाओल विरचित अंश में है। हिन्दी में इस विषय की रचना अठारहवीं शताब्दी में मिलती है। इस समय बँगाली कवियों ने भी इसी विषय पर कलम चलाई थी। मुसलमान

१. Hindustani made itself inheritor and propagator of the Persian and Muslim spirit in India, from the 17th and 18th century, and came to Bengal, Persian words which formerly were brought into Bengali mostly directly, now began to be admitted in large number through Hindustani into Bengali and the Various other Vernaculars of the land.

O. D. B. L. Appendix D. Page 206.

२. देखिये—

कहे एइ लाड़का जबे हइबो सियाना।
देखिया परीर तबे हइबो दिवाना।
सेइ गमे छाएर करिवे देशे देशे।
दुखः पावे सुख ताते हइवो शेषे।

(बाँ० सा० इ०, प्र० खं० पृष्ठ ८६२)

कवियों में अग्रणी बोधकवि मोहम्मद कबीर थे। इन्होंने किसी हिन्दी काव्य का अनुवाद और अनुसरण किया था। कवि स्वयं लिखते हैं :—

एइ से सुन्दर (सोनार) केच्छा हिन्दीते आछिल
देश भाषाए मुक्ति पाँचाली बरिल।

(इ० बाँ० सा० पृ० ४१)

नवि वंश और जंगनामा

चटगाँव और सिलहट से सतरहवीं शताब्दी में इस्लामी पुरान पाँचाली निकली थी। सिलहट के मुसलमान उत्तर पश्चिम के हिन्दी-भाषी मुसलमानों के साथ बराबर सम्बन्ध रखते थे। किन्तु फिर भी पूर्णरूप से बंगाली होने जा रहे थे।[1] उन्नीसवीं शताब्दी तक ये कायथी अक्षरों का व्यवहार करते रहे। इन्हीं हरफों को सिलेटी या सिलहटी नागरी कहते हैं। इसके बाद सतरहवीं शताब्दी में उत्तर बंग में एक इस्लामी लेखक गोष्ठी बनी। सिलहट में और पश्चिम राड में उत्तर पश्चिम भारतीय हिन्दी इस्लामी प्रभाव प्रकट हुआ।[2] कवि नसरुल्ला अपनी रचना की भूमिका में लिखते हैं :—

ते काजे फारसी माँगि कैलुम हिन्दुआनी।
बुझिवारे बाँगाले से किताबेर बाणी। (इ० बाँ० सा०पृ०४८)

प्रणय-गाथा

सिलहट, चटगाँव के मुसलमानों में हिन्दीमूलक आख्यायिकाओं का प्रचलन था। रोमाँटिक आडम्बरविहीन विशुद्ध प्रणय-गाथा अनेक दिन तक चलती रही। भोजपुरी के लोकगीतों में से यह पश्चिमी बंग, पूर्व बंग और आसाम में चली गई।

त्रिवेणी के पण्डा की कहानी

त्रिवेणी के पंडा की कहानी का मूल कोई हिन्दी या उर्दू किताब है। कवि स्वयं कहता है—

हिन्दी जबानेते सेइ केताब आछिल
पड़िया सकल भेद मालुम हइल ।(इ० बाँ० भा० पृ० १०३)

---

१. सिलहटेर मुसलमानेरा उत्तर पश्चिमेर हिन्दी भाषी मुसलमानेदेर संगे बराबर योग रखे चले छिलेन। एरा पूरा-पूरी बाँगाली हुये उठते पारेसि अनेक दिन अवधि।

(इ० बाँ० सा०, पृ० ४४)

२. इ० बाँ० सा० १४४।

हिन्दी प्रभाव की झलक दृष्टव्य है—

पीरेर खातेर आल्ला करेछेन तैयार
× × ×
आल्लार पेयारा पीर शासूफी सोलतान।
एयछा भाते कतलोक करे कहा गुना
नाहि जाने कौनरूप नेहात ठिकाना।
× × ×
देल जुड़ाइया जाग देखिया मकान
एकातेर दिले मेरा आफछोछ करिल
बहुतर आलेमेर निकटे जाइया
पुछिनु खबर खूब आजिजि करिया
× × ×
हिन्दी जबानेते सेइ केताब आछिल
पड़िया सकल भेद मालुम हइल।
एयछा केरामत छिल से पानीर गुनि
मौर्दा दिले जिन्दा हइत कुदरेते रबवाणि।

भुरशुट-मन्दारन-लेखक

पश्चिमी बंगाल में इस्लाम की पीठ यही स्थान पाण्डुया थी। इस्लामिक परम्परा एवं हिन्दी प्रभाव में उत्पन्न कवि भारतचन्द्र रायगुणाकर का निवास स्थान भी यही है। यहाँ बड़र्खा गाजी को आश्रय करके भुरशुट मन्दारन में इस्लामी साहित्य का केन्द्र अठारहवीं शताब्दी में बन गया था। इस साहित्य की भाषा की विशेषता अरबी, फारसी एवं हिन्दी शब्दों की प्रचुरता है। इसी प्रसंग में बंगाली कवि की इस्लामी ढंग की हिन्दी रचना का प्रथम उल्लेख करना उचित है—

भाग गिया······किया करे औब
होगा हारामजाद खाने खाबार
शोन्ते हो दक्षिणराय ऐछा दगाबाज
बाँधके ने आनेछे तबे हामगाजी।
कालानल शेरकु तोड़ने कहे कौन
सिताव(र)देखने चाइ केछाइ सयतान।

(इ० बाँ० सा० पृ० १०६)

गरीबुल्ला की इसुफ जुलेखा, आमीर हामजा के जंगनामा के उदाहरण भी देखने योग्य है—

बदर बलेन गाजी तोमाके समझाई।
इफसुफ नबीर बात शुन मेरा भाई॥
× × ×
आल्लार दरगाय बदर नोआइया माथा।
कहित लागिल इफसुफ-जेलेखार कथा।
× × +
तामाम हइल पुथि वाकि जे करिलेभ इति।
आशा पूर्ण हइल आमार
बीरहानेर मातारे ये और कबेर विचे
उतारिया छिल बिबि पहाड़ेर नीचे।

लैला मजनू की प्रेम कहानी

लैला मजनू की प्रेम कहानी समस्त भारत में प्रसिद्ध है। उन्नीसवीं शताब्दी में कलकत्ता में बहुत सस्ते छापाखाने हो गये थे। इनके मालिक और प्रकाशक मुसलमान थे। बंगला के कथा-साहित्य के प्रचार के लिये मुसलमान प्रकाशक ही नहीं हिन्दू भी बहुत उत्साहित थे। अशिक्षित और अल्पशिक्षित जनता में विशेषकर नगर-प्रवासी माझी, मल्लाह, दुकानदार, पंसारी, चाकर और दलाल सबके पास अरबी, फारसी हिन्दी मिश्रित इस्लामी-बंगला की छोटी बड़ी पुस्तकों का बाहुल्य था। इसी समय भुरशुट मन्दारन अंचल के कवियों का ही प्राधान्य था। हिन्दी इस्लामी पद्धति ही अपनायी जा रही थी। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य भाग में मुसलमान प्रकाशकों में सर्व-प्रधान काजी सफीउद्दीन थे। इनके ही प्रदेश के लोगों ने अधिक फारसी एवं हिन्दी से अनुवाद किये थे। फारसी पुस्तक गुलवसनोवार के नेमीचन्द्र कृत हिन्दी अनुवाद गुलवनोवम् के बंगानुवाद का प्रकाशन १८५१ ई० में हुआ था। मृगावती शाहनामा और तुतिनामा का बोलबाला इसी समय था। लैला-मजनू में से हिन्दी-बंगला मिश्रित एक गीत द्रष्टव्य है—

ए महब्बत छोड़के प्यारी, किछतरे भुलिले मोरे
में तेरा जुदाइछे बांचि नारे बाँचि नारे।
जबछै देखा हो तुझे एस्क गम हइ मुझै
पिलिया महब्बत का प्याला तबछै मैं भुलि नारे।
आर शाना ए माजराइ कइछा प्रेम धारा।
गाय रोके महब्बत में पेयारी भुलिले आमारि तेरे।
खुसि कारति हो सदा तुझे खोश राखे खोदा
हामको कारदिया जुदाआर दुख सहेना मोरे (इ० बां० सा० १२४)

पुरानी रोमांटिक कथा कहानियों का आदर्श उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में बहुत था। इस समय की रचना सब पद्य में हैं। विक्रमादित्य का उपाख्यान, तुतिनामा (शुक-सप्तति), सखीनामा, हातमताई, इसुफ जुलेखा एवं गुलबकावली सब ही हिन्दू मुसलमानों को समान रूप से प्रिय थीं। अरबी, फारसी तथा हिन्दी या उर्दू इनका मूल था। नासेर अली ने लैला का प्रथम खण्ड लिखा था। इस पुस्तक में बहुत गीत हैं। उनमें विशुद्ध बंगला केवल हिन्दी और हिन्दी बंगला मिश्रित गीत भी हैं। इस प्रकार हिन्दी प्रभाव के अनेक उदाहरण हैं—

देलको गर तू करने चाहे ताहारि सगे मिलन
वतनते छाया करो पावे अमूल्य रतन
छेंए बाल करो देलको आपना तारिकिछु तरके रहना।
घरेते पावे तारे कि लाभ भ्रमे कानन।
खोद जो वाछे दिया एक बार जेछका हय दिबारके दरकार
गुरुपद घरिया से प्रथमे करो सेवन।
नाछेरअ'लि रोरकर खुजारी दिया उपर
प्रियाय न पाय तवु विने गुरुर साधन। (इ० बाँ० सा० पृ० १३२)

हिन्दी मिश्रित बंगला गीतों के कई उदाहरण हैं :—

एस्कि आतसछे देल जलके काबार हुया।
छबर तछकिन छारा जिछे मेरा गया
रात को ना पाअ चेतन वेस्तार पर छोने है।
गम हुआ छोज देलछे जानना हय तन वदन सारा
एन्तोजारि में निन्द आँखों छे एद नील वह गेया।
चसमों कि आछछे
छादार नेकालता है मुछे एयार एयार बोल
जुग बेछाले जाना आज जातन जुदा हुया।
दम बदम रकछ कार छाने फेराक
नाछेरअलि देखकर बेहुस रह गेया। (इ० बाँ० सा० पृ० १३२)

मुसलमान रोमांटिक कवियों में अनेक सूफी मतावलम्बी थे। उनका परिचय उनकी रचनाओं में मिलता है। समसुद्दीन सिद्ध का खौनकार का भावलाभ और शुरत जान (देलरामेर काहिनी) भावलाभ में अनेक गीत हैं। विशुद्ध बंगला, हिन्दी बंगला मिश्रित केवल हिन्दी के गीत भी मिलते हैं। जैसे—

हिन्दी केताबेते छिल केच्छा देलाराम
ताहाते लिखियाछिल एइमत कालाम

हिंदुस्थान देशे एक आछिल हालवाई
शुन तार कथा बाँगालाय लिखे जाई ।[1]

अन्त में समसुद्दीन फकीर के आध्यात्मिक गीत हैं। हिन्दी के आधार पर बँगला (हिन्दी-माँगि बंग भाषा) में एवादतुल्ला ने गुलबकावली लिखी थी। भुरशुट के बालेश्वर ने मृगावती की कहानी लेकर कुरंग भानु लिखा था। अब्दुल मजीद के बंगबहार से उदाहरण देते हैं—

एयसा केहु बाँगलार शायेर ना करे आर।
जब तक दुनिया बाहाल—

—इ० बां० सा० पृ० १३६।

× × ×

करिनु आगाज कैच्छा (कैच्छा) सन् तारिख दिन आच्छा।
लाड़काई उम्र मेरा ना जानिन कविता धारा।

× × ×

मेरा भि सरकार बिचे बहुनेकनामी आछे।
फारसी, उड़िस्या, बंग, इंगरेजी नागरि संग।

× × ×

आटाते नमक जयेसा हय।
थोड़ा थोड़ा पड़िगुनि केताब कोरान शुनि

× × ×

शुद्ध ए बाँगला नय हिन्दि मिशेछेताय
ए कारणे पद बेशि कम।

हातमताई के किस्सा शाहा एर्जतुल्ला में भी हिन्दी प्रभाव है—

छय सम्रालेर केच्छा हइबे तामाम॥
कलमेर घोड़ा मेरा तुड़िया लागाम।

भुरशुट के बालेश्वर की भी हिन्दी-बंगला मिश्रित रचना है—

एइ जे लाड़काइ उमरेते
लाड़काई उम्मर मेरा ना जानि कविताधारा।

बंगबहार की रचना भी इस्लामी बँगला में हुई थी। कवि स्वयं स्वीकार करते हैं—

शुद्ध ए बाँगला नय हिंद मिशेछे ताय।[2]

---

१. बाँ० सा० इ०, प्र० खंड, पृ० ९२२।

२. एलाहि आमार गोजा उम्मेदेर खोल
आपनि बुलबुल हये साते साते बोल।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में हिन्दी से अनेक छोटे-बड़े किस्से, कहानियों के अनुवाद हुए थे। गरीबुल्ला (ढाका) की दिलराम की पुस्तक का हिन्दी से अनुवाद हुआ था। यह एक हिन्दी कहानी का स्वाधीन अनुवाद है। जैसे—

'हिंद केताबेसे छिल कैच्छा देलाराम'

नेक बिबि किस्सा, सैयद आली, वार्तादान एवं सबुरु भैंसा हिन्दी से अनूदित हुए थे। कई गीतों की भाषा हिन्दी मिश्रित है। हिन्दी-बँगला मिश्रित एक गजल का उदाहरण देना अपेक्षित है—

सानाम नेहि आया मेरी सोभे आछे बागे गुल
केमनते हवे सोभा फूले गा बसिले बुलबुल।
देलवाहा बेकारारि एयार नेहि आया केओ।
भरे मरि दिन दुबेला केन्दे केन्दे प्राण आकुल।
रोति हय देल हामारि देरास बले आहाभरि।
आओ सानाम गलेकि हार तुमि आमार जाति कुल। (इ० बाँ० सा० पृ० १५२)

वास्तव में मुसलमानी-बँगला साहित्य को लोक-साहित्य के अन्तर्गत रखना अधिक न्यायसंगत है। मेमनसिह गीतिका और पूर्ववंगगीतिका भी मुसलमानी लोक-साहित्य के अन्तर्गत भले ही नहीं आयें, किन्तु उनपर भी हिन्दी-शब्दावली की छाप है।

जिस समय बँगला में इस रोमान्टिक साहित्य की रचना हो रही थी, उस समय हिन्दी में भी इसी प्रकार की शृंगार-रस-पूर्ण रचनायें हो रही थी। यह प्रवृत्ति तत्कालीन बंगाली-रामायणकारों में भी परिलक्षित होती है[1]। ऐसा होना स्वाभा-

चिड़िया तबियत मेरा करे देह तेज
उड़िया जाइते ऐसा ना हय आजेज।
जवानके कर मेरा सक्कर शिरिन
एबारते करे देह रंगेते रंगीन।
कागजके कर मेरा आम्बल केसान
कलम के करे देह मेन्यारे समान।
गोलाब कारारा मेरा दोयातकें कर
छेयाहि आतर आनि तार विचेधर।
एखान हइते केच्छा करिलाम शुरु
दौया कर आछे जल कवितार गुरु··· (इ० बाँ० सा० पृ० १४८)

१. देखिये—परिशिष्ट में तुलसीदास का बंगाली रामायणों पर प्रभाव—विषयक-प्रसंग।

विक ही था, उस समय मुस्लिम सम्राटों का राज्य अस्त हो गया था। छोटे-बड़े राजाओं और नवाबों के मनोरंजन के लिए कवि लोग दरबारों में ऐसी ही रचना सुनाया करते थे। जनता में भी यही डा० घोषाल जी की शब्दावली में सिक्यूलर रोमांस की साहित्यधारा ही सर्वप्रिय थी।

: ५ :

मुसलमानी--बँगला भाषा

जिसे मुसलमानी-बँगला कहते हैं, उसकी सृष्टि उन्नीसवीं शताब्दी में हुई। इससे पहले मुसलमान लेखक साहित्य सृजन में परंपरागत साधु-बँगला का ही प्रयोग करते रहे हैं। उन्हें बहुत कम अरबी-फारसी—यावनी-भाषाओं के शब्दों का समावेश हो पाया था। इन शब्दों को बहुत मुसलमान जानते थे। किन्तु हिन्दू-मुसलमानों के काव्य की भाषा सामान्य परंपरागत संस्कृतनिष्ठ साधु-बंगला थी।

कुछ बँगला गद्य में अवश्यमेव अरबी, फारसी, उर्दू शब्द मिलते हैं। जब से गद्य का निदर्शन मिलता है तब से ही ये शब्द हैं। सोलहवीं शताब्दी में कोच बिहार के राजा नर नारायणसिंह के सस्कृत बहुल पत्र में फारसी का सिताब-चिताप है। उस समय से बाद के पत्र दलिलों में भाषा का प्रभाव बढ़ता गया। वह मुद्रित प्रतिलिपियों में मिलता है, और एक सौ साल बाद इस भाषा में तथा कथित इस्लामी बँगला के कुछ पास उसका नमूना ओलदेंज कम्पनी के डायरेक्टर के पास १७८६ ई० का लिखा हुआ हरमोहन शर्मा की अर्जी है।[1] पुरानी बंगला में साहित्य-सृष्टि पद्य में हुई थी। पद्य की भाषा प्राचीनता का बहुधा अनुसरण करती है। सस्कृत का प्रभाव बराबर विद्यमान है। किन्तु कहीं-कहीं कथा-वार्ता की भाषा में विदेशी शब्दों का प्रवेश बिलकुल ही निषिद्ध नहीं था। श्रीकृष्ण कीर्तन में फारसी 'मजूर' शब्द है, उसमें बॅगला के प्रत्यय के योग से तेरि मजुरिया है। गौण कर्मवाचक अनुसर्ग रूप में बराबर श्रीकृष्ण विजय में मिलता है। सोलहवीं शताब्दी में एकाधिक उल्लेख योग्य रचना विदेशी शब्दों में नामधातु की सृष्टि हुई। बदल∠से बदलिया, कुलुप∠ से कुलुपिल (विशेषण) इत्यादि मिलते हैं। डा० सुकुमार सेन महोदय के अनुसार

१. श्रीयुत ओलदेज कोम्पानिते आडंग विर भूमेर गंजे खरिदेर दादनी आमि लइया टाका आडंग चालानी करियाछी आपरेल काहाते एवम् मोकाम मजकूरेर गोमस्ता कापड़ खरीद करितेछिल एवम् कापड़ कथक कथक आमदानी हइयाछे एवम् हइतेछिल दास्त कथकर तइयार हइयाछे एवम् मवलक कापड़ धोबार हाते दाशतर कारन रहियाछे————इत्यादि।

(इ० बाँ० सा० पृ० १८२)

हिन्दी शब्द और मुहावरों को अपनाकर इस्लामीं-बँगला का जो स्वरूप होता है। वह उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम भाग की व्यवहारिक बँगला फोर्ट विलियम कालेज के पंडितों की साधु-भाषा नहीं थी। उस भाषा[1] के साथ पंडितों की भाषा का मेल नहीं था। फिर भी गद्य चिट्ठी-पत्री, दलील दस्तावेजों में उसका प्रचुर प्रयोग होता है।[2] किन्तु चलित[3] भाषा में उसका व्यवहार होता ही था। कर्ताभाजा के निम्न गीत से स्पष्ट है—

भाई आभार आहवाल किछु शुन शब लोके,
कमिने आर एमनत भाई मुलुके।
एक दफाते फांपर हयेछी,
तोफा एक खेयार साथे पिरीत करेछि।
और मुखेते फारखति मात्र अनाहुत बदनामि।

(इ० बाँ० सा० पृ० १८५)

इस प्रकार कुछ हिन्दी का भी पुट उसमें रहता था, जैसे—

तोम जुदा होके खोदाइ दरखतका में ओया,
ना खाया केया कियारे भाई बरकत ना हुइया।
और किया पूछेगा जिहाम तोमे,
आओना आर जाओ ना सेरफ दुनिया के विचमे।
से दितेछे सबारे वेख चाहिते ना चाहिते।

(इ० बाँ० सा० पृ० १८६)

उन्नीसवीं शताब्दी में संस्कृत और अंग्रेजी शिक्षित लोग प्राचीन परंपरागत साधु-बँगला भषा में ही रचना करते रहे, किन्तु अन्य मुसलमान लोग फारसी-उर्दू या हिन्दीमूलक वँगला का ही पथ पकड़े रहे।

१. हिन्दी प्रभाव का कुछ भाषा-वैज्ञानिक विवेचन इस प्रकार है :—

मुसलमानी बँगला में हिन्दी शब्दों का बाहुल्य रहा है, जिस प्रकार—मुझे, तुझे, मेरा, तेरा, एता (इतना), एओ (यह), येता (इतना), एइसा (ऐसा), जइसा, जइछा (जैसा), तइछा, तइसा, (तैसा), आइया∠आना, जाइया∠जाना, तैयछा, तैयसा∠तैसा, आवि∠अभी, भि∠भी, तक, दो पाचटा∠पाँच, छइटा∠छठा, सातटा∠सात, चोवा∠चूना, मच्छर, बात।

---

१. साधु=साहित्यिक
२. देखिये—इस्लामी बाँगला साहित्य, पृ० १८३-१८६।
३. चलित=बोलचाल की।

२. **हिन्दी धातुओं का व्यवहार :—**

ऐसा∠एइछा, भाते कतदूरे, नेकालिया ∠निकाल, जाय∠जाना, गत्यर्थक कदमे गिरीनू∠गिर धातु, पतनार्थे, आमि तुड़वेक∠तुड़, (कलमेर घोड़ा तुड़िया लागाम, हातमताई), हाती घोडा उट भागे डालिया∠डाल, छआरी ∠सवारी, घोडे थेके कूदे∠कूद, उठे∠उठ, खेचिल∠खेच∠खीच, खेलाइत∠खिला, खाना पीना, जिस प्रकार, जाहार चाकरि वाजाई∠वाजाना आरथाकि आनिन्दिते, आमीर, कयदान परे रहे उतारिया∠उतार, खोयालिसे जकिर पोसाक माँगाइया ∠माँगा, जोरे लेना छाडाइया (छुड़ाना), घरे यो घुमाइया∠घुमाना, मारे कइ वोरहाना उपरे मार∠मारना, भेजिया∠भेजना, दियाछे लेखा हजुरे तोमार ढाका दिया∠ठाका देना, दुखेरे देलाव∠देला, इत्यादि हिन्दी धातुओं के मुसलमानी बंगला में प्रयोग के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं।

३. **विविध हिन्दी शब्दों के अनुसर्ग,[1] उपसर्गों का व्यवहार[2] :—**

हिन्दी-शब्दों के अनुसर्गों और उपसर्गों का व्यवहार भी मुसलमानी बँगला में हुआ है।

(क) तवतरे—रे—विभक्ति के समान गौण और मुख्य कर्म में, आवू तामार तरे—

(ख) बराबर—उपमा गौण कर्म के अर्थ में—लूट बराबर मत आमारि, आमीर ज्वले आग बराबरि—अग्नि के समान—आगुनेर मत—

(ग) विच (सप्तमी के अर्थ में)—आपन बाड़ीर विच रहे खोशालिते, अकेला जंगल विच कहे चारि साथे।

इस प्रकार हिन्दी के उपसर्गों एवं प्रत्ययों का प्रयोग इस्लामिक बँगला में हुआ है।

किन्तु आज भी साहित्यिक-स्वरूप में मुसलमानी साहित्यकारों (भारत और पाकिस्तान) हिन्दी या उर्दू प्रभावित साधु-बंगला का भी प्रचलन है। किन्तु प्रमुखतः साहित्य की शैली परम्परागत संस्कृत गर्भित बँगला ही है। लोकभाषा या चलित भाषा साहित्यिक साधु-बँगला की तरह जनभाषा के रूप में कलकत्ता से बंगाल के

---

१. अनुसर्ग=प्रत्यय।

२. मूलतः खातिर, नजदिग (नजदीक), सिवाय, वगैरः, हजूर आदि शब्द अरबी-फारसी के हैं, किन्तु हिन्दी या उर्दू में अब वे पूर्णतया आत्मसात हो गये हैं। अतः वे हिन्दी की संपत्ति माने जाते हैं। हिन्दी के समस्त शब्दकोशों में उनका उचित स्थान है। देखिये—संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, पृष्ठ २४१, ५१८, ९८५, १०२६।

अन्य प्रदेशों में फैली है, और देश विभाजन के कारण बाजारू हिन्दुस्थानी या उर्दू का पाकिस्तान के पूर्वी बंगाल और भारत के पश्चिमी बंगाल में अनेक रुकावटों, विरोधों एवं राजनीतिक अन्तर्द्वन्दों के बावजूद भी सहज रूप में नदी की स्वाभाविक अन्तर्धारा के रूप में प्रचार, प्रसार एवं प्रभाव हो रहा है।

भारत विभाजन के बाद पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा उर्दू का राजकीय एवं जन-स्तर पर प्रसार पूर्वी बंगाल में हो रहा है। बहुत मुसलमान शरणार्थी उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल से पूर्वी पाकिस्तान में चले गये हैं। अतः उनकी मातृ-भाषा हिन्दी या उससे मिलती-जुलती भाषा है। साधु-बँगला के साथ-साथ हिन्दी या उर्दूनुमा बंगला चलित भाषा एवं किंचित साहित्यिक स्वरूप को भी प्रभावित करने लगी है। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा होने के कारण साधारणतः समस्त पश्चिमी बंगाल विशेषतया कलकत्ता-केन्द्र में उसका प्रभाव दिन दूना रात चौगुना हो रहा है।

: ६ :

"भारतचन्द्रराय गुणाकर १७२२-१७६० ई०

भारतचन्द्र आलाओल की परम्परा के परवर्ती कवि हैं। वे हिन्दी-बँगला, संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं के पण्डित थे[1] उनकी काव्य-शक्ति का भी विकास उस वातावरण में हुआ था। जो फारसी एवं हिन्दी से ओतप्रोत थी।[2] हिन्दी-शब्दावली एवं हिन्दी पद उनकी रचनाओं में मिलते हैं। उन पर हिन्दी प्रभाव का वर्गीकरण दो रूपों में कर सकते हैं:—

१. प्रत्यक्ष = हिन्दी
२. अप्रत्यक्ष = ब्रजबुलि

प्रत्यक्ष रूप में उन्होंने हिन्दी पदों की रचना की है। अप्रत्यक्ष में ब्रजबुलि के माध्यम से उन पर हिन्दी का प्रभाव पड़ा है। कुछ उदाहरणों से यह स्पष्ट किया जा सकता है:—

जय शिव नाचहिं पाँचहिं ताता।
बाजत डमरू पिनाक रसाला॥

१. बँ० भा० सा०, पृ० ५९९-६०८। कतकगुलि कविताय भारतचन्द्र हिन्दी ओ फारसी के आश्रय करिया रस सृष्टिर प्रयास करियाछेन। बाँ० सा० इ०, प्र० खंड, पृ० ८३९)

२. सुललित एवम् रसाल शब्द चयने पूर्ववर्त्ती कविदेर तुलनाय भारतचन्द्रेर योग्यता अधिकतर केनना इनि संस्कृति छाड़ा फारसी ओ हिन्दी भाषाओं जानिखेन। (वही, पृ० ८४०)

नाचत भूत बजाओत भैरव।
गाओत ताल बेताला।
नन्दी कहे ताताकार मनोहर भृंगी
बाजाओत गाला ॥
गंगा झरे जलचाँद सुधारस
अनल हलाहल ज्वाला।
भारत के हर शंकर-मूरति नाश कपाल कपाला।
(भा० ग्रं०, पृ० ८०, ८१)

ब्रजबुलि का एक उदाहरण उल्लेखनीय है—

शिव-विवाह

जय जय हर रंगिया। कर विलसित निशित परशु
अभय वर कुरंगिया ॥
लक लक फणी जटविराज।
तक तक तक रजनिराज
धक धक धक दहन साज
विमल चपल मंजिया।
ठुलु ठुलु ठुलु नयन लोल
हुलु हुलु हुलु योगिनी बोल
कुलु कुलु कुलु डाकिनी बोल
प्रमद प्रमथ संगिया
भवम् भवम् बवम भाल
घन राजे शिंगा डमरू गाल
रुद्र ताले ताल देइ बेताल
भृंगी नाचे अंग भंगिया
सुरगण कहे जय महेश
पुलके पुरल सकल देश
भारत याचत भगति बेश
सरस अवश अंगिया। (अ० मं०, पृ० ५३-५४)

इस तरह भारतचन्द्र ग्रंथावली (अन्नदामंगल) में ब्रजबुलि के अनेक पद हैं। भारतचन्द्र बहुभाषाविद थे। उन्होंने सफलतापूर्वक अनेक भाषाओं की काव्य-रचना के लिए कलम चलाई। उनकी विशुद्ध ब्रजभाषा की रचना का उदाहरण इस तथ्य को प्रामाणित करता है:—

भाट के प्रति राजा की उक्ति (भाटेर प्रति राजार उक्ति)

गंग कहो गुर्णासधु, महीपति नन्दन सुन्दर क्यों नहिं आया ।
जो सब भेद बुझाय कहा किधों नहीं तहां समुझाय शुनाया ।
काम लिए तुझे भेज दिया सुधि भूल गया अरु मोहि भुलाया ।
भट्ट हो अब भण्ड भया कविताई भटोइ में दाग चढ़ाया ।
ययार कहा बहु प्यार किया गज बाजि दिया शिर ताज धराया ।
ढाल दिया तलवार दिया जरपोष किया सब काव्य पढ़ाया ।
गामई नाम महाकवि नाम दिया मणिदाम बड़ाइ बढ़ाया ।
काम गया बरबाद सबै अरु भारती के नहिं भेद जनाया ।

भाट का उत्तर (भाटेर उत्तर)

भूप में तिहारि भट्ट काँचिपुर जायके ।
भूप को समाज माझ राजपुत्र पायके ।।
हात जोरि पत्र दीह्न शीष भूमि नायके ।
राजपुत्रि की कथा विशेष में शुनायके ।।
राजपुत्र पत्र बाँचि पूछि भेद भाय के ।
एक में हजार लाख मैं कहा बानाय के ।
बूझके सुपात्र राजपुत्र चित लायके ।
आमने भया महावियोगी चित्र धायके ।।
याहि में कहा भया कहाँ गया भुलायके ।
बाप मा महावियोगी देखने न पायके ।।
शोचि शोचि पांच माह में तँह गमायके ।
आगुही कहा दूँ बात बर्द्धमान आयके ।।
म्याद नहीं है महीम में गया जनायके ।
पूछहू दिवानजी सो वखसि के मँगायके ।।
बूझके कहे महीप भट्ट को मनायके ।
चोर कौन है, तु चिन्ह देख देख जायके ।।
भूपके निदेश पाय गंग जाम धायके ।
चोर कौन है तु चिन्ह देख देख धायके ।।
वेग में कहा महीप पाश यह आय के ।
सोहि एहि है कुमार कांचिराज रायके ।।
भाग है तिहारी भूप आप एहि आयके ।
वा समे रहा तिहारि पुत्रि को विहायके ।।

चोर को मशान में कहा दिश्रो पठायके ।
भाग मानि आप जाय लायहू मनायके ।
भट्ट को कहे महीप चित्तमोद लायके ।
लाथमे चले मशान भारती बनायके ॥
(भा० ग्रं०, पृ० ३१०-३११)

उन्होंने ऐसी भाषा का भी प्रयोग किया है जिसे हम हिन्दी भी कह सकते हैं और ब्रजबुलि भी। निम्नलिखित उदाहरण से इस तथ्य को समझा जा सकता है—

मानसिंह की यशोर यात्रा

धाँ धाँ गुड़ गुड़ बाजे नागारा, बाजे रबाब मृदंग दोतारा ॥
पयदल कलबल भूतल दलमल, साजल दलबल अटल सोभारा।
दामिनी तक तक जाम को धक धक, झकझक, झक मक खरतरवारा ॥
ब्राह्मण रजपुत क्षत्रिय राहुत, मांगल माहुत रण अनिवारा।
भाँड कलावत नाचत गायत, भारत अभिमत गीत सुधारा ॥
(भा० ग्रं०, पृ० ३२७)

इसके अतिरिक्त हिन्दी भाषा की कविता भी उन्होंने की है—

हिन्दी भाषार कविता

एक समय वृक भानु कुमारी मातपित सन बैठ नेहारी।
हये लग आओ सब दूती जो आयि, भेटचल नन्दलाल बोलायि।
देख नहि आंख सुन नहि कान का कुछ आयि हो आओल खायि ॥
काँहा के कानाया लाल, काँहा सो पछानू जानू ।
काँहा सों तु आयि है, खाक पर तेरे ब्रजकि बसने।
पानि में आग लनाओने आयि ।
कुछ बात ए तोत को कुछ, बातओतोत को बातोन शुन।
बात हामारि सात लागायि है।

(भा० ग्रं० पृ० ४५०)

उनकी विविध कविताओं में हिन्दी का अनुकरण किया गया है। कवि की विविध कविताओं में ऋतुओं पर कविता चौपदी में है। एक हिन्दी का पद इस प्रकार है—

धुम बड़ा धुम किया, खाने शोने नाहि दिया,
चहुँयार घेर लिया फौज किसि काओया।

बालखाना कोट किया कानात से घेर लिया।
तहुँयान दागा दिया आग किसि ताओया।
देखने में हुया चूर छोड़ लिया मेरि पुर,
तोंहारि आलाई दूर आओ मेरे बाओया।
तुज लिया नरम सटि उजलिया गरम सटि,
चिरण जिओ धरम सटि बाहवारे हाओया।

(भा० ग्रं०, पृ० ४४८)

पहले कहा जा चुका है कि भारतचन्द्रराय गुणाकर को कई भाषाओं का ज्ञान था। वे सफलतापूर्वक उन भाषाओं में कविता कर सकते थे। उनके अपूर्ण चण्डी नाटक में इसका ज्वलंत प्रमाण है। अपूर्ण चण्डी नाटक में एक पात्र संस्कृत पद बोलता है। उत्तर में दूसरा पात्र हिन्दी में बोलता है—

नटी की उक्ति

शुन शुन ठाकुर नित्य विशारद चतुर सभासद सारि,
नूतन नाटके नूतन कविकृत हांम तौंहि नूतन नारी।
क्यायसे आतायब भाव भवानी को भीति में समुझे भारि।
दानव दलने धारणी मण्डले तारिणी से अवतारी।
गुरु सम धीर वीर सम शुनहु सगुण मुरारि।
कृष्णचन्द्र नृप राजा शिरोमणि भारतचन्द्र विचारि।

महिषासुर की उक्ति

भागेगा देवदेवी पाखड़ पाखड़ इन्द्र को बाँध आगे,
नेकंत को रीति देना यमधर यम को आग को आग लागे।
बायोंको रोध करके करत बरणको यबतू सो आब भागे।
ब्रह्मा सोंवासुकि सों कभि नहिं झगड़ो जोंआँ कुबेरा न भागे॥

(भा० ग्रं०, पृ० ४५५)

प्रजा के प्रति महिषासुर की उक्ति

शोन रे गोंयार लोग छोड़दें उपास रोग्।
मानहूं आनन्द भोग मैंषराज् योग् में॥
आगमें लगाओ घीउ काहे को ज्वलाओ जीउ,
एक रोज प्यार पिउ भोगएहि लोग में।
आपको लगाओ भोग् कामको जगाओ योग
छोड़दओ योग भोग, मोक्ष एहि लोक में।

क्या एगान् क्या बेगान् अर्थनार आब्जान् ।।
एहि ध्यान एहि ज्ञान आर सर्व्वरोग में ।
(भा० ग्रं०, पृ० ४५५)

इसी प्रकार एक उदाहरण और दृष्टव्य है—

एइ वाक्ये भगवतीर क्रोध प्रथमे हास्य करिलेन
कमठ करटट फणि फणा फलटट दिगगज उलटट
झपटट झ्याय् रे ।
वसुमती कम्पत गिरिगण नम्रत जलनिधि झम्वत वाड़वमय रे ।।
त्रिभुवन घुँटत रविरथ टूटत धन धन छुटत मेंउ परलय रे ।
बिजली चट चट घर घर घट घट अट्ट अट अट अट्
आ क्या हाय् रे ।।
(भा० ग्रं०, पृ० ४५६)

भारतचन्द्र हिन्दी-इस्लामी प्रभाव की परम्परा की उपज हैं[1] । व्यक्तिगत रूप में भी वे हिन्दी के ज्ञाता एवं प्रेमी थे । उनकी भाषा में व्याकरणिक एवं उच्चारण सम्बन्धी भाषा की त्रुटियाँ अवश्य हैं । इसका कारण हिन्दी-बँगला का उच्चारण भेद ही है । वैसे उनमें हिन्दी प्रभाव-मज्जागत था । इसका अंतरंग प्रमाण कवि की स्वीकारोक्ति में मिल जाता है ।

"मानसिंह पातशाय हरल जे वानी
उचित से आरबी फारसी हिन्दुस्थानी
पड़ियाछी सेइमत वर्णिवारे पारी ।"

नूतन पुरातन की युग-सन्धि पर भारतचन्द्र की तरह रामनिधि गुप्त भी हिन्दी से उत्प्रेरित हैं, उनके विषय में अगली पंक्तियों में कुछ प्रकाश डाला जायेगा ।

: ७ :

"रामनिधि गुप्त (१७४१-१८३९ ई)"

प्रणय-आख्यानों की परम्परा मुसलमान कवियों में चलती रही है, भारतचन्द्र पर भी इस परम्परा का प्रभाव रहा है, किन्तु हिन्दू कवियों में सर्वप्रथम

---

१. इ० बाँ सा०, पृ० १०६, इय समये फारसी ओ नागरी (अर्थात्) साधारण बांगाली-सन्तानेर अन्यतम शिक्षणीय विषयछिल, विशेष करिया कायस्थ भद्रलोकेर पक्षे । ब्राह्मण घरेर उन्नतिकामी सन्तान ओ फारसी-हिन्दी-शिक्षित । ताहार उदाहरण भारतचन्द्र । संस्कृतेर संगे फारसी ओ हिन्दी तुल्य रूपे अधिगत हइयाछिल बलियाइ भारतचन्द्र गतानुगतिक साहित्येर एकटु मोड़ फिराइते पारिया छिलेन ।
(बाँ० सा० इ०, प्र० खंड, प्र० ६०७)

रामनिधि गुप्त या निधू बाबू ने ही विशुद्ध-प्रणय गीतों की रचना की है। निधू बाबू को इन लघु-प्रणय-गीतों अथवा टप्पों की प्रेरणा हिन्दी-संगीत से ही मिली है।

डा० दिनेशचन्द्र सेन[1] और डा० सुकुमार सेन इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। डा० सुकुमार सेन का मत है, "दशसाला बंदोबस्त के समय निधू बाबू छपरा गये थे, वहाँ पर हिन्दुस्थानी संगीत अच्छी तरह से सीख कर हिन्दी गीतों के आधार पर बँगला में टप्पा अर्थात् संक्षिप्ताकार गीतों की रचना करते रहे[2]।"

कवि ईश्वरचन्द्र गुप्त विरचित रामनिधि गुप्त के जीवन के सम्पादक श्री भवतोषदत्त जी ने भी उपर्युक्त मत का समर्थन किया है। टप्पा शब्द के हिन्दी में अनेक अर्थ होते हैं[3]। किन्तु यहाँ पर टप्पा से अभिप्राय हिन्दी के एक रागविशेष से है, जिसमें तान की प्रधानता होती है। शब्द-कोशों में टप्पा की परिभाषा इस प्रकार है— "व्युत्पत्ति की दृष्टि से टप्पा शब्द हिन्दी-शब्द से उत्पन्न है, जिसका अर्थ होता है

---

१. बं० भा० सा०, पृ० ६३५, हि० बं० ला० लिट्०, पृ० ६२६, बाँ० गा०, पृ० ६५८ से तथा ८६६।

२. दशसाला बंदोबस्तेर समय निधू बाबू छापराय गिया पड़ेन, सेखाने हिन्दुस्थानी संगीत-भालोकरिया शिखिया लइया हिन्दी गान माँगिया बाँगलाय टप्पा अर्थात संक्षिप्ताकार गान रचना करिते थाकेन—(बाँ० सा० इ०, प्र० खंड, पृ० ६७४)

३. देखिये—बृ० हि० श० को, पृ० ५२०, हि० श० सा०, सं० हि० श० सा०, पृ० ४५६, बाँ०भा०अ०, पृ० ८६६। Etymologically derived from a Hindi word which means tripping or frisking about with light fantastic toe, a tappa means a little song of light nature-H. Music.

हिन्दी खेयालेर अनुकरणे रचित ललित पदबहुत संगीत, विशेष सुर लये गेय लघु प्रकृतिर क्षुद्रगीत टप्पा गेये तेरियान उठिलेन कुले हेम। टप्पा शृंगार रस प्रधान साहित्य है। संकीर्ण राग में रचा गया है। बिलबित, तिवट या धीमा, तिबड़ा, तिलवाड़ा और झूमरा वगैरह तालों में होता है। इसमें स्थायी और अंतरा दो अवयव हैं। पद और विरुद दो ही अंग हैं। स्फुरित, आहति, प्रत्याहति—इन गमकों से युक्त खटका, मुर्की प्रयोग बहुत हैं। शोरी मियाँ ही टप्पे के प्रमुख रचयिता हैं। कहा जाता है कि टप्पे की उत्पत्ति पंजाब में हुई और ऊँट पालने वाले ही इसको गाते हैं। उसकी पंजाबी या पंजाबी मिश्रित हिन्दी है। टप्पे का मुख्य विषय है हीर व राँझा का प्रणय-संगीत शास्त्र, पृ० २४४, बां० ग०, पृ० ६५८।

धीमे, अस्थिर अंगूठे से उछलना, कूदना । टप्पा का अर्थ है---एक छोटा गीत ललित प्रकृति का । हिन्दी ख्याल के अनुकरण पर रचित ललित पद बहुल संगीत[1] ।"

कवि जीवनी लेखक स्वयं स्वीकार करते हैं "छपरा की कलेक्ट्री कार्य से केरानी का कार्य ग्रहण करके सायंकाल संगीत विद्या के सुपण्डित एक यवन गायक को वेतन पर नियुक्त कर अपने अवकाश के समय उससे संगीत-शास्त्र की शिक्षा प्राप्त करने लगे । गीत विद्या में निपुण मुसलमान उस्ताद आसानी से यथार्थ रूप में किसी को उपदेश नहीं देते थे । इससे निधू बाबू के कुछ संस्कार उत्पन्न हुए । इस शिक्षा-दान विषय में शिया साहब को सलाम करके कहने लगे, 'मैं आप लोगों के जातीय यावनिक गीत और गान नहीं करूँगा, अपने लिये हिन्दी गीतों के अनुवाद-पूर्वक राग-रागिनी संयुक्त करके बंगभाषा में गान करूँगा।' इसके फलस्वरूप उन्होंने वैसा ही किया अर्थात् उक्त मुसलमान गायकों को बिदा कर, अपने आप ही राग-रागिनी, ताल, मान के अनुसार बँगला-गीत रचना करने के लिये प्रवृत हो गये[2] । हिन्दी टप्पा के अनुकरण पर निधू बाबू ने सैकड़ों बँगला टप्पों की रचना कर एक नूतन प्रेम-गेय-पदावली को जन्म दिया । रामनिधि गुप्त को बँगला का प्रथम

---

१. राम निधि गुप्त उर्फ निधू बाबू (११४८ बंगाब्द), साले हुगली, भायना, ग्राम्ये जन्मे, "सारि मिआँर" टप्पार अनुकरणे बाँगाला टप्पा वा प्रणय सगीत रचनार प्रवर्तक "खेयाल ओ टप्पा" रंगीन गानेर प्रकार भेद (संगीतराग कल्पद्रुम)

"Tappa unlike कवि, पाँचाली बा यात्रा was essentially Baithaki gan or songs for the drawing room. which was appreciated chiefly if not wholly by the upper class.

(बाँ० भा० अभि०, प्र० खं० ८६६)

२. "छापरार कलिक्ट्री केरानिर कर्म ग्रहण करिया निधू बाबू ततकाले तत्प्राय संगीतविद्याय सुपण्डित जनेक यवन गायके वेतन दिया नियुक्त करत स्वाकाश समय ताहार निकट संगीत-शास्त्र शिक्षा करिते लागिलेन । गीतविद्या तत्पर यवनेरा प्राय अत्यंतेइ क्रूर सहजे काहाकेइ यथार्थरूपे उपदेश करेना । यवन विद्याय बाबुर किंचित संस्कार जन्मिल ततन शिक्षादान विषये शिक्षकेर कार्पण्य जानिते सियाँ साहेबके सेलाम करिया कहिलेन, 'आमि तोमारदिगेर जातीय यावनिक गीत आर गान करिब न । आपभिय बंग भाषाय हिन्दिगीतेर अनुवाद-पूर्वक राग रागनी संयुक्त करिया गान करिव ।' फले ताहार अव्यव-हित परे ताहाई करिलेन अर्थात् उक्त मुसलमान गायकेर विदाय दिया आपनिइ राग रागनी, ताल, मान अनुसारे बाँगाला गीत रचना करपे प्रवृत हइलेन ।" (ईश्वरचन्द्र गुप्त विरचित कवि जीवनी, पृ० १०२)

आधुनिक-कालीन गीत-लेखक कह सकते हैं। वे प्रथम हिन्दू बँगला के गीत लेखक हैं, जिन्होंने धर्म और परलौकिकता से साहित्य को अलग किया। टप्पों के कुछ उदाहरण देना अपेक्षित होगा—

"भाल वासिबे वले, भालवासिने।
आमार स्वभाव एई, तोमा वइ आर जानि ने
विधु मुखे मधुर हासि, देखते बड़ भाल बासि
ताई देखे जेते आसि, देखाँ दिते आसिनें [1] ॥"

अर्थात्, 'मैं तुझे इसलिये प्यार नही करता हूँ कि तुम भी इसके बदले में प्यार करो। यह तो मेरा स्वभाव बन गया है कि तुझे प्यार करूँ, केवल तुझे। मैं तेरे अधरों पर मुस्कान देखना चाहता हूँ। उसके लिये मैं प्रतिदिन यहाँ आया करता हूँ। ओ प्रिये, मुझे समझने में भूल मत करो, मैं तुझे देखने आता हूँ। इसलिये नहीं कि तू मुझे देखे।' इसी प्रकार हिन्दी-संगीत के प्रभाव की परम्परा आधुनिक काल तक आती है।

: ८ :

उपसंहार

बँगला प्रेमाख्यानक-काव्य की परम्परा हिन्दी के माध्यम से आयी है। बँगला में यह परम्परा सतरहवीं शताब्दी से शुरू होती है। दौलत काजी और आलाओल इस परम्परा के बँगला के शक्तिशाली मुसलमान कवि हैं। इन पर हिन्दी कवियों का साहित्यिक एवं भाषामूलक गम्भीर प्रभाव रहा है।

दौलत काजी ने हिन्दी-कवि मुल्ला दाउद के चंदायन का कथानक एवं साधन की मैंनासत का आधार लेकर अपनी "सतीमयना ओ लौर चन्द्रानी" की रचना की थी। जायसी के महाकाव्य पद्मावत का आधार लेकर आलाओल ने बँगला पद्मावती का निर्माण किया था।

---

१. हि० बं० ला० लि०, पृ० ६२६, बाँ० सा० इ०, प्र० खं०, पृ० ६७८, संगीत रत्नावली, पृ० २१, बं० सा० प०। प्रसंगवशात शोरी मियाँ का भी कुछ परिचय देना समीचीन जान पड़ता है। शोरी मियाँ का असली नाम गुलाम नवी था। इनकी पत्नी का नाम शोरी था। अपना नाम गोपन रख कर पत्नी के नाम से टप्पों का प्रचार किया। हिन्दी टप्पा रचना और गायक के रूप में वे अद्वितीय हैं। टप्पा का उदाहरण देना अपेक्षित है।

रे छेवा, मान ना करिये, सांचे रबसे डरिये।
आओ शोरी, मिल पियाला पीले,
समझ समझ पाग धरिये।

(बांगालीर गान, पृष्ठ ६६६)

किन्तु परवर्ती इस्लामिक बँगला-साहित्य के लेखक भाव-एवं भाषा की दृष्टि से हिन्दी से प्रभावित रहे हैं। सचमुच इस युग का साहित्य अनुवादात्मक है। हिन्दी-पुस्तकों के अनेक अनुवाद बँगला में हुए थे। मूलतः इस मुसलमानी-बँगला भाषा और साहित्य का आधार एवं प्रेरणा हिन्दी ही थी। इस साहित्य में से बहुत कुछ को हम लोक-साहित्य के अन्तर्गत परिगणित कर सकते हैं।

इस युगीन प्रसिद्ध हिन्दू कवि भारतचन्द्रराय गुणाकर भी इसी हिन्दी इस्लामिक बँगला के वातावरण और इसी परम्परा की उपज हैं। इनके काव्य में भी हिन्दी प्रभाव का पुट है। इन्होंने ब्रजबुलि और हिन्दी में सफलतापूर्वक कवितायें की हैं।

बँगला के प्रसिद्ध टप्पाकार रामनिधि गुप्त भी इसी काल की उपज हैं। उनको टप्पा रचना की प्रेरणा हिन्दी संगीतकार शोरी मियाँ के टप्पों से मिली है।

परिशिष्ट

बँगला रामायणों पर तुलसी रामायण का प्रभाव

डा० दीनेशचन्द्र सेन लिखते हैं, 'जैसे कि मुस्लिम काल में हिन्दी भारत की सार्वजनिक भाषा थी; तुलसीदास की रचना सारे देश में पढ़ी जाती थी और वह प्रशंसित हुई थी ; और उसने भारत के अन्य भागों के साहित्यकारों को भी प्रभावित किया था।' हम अब देखेंगे कि अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों की कुछ बँगला-रामायणों पर तुलसीदास के प्रभाव की कुछ छाप है।[1]

श्री कालिदास राय लिखते हैं, 'कृतिवासी रामायण के भावों और भाषा के अनुकरण पर परवर्ती रामायणकारों ने अपने-अपने ग्रन्थों की रचना की थी। तब उन्होंने केवल बाल्मीकि का ही आश्रय नहीं लिया, किन्तु उन्होंने जैन रामायण, अध्यात्म रामायण एवं तुलसीदास की रामायण आदि से कुछ-कुछ अंश ग्रहण किए थे।[2]

---

१. As Hindi during the Mohamedan times was the lingua franca of India Tulsidas's work was read and appreciated throughout India and influenced the writers of other parts of the country. We shall presently see that some of the Bengali Ramayanas of the 18th and 19th centuries wore stamped with his influence.
B. R. page 136.

२. कृतिवासेर रामायणेर भाव ओ भाषा अनुसरणेइ परवर्ती रामायण प्रणेतारा स्वस्व ग्रन्थ रचना करियाछिलेन—तवे तांहारा एकमात्र बाल्मीकि केइ आश्रय करेन नाइ। ताँहारा जैन रामायण, अध्यात्म रामायण, तुलसीदासेर रामायण इत्यादि हइते ओ कौन कौन अंश ग्रहण करियाछेन।
—श्री कालिदास राय, प्राचीन बंग साहित्य, पृ० ५६।

अतः सुविधा के लिए तुलसीदास की रामायण के प्रभाव का वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है :—

१. बँगला रामायणकारों पर तुलसीदास जी के प्रभाव की छाप है। जैसे—

(क) रामानंद यति (चण्डीर-गीत, रचनाकाल, शकाब्द १६८८—१७६६ ई०)
(ख) रघुनंदन गोस्वामी (रामरसायन, रचनाकाल, ११६३ बंगाब्द १७८५ ई०)
(ग) राममोहन बंद्योपाध्याय (रामायण, रचनाकाल १७६० शकाब्द १८३८ ई०)

२. (क) तुलसीदास के कुछ दोहे बँगला-पाण्डुलिपियों में पाये जाते हैं।

(ख) तुलसीदास की समस्त कृतियों का अनुवाद बँगला में हुआ है।

(ग) तुलसीदास के पावन एवं उच्च व्यक्तित्व, तुलसी रामायण की धार्मिकता एव काव्य-सौष्ठव तथा साहित्यिक सौन्दर्य के कारण सामान्य प्रभाव आज तक निरंतर गति से चला आ रहा है।[1]

यद्यपि बँगला रामायणों पर मुख्यतः तुलसी रामायण का प्रभाव है किन्तु स्वल्प रूप में हिन्दी प्रभाव भी कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होता है। निम्न मानचित्र द्वारा हिन्दी प्रभाव बँगला रामायणों पर अधिक स्पष्ट हो सकेगा।

बंगला रामायणों पर हिन्दी प्रभाव

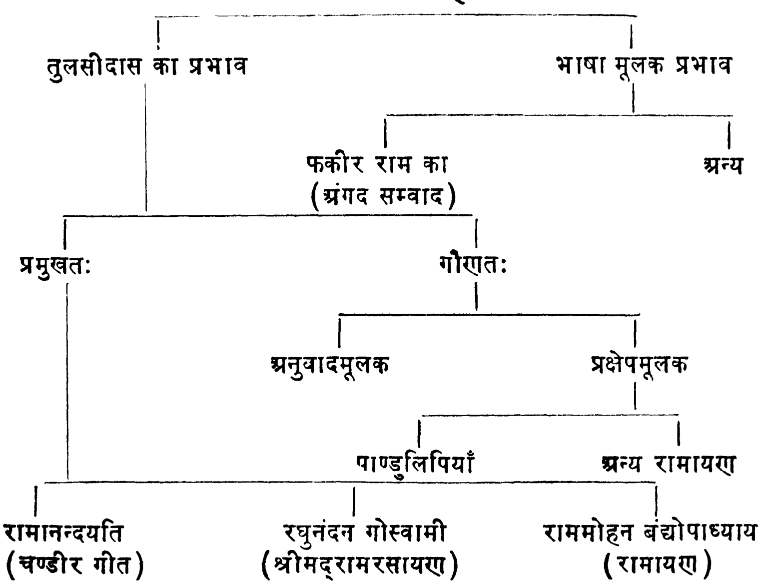

उपर्युक्त मानचित्र का किंचित विवेचन अपेक्षित है।

१. आधुनिक काल में सतीनाथ भादुड़ी विरचित ढोंड़ाई चरित-मानस पर तुलसी कृत रामचरितमानस का प्रभाव है। यह तुलसीकृत रामचरितमानस के अनुकरण पर विरचित है। इसमें बीच-बीच में हिन्दी रामायण के पद भी उद्धृत हैं। हिन्दी की चलित शब्दावली की उक्त पुस्तक पर छाप है।

अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी के बँगला रामायणकारों पर तुलसीदास का स्पष्ट प्रभाव है। इस प्रभाव के निम्न ऐतिहासिक प्रमाण हैं :—

१. श्री रामानंदयति

श्री रामानंदयति ने चण्डीर गीत लिखा है।[1] इन्होंने स्वयं तुलसीदास जी का ऋण स्वीकार किया है। इनके चण्डीर गीत में तुलसीदास जी का प्रभाव है। जैसे :—

सतु बन्ध विवरण ताहे करि रामायण तुलसीदासेर विवरण।[2]

कवि स्वयं अपने ग्रंथ में तुलसीदासजी की वंदना करते हैं।

कल श्री तुलसीदास महापुण्यधाम। जाके दरशन दिया छिल प्रभुराम॥
शिशु काले कपि पालयो दृसन। धन्यरे तुलसीदास देखाओ चरण॥[3]

२. श्री रघुनंदनदास गोस्वामी (श्रीमद्रामरसायण)

रामरसायण तुलसी रामायण की तरह एक भक्ति प्रधान काव्य है। यदि रामरसायण को बँगला की रामचरितमानस कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। डा० दीनेशचन्द्र सेन रासरसायण का बहुत कुछ आधार तुलसी रामायण को मानते है। वे लिखते हैं, 'कवि की संस्कृत परायणता तो सत्य है किन्तु हिन्दी भाषा का मेल उनके काव्य में प्राय: सर्वत्र ही दृष्टिगोचर होता है। जैसे—काँहितू, कैलू, तिहँ, तबहुँ प्रभृति छोटे-छोटे शब्द संस्कृत की सुशृंखल और परिशुद्ध प्रणाली के मध्य में हिन्दी प्रभाव की पतनोन्मुख ध्वजा उड़ाते है।[4] वे अपने अंग्रेजी ग्रन्थ बँगला भाषा तथा साहित्य के इतिहास में लिखते हैं, 'यह ग्रन्थ केवल बालमीकि की रामा-

---

१. एशियाटिक सोसाइटी ऑव बँगाल की हस्तलिखित प्रति संख्या ८० रामानंद यति का चण्डीर गीत है। यह फोर्ट विलियम कालेज की हस्तलिखित पोथियों में से है। यह सुन्दर रूप में सुरक्षित है।

२. यह प्रसंग काव्य के अंत में मिलता है। देखिये पत्र संख्या चण्डीर गीत १४१।
—बाँ० सा० इ०, प्र० खण्ड, पृ० ६७८

३. यह तुलसीदास जी के प्रभाव का अंतरंग प्रमाण है। हस्तलिखित प्रति पत्र १०४, १०५ पर मिलता है। अत: इसको प्रमाणित और स्पष्ट करने के लिए पत्रों १०४, १०५, १४१ की प्रतिलिपियां पृष्ठ २५७, २६६ के सामने संलग्न हैं। —डा० सुकुमार सेन और एसियाटिक सोसाइटी के सौजन्य से······

४. किन्तु कविर संस्कृत परायणता सत्ये ओ हिन्दी भाषार छिटा फांटों ताँहार कावेर प्राय सर्वत्रइ दृष्ट हय। काँहितू, कैलू, तिहं तबहुं प्रभृति क्षुद्र शब्दगुलि संस्कृतेर सुशृंखल ओ परिशुद्ध प्रणालीर मध्ये हिन्दी-प्रभावेर पतोन्मुख ध्वजा उड़ाइते छे।

(बँ० भा० स०, पृ० ५११)

यण के ऊपर ही आधारित नहीं है, किन्तु तुलसीदासजी की हिन्दी रामायण पर भी आधारित है।[1]' कवि स्वयं स्वीकार करते हैं, "राम की बाललीला वर्णन में भूषण्डी काक का विवरण तुलसीदास की रामामण से ग्रहण किया हुआ है। कवि ने स्वयं स्वीकार किया है। यथा—

श्रीमान तुलसीदास निजरामायण—
उत्तरकाण्डेते इहा करेन वर्णन।[2]

अर्थात् श्री तुलसीदास जी ने अपनी रामायण के उत्तरकाण्ड में इसका वर्णन किया है। डा० दीनेशचन्द्र सेन पुनः लिखते हैं, 'कवि ने अनेक अंश में बाल्मीकि रामायण का अनुसरण किया है। बीच-बीच में कहीं-कहीं तुलसी रामायण के अंशों का भी ग्रहण हुआ है।'[3]

जिस प्रकार तुलसीदास राम को भगवान बना कर उनकी भक्ति में विलीन हो जाते हैं उसी प्रकार रामरसायण भा तुलसी रामायण की तरह राम-भक्ति से पूर्णतः ओत-प्रोत है। डा० सेन फिर लिखते हैं, 'तुलसीदास की अनुप्रास छटा तथा उपमा वाली शैली का सफलतापूर्वक रघुनंददास गोस्वामी अनुसरण एवं अनुकरण करते हैं।'[4] यही प्रक्रिया रामरसायण में तुलसी रामायण की तरह आदि से अन्त तक चलती है। कुछ उदाहरणों से स्पष्ट करना अपेक्षित जान पड़ता है—

रामरसायण—

देखि देव दनुज दलन दयामय,
कमनीय कलानिधि करिला उदय।

रामचरितमानस—

सुजन समाज सकल गुन खानी।
करउँ प्रणाम सप्रेम सुबानी॥
× ×
मुद मंगलमय संत समाजू।
जो जग जंगम तीरथ राजू॥

१. It is based not only on the Ramayan of Valmiki but also on the Hindi recension by Tulsidas...H. B. B. L. page, 169.

२. रामेर बाल्यलीला वर्णनाय भूषण्डी काकेर विवरण ये तुलसीदासेर रामायण हइते ग्रहण करा हइयाछे, ताहा कवि निजई स्वीकार करिया गियाछेन—
(बाँ० सा०, द्वि० खण्ड, पृ० १५९)

३. कवि अनेकांशे बाल्मीकि के अनुसरण करिया छेन, मध्ये मध्ये तुलसीदासेर हिंदी रामायण हइते ओ कौन कौन अंश गृहीत हइयाछे।
(बँ० भा० सा०, पृ० ५११)

४. But Raghunandan adheres more closely to the characteristic ways of Tulsidasa's imagery. —B. R.

इस प्रकार अनुप्रास की छटा समान रूप से दोनों महाकाव्यों में है। तुलसी रामायण का बहुत कुछ साहित्यिक सौन्दर्य अनुप्रास की मालाओं पर अवलम्बित है। निःसन्देह यह शैलीगत प्रभाव तुलसी रामायण का रामरसायण पर है। विराट काव्य श्रीमद्रामरसायण में अनेक ऐसे पद, प्रसंग हैं, जिनकी साम्यता तुलसी रामायण से सरलता से हो जाती है। राम-केवट-संवाद तुलसी रामायण की एक महत्त्व पूर्ण घटना है। अन्य रामायणों में यह घटना नहीं मिलती है। किन्तु रामरसायण में यह मिलती है। कवि स्वयं कहते है—

रामरसायण—

> **एइ स्थाने एक लीला शुन सर्वजन।**
> **शिष्ट परंपरा देखि करिव वर्णन।**
> **किन्तु एइ लीला नहीं रामायणे।**
> **परम मधुर एइ लीला ए कारणे।** (पृ०४७)

अर्थात् एक लीला इस स्थान पर सब लोग सुनें। किन्तु यह लीला रामायण में नहीं मिलती है। शिष्ट परम्परा देखकर वर्णन करता हूँ। इस कारण से यह लीला परम मधुर है।

किन्तु दोनों के देश, काल, परिस्थितियों में अंतर है। रामचरितमानस में यह घटना राम-वनवास के समय घटती है। रामरसायण में विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के पश्चात् जनकपुर को जाते समय होती है। किन्तु, यह निश्चित है, यह तुलसीदास से ली गयी है। जैसे—

रामरसायण—

> **बोलये नाविक प्रभु कहएकेमन, शिलाते काष्टेते भेद ना हय दरशन।**
> **सेइ जड़ निरस कठिन प्राणहीन, एह सेइ मतनहे कौन रूप भिन।**

रामरसायण—

> **यदि तरि पदधूलि परशे तोमार। नारी हवे जावे जीविका आमार।**
> **अत्यंत दरिद्र मुई एहेते जीवन, यदि नष्ट हय तवे बड़ विघटन।**

रामचरितमानस—

> **मांगी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना।।**
> **चरन कमल रज कहुँ सबु कहइ। मानुष करनि मुरि कछु अहही।**
> **छुअत सिला भइ नारि सुहाइ। पाहनते न काठ कठिनाई।**
> **तरनिउं मुनि घरिनी होइ जाइ। बाट परइ मोरि नाव-उड़ाइ।**
> **येहि प्रतिपालउँ सबु परिवारु। नहि जानों कछु और कबारु।**

रामरसायण में अनेक स्थल ऐसे हैं, जिनसे तुलसी रामायण के अनेक प्रसंगों से साम्य है। जैसे, भगवान् राम जब धनुष तोड़ने के लिये आते हैं तब प्रत्येक व्यक्ति उनका दर्शन अपनी भावना के अनुसार करते हैं।

रामरसायण—

सभाते आछये यत शांति मुनि जन । परतत्व करि रामे करे निरीक्षण ॥
परम ईश्वर करि देखे देवगन । लक्ष्मणेर सख्य रस करे उल्लासन ॥
जनकेर रानी माने निजेर नंदन । जानकीर अंतरेते साक्षात मदन ॥
कौन कौन मुनि देखि करेन करन । हइतेछे दासरसे निमगन ॥
कत राजा रूप देखि पाइला विष्मय । जनकेर कन्यादान वीररसोदय ॥
वृद्ध नारी देखि पद ब्रजे आगमन । श्रीरामेर व्यथा मानि कृपायुक्त मन ॥
दुष्ट राजा जत तारा देखि रघुवर । निज बाँझ भग्न जानि सरोष अंतर ॥
राक्षस असुरे देखे यमेर समान । अंधकार जैन सुधाकर ज्ञान ।
दशानन पुरोहित करये निवन । सूर्य अंधकार वले पेचक जे मन ।
एइ रूपे सबे देखे जार जेन मन..........................।

तुलसी रामायण में भी उपर्युक्त विचारों का वर्णन है—

रामचरितमानस—

जिन्ह के रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥
देखहिं भूप महारन धीरा । मनहुँ बीर रसु धरे सरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी । मनहुं भयानक मूरति भारी ॥
रहें असुर छल छोनिप बेषा । तिन्ह प्रभुँप्रकट काल समदेखा ॥
पुरवासिन्ह दोन वोउ भाई । नर भूषन लोचन सुखदाई ॥
दो० नारि विलोकहिं हरषि हिय निज निज रुचि अनुरूप ॥
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप ।
बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा । बहुमुख कर पगलोचन सीसा ॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसे । सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे ॥
सहित विदेह बिलोकहिं रानी । सिसु सम प्रीति न खाइ बलानी ॥
जोगिन्ह परम तत्वमय भासा । सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा—॥

राजर्षि जनक की निराशा भी दोनों रामायणों में समान है ।

रामरसायण—

हाय हाय केह नाहिं करिते पारिला । बूझि एइ धरातल निर्व्वीर हइला ॥

रामचरितमानस—

अब जनि कोउ भाखे भटमानी । बीर बिहीन मही में जानी ॥

नारी सुलभ सहज भावना भी दोनों काव्यों में समान है । स्त्रियाँ विचार करती हैं । राम सीता का पति होने योग्य है ।

रामरसायण—

कौन पुण्यवती कत पुण्य करियाछे । जार भाग्ये हेनपति विधि लिखीयाछे ॥
आर जन कहे शुन वचन आमार । राम योग्य नारी सीता विने नाहि आर ॥

केह केह सखी तुमि कहिछे उत्तम । सीता रामे विवाह हइले हय सम ॥
सीता सम राम राम सम सीता हय··· ··· ···

रामचरितमानस—

देखि राम छबि कोउ एक कहई । जोगु जानकिहि यह बरु अहई ॥
जौं सखि इन्हहि देख नरनाहू । पन परिहरि हठि करइ बिबाहू ॥

कैकेयी मंथरा संवाद में दोनों का स्वर एक ही है । देवता सरस्वती से समान रूप से कैकेयी की मति भ्रष्ट करने के लिये प्रार्थना करते हैं । यदि राम वन नहीं जायेंगे तो देवताओं का शत्रु रावण कैसे मारा जायेगा ।

रामरसायण—

रावन दोरात्मा सब जानइ सकले । तार वध लागि राम प्रकट भूतले ॥
किंतु यदि ना हय प्रभुर वनवास । तवे तार मरने किरुपे हवे आश ॥

रामचरितमानस—

बिपत्ति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु ।
राम जाहिहं बनराजु तजि होइ सकल सुर काजु ॥

राम वनवास के समय राम-सीता संवाद, राम-लक्ष्मण सवाद, कौशल्या, दशरथ, कैकैयी एवं सुमित्रा आदि के विचार तुलसीदास एवं रामरसायण में समान हैं।

वनवास-काल में ग्रामीण नारियाँ सीता से राम, लक्ष्मण के विषय में पूछती हैं । ये कौन हैं । सीताजी-आँखों के संकेत से ही उत्तर देती हैं। यह प्रसंग रामचरितमानस को अद्भुत सौन्दर्य प्रदान करता है। मानव भावनाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण दोनों काव्यों में समान है । रामरसायण में भी यह प्रसंग तुलसी रामायण के अनुरूप ही है ।

रामरसायण—

कौन कौन स्थाने आसि मिले नारीगन ।
दखि तारा राम सीता रूप नेत्र भारि । जानकीरे पूछे किछू मृदु मृदु करि ॥
श्याम तनु आगे येह करवेन गमन । चंद्रमुखि हय एह तोमार केहन ॥
जानकी उत्तर किछु ना देन वचने । किंतु मृदु हास्य करि जानान नयने ॥

रामचरितमानस—

दो० -स्यामल गोर किसोर वर सुंदर सुखमा अयन ।
सर्वरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नयन ।
कोटि मनोज लजावन हारे । सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे ॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी । सकुचि सियमन महुँ मुसुकानी ॥
तिन्हहि बिलोकि बिलोकती धरनी । दुहुँ सकोच सकुचति बरखती ॥
संकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी । बोली मधुर बचन पिक बयनी ॥

सहज सुभाय सुभग तन गोरे नाम लखनु लघु देवर मोरे ।।
बहुरि बदन विधु अंचल ढांकी । पिय तन चितहिं भौंह करि बांकी ।।
खजन मंजु तिरिछे नयनि निजपति कहेउ तिन्ह सिय सैननि ।।

वनगमन में सुमंत्र को विदा करते हुए रामचन्द्र जी निवेदन करते हैं कि प्रत्येक को उनके कर्त्तव्य अनुसार मेरा निवेदन कर देना । भगवान राम का यह निवेदन दोनों रामायणों में समान है ।

रामरसायण—

कहिलेन मधुर वचने, सुमंत्र एखानहेते फिरि जाओ अयोध्याते आर न चड़िव स्यन्दने ।
वशिष्ठादि विप्रगने, नृपतिर श्रीचरणे, विस्तर प्रमाण जानाइबे ।
कौशल्या कैकयसुता सुमित्रादि जतमाता, सबै मोर प्रणति कहिबेन ।
मोर शौके नरपति, हबेन विह्वल मति, करातरे सतत सांत्वन ।
कहिबे मोदेर लागि, ना हबेन शौक भागी, मौरावनै वर-सुखी मन ।
मातामह पुरहैते, शीघ्र आनि श्रीभरत अभिषेक करिबे आनि ।
इह वाक्य वल तारे, जनकर सेवा करे, समभावहय मातृगण ।।

रामचरितमानस—

बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा । बोले मधुर बचन धरि धीरा ।।
तात प्रणाम तात सन कहेहू । बार बार पद पंकज गहेहूं ।।
करबि पायँ परि बिनय बहोरी । तात करिअ जन चिंता मोरी ।।
बनमंगल मगमंगल कुसल हमारे । कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारे ।।
छं० तुम्हरें अनुग्रह तात कानन जात सब सुखु पाइहौं ।
प्रतिपालि आपसु कुसल देखन पाय पुनि फिर आइहौं ।।
जननी सकल परितोषि परि परि चरण करि बिनति घनी ।।
तुलसी करेहु सोइ जतनु जेंहि कुसली रहहिं कौसल धनि ।।
सो० गुरसन कहब संदेसू बार बार पद पदुम गहि ।
करब सोइ उपदेसु जेंहि न सोच मोहि अवधपति ।१५१।
पुरजन परिजन सकल निहोरि । तात सुनाएहु बिनती मोरी ।।
सोइ सब भाँति मोर हितकारी । जातें रह नरनाहु सुखारी ।।
कहब संदेसु भरत के आएं । नीति न तजिअ राजपदु पाए ।।
पालेहु प्रजहि करम मनबानी । सेएहु मातु सकल समजानी ।।

सुमंत्र के अयोध्या आगमन पर राजा सीता के विषय में पूछते हैं कि हे सुमंत्र सीता ने क्या कहा ? सुमंत्र उत्तर देते हैं—हे राजन ! जनकपुत्री सीता बहुत लज्जाशील है । मुझसे कुछ नहीं कहा, केवल कातर मन से दोनों नयनों से आंसू

गिराते हुए केवल सबको प्रणाम कहा है। दोनों रामायणों में सीता की यह कातरोक्ति भी समान है।

रामरसायण—

जनक नृपति सुता, अतिशय लज्जायुता।
मोरे कोन कथा ना कहिला।
केवल कातर मने, झरझर दुनयने।
सभा कारे प्रणाम कहिला।

रामचरितमानस—

कहि प्रनामु कछु कहन लिय सिय भइ सिथिल सनेह।
थकित बचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देह॥

लक्ष्मण के विषय में भी दोनों काव्यों में समान चरित्र-चित्रण है।

रामरसायण—

यद्यपि वारन करि थाके रामधन, कोपेते कहिला जेइ कुमार लक्ष्मण…

रामचरितमानस—

लखन कहे कछु बचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा॥
बार बार निज सपथ दिवाई। कहबि न तात लखन लरिकाई॥

रामरसायण में अनेक ऐसे स्थल हैं, जिनकी रामचरितमानस के भावों के साथ अद्भुत समानता है। सुमंत्र दशरथ को राम वनगमन के विषय में बताते हैं—

रामरसायण—

नृपतिरे मंत्रीवर प्रणति करिया। अधोमुखे दाँड़ाइला सांजलि हइया।
नरपति एकाकि देखिवा मंत्रीवरे। रामकोथा वलिल पड़िला भूमि परे।

रामचरितमानस—

देखि सचिव जय जय कहि कीन्हेउ दंड प्रनामू।
सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति कहु सुमंत कहँ रामु।

इस प्रकार अनेक उदाहरण दोनों में समान हैं।

रामरसायण—

प्रथम दिनेर कथा कहिले लागे व्यथा, विपिनेते यात्रा करि राम।
दिन अवसान काले ममसा नदीर कूले, तरुतले करिला विश्राम॥

रामचरितमानस—

प्रथम बासु तमसा भयउ दूसर सुरसरि तीर।
नहाइ रहे जलपानु करि सिय समेत दोउ वीर।

क्या कलापक्ष, क्या भावपक्ष, क्या अनुप्रास विधान आदि में रामरसायण

पर तुलसी रामायण का प्रभाव है। कहीं-कही तो शब्दावली का भी अनुकरण किया गया है। जैसे—

रामरसायण—

ऐहेन चाँचर केश दिये वट क्षीर। जटा विरचन कैला दुइ बीर॥

रामचरितमासस—

होत प्रात बटक्षीर मँगावा। जटामुकुट निज हाथ बनावा॥

जब सुमंत्र राजा को राम-वनवास का वर्णन सुना रहे थे, उस समय रानियों ने रोना प्रारंभ कर दिया, किन्तु वशिष्ठ ने आकर सबको सांत्वना प्रदान की।

रामरसायण—

एइ रूप महारानी करेन क्रंदन। केहि तारे ना पारये करिते सांत्वन॥
हेन काले सेइ स्थाने वशिष्ठ आसिया। उठा कराइला दासीजने आज्ञा दिया॥
तवे नाना वाक्ये करि सवारे सांत्वन............।

रामचरितमानस—

तब बसिष्ठ मुनि समय सम कहि अनेक इतिहास।
सोक नेवारेउ सबहि कर निज बिग्यान प्रकास॥

भरत के ननिहाल से आने पर उनको अनेक अपशकुनों का आभास होता है। यह हृदयद्रावक दृश्य दोनों रामायणों में एक समान हैं।

रामरसायण—

न जाने हृदयमोर कांपे कि कारन। वाम बाहु उरु आँखि नाचे घनेघन॥
कक्कुर आमार आगे करये क्रंदन............

रामचरितमानस—

असगुन होहिं नगर पैथारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा।
खर सियार बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरतमन सूला।
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरु बिसेषि भयावनु लागा॥

भरत के राजतिलक का भी वर्णन दोनों काव्यों में एक जैसा है।

रामरसायण—

पर दिन प्रभाते वशिष्ठ तपोधन। सभाते आइला संगे मंत्री प्रजागन।
भरते आनिना सेइ सभार भितरे। समय उचित कथ कहेन सादरे।

रामचरितमानस—

सुदिनु सौधि मुनिवर सब आए। सचिव महागण सकल बोलाए।
बैठे राजसभा सब जाई। पठए बोलि भरत दोउ भाई।

रामरसायण एवं तुलसी रामायण में कई-कई विलाप भरत-गुह संवाद वर्णन में अद्‍भुत समानता है। कहीं-कहीं रघुनंदन गोस्वामी तुलसीदासजी की नीतिमूलक,

उपमामूलक शैली का भी अनुकरण करते हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है :—
रामरसायण—

तिन जन रहिला परम सुखीमन। लक्षमण जानकी रहिला भूवरे।
विष्णु शची इन्द्र जैन सुमेरु शिखरे ....

रामचरितमानस—

रामलखन सीता सहित सोहत परन निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत।

रामरसायण में तुलसीदास जी के प्रभाव का वर्गीकरण दो प्रकार से हो सकता है :—

१. रामरसायण में प्रकृति वर्णन तथा अनुप्रास विधान में तुलसीदासजी का प्रभाव है।

२. रघुनंदन गोस्वामी तुलसीदास जी के सर्वग्रासी भक्तिवाद से प्रभावित हैं। यद्यपि युग प्रभाव के कारण राम की कथा के आवरण में राधाकृष्ण की प्रेम-लीला वर्णन करने लगते हैं। डा० दीनेशचन्द्र सेन भी हमारे मत का समर्थन करते हुए लिखते हैं, "तुलसीदास अपने दो बंगाली शिष्यों रघुनंदन और राममोहन को प्रेरणा प्रदान करते हैं, किन्तु वे उनके उच्च धार्मिक दर्शन के धरातल पर स्थिर नहीं हो पाते हैं। संगीत की प्रणाली तुलसीदास की है, किन्तु बंगाली कवि उस प्रणाली में अपने ही गीत गाते हैं[१]।"

राममोहन बंद्योपाध्याय[२]

डा० दीनेशचन्द्र सेन का मत है, "राममोहन बंद्योपाध्याय की रामायण तुलसीदासजी की रामायण की ऋणी है, जिससे बंगाली कवि ने कई रूपक, लाक्षणिक प्रयोग ग्रहण किये हैं। यह हम पहले बता चुके हैं कि कवि अपनी प्रारंभिक कविताओं

१. Tulsidas inspires his two Bengali disciples, Raghunandan and Rammohan. But they cannot stick to the pitch of his high strung religious philosophy. The mode of music is Tulsidasa's, but the Bengali poets sing songs of their own in that mode.
B. R.

२. लेखक को राममोहन बंद्योपाध्याय की रामायण न तो पाण्डुलिपि रूप में बंगीय साहित्य परिषद तथा अन्य स्थान में प्राप्त हुई है, न कोई प्रकाशित संस्करण प्राप्त हुआ है। जो कुछ सामग्री प्राप्त हुई है वह डा० दीनेशचन्द्र सेन के बंगभाषा ओ साहित्य, हिस्ट्री आव बंगाली लैंग्वेज और लिटरेचर बंगाली रामायन्स तथा बंग-साहित्य-परिचय, द्वितीय भाग तथा श्री मणीन्द्र मोहन के बाँगला साहित्य से प्राप्त हुई है।

में इस बात को स्वीकार करते हैं और अपनी श्रद्धांजलि कृत्तिवास और तुलसीदास दोनों महाकवियों को समान रूप से अर्पित करते हैं[1]। उनकी यह श्रद्धांजलि इस प्रकार है :—

तुलसी दासेर पद करिया वंदन,
प्रणमिया कृत्तिवास पंडितेर पाय।
श्रीराममोहन विप्र रचिल भाषाय।

अर्थात् तुलसीदास जी के चरणों की वंदना करके कृत्तिवास पंडित के चरणों में प्रणाम करके श्री राममोहन विप्र ने भाषा में (रामायण) रचना की।

राममोहन की रामायण पर तुलसीदास जी का प्रभाव नाना रूपों में है। डा० दीनेशचन्द्र सेन लिखते हैं, "किन्तु मैं विश्वास करता हूँ कि बंगाली कवि ने भक्ति के ये सच्चे भाव बानर-देवता के प्रति तुलसीदास की रचना से प्राप्त किये हैं, जिन्होंने हनुमान एवं उनके साथियों की स्तुति की है, जो राम के लिए लड़े थे[2]। रामभक्त हनुमान का प्रसंग बंगाली रामायणों में नया है। कृत्तिवास की रामायण में यह प्रसंग है। किन्तु हनुमान को इष्ट-देव का स्थान तो तुलसीदास ही प्रदान करते हैं। तुलसीदास जी को रामायण लिखने की प्रेरणा हनुमानजी से ही प्राप्त हुई थी। तुलसीदास जी के परिवर्तीकालीन अठारहवीं, उन्नीसवीं शताब्दियों के बँगला रामायणकारों को हनुमान स्तुति की परम्परा तुलसीदास जी से मिली है। राममोहन इसके अपवाद नहीं हैं। बँगाली रामायणकार तो कहीं-कहीं हनुमान और राम को एकरूपता प्रदान करते हैं—

मारुति सहित रामेर किंचित नाही भेद।

अर्थात् हनुमान के साथ राम का कुछ भी भेद नहीं है। राममोहन हनुमान से प्रार्थना करते हैं :—

---

१. This Ramayana is indebted to Tulsidasa's work, from which Bengali poet borrows many metaphors, and this we have already indicated. In this preliminary verses he admits this and pays his tribute of respect to Krithivasa and Tulsidas both.

—B. R.

२. But I believe, the Bengali poet derived the sentiments of such earnest devotion for the Ape god from Tulsidasa's work, which has hymns addressed to Hanuman and to his comrades who fought for Rama".

—B. R.

रामायण—

दीर्घायु करह मोरे करुणा करिया।
भाग्यवती भार्या देह कृपा वितरिया।
तव पद सेवि जैन सस्त्रीक हइया॥
सुसंतान देह मोरे करुणा-सदन।
मोर वंश सेवे जैन तोमार चरण॥

तुलसीदास जी भी रामचरितमानस में हनुमान की प्रशंसा करते हैं। स्वयं भगवान् रामचन्द्र के मुखारविंद से हनुमान की प्रशंसा करवाते हैं। विनय-पत्रिका में तो तुलसीदास हनुमान की बड़ी स्तुति करते हैं[1]।

रामोपासक राममोहन ने तुलसीदास जी की रामायण से रूपक या लाक्षणिक प्रयोग (Metaphor) अपनाये हैं। दोनों की वर्षा-वर्णन में समानता है। उदाहरण से स्पष्ट किया जाता है—

रामायण—

कुटीरे करेन वास कमल-लोचन। सीता कारणे सदा झोरे दुनयन।
सान्त्वना करेन सदा सुमित्रा-संतान। तारगुणे राघवेर देहे रहे प्राण।
आषाढ़ नवीन मेघ दिल दरशन। येमन सुंदर श्यामरामेर वरण।
घन घन घन गर्ज्जे अति असंभव। येमन रामेर धनु टंकारेर रव।
रये रये सौदामिनि चमके गगने। येमन रामेर रूप साधकेर मने।
मयूर करये नृत्य सब मेघ देखि। राम देखि सज्जन येमन हय सुखी।
सदा जलधारा पड़े धरणी उपरे। सीतालागि येमन रामेर चक्षु झोरे॥
सरसिज शोभाकर हैल सरोवरे। जेमत शोभित राम सेवक अंतरे॥
मधु आशे पद्मे अलिवास करे मोदे। जेमत मुनिरमन राघवेर पदे॥
जलपाने चातकेर तृषा दूरे जाय। रामपेले जेमत वासना क्षयपाय॥
पुलकित हये मेघ डाके घनेघन। जेमत रामेर डाके नाम परायण॥
नदी नद अति वेगे समुन्द्रे मिशाय। जेमत रामेर अंगे जीवलय पाय॥
अवरित दृष्टिते पृथ्वीर ताप जाय। जेमत रामेर अंगे जीवलय पाय॥

---

१. रामचरितमानस एवं विनय-पत्रिका आदि तुलसीदास जी के ग्रन्थों में हनुमान की महिमा वर्णित है।
देखिये—विनय-पत्रिका में पद संख्या २५ से ३६ में हनुमान स्तुति है। जैसे—
मंगल मूरति मारुत नंदन, सकल अमंगल मूल-निकंदन।
पवनतनय-संतन हितकारी, हृय विराजत अवध बिहारी।— छं० ३६ वि० प०।

अगाध सलिले मीन हइल निर्भय । राम पेये जेमत निर्भये जीव रय ।।
अविरत वृष्टिते पृथ्वीर ताप जाय । जैमत तापित राम नामेते जुड़ाय ।।
(बाँ० सा० प०, प्र० भा०, पृ० ६०४-५)

गोस्वामी तुलसीदास जी का भी वर्षा-वर्णन नीतिमूलक रूपक शैली में रामचरितमानस के किष्किन्धाकाण्ड में इस प्रकार है :—

फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई । सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई ।।
कहत अनुज सन कथा अनेका । भगति बिरति नृपनीति विवेका ।।
बरषा काल मेघ नभ छाए । गरजत लागत परम सुहाए ।।
दो०—लछिमन देखु मोर गन नाचत बारिद पेखि ।।
गृही बिरति रत हरष जस विष्नु भगत कहुँ देखि ।।
घन घमंड नभ गरजत घोरा । प्रिया हीन डरपत मन मोरा ।।
दामिनि दमक रह घन माहीं । खल के प्रीति जथा थिर नाहीं ।।
वरषहिं जलद भूमि निअराएँ । जथा नवहिं बुध विद्या पाएँ ।।
बूंद अघात सहहिं गिरि कैसें । खल के बचन संत सह जैसें ।।
छुद्र नदी भरि चलीं तोराई । जस थोरहुँ धन खल इतराई ।।
भूमि परत भा ढाबर पानी । जनु जीवहि माया लपटानी ।।
समिटि समिटि जल भरहिं तलावा । जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा ।।
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई । होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ।।

तुलसीदास जी की शब्दावली का प्रभाव इस रामायण पर भले ही न हो, किन्तु उनकी उपमा, रूपक या लाक्षणिक एवं नीतिमूलक काव्य-शैली का राममोहन की रामायण पर प्रत्यक्ष प्रभाव है ।

तुलसीदास जी के भक्तिवाद से बंगाली कवि बहुत प्रभावित हैं । यद्यपि बँगला रामायणकारों ने रामकथा के आवरण में कृष्ण एवं चैतन्य की लीला के चित्र अंकित किए हैं । किन्तु भक्ति-भावना की तीक्ष्णता एवं गंभीरता उन कवियों में तुलसीदास जी से ही आयी है । तुलसीदास जी की तरह बंगाली रामायणकार केवल भक्ति चाहता है । प्रभु के चरणारविंदों का मकरंद पान ही भ्रमर-भक्त का मनोरथ है जैसे—

मुक्तिर प्रार्थना नाहिं करि तवस्थाने ।
जेन मत हय तब नाम सुधा पाने ।।

तुलनीय—

सकल कामना हीन जे राम भगति रसलीन ।
नाम प्रेम पीयूष हृद तिन्हहु किए मनमीन ।।

अन्त में कहा जा सकता है । इस ग्रंथ पर तुलसीदास जी की कला का

नीतिमूलक, उपमात्मक काव्य शैली का एवं भावपक्ष की दृष्टि से भक्ति भावना का गंभीर प्रभाव है।

बंगाल में तुलसी रामायण के पठन-पाठन की परम्परा पर्याप्त समय से प्रचलित है। किन्तु बँगला में तुलसी रामायण के अनुवादों की परम्परा आधुनिक काल में ही विशेष रही है। आधुनिक काल में समस्त तुलसी साहित्य का अनुवाद हुआ है। रामचरितमानस के तो कई अनुवाद अनेक विद्वानों द्वारा हुए हैं। संभवत: अन्य रामायणों में तुलसीदास जी के क्षेपक भाषान्तरित होकर चले गए हैं। एक दो बँगला पाण्डुलिपियों में भी उनके कुछ पद मिलते हैं।[1]

बाल्मीकि की रामायण की तरह तुलसीकृत रामचरितमानस का प्रचार और विस्तार सारे भारत में रहा है। आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं का राम-साहित्य तुलसीदास के प्रभाव से अवश्य अनुप्राणित है।

तुलसीदास के परवर्त्ती बँगला रामायणकार भी उनकी रामचरितमानस से न्यूनाधिक रूप में प्रभावित हैं। जिस प्रकार नाभादास जी के भक्तमाल के सुमेरु गोस्वामी तुलसीदास जी हैं। उसी तरह वे राम-साहित्य के भी सम्राट हैं। भक्ति भावना उनके रामचरितमानस की प्रमुख विशेषता है। यह उनकी विश्व-साहित्य को अनुपम देन है।

अतः उनकी भक्ति-भावना की गंगा रामचरितमानस में अनेक बँगला विद्वानों, साहित्यकारों और बँगला रामायणकारों ने गहरी डुबकियाँ लगाई हैं। स्वयं गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी उनके रामचरितमानस से काव्य सौन्दर्य और महिमा से अभिभूत होकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा और वंदना करते हैं। उनकी गोस्वामीजी के प्रति श्रद्धांजलि निम्न प्रकार है—वे नवीन दृष्टि से उसी पुरातन उपकरण को नया रूप देकर समस्त देश को प्रदान करते हैं। भक्ति द्वारा जिस व्याख्या से उन्होंने रामायण को नवीन रूप दिया है, वह साहित्य को आसाधारण दान है[2]। तथा—

देश के सर्वसाधारण के मानस पटल से तुलमीदास का अधिकार किसी भी काल में नहीं आयेगा। उनका दान स्थायी महान प्रतिभा का विकास लेकर काल के प्रभाव को अतिक्रमण कर चिरकाल देश को समृद्ध करेगा[3]।

---

१. श्री पंचानन मण्डल सम्पादित पुथि-परिचय द्वितीय खण्ड, पृ० २०६-२०७ देखिये।

२. तिनि नूतन दृष्टि निये सेइ पुरातन उपकरण के नूतन रूप दान करे परिवेशन करँछेन समस्त देश के। भक्तिद्वारा ये व्याख्याय तिनि रामायण के नूतन परिणति दियेछेन सेटो साहित्ये असाधारण दान। (र०जी०, च०खं०, पृ० २२३)

३. देशेर सेइ सर्वजनेर चित्तक्षेत्रे थेके तुलसीदासेर अधिकार कोनो कालेइ जावे ना। तार दान स्थायी महान प्रतिभार विकाश निये कालेर प्रभाव के अतिक्रम करे चिरकाल देश के समृद्ध करवे। (र० जी०, च० खं०, पृ० २२४)

२. भाषामूलक प्रभाव

हिन्दी का भाषामूलक प्रभाव बँगला पर परम्परागत रूप से चला आ रहा है। यह हिन्दी प्रभाव दो रूपों में प्राप्त होता है !

१. हिन्दी भाषा के रूप में

२. ब्रजबुलि के रूप में।

बँगला राम-साहित्य भी हिन्दी के प्रभाव का अपवाद नहीं है। श्री मणीन्द्र-मोहन वसु का मत इस सम्बन्ध में इस प्रकार है—"रायबारों के अनेक प्राचीन पाला हिन्दी के साँचे में ढले हुए मिलते हैं[1]।"

डा० सुकुमार सेन का मत है, "मल्लराजा आदि की सभा में नागरी अक्षर और हिन्दी भाषा एवं उत्तर-पश्चिम के आचार-व्यवहार का प्रचलन था, उन्हीं के अंचल में हिन्दी प्रभाव से रायबार कहानी की उत्पत्ति और विकास हुआ था[2]।"

अतः इस हिन्दी प्रभाव के बँगला रायबार[3] तथा पाला प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। श्री फकीर रामदास का अंगदरायबार तथा रामनाटक, श्री खोशाल शर्मा का अंगद-रायबार, श्री रामनारायण का अंगदरायबार तथा विभीषणरायबार, श्रीमतिराम का कुंभकर्णेर पाला आदि की रचना हिन्दी प्रभाव की साक्षी है। हिन्दी भाषा में रायबार रचयिताओं में फकीर रामदास अन्यतम हैं, खोशाल शर्मा, रामनारायण मतिराम प्रभृति ने उनके ही दृष्टान्तों का अनुसरण किया था।[4] अतः रायबारों पर किंचित विस्तारपूर्वक हिन्दी प्रभाव का दिग्दर्शन अपेक्षित है।

१. **फकीर रामदास का अंगदरायबार** (कलकत्ता विश्वविद्यालय पुथि संख्या २८३, तिथी १००८ साल १६०२ ई०) पर हिन्दी प्रभाव स्पष्ट करने के लिये एक उदाहरण आवश्यक है—

---

१. रायबारेर अनेकगुलि पाला माँगा हिन्दीते रचित देखिते पाओ या जाय।
(बाँ० सा०, पृ० २०३)

२. मल्ल राजादिगेर सभाय नागरी अक्षर हिंदी भाषा एवं उत्तरपश्चिम अंचले-आचार-व्यवहार प्रचलित छिल। ताइ ए अंचलेइ हिन्दीर प्रभावे रायबार काहिनीर उत्पत्ति एवं विकास हइयाछिल।
(बाँ० सा० इ०, प्र० खं०, पृ० ६७२)

३. रायबार शब्द का अर्थ है, राजद्वार, राजसभा का वर्णन तथा राजस्तुति।
(बाँ० सा० इ०, प्र० खंड, पृ० ६७२)
रायबार (संस्कृत राजवार्त्ता) (बाँ० सा०, पृ० १०२)

४. हिन्दी भाषाय रायबार रचयितृदिगेर मध्ये फकीर रामदास प्राचीनतम, खोशाल शर्मा, रामनारायण, मतिराम प्रभृति ताँहारइ दृष्टान्त अनुसरण करियाछिलेन।
(बाँ० सा०, पृ० १०२)

अंगद को अंग देखि सब राखस पातिल माया।
शत शत राडण होके बग्रठे घरके अदभुत काजा।
अंगद वीर जो अंग ताकाए सब कोइ राडण झुण्ड।
सब कोई बिस हात विसारद विस (हस्त) नान दस मुण्ड...

(बाँ० सा०, पृ० २०४)

तथा—

कहत मेघनाद कम जात राडणगन कि बेटे।
कौन दाउ तेरे काहा गिग्रा था दिगविजइ रण भेटे॥
कौन दाउ तेरे नहुड़िका (?) भूटो खाग्राथा हे पाताले।
कौन दाउ तेरे बान्धाखा अर्ज्जुन को घोटकसाले॥

(बाँ० सा०, पृ० २०६)

अंगदरायबार के अतिरिक्त इनके रामनाटक ग्रंथ में भी कुछ हिन्दी प्रभाव है।

२. खोशाल शर्मा का अंगदरायबार (कलकत्ता विश्वविद्यालय २६८ संख्यक पुथि १६८१ ई०) इनके अंगदरायबार की भाषा का नमूना भी दृष्टव्य है—

समुन्द्र पार होके राम खाप्पा होके बयठा।
आँखों पर घुङि निकले मागांय रावण चौट्टो॥
जल्दि जाम्बुवान पडछे मजू राजा के गुजरा।
दण्डकपर मोहर होये चोवदार भेज दोसरा॥

—बाँ० सा०, पृ० २१० पुथि-परिचय पृ० ६६ प्र० ख०।

तथा—

लंका मोंका देखके अंगद पालट फिरके आये।
मगन होके नाचे अंगद रामका दरशन पाये।
वीरासन में बैठे प्रभुजि साम्ने गाण्डिवबाण।
दक्षिण तरफ में भाई लछमन वामे जाम्बूवान।

(बाँ० सा०, पृ० २११)

३. रामनारायण का अंगदरायबार (कलकत्ता विश्वविद्यालय २२५१ संख्यक पुथि १०६३ बंगाब्द) इसमें भी रावण-अंगद का प्रश्नोत्तर दृष्टव्य है—

इह लंकक गड़-निम्रड़ न आग्रोत दानव-दैत्य सुरासुर मेला।
तेरे बाप बड़े तुहु आप अड़े मुझे ताप चढ़े तुह मानव चेला।
उह लंक कलंक किए तिन भुवन किंकर को दिए शंकर योगी।
सुरहि चन्द्र सुरेन्द्र पराजित अब जितहि दानो विरत भोगी।

(२८५ संख्यक पुथि)

अंगद का उत्तर—

अरे रामकि नाम अकाम उद्धारण शुनरे लंका का अधिकारी।
तेरे बुद्धि ना शुद्धि विरुद्धि न मानत, जानकी आनकि नारी॥

इनके विभीषण रायबार से भी हिन्दी प्रभाव का नमूना दृष्टव्य है।

विभिछन्न राङने कहे हाथ जोरि।
शुन नाथ मेरे बात लंकाधिकारी॥
रघुवीर जलधिर तीर लेके बयठे।
... ... लंकेमें पयठे।

(बाँ० सा०, पृ० २१४)

४. **मतिराम का कुंभकर्णेर पाला** में भी हिन्दी प्रभाव है—

मतिराम कर दास कहे
कुछ खाने होगा तोम्हारे।

(क० वि० २७३६ सं० पुथि)

तथा—

कुंभकर्ण बोले कहो मोरे आमि।
कौनो वीर आया वधेंगे सीतारि।
जदि इन्द्र आम्रत आभि जाउ सर्गे।
फणी जदि आम्रत वधे नाग वर्गे।

(बाँ० सा०, पृ० २१९)

किन्तु प्रश्न उत्पन्न होता है, इन राजभाटों ने हिन्दी में ही इस प्रकार की कविता क्यों की ? जिस प्रकार अन्य ग्रन्थों की रचना इन्होंने बँगला में की थी, वैसे ही वे रायबारों और पालों की रचना भी बँगला में कर सकते थे। किन्तु श्री मणीन्द्रमोहन वसु इसका उत्तर इस प्रकार देते हैं, "रायबारों की हिन्दी में रचना लोक-मनोरंजनार्थ हुई थी। अतः हिन्दी रायबारों से जनता का मनोरंजन होता था। सर्वप्रिय होने के कारण आवश्यकतावश भी हिन्दी को अपनाया जाता था।"

हिन्दी में पद-रचना की प्रवृत्ति यात्रावालाओं में भी परिलक्षित होती है। हिन्दी संगीत का प्रभाव भी इसी काल से बंगला संगीत पर प्रारम्भ होता है, जिसका किंचित विवेचन आगे किया जायेगा।

चतुर्थ अध्याय

आधुनिक काल (१८५०......)

: १ :

हिन्दी बंगला का आदान प्रदान और पारस्परिक प्रभाव

बँगला के आधुनिक-साहित्य पर हिन्दी का थोड़ा प्रभाव है। इसके ऐतिहासिक एवं राजनीतिक कारण हैं। हिन्दी प्रभाव की जो गंगधारा बँगला साहित्य सागर में शताब्दियों से विलीन होती आई है, वह आधुनिक काल के मरुस्थल में आकर अकस्मात पूर्णरूप से समाप्त नहीं हुई है। किन्तु उस हिन्दी प्रभाव की धारा में अत्यन्त क्षीणता आ गई है। इस क्षीणता के कारण भारत में अंग्रेजों का प्रभुत्व योरुपीय सभ्यता, संस्कृति एवं साहित्य के गम्भीर प्रभाव तथा घनिष्ठ सम्पर्क के कारण बंगाल में जागृति और बँगला-साहित्य की अभूतपूर्व उन्नति है। आधुनिक युग में साधारणतया बँगला-साहित्य; विशेषतया गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव आधुनिक भारत की समस्त भाषाओं के साहित्य पर पड़ा है। संस्कृतियों की तरह भाषाओं और साहित्यों की धारायें भी अविरल रूप से बहती रहती हैं। अत: परम्परा के कारण हिन्दी प्रदेश और बँग प्रदेश का सम्पर्क भी आधुनिक काल में रहा है। हिन्दी तथा बंगला में साहित्यिक तथा भाषामूलक पारस्परिक आदान-प्रदान तथा प्रभाव भी रहे हैं।

अतः परम्परागत हिन्दी प्रभाव की कड़ी आधुनिक-काल में भी अविछिन्न रही है। जैसा कि डॉ० सुधाकर चटर्जी का कथन है, "ब्रिटिश राज में अनेक प्रभावशाली बँगाली, हिन्दी के समर्थक रूप में आगे आये हैं। वे हिन्दी की सहायता से बँगला साहित्य की समृद्धि के लिए प्रयत्नशील थे।"[1]

उदाहरणतया आधुनिक काल में राजा राममोहनराय, तरुणीचरण मित्र, ईश्वरचन्द विद्यासागर, राजनारायण वसु, भूदेव मुखोपाध्याय, केशवचन्द्र सेन, बंकिमचन्द्र चटर्जी, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, आचार्य क्षितिमोहन सेन, श्री जगदबन्धु

---

१. ब्रटिश आमले ओ अनेक कृती बाँगालीइ हिन्दीर समर्थने एगिये एसेछेन वा हिन्दीर साहाय्या बाँगला साहित्येर समृद्धिर प्रयास पेयेछेन।

—आधुनिक हिन्दी साहित्ये बाँगलार स्थान, प्र० भाग, पृ० १३।

भद्र, सतीशचन्द्र राय, डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी इत्यादि अनेक बँगाली महानुभाव हिन्दी के समर्थक, उन्नायक एवं प्रचारक रहे हैं। ये इससे प्रभावित होकर हिन्दी-साहित्य और भाषा की सहायता से बँगला भाषा तथा साहित्य की उन्नति एवं विकास में योगदान देते रहे हैं। महर्षि दयानन्द के आर्य-समाज, कांग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलन तथा हिन्दी या उर्दू भाषी हिन्दू तथा मुसलमान जनसंख्या के आदान-प्रदान के कारण भी कुछ-कुछ हिन्दी का प्रसार एवं प्रभाव बँगला में रहा है। अतः निम्न मानचित्र के द्वारा इस प्रभाव को सरलता से समझा जा सकता है।—

आधुनिक काल में बँगला पर हिन्दी प्रभाव

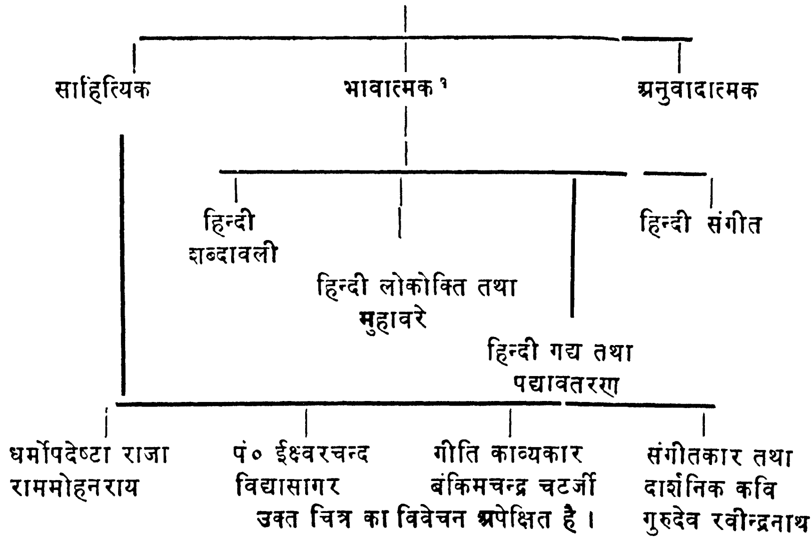

उक्त चित्र का विवेचन अपेक्षित है।

: २ :

धर्मोपदेष्टा राजा राममोहनराय (१७७४–१८३३)

राजा राममोहनराय हिन्दी गद्य-साहित्य के निर्माताओं में एक प्रमुख व्यक्ति हैं। वे हिन्दी के प्रेमी, पंडित और उन्नायक थे। उन्होंने हिन्दी गद्य के वेदान्त-विषयक ग्रन्थों का अनुवाद करके प्रचार किया था। राजा राममोहनराय की हिन्दी गद्य-रचना के विषय में पंडित रामचन्द्र शुक्ल और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के

१. देखिये—परिशिष्ट में भाषात्मक तथा अनुवादात्मक प्रभाव के रूप में।

मत उल्लेखनीय हैं। शुक्ल जी लिखते हैं, "संवत् १८७२ में उन्होंने वेदान्त सूत्रों के भाष्य का हिन्दी अनुवाद करके प्रकाशित कराया था। संवत् १८८६ में उन्होंने "बँगदूत[1]" नामक एक सवादपत्र भी हिन्दी में निकाला। राजासाहब की भाषा में एकआध जगह कुछ बँगलापन जरूर मिलता है, पर उसका रूप अधिकाँश में वही है जो शास्त्रज्ञ विद्वानों के व्यवहार में आता था[2]।" किन्तु द्विवेदीजी राजासाहब की हिन्दी को बँगला मिश्रित नहीं मानते हैं। उनके विचार में वह व्याकरणसम्मत विशुद्ध हिन्दी है।[3] राजा राममोहनराय के पूर्ववर्ती फोर्ट विलियम कालेज के लेखक नौकरी के लिए हिन्दी लिखते थे, किन्तु राजा राममोहनराय स्वेच्छा-प्रेरित लेखक थे।

राजा साहब द्वारा लिखित हिन्दी गद्य का नमूना उल्लेखनीय है—"जो सब ब्राह्मण साँग वेद अध्ययन नहीं करते सो सब ब्रात्य है, यह प्रमाण करने की इच्छा करके ब्राह्मण धर्मपरायण श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री जी ने जो पत्र साँग वेदाध्ययन-हीन अनेक इस देश के ब्राह्मणों के समीप पठाया है, उसमें देखा जो उन्होंने लिखा है—वेदाध्ययन-हीन मनुष्यों को स्वर्ग और मोक्ष होने शक्ता नहीं।[4] राजा राममोहन द्वारा विरचित सुब्रह्मण्य शास्त्री के सहित शास्त्रार्थ नामक हिन्दी ग्रन्थ का प्रसंग भी उल्लेखनीय है।

हिन्दी की सहायता से बँग-साहित्य की अभिवृद्धि में योग देने वालों में राजा राममोहनराय एक प्रमुख स्थान के अधिकारी हैं।

: ३ :

पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (१८२०-१८९७ ई०)

पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर हिन्दी के अच्छे पण्डित थे। वे बँगला गद्य के जनकों में से सर्वप्रधान है। फोर्ट विलियम कालेज में उनका सम्बन्ध हिन्दी पण्डितों के साथ घनिष्ठ रहा था। वहीं पर हिन्दी बैताल पच्चीसी नामक पुस्तक का अनुवाद किया था। वे स्वयं लिखते हैं, कॉलेज ऑव फोर्ट विलियम नामक विद्यालय के तत्कालीन विद्यार्थियों के लिए बँगला भापा में हितोपदेश नामक पुस्तक निर्धारित थी, उसकी रचना अच्छी नहीं थी। विशेषतः उसके कई अंश दुरूह एवं असंलग्न थे। जिनसे तात्पर्य और अर्थ स्पष्ट नहीं होता था। उसके बदले में पुस्तक परिवर्तन करना उचित एवं आवश्यक समझ कर उक्त विद्यालय के अध्यक्ष महामत श्रीयुत मेजर जी० टी० मार्शल महोदय ने नई पुस्तक प्रस्तुत करने के लिए आदेश

१. बाँगला सामयिक पत्र, पृष्ठ ३०, ३८२-४००।
२. हि० सा० इ०, पृ० ४२७।
३. आधुनिक हिन्दी साहित्ये बाँगलार स्थान, सामान्यतया द्वितीय परिच्छेद पृष्ठ १०-२१। विशेषतया हिन्दी पक्षे बाँगला, पृ० १३-१७।
४. हि० सा० इ०, पृ० ४२७।

किया। तदानुसार मैंने वैताल-पच्चीसी नामक प्रसिद्ध हिन्दी पुस्तक का अवलम्बन करके यह ग्रंथ लिखा है[1]।

इस हिन्दी वैताल पच्चीसी का बंगानुवाद वैताल पंचविंशशति के नाम से हुआ था। छात्रों और जनता में यह पुस्तक बहुत प्रसिद्ध हो गयी थी। पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने इस पुस्तक के निर्माण में न तो संस्कृत का आश्रय लिया न अंगरेजी का। उन्होंने हिन्दी की ही वैताल-पच्चीसी[2] का अवलम्बन लेकर बँगला साहित्य की अभिवृद्धि की।

: ४ :

गीतिकाव्यकार बँकिमचन्द्र चटोपाध्याय (१८३८-१८९४ ई०)

बंकिम बाबू की रचनाओं में हिन्दी प्रभाव की किंचित झलक है। प्रमुखतया उनके दो-चार हिन्दी मिश्रित ब्रजबुलि के पद मृणालिनी नाटक एवं बंगदर्शन में प्राप्त होते हैं। ब्रजबुलि परंपरागत रूप से हिन्दी की अखिल भारतीय प्रवृत्ति का वाहन रही है। अतः आधुनिक काल में भी इसका सूत्र अविच्छिन्न रहा है। बंकिम बाबू के कुछ पदों के उदाहरण देकर इसको इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

'मथुरावासिनि, मधुरहासिनि, श्याम विलासनि-रे।'
कहलो नागरि, गेह परिहरि, काह विवासिनी-रे॥
वृन्दावन धन, गोपिनी मोहन, काहे तू तेयागी-रे।
देश देश पर, सो श्यामसुन्दर, फिरे तुया लागि-रे॥
विकच नलिने, यमुना-पुलिने, बहुत पियासा-रे।
चन्द्रमा शालिनी, या मधुयामिनी, नामिटल आशा-रे॥

---

१. कॉलेज ऑव फोर्ट विलियम नामक विद्यालये तत्रत्य छात्रगणेर पाठार्थे बाँगला भाषाय हितोपदेश नामे ये पुस्तक निर्दिष्ट छिल, ताहार रचना अति कदर्य। विशेषतः कौन-कौन अंश एरूप दुरूह ओ असंलग्न ये कौन क्रमे अर्थबोध ओ तात्पर्य गृह हइया उठेना। तत्परिवर्ते पुस्तकान्तर प्रचलित करा उचित ओ आवश्यक विवेचना करिया, उक्त विद्यालयेर अध्यक्ष महामति श्रीयुत मेजर जी० टी० मार्शल महोदय कोन नूतन पुस्तक प्रस्तुत करिते आदेश देन। तदनुसारे आमि, वैतालपच्चीसी नामक प्रसिद्ध हिन्दी पुस्तक अवलम्बन करिया, एइ ग्रन्थ लिखियाछिलाम।

—वैताल-पंचविशन्ति विज्ञापन, पृ० १।

२. १८०५ ई० में तरिणचरण मित्र ने इसका संपादन किया था।

—विद्यासागर ग्रन्थावली, पृ० ६।

सानिशा समरि, कहतो सुंदरि कांहा मिले देखा-रे।
शुनि याम्राये चलि, बाजयि मुरली, वने एका-रे ॥
(मृणालिनी, पृ० १३, १४)

इस प्रकार मृणालिनी में एक पद और है—

"घाट बाट तट माठ फिरि फिरनु बहु देश।
कांहा मेरे कान्त वरण, कांहा राज वेश ॥
हिया पर रोपनु पंकज, कैनु यतन भारि।
सोहि पंकज कांहा मोर, कांहा मृणाल हामारि ॥"
(मृणालिनी, पृ० १६)

बंकिम बाबू के हिन्दी मिश्रित ब्रजबुलि के चार पद बंगदर्शन में भी प्राप्त होते हैं। उनमें से भी उदाहरण देना अपेक्षित है [1]—

देख सखी नागर राजे। ओ मुख सुन्दर हेरि विधुवर जलदे लुकाय लाजे
मरकत भाँति जिनि तनु कांति भूषित बनफूल साजे,
चलने सुरंगे तरल तरंगे, नूपुर रुनु रुनु बाजे। सजनि नव वृन्दावने मदन विराजे।

तथा—

फुटल शतदल सरे ओर, साजल उपवन नववधू साजे।
जुटल अलिदल लुटल-परिमल, छुटल मलये वातासे ॥
केतकी हासल पिककुल भासल, मंगलमाधवी भासे।
ताहे सहि पुन पुन व्रजपति। निकरुण, खर लोचन शर करत विथार।
कैसे जीयव सखि प्राण हमार।

बंकिम बाबू ने हिन्दी मिश्रित ब्रजबुलि में रचना करने की सफल चेष्टा की है। अतः उनका बँगला गीतिकाव्य को यह योगदान है।

---

१. शेष पद इस प्रकार हैं—

अधर विकाशित मधुरिम हासे, सारि रमणीगण प्रेमक फांसे।
× × ×
सखिरे कैसे राखव अब कुलशील माने।

तथा—

मधुर मुरलीवर तान बरिखे, मुरछत मुनि मन जारत बरिसे।
× × ×
डगमग डोले पीरिति हिलोले, फुटल रसे अतिगाढ़,
सखि कैसे रहव घरे माधवे छाड़ ॥

—बंग दर्शन, तृ० खण्ड, पृ० ८५, १२८१ बंगाब्द।

: ५ :

संगीतकार तथा दार्शनिक कवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर (१८६१ से १९४१ ई०)

आधुनिक बँगला-साहित्यकारों में संभवतः सर्वाधिक हिन्दी प्रभाव गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर ही पड़ा है। गुरुदेव पर यह हिन्दी प्रभाव अनेक स्रोतों से पड़ा है। प्रमुखतया यह हिन्दी प्रभाव त्रिमुखी है। रवीन्द्र-संगीत (गीतिकाव्य) के उद्गम और विकास में हिन्दी संगीत का आश्चर्यजनक प्रभाव है। गुरुदेव ने छदम नाम भानुसिंह ठाकुर रख कर 'भानुसिंह ठाकुरेर पदावली' का सृजन किया था। यह 'भानुसिंह ठाकुरेर पदावली' परम्परा प्राप्त ब्रजबुलि भाषा में विरचित है। ब्रजबुलि के माध्यम से भी कुछ हिन्दी प्रभाव गुरुदेव पर पड़ा है। गुरुदेव हिन्दी-संत-साहित्य के अत्यधिक प्रशंसक और पुजारी रहे हैं। अतः इस त्रिमुखी हिन्दी प्रभाव का वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है :—

१. हिन्दी संगीत का प्रभाव।
२. भाषा रूपगत (ब्रजबुलि का) प्रभाव।
३. हिन्दी-संत-साहित्य का प्रभाव।

उक्त वर्गीकरण को इस प्रकार हृदयंगम किया जा सकता है।

१. हिन्दी संगीत का प्रभाव

रवीन्द्र संगीत के निर्माण में हिन्दी-संगीत का योगदान अनुपम है। इस तथ्य को गुरुदेव ने मुक्तकण्ठ से अनेक बार स्वीकार किया है, जिस परिवार में उन का जन्म हुआ था उसमें हिन्दी-संगीत की परम्परा चली आ रही थी। क्योंकि महात्मा राममोहनराय ने शास्त्रीय हिन्दी संगीत के अनुकरण पर ब्रह्म-संगीत का सूत्रपात किया था[1]। अतएव ब्रह्म-समाज और गुरुदेव के पूज्य पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर को भी यह हिन्दी-संगीत की परम्परा पैतृक-संपत्ति के रूप में प्राप्त हुई है।

श्री शान्तिदेव घोष का मत है, 'गुरुदेव के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर स्वयं ही उच्चांग[2] हिन्दी संगीत के विशेष भक्त थे। सुना जाता है, बीडन स्ट्रीट में एक मकान किराये पर लेकर उस्ताद रखकर गाना-बजाना करते थे। बाल्यकाल में साहब मास्टर के पास पियानो सीखा करते थे। मोटे रूप में वे गा सकते थे। हिन्दी गीतों के सम्बन्ध में थोड़ा बहुत उनका ज्ञान स्पष्ट था। उनके द्वारा रचित प्रत्येक

---

१. हिन्दी उच्च संगीतेर अनुसरणे ब्रह्मसंगीतेर सूत्रपात करेन महात्मा राममोहन राय। —रवीन्द्र-संगीत, पृ० ४०।

२. शास्त्रीय हिन्दी या हिन्दुस्तानी संगीत।

बँगला उपासना संगीत हिन्दी-उच्चांग संगीत के अनुकरण पर विरचित है। उपासना और उत्सवों के लिये गीत, उच्चांग हिन्दी संगीत की पद्धति को ही उपयुक्त मान कर रचे गये थे। अधिक क्या कहें वे इस परिपाटी की ही प्रधानता प्रदान करते थे। उनकी इच्छा और प्रभाव से ही उनके पुत्र द्विजेन्द्रनाथ, सत्येन्द्रनाथ और ज्योतिरिन्द्रनाथ ने उच्चांग हिन्दी संगीत के अनुकरण पर बहुल ब्रह्म-संगीत की रचना की थी। उसमें भी ध्रुपद की संख्या ही अधिक थी।[1]

अतएव गुरुदेव को भी यह हिन्दी संगीत की परम्परा उत्ताराधिकार के रूप में प्राप्त हुई थी। गुरुदेव स्वयं लिखते है, "हमारे घर के बंधुश्री कण्ठ बाबू दिन-रात गानों में ही तल्लीन रहते थे, ये गीत सिखाते नहीं थे, प्रदान करते थे। न मालूम कब वे गीतों में ही मग्न हो जाते थे, यह मैं नहीं जानता, ठीक तरह नहीं कह सकता, वे खड़े होकर नाच-नाच कर सितार बजाते थे—हँस-हँस कर बड़ी जलती हुई लाल लाल आँखें निकाल कर गीत गाते थे—'मैं छोड़ों ब्रजकि वासरि···' साथ-साथ मुझसे भी बिना गाये नहीं रहा जाता था।[2] अज्ञातनामा गायक का स्मरण करते हुए गुरुदेव लिखते हैं—'प्रातःकाल मशहरी में से उनके गीत सुना करते थे—नियमानुसार सीखा हुआ

---

१. गुरुदेवेर पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ निजे छिलेन बराबरइ उच्चांगेर हिन्दी संगीतेर विशेष भक्त। शोना जाय विडन स्ट्रीटे एकटी बाड़ि भाड़ा करे उस्ताद रेखे गान बाजना करतेन। छेलेबेलाय साहेब मास्टारेर काछे पियानो शेखेन। तिनि मोटी-मुटि भावे गाइते पारतेन। हिन्दी गाने भालोमंद बोध ताँर वेश परिष्कार छिल ताँर रचित प्रत्येकटि बाँगला उपासना संगीत हिन्दी उच्चांग संगीतेर चाले रचित। उपासना ओ उत्सवेर गाने, उच्चांगेर हिन्दी संगीतेर ठंगकेइ उपयुक्त मने करतेन। वले तिनि तार वेशि प्राधान्य दितेन। ताँरइ इच्छा ओ प्रभावे ताँर पुत्र द्विजेन्द्रनाथ, सत्येन्द्रनाथ, ज्योतिरिन्द्रनाथ उच्चांगेर हिन्दी संगीत भेंगे बहु ब्रह्म-संगीत रचना करेछिलेन; तार मध्ये ध्रुपदेर संख्याइ अधिक।
—रवीन्द्र संगीत, पृ० ३२।

२. आमादेर बाड़िर बंधु श्रीकण्ठ बाबू दिन-रात गानेर मध्ये तलिये थाकतेन।··· तिनि तो गान शेखातेन ना; गान तिनि दितेन, कखन तुले नितुम जानते पारतुमना। फुर्ति यखन राखते पारतेन ना दाँड़िये उठतेन नेचे नेचे बाजाते थाकतेन सेतार, हासिते बड़ी बड़ी चोख ज्वल् ज्वल् करत, गान धरतेन······ मय छोड़ो ब्रजकि वासरि······संगे संगे आमिओ ना गाइले छाड़तेन ना।"
—रवीन्द्र संगीत, पृष्ठ ३४।

याद नहीं······प्रातःकाल यही स्वर चला करता था।······वंशी हमारी रे······।[1] अर्थात् प्रायः २१ वर्ष की उम्र तक गान रचना के लिये उनकी शिक्षा का नया युग था। इस आयु तक सुर योजना के लिये नाना प्रकार हिन्दी राग-रागिनी ही केवल उनका अवलम्बन थी।[2] इस काल तक उनकी रचना में हिन्दी-राग संगीत का बहुत प्रभाव है।[3]

गुरुदेव स्वयं स्वीकार करते हैं—"मैं बचपन से ही खूब हिन्दुस्तानी गान सुनता आया हूँ। इससे अधिक क्या कहूँ? इसका महत्व और माधुर्य पूर्ण हृदय से स्वीकार करता हूँ। सुन्दर हिन्दुस्थानी गान मुझे गम्भीर भाव से मुग्ध करता है। विषय वस्तुहीन छवि का विशुद्ध रूप मुझे अच्छा लगता है, जिस प्रकार वाक्य-विहीन संगीत का आलाप। वस्तुत मेरा झुकाव इसी ओर है। शैशव से ही हिन्दुस्थानी सुरों से मेरे कान और प्राण भरे गये हैं। मैं बाल्यकाल से ही ध्रुपदगान सुनने का अभ्यस्त हूँ, उसका आभिजात्य अपनी वृहत सीमा में अपनी मर्यादा की रक्षा करता है, इस ध्रुपद गानों में मुझे दो वस्तुयें प्राप्त हुई, एक ओर उसकी विपुलता, गम्भीरता एक ओर उसका आत्म-दमन—सुसंगति के मध्य में अपने वजन की रक्षा करना।[4]

---

१. अजाना गायके स्मरण करे गुरुदेव लिखेछेन—"भोर वेला मशारि थेके टेने वेर करे ताँर गान शुनतेम, नियमेर शेखा यादेर धातेनेइ, तादेर शख अनियमेर शेखाय—सकाल वेलार सुरे चलत, —वंशी हमारि रे—।" —वही, पृष्ठ ३४।

२. अर्थात् प्रायः २१ वत्सर वयस पर्यन्त गान रचनाय ताँर शिक्षा नविसिर युग एइ वयस पर्यन्त सुर योजनाय नाना प्रकार हिन्दी राग-रागिनीइ छिल ताँर एकमात्र अवलम्बन। —वही, पृष्ठ ३६।

३. तखन पर्यन्त ताँर रचनाय हिन्दि रागसंगीतेर प्रभाव खूबवेशि। —रवीन्द्र संगीत, पृ० ३६।

४. छेलेवेला थेके भालो हिन्दुस्थानी गान शुने असछि वले तार महत्व ओ माधुर्य समस्त मन दियेइ स्वीकार करि। भालो हिन्दुस्थानी गान आमाके गंभीर भाव मुग्ध करे। "अति बाल्यकाल थेके हिन्दुस्तानी सुरे आभार कान एवं प्राण भर्ति हयेछे।"—विषय वस्तुहीन छविर निछक विशुद्ध रूप आमार भालोइ लागे, येमन भालो लागे वाक्य हारा संगीतेर आलाप। वस्तुत आमार निजेर झोंक ए दिके। "आमरा बाल्यकाले ध्रुपद गान शुनते अभ्यस्त, तार, आभिजात्य बृहत सीमार मध्ये आप मर्यादा रक्षा करे। एइ ध्रपद गाने आमरा दुटो जिनिस पेयेछि—एकदिके तार विपुलता, गभीरता, आर एक दिके तार आत्म-दमन, सुसंगतिर मध्ये आपन वजन रक्षा करा।" —वही, पृ० ३६।

यह जनश्रुति है कि मैं हिन्दुस्थानी गान न तो जानता हूँ न समझता हूँ। मेरे आदियुग रचित गान हिन्दुस्थानी ध्रुवपद्धति की राग-रागनियों का साक्षी दल अति विशुद्ध प्रमाण के साथ दूरभावी शताब्दी के प्रत्नतात्विकों के निदारुण वाद वितण्डा के लिये अपेक्षा करता है। इच्छा होने पर भी उस संगीत का मैं प्रत्याख्यान नहीं कर पा रहा हूँ। उसी संगीत से मैंने प्रेरणा प्राप्त की है जो इस बात को नहीं जानता है वह हिन्दुस्थानी संगीत को भी नहीं जानता है।[1]

इस प्रसंग में अन्यान्य रवीन्द्र संगीत विशेषज्ञ विद्वानों की समालोचना भी हिन्दी संगीत का रवीन्द्र-संगीत पर प्रभाव के विषय में उल्लेखनीय है।[2] सुश्री इन्दिरादेवी चौधुरानी लिखती हैं, "बाल्यकाल से उनके घर पर बहुत हिन्दुस्थानी संगीतवेत्ताओं का आवागमन रहता था। यदु भट्ट, मोलाबक्स आदि के तो केवल मैंने नाममात्र सुने हैं। विष्णुराम चक्रवर्ती हमारे समय तक संगीत के प्रेमी रहे हैं। इसके पश्चात् नाना देश के अनेक अच्छे बुरे उस्तादों से सुनने का सौभाग्य हममें से अनेकों को प्राप्त हुआ है। सुतराम किसी विशेष उस्ताद के पास रीति अनुसार शिक्षा न प्राप्त कर सब शुद्ध हिन्दू संगीत की मूल नीति के एक मोटे रूप से समझने का अवसर उनको अनेक बार मिला था। सुन्दर हिन्दी-गाना-बजाना सुनकर वे बहुत आनन्दित होते, यह तो सब लोग जानते हैं। आदि ब्रह्म समाज का ब्रह्म-संगीत सकल प्रकार से हिन्दी सुरों का रत्नाकर-विशेष है, यदि उसका मंथन किया जाये तो ऐसी कोई हिन्दी राग-रागिनी नहीं है जो नहीं प्राप्त हो। उसके द्वादश भाग के प्रथम

---

१. जनश्रुति आछे, ये आमि हिन्दुस्थानी गान जानिने, बूझिने। आमार आदि युगेर रचित गाने हिन्दुस्थानी ध्रुवपद्धतिर रागरागिनीर साक्षीदल अति विशुद्ध प्रमाण-सह दूरभावी शताब्दीर प्रत्न तात्विकदेर निदारुण वाद वितण्डार जन्ये अपेक्षा करे आछे। इच्छा करलेओ सेइ संगीत के आमि प्रत्याख्यान करते पारिने, सेइ संगीत थेकेइ आमि प्रेरणा लाभ करि एकथा जारा जानेना ताराइ हिन्दुस्थानी संगीत जाने ना। —रवीन्द्र संगीत, पृ० ४०, २८०।

२. देखिये—रवीन्द्र संगीत (शांतिदेव घोष) रवीन्द्र संगीतेर धारा (शुभगुह ठाकुर) रवीन्द्रनाथेर गान (सोमेन्द्रनाथ ठाकुर सांगीतिकी (श्री दिलीपकुमार राय)—संगीत परिक्रमा (नारायण चौधरी) आदि ग्रंथों एवं श्री इन्द्रिरादेवी चौधुरानी, श्री धुर्जटिप्रसाद मुखोपाध्याय आदि के लेखों में रवीन्द्र संगीत पर हिन्दी-संगीत के गम्भीर प्रभाव के विषय में विस्तृत विवेचन है।

तीन भागों को छोड़ कर शेष रवीन्द्र रचित हैं।[1] आगे फिर लिखती हैं—कवि के गीतों के साथ जिनका थोड़ा बहुत भी परिचय है वे जानते हैं कि गुरुदेव हिन्दी-गीतों की गठन प्रणाली को सदा मान कर चलते थे। अर्थात् पूर्णांग गान, अस्थायी, अन्तरा, संचारी आभोग आदि चार भागों का व्यक्तिक्रम नहीं करते थे।[2]

श्री धुर्जटिप्रसाद मुखोपाध्याय लिखते हैं, "मुमूर्षु हिन्दुस्थानी दरबारी संगीत को देशी सुर के रक्त से संजीवित करते हुए रवीन्द्रनाथ ने जीवन धर्म का ही अनुगमन किया था[3]।" आगे लिखते हैं—रवीन्द्रनाथ के गीतों के संबंध में इस कथा को स्मरण रखते हुए देखा जाय कि उनका हिन्दुस्थानी संगीत की धारा के विपक्ष में जाना तो दूर रहा। उसी धारा को देशी संगीत (बंगाली संगीत) के संस्पर्श से और व्यक्तिगत भावों ने नया-जीवन प्रदान किया।[4]

---

१. छेलेबेला थेके ताँदेर बाड़ीते भाल हिन्दुस्तानी संगीत वेत्तार यातायात छिल। यदु भट्ट, मोलाबक्स-एसब नाम आमादेर काने शोना मात्र हले। विष्णुराम चक्रवर्ती आमादेर काल पर्यन्त से संगीतेर जेर देने एनेछिलेन, एवम् तार परे नाना देशे नाना भालमन्द उस्ताद शोनबार सौभाग्य आमादेर अनेकरइ हयछे। सुतराम कौन विशेष उस्तादेर काछे रीतिमत शिक्षा ना पेले ओ सब शुद्ध हिन्दू संगीतेर मूल नीति सम्बन्धे एकटो मोटामुटि धारणा लाभ करवार सुयोग ताँर यथेष्ठ हयेछिल, एवम् भाल हिन्दी गान बाजना शुनते तिनि खुबइ भाल-वासतेन, ताँसकलेइ जानेन। आदि ब्रह्मसमाजेर ब्रह्मसंगीत सकल प्रकार हिन्दी सुरेर एकटि रत्नाकार विशेष, ता मन्थन करले हैन हिन्दी राग-ताल नेइ या पाओया जाय ना। एवम् तार द्वादश भागेर प्रथम तिन भाग वाद दिले, शेष-नय भागेर अधिकांश गानइ बोध हय रवीन्द्र रचित।

—रवीन्द्र जयन्ती, पृ० ४२।

२. कबिर गानेर संगे जाँर किछुमात्र परिचय आछे, तिनिह जानेन ये तिनि हिन्दी गानेर गठन प्रणाली सर्ववदा मैंने चलेन, अर्थात् पूर्णांग गाने, आस्थायी, अन्तरा, संचारी आभोग एह चार भागेर व्यक्तिक्रम करन ना। —वही, पृ० ४२।

३. मुमूर्षु हिन्दुस्थानी दरबारी संगीत के देशी सुरेर रक्ते संजीवित कराते रवीन्द्र नाथ जीवन-धर्मेर अनुगमन करलेन।

—रवीन्द्रनाथेर संगीत, जयन्ती उत्सर्ग, पृ० ४३१।

४. रवीन्द्रनाथेर गानेर सम्बन्धे एह कयटि मोटो कथा स्मरण राखले देखा जावे ये तिनि हिन्दुस्थानी संगीत-धारार विपक्षे जाओया दूरे थाकुक, सेइ धाराकेइ देशीं संगीतेर संस्पर्श ओ व्यक्तिगत भावेर सम्पर्क एने नूतन जीवन दियेछेन।

—वही, पृष्ठ ४३५।

श्री नारायण चौधरी का विचार है कि कवि के प्रारंभिक जीवन की रचनाओं में हम क्या देखते हैं कि वे ध्रुपदगानों के संस्कार से विशेष रूप से प्रभावित हैं और उनके गीतों में यह प्रभाव पूर्ण मात्रा में प्रतिफलित हुआ है। जोड़ासाँकोर की ठाकुर बाड़ी में ध्रुपद संगीत की विशेष चर्चा हुआ करती थी। जीवन-स्मृति[1] में देखते हैं कि कवि कि बाल्यावस्था में तत्कालीन विख्यात ध्रुपदगायक यदु भट्ट ठाकुर बाड़ी में प्रतिदिन आया जाया करते थे, अन्य संगीतज्ञों का वहां नियमित रूप से आना जाना रहता था। स्वाभाविक रूप में इसका प्रभाव बालक रवीन्द्रनाथ पर विशेष कार्यकर हुआ। उन्होंने इस तरह आंशिक भाव से ध्रुपदांग गानों की शिक्षा भी ग्रहण की। इसी का फल है कि रवीन्द्रनाथ प्रथम जीवन की सुर योजनाओं में स्पष्ट ग्राह्य ध्रुपद के संस्कार द्वारा उत्प्रेरित हैं। कवि के तत्कालीन विरचित गानों में हिन्दुस्थानी ध्रुपद गानों का ही अनूदित बँगला रूप है। केवल भाषा में ही पार्थक्य नहीं हो तो पंक्ति-विन्यास, ताल प्रकरण, हुबहु एक ही है। कवि का ब्रह्म संगीत इस तथ्य का प्रमाण है।[2]

श्री शान्तिदेव घोष का कथन है, "हम रवीन्द्र संगीत की राग-रागनियों को लेकर जब आलोचना करते हैं तब हमें मन में यह विचार रखना होगा कि उच्चांग हिन्दी गीतों ने जिस प्रकार स्थान प्राप्त किया था। उस तरह विचार करना उचित नहीं है। यदि हम इस तरह विचार करते हैं तो गुरुदेव के गीतों के सम्पर्क में अनेक भ्राँत धारणाओं के उद्भव होने की संभावना है। कारण यह है कि उन्नीसवीं

१. जीवन-स्मृति, पृ० २६; विष्णु चक्रवर्ती (१८१९-१९०१)

२. कविर प्रथम जीवनेर संगीत रचनाय आमरा की देखते पाई ? देखते पाइये, तिनि ध्रुपद गानेर संस्कार द्वारा विशेष भावे प्रभावित एवम् ताँर गाने ये, प्रभावपूर्ण मात्राय प्रतिफलित। जोड़ासाँकोर ठाकुरबाड़ीते ध्रुपद संगीततेर विशेष चर्चा हत। "जीवन-स्मृति" से देखते पाइ, कविर बाल्य वयसे तदानीतन विख्यात ध्रुपद गायक यदु भट्ट ठाकुर बाड़ीते नित्य याओया आसा करतेन आर ओ अनेक संगीतेर सेखाने नियमित आनागोनाछिल स्वभावतइ एंदेर प्रभाव बालक रवीन्द्रनाथेर उपर विशेष कार्य करी हयेछिल। तिनि एंदेर कारओ काछ थेके आंशिक भावे ध्रुपदांग गानेर शिक्षा ओ ग्रहण करिछिलेन। एर फल हयेछिल एइ ये, रवीन्द्रनाथ प्रथम जीवनेर सुर योजनाय स्पष्ट ग्राह्य भावे ध्रुपदेर संस्कार द्वारा चालित हन। कविर तदानीन्तन कालेर रचित गान येन हिन्दुस्थानी ध्रुपद गानेरइ तर्जभाकरा बाँगला रूप। शुधु भाषाय या पार्थक्य; नहले पंक्तिविन्यास, ताल प्रकरण हुबहु एक। कविर ब्रह्मसंगीत युलि ए कथार प्रमाण।

—संगीत परिक्रमा, पृ० ६६।

शताब्दी के उत्तरार्ध में बंगाल में हिंदी-गीत जिस नियम रीति से प्रचलित थे उनके साथ अब प्रचलित हिंदी गीतों के क्षेत्र में बहुत अन्तर आ गया है। गुरुदेव के प्रथम जीवन में बंगाल में प्रचलित हिंदी उच्चांग संगीत किस रूप में था और गुरुदेव के ऊपर किस तरह उसका प्रभाव हुआ था। यहां इस विषय की विस्तार भाव से आलोचना करना आवश्यक है।[1]

यद्यपि उन्होंने शिष्यों की तरह निष्ठा से किसी गुरु विशेष के पास हिंदी संगीत की शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। जब कभी नाना प्रकार के हिंदी गीतों का स्वर उनको आनन्द प्रदान करता था तब से उस स्वर को बँगला भाषा में सुरक्षित रखने की चेष्टा करते थे।[2] गुरुदेव ने बाल्यकाल से वृद्धावस्था तक अनेक हिंदी राग-रागनियों के अनुकरण पर बँगला साहित्य के भाण्डार को भरा था। उनमें से कुछ प्रसिद्ध राग-रागनी इस प्रकार है—टोड़ी, भैरवी, आशावरी, भैरव, कालंगड़ा सारंग, भूपाली, इमनकल्याण, छायानट, बिहांग, खम्बाज, वागेश्री, बहार, परज, देश, पिलू, काफी, कानड़ा, अड़ाना, पूरवी, मुलतान मल्लार, सहाना, विभाष, हमीर, केदारा, वृन्दावनी सारंग, जैं-जैवन्ती, सिंधु, श्री भीमपला आदि।

उक्त राग-रागनियों के अतिरिक्त उन्होंने अनेक संगीतकारों, गान-रचना की विभिन्न पद्धतियों के संतों और भक्तों के पदों और भजनों का अनुसरण, अनुकरण और अनुवाद भी किया है। इनको हिंदी भाँगा बाँगला गान भी कहा जाता है।[3] अतः सोदाहरण किंचित विवेचन अपेक्षित है।

रवीन्द्र संगीत में आड़ाना रागनी में एक प्रचलित गीत जो हिंदी गीत के आधार पर निर्मित हुआ है, इस प्रकार है :—

---

१. आमरा रवीन्द्र संगीतेर राग-रागिनी निये यखन आलोचना करव तखन आमादेर मने राखते हवे ये, उच्चांगेर हिंदी गाने ये मत प्राधान्य पेयेछे से मते एर विचार करा उचित नय। से भावे बिचार करते गेले गुरुदेवेर गान सम्पर्के अनेक भ्रान्त धारणार उद्भव हवे। कारण उनविंश शताब्दीर शेशार्धे बाँगला देशे हिंदि गाने ये नियम चलतिछिल तार संगे अधुना प्रचलित हिंदि गानेर अनेक क्षेत्रे पार्थक्य घटे छे। गुरुदेवेर प्रथम जीवने बाँगला देशे प्रचलित हिंदी उच्चांगेर संगीत की भावे गड़े उठेछिल और गुरुदेवेर उपरे की भावे ता प्रभाव विस्तार करेछिल, विषयटिर गुरुत्ववशतः विस्तार भावे एखाने आलोचना करा दरकार। —रवीन्द्र संगीत, पृ० ४६।

२. यदि ओ तिनि साकरेदेर मते निष्ठा निये गुरूर काछे गान शेखेन नि, तबु ओ नाना प्रकार हिंदिगानेर सुर यखनि ताँके आनन्द दियेछे तखनि तिनि से सुरके बाँगला भाषा धरे राखवार चेष्टा करेछेन। —रवीन्द्र संगीत, पृ० ४८।

३. हिंदी भाँगा बाँगला गान का अर्थ है, हिंदी-गीतों के अनुकरण पर विरचित बँगला गान—भाँगा का अर्थ है, १ टुटा हुआ, २. अनुकरण।

मन्दिरे मम के आसिले है।
सकल गगन अमृत मगन
दिशि दिशि गेल मिशि अमानिशि दूरे दूरे ॥
सकल दुयार आपनि खुलिल,
सकल प्रदीप आपनि ज्वलित,
सब वीणा बाजिल नव नव सुरे ॥ (गीत-वितान, पृ० १८२)

हिंदी गीत इस प्रकार है :—

सुन्दर लागोरी है पियरवा
चंचल चपल चखन लखन
दौरे दौरे मोरे मोरे
फिर मुसूकानी वाणी ॥ (रवीन्द्र संगीत, पृ० १२२)

छेलेबेला पुस्तक में रवीन्द्रनाथ ने काफी रागनी के ध्रुपद का अनुकरण करके भिन्न उपासना का बँगला गीत लिखा था—

शून्य हाते फिरि हे नाथ, पथे पथे, फिरि है द्वारे द्वारे
चिर भिखारि हृदि मम निशिदिन चाहै कारे ॥
चित्त ना शांति जाने, तृष्णा ना तृप्ति माने—
याहा पाइ ताइ हाराइ, भासि अश्रुधारे ॥
सकल यात्री चलिगेल, वहि गेल सब बेला।
आसे तिमिर यामिनी, भाँगिया गेल मेला—
कत पथ आछे बाकि, याव चलि भिक्षा राखि,
कोथा ज्वले गृह प्रदीप कौन सिंधु पारे ॥
(गीत-वितान, पृ० १६४-१६५)

हिंदी गीत—

रुम झुम बरखे आजु बदरवा पिया बिदेस मोरि,
थर थर छतिया न निशदिन मन भावे।
नैन न नींद आवे दामिनि दमक लागे
उनबिन कल न पड़त नाथ नाथ धारे।···
(रवीन्द्र संगीत, पृ० १२२)

किसी-किसी बँगला गीत का भाव प्रारंभ में हिंदी गीत के भाव से मेल खाता है, किंतु अन्तिम पंक्तियाँ भिन्न हो जाती हैं। जैसे—सिंधु रागिनी पर आधारित बँगला गीत इस प्रकार है :—

चरण ध्वनि शुनि तव नाथ, जीवन तीरे,
कत नीरव निर्जने, कत मधु समीरे ॥

गगने ग्रह तारा चय अनिमेषे चाहि रव ।
भावनास्रोत हृदये वय धीरे एकान्ते धीरे ।।
चाहिया रहे आँखि मम तृष्णातुर पाखिसम ।
श्रवण रयेछि मेलि चित्त गभीरे ।
कोन शुभ प्राते दाँड़ा वे हृदि-माझे,
भुलिव सब दुःख सुख डुबिया आनंद तीरे ।।

(गीत-वितान, पृ० १६४)

हिंदी गीत—

मुरली ध्वनि शुनि आइ माइ, यमुना तीरे
तब सों हाय तन मन यौवन बिकाई ।।

(रवीन्द्र संगीत, पृ० १२३)

भैरों राग में निम्न उपासना बँगला गीत हिंदी गीत के अनुकरण पर विरचित है :—

मन, जागो मंगल लोके
अमल अमृतमय नव आलोके
ज्योति विभासित चोखे ।
हेरे गगन भरि जागे सुन्दर
जागे तरंगे जीवन सागर,
निर्मल प्राते विश्वेर साथे
जागे, अभय अशोके ।।

(गीत-वितान, पृ० ११५)

हिंदी गीत—

जागो मोहन प्यारे,
साँवरि सुरत मोरे मन भावे
सुन्दर लाल हमारे······।

(रवीन्द्र संगीत, पृ० १२३)

हिंदी गीतों के भावों के साथ बँगला गानों का मेल नहीं है, ऐसी बात नहीं है, न्यूनाधिक रूप में मेल अवश्य है । हिंदी गीतों की भाषा के साथ भी मेल है । गुरुदेव ने हिंदी गीतों की भाषा का भी अनुकरण किया है । प्रेरणा तो प्राप्त की ही है । निम्न बँगला गान बिहाग रागिनी के हिंदी गीत के आधार पर विरचित है—जिसमें भाव के साथ कहीं-कहीं भाषा का भी अनुकरण किया गया है ।

तिमिर विभावरी काटे कैमने
जीर्ण भवने, शून्य जीवने—

हृदय शूकाइल पेम-विहने ।
गहन आंधार करे पुलके पूर्ण हवे
ओहे आनन्दमय, तोमार वीणारवे---
पशिवे पराने तव सुगंध वसंत पवनें ।।

(गीत-वितान, पृ० १७२)

तथा शापमोचन का निम्न गीत भी हिन्दी गीत के अनुकरण पर निरमित हुआ है—

हे विरही, हाय चंचल हिया तव
नीरवे जागो एकाकी शून्य मंदिरे---
कौन से निरुदेश लागि आछ चाहिया ।
स्वप्न रुपिणी आलोक सुन्दरी
अलक्ष्य अलकापरी—निवासनी
ताहार मूरति रचिले वेदनाय हृदय माझारे ।।

(शापमोचन संयोजन–रवीन्द्र रचनावली, द्वाविंश खण्ड, पृ० १०६)

हिन्दी गीत—

कैसे काटूंगी रयना सो पिया बिना
एकेलि जागि सजनि आजु मोरा
नयन में निंद न आवै छोड़ि सैंया ।।

—रवीन्द्र संगीत, पृ० १२३

हिन्दी वर्षा गीत के आधार पर बँगला गीत की रचना हुई थी—इस प्रकार कुछ गीत वर्षा मंगल में भी प्राप्त होते हैं। यहाँ एक बँगला गीत दिया जा रहा है :—

प्रचण्ड गर्जने आसिल एकि दुर्दिन—
दारुण घनघटा अविरल अशनि तर्जन ।।
घन घन दामिनी-भुजंग-क्षत यामिनी,
अम्बर करिछे अन्ध नयने अश्रु-वरिषन ।।
छाड़ो र शंका, जागो भीरु अलस
आनंदे जगाओ अन्तेरे शकति ।
अकुण्ठ आंखि मेलि हैरो प्रशांत-विराजित
महामय-महासने अपरूप मृत्युंजयरूपे भयहरण ।।

—गीत-वितान, पृ० ६६,३०१ ।

हिन्दी गीत—

'प्रचण्ड गर्जन साजल बरखा ऋतु,
काम अगम अता विरहिणो जीयन तर्जन।
भट अस दामिनी मतंग मश यामिनी।
अद्रुम चाय कक्कश बुन्ध वाणि बरिखन।'

—रवीन्द्र संगीत, पृ० १२४।

कवि का सर्वप्रिय बँगला गीत भी हिन्दी गीत के अनुकरण पर विरचित हुआ था। बँगला गीत इस प्रकार है :—

वीणा बाजाओ है मम अन्तरे।
सजने विजने बन्धु, सुखे दु:खे विपदे—
आनन्दित तान शुनाओ हे मम अन्तरे॥

—गीत वितान पृ० १६८।

हिन्दी गीत—

वीण बजाइ रे मन ले गयो।
मधुर मधुर ध्वनि अधर न धररे
रस भर तान शुनाइ रे मन ले गयो।'

—रवीन्द्र संगीत, पृ० १२४।

हिन्दी के टैलना गान के सुर और छंदों से अनुप्राणित निम्न बँगला गीत है :—

सुखहीन निशिदिन पराधीन हये भ्रमिछें दीन प्राणे।
सतत हाय भावना शत शत, नियत भीत पीड़ित,
शिर नत कत अपमाने॥
जान ना रे अध-उर्धे र बाहिर अंतरे
घेरि तोरे नित्य राजे सेइ अभय आश्रय।
तोलो आनत शिर, त्यजो रे भय भार,
सतत सरल-चिते चाहौ तौरि प्रेम मुख-पाने॥

—गीत वितान, पृ० १७६।

हिन्दी के नटमल्ला गीत की सुर-लिपि देना अपेक्षित है।

दारा दीम् दारा दीम् दारादीम् दारा तादारे दानि-दानि
ताना ना देर देर तोम् ता नाना ताना
तीम् देर तदारे दानि तादानि ताता दानि दानि दानि दानि॥

—रवीन्द्र संगीत, पृ० १२५।

मीराँबाई के एक भजन को रूपान्तरित करके यह बँगला गीत लिखा था :—

'कखन विले पराये स्वप्ने वरणमाला व्यथार माला——'

हिन्दी गीत की प्रथम पंक्ति कुछ इस प्रकार है :—

"किन्हे देखा कन्हैया, प्यारा कि बंशी वाला"

किन्तु मुद्रित प्रतियों में मीरांबाई का यह गीत इस प्रकार प्राप्त होता है :—

किसने देखा कनैया प्यारा मुरली वाला
जमुना के तीर धेनु चरावै कांधे कामलिया काला ॥
मोर मुकुट पीताम्बर शोभे कुण्डल झलकत लाला ॥
मीरां के प्रभु गिरधर नागर । भक्तन के प्रति पाला ॥

—मीरां सुधा सिन्धु, पृ० १८६ ।

बाल्मीकि प्रतिमा में भूपकल्याण का बँगला गीत हिन्दी के चतुरंग गीत के आधार पर बना है :—

एइ वेला सबे मिले चल हो, चलो हो चलो हो
छूटे आय शिकारे के रे याधि नाय
एमन रजनी बहे पाय ये ।
धनुर्बाण बल्लभ लये हाते, आप आप आप रे ।
राजा शिंग घन घन - शब्दे कांपिवे वन—
आकाश फेटे यावे, चमकि वे पशु पाखि सने ।
छूटे जावे कानने कानने, चार दिके घिरें ।
याव पिछे पिछे, हो हो हो हो—

—बाल्मीकि प्रतिभा, रवीन्द्र रचनावली, द्वितीय खण्ड, पृ० २१७ ।

गुरुदेव को जो हिन्दी गीत सुन्दर प्रतीत होता था उसको वे बँगला भाषा की निधि बनाने का प्रयत्न करते थे । अनेक टप्पा गीतों का भी उन्होंने अनुकरण किया । अचलायतन में उनका एक टप्पा गीत जो शोरीमियाँ के टप्पों के अनुकरण पर निर्मित हुआ था, वह यहाँ दिया जा रहा है :—

या हवार ता हवे ।
ये आमाके कांदाय से अमनि छेड़े से ।
पथ हते ये भूलिये आने,
पथ ये कोथाय सेइ ता जाने,
घर ये छाड़ाय हात से बाड़ाय
सेइ तो घरे लवै ।

—रवीन्द्र रचनावली, एकादश खण्ड,
अचलायतन, पृ० ३३९ ।

गुरुदेव अन्य व्यक्तियों से भी हिन्दी गीत सुनकर बँगला में रूपान्तरित करने का प्रयत्न करते थे। निम्न बँगला गीत का आधार हिन्दी गीत नाद-विद्या परब्रह्म रस जानरे है। बँगला गीत इस प्रकार है :—

विश्ववीणा रवे विश्वजन मोहिछे
स्थले जले नभतले वने उपवने
नदी नदे गिरि गुहा पारावरे
नित्य जागे सरस संगीत मधुरिमा ॥
नित्य नित्यरस-भंगिमा—
नव वसन्ते, नव आनन्दे, उत्सव नव।
अति मञ्जुल शुनि मंजुल गुंजन कुंजे।
पिक कूजन पुष्पवने विजने।
मृदु वायु हिलोल—विलोल विमोल
विशाल सरोवर माझे,
कल गीत सुललित बाजे—।

—बाँगालीर गान, पृ० ६७०।

गुरु नानक के हिन्दी गीत के अनुकरण पर गुरुदेव ने इस ब्रह्म संगीत की रचना की थी। यह गीत इस प्रकार है :—

गगनेर थाले रवि चन्द्र दीपक ज्वले,
तारका मण्डल चमके मोति रे।
धूप मलयानिल, पवन चामर करे,
सकल बनराजि फुटन्त ज्योति रे।
केमन आराति है भव खण्डन तव आरति,
अनाहत शबद बाजन्त भेरी रे ॥२४६॥

— ब्रह्म संगीत, पृ० १७७,१७८।

हिन्दी गीत भी द्रष्टव्य है :—

गगन में थालु रवि-चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती।
धूपु मलआनलो पवणु चबरो करै सगल बनराइ फूलत जोती ॥
कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती अनहता सबद बाजंत भेरी।
सहस तब नैन नन नैन हहि तोहि कउ सहस मूरति ननो एकुतोही ॥
सहस पद विमल नन एक पद गंधबिनु सहस तब गंध इव चलतमोही।
सम माही जोति जोति है सोइ तिसदे चाननि सभ माहि चानणि होइ ॥
गुर साखी जोति परगटु होइ जौसे तिसु भावे सु आरती होइ।

हरि चरण कँवल मकरंद लोभित माने अनदिनो मोहि आही पियासा ।।
कृपा जलु देहि नानक सारिंग कउ होइ जाते तेरे नाइ वासा ?

—संत-सुधा-सार, पृ० २३६ ।

गुरुदेव ने नाना स्रोतों से हिन्दी गीतों को एकत्रित कर, उनका अनुकरण, अवलम्बन एवं अनुवाद करके बँगला गीतिकाव्य के भण्डार को भरा है । अतः हिन्दी संगीत का गम्भीर प्रभाव रवीन्द्र गीतिकाव्य पर माना जा सकता है ।

२. भाषा रूपगत (ब्रजबुलि का) प्रभाव

गुरुदेव जिस प्रकार हिन्दी-संगीत के प्रेमी रहे हैं, उसी तरह बाल्यावस्था में वैष्णव-पदावलियों के भी भक्त रहे हैं । उनकी भानुसिंह ठाकुरेर पदावली[1] इसका प्रमाण है । उन्होंने वैष्णव पदावलियों के भाव-माधुर्य और भाषा सौंदर्य की ओर आकृष्ट होकर इस पदावली का सृजन किया था ।

गुरुदेव लिखते हैं, "उनके (विद्यापति) पद और गीत मेरे लिए बचपन के आकर्षण थे, जिनसे यौवनावस्था में मेरी कवि कल्पना सजीव हुई । मैंने उनको संगीत पर ढाला[2] ।"

आगे फिर लिखते हैं, "विद्यापति की दुर्बोध विकृत मैथिली पदावली अस्पष्ट थी । इसलिए मेरा आकर्षण इसके प्रति हुआ । मैंने टीका के ऊपर निर्भर न रहकर मूल को समझने का प्रयत्न किया[3] ।" पहले लिख चुका हूँ श्रीयुत अक्षयचन्द्र सरकार और सारदाचरण मित्र महाशय द्वारा संकलित प्राचीन काव्य संग्रह मैंने विशेष आग्रह के साथ पढ़ा था । उसकी मैथिली मिश्रित भाषा मेरे लिये दुर्बोध थी । इसलिये अध्यवसाय से मैंने समझने का प्रयत्न किया ।"[4] बाबू नगेन्द्रनाथ गुप्त का

१. भानु+सिंह+ठाकुर=भानु=रवि, सिंह=इन्द्र, ठाकुर=ठाकुर, भानुसिंह ठाकुर=रवीन्द्रनाथ ठाकुर ।

२. His Vidyapati poems and songs were one of the earliest delights that stirred my youthful imagination and even had the privilege of setting one of them to music.

H. M. L. Vol. I. page 172-173.

३. विद्यापतिर दुर्बोध विकृत मैथिली पदगुलि अस्पष्ट बलियाइ बेशकरिया आमार मनोयोग टानित आमि टीकार उपर निर्भर ना करिया निजे बूझिवार चेष्टा करिताम ।

—जीवन-स्मृति, पृ० ७८

४. पूर्वइ लिखियाछि श्रीयुत अक्षयचन्द्र ओ सारदाचरण मित्र महाशय कर्तृक संकलित प्राचीन काव्य संग्रह आमि विशेष आग्रहेर सहित पड़िताम । ताहार मैथिली मिश्रित भाषा आमार पक्षे दुर्बोध छिल किन्तु सेइ जन्येइ एत अध्यवसायेर संगे आमि ताहार मध्ये प्रवेश चेष्टा करियाछिलाम ।

—जीवन स्मृति, पृ० ६४ ।

कथन है कि मैथिल कवियों का अध्ययन कर उन्होंने मैथिली भाषा पर पूर्ण अधिकार कर लिया। बचपन में छद्म नाम भानुसिंह रखकर व्रजबुलि में अनेक कवितायें कीं। रवीन्द्रनाथ प्रथम व्यक्ति हैं जो मैथिल कवियों विद्यापति और गोविन्ददास[1] का ऋण स्वीकार करते हैं। उनके प्रकाश ने ही रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा को प्रकाशित किया एवं उनके चारों ओर एक नये प्रशंसनीय जगत का निर्माण किया।[2]

श्री प्रमथनाथ विशी का मत है, "किशोर रवीन्द्रनाथ का चण्डीदास के परिणत* शिल्प की ओर आकृष्ट न होकर विद्यापति की अलंकारमयी पदावली की ओर झुकना स्वाभाविक ही था। उन्होंने विद्यापति की शिल्प रीति और भाषा को ग्रहण किया[3]।" श्री उपेन्द्रनाथ भट्टाचार्य का विचार है, "विद्यापति की विकृत मैथिली पदावली और अन्यान्य पदकर्त्ताओं द्वारा व्यवहृत व्रजबुलि भाषा की ओर रवीन्द्रनाथ गम्भीर भाव से आकृष्ट हुए।[4]

वैष्णव-पदकर्त्ताओं ने राधाकृष्ण के प्रणय को एक धार्मिक-कृत्य की दृष्टि

१. गोविन्ददास के विषय में बहुत मतभेद है। देखिये प्रस्तुत प्रबन्ध पृ० १०८ से ११० तक।

२. By studying the poems of the Maithili poets he acquired a wonderful command over the Maithili language. He was in his teens when under pseudonym of Bhanu Singh (Bhanu being a synonym for Ravi the son) he wrote a number of lyrics in the Maithili language.

Ravindra Nath would be the first to acknowledge the debt that he owes to the great Maithili poets—Vidyapati and Govind Das······But it is their light that has illuminated the genius of Ravindra Nath Tagore and brought an admiring world around him.

—H. M. L. vol. I., P. 172.

* परिणत= परिपक्व बाँ० भा० अभि०, पृ० ६१०।

३. किशोर रवीन्द्रनाथ के चण्डीदासेर परिणत शिल्प आकर्षण ना करिया ये विद्यापतिर अलंकारमयी पदावली आकर्षण करिवे—इहा खूबइ स्वाभाविक तिनि विद्यापतिर शिल्प रीति, विद्यापतिर भाषा अवधि ग्रहण करिया छेन।

—रवीन्द्र काव्य प्रवाह, पृ० ४३।

४. विद्यापतिर विकृत मैथिली पदगुलि ओ अन्यान्य पदकर्त्तादेर व्यवहृत ब्रजबुलि भाषा रवीन्द्रनाथेर गम्भीर मनोयोग आकर्षण करियाछिल।

—रवीन्द्र साहित्य परिक्रमा, पृ० ५२।

से देखा था। किन्तु गुरुदेव ने इस प्रणय व्यापार को अपने २० पदों[1] में बिना किसी धार्मिक दृष्टि की छाप के अंकित किया है।

भानुसिंह ठाकुरेर पदावली की भाषा में कुछ हिन्दी रूपों का भी पुट है। उदाहरण एवं विवेचन से यह प्रभाव स्पष्ट हो सकेगा।

गहन कुसुम कुंजमाझे
मृदुल मधुर बंशी बाजे।
विसरि त्रास लोक लाजे
सजनि, आओ आओलो॥
अँगे चारु नीलवास,
हृदय प्रणय कुसमराश।
हरिण-नेत्र विमल हास,
कुंज वन में आओलो।
ढाले (रे) कुसम सुरभि भार
ढाले (रे) विहग सुख सार,
ढाले (रे) इन्दु अमृतधार।
कुंज बन मे आओलो रजत विमल रजत भाति रे।
मन्द मन्द भृंग गुंजे
अयुत कुसम कुंजे कुंजे
फुटल सजनि पुंजे पुंजे बकुल यूथि जाति रे।
देखि सजनि श्यामराय
नयने प्रेम उथल जाय
मधुर वदन अमृत सदन
चन्द्रमाय निन्दिछे
आओ आओ सजान वृन्द
हेरव सखि श्री गोविन्द,
श्याम को पदारविंद
भानुसिंह वन्दिछे।

—रवीन्द्र रचनावली, द्वितीय खंड, पृ० १३।

१. देखिये—पदों के शीर्षक इस प्रकार हैं:—बसंत-वासना, शून्य-कानन, विफल-रजनी, विरह-वेदना, मिलन-सज्जा, मिलन-वंशीध्वनि, अभिसार, प्रतीक्षा, व्याकुलता, रसावेश, निद्रा, अनुतप्ता, विदा, दूती, समस्या, मरण, कौतूहल आदि।

यह पदावली बाल-कवि चाटरटन[1] की तरह उन्होंने छद्म नाम रख कर लिखी थी। गुरुदेव स्वयं लिखते हैं, "एक दिन दोपहर को खूब मेघ घिरे हुए थे। इस मेघाच्छन्न समय में छायाघन के अवकाश आनन्द में घर के एक कमरे में खाट पर लेट कर एक स्लेट लेकर लिखने लगे 'गहन कुसुम कुंज माझे!' और बहुत प्रसन्न हुआ[2]।"

सूक्ष्म-दृष्टि से देखने पर 'भानुसिंह ठाकुरेर पदावली' में कुछ ऐसे हिन्दी रूपों का प्रयोग भी प्राप्त होता है। जो अन्य वैष्णव पदावलियों में विरल दृष्टिगोचर होता है। ऐसा होना स्वाभाविक है जैसा कि गुरुदेव स्वयं स्वीकार करते हैं, 'भानुसिंह कोई भी हो, यदि उनकी रचना मुझे प्राप्त हो तब भी मैं ठगा नहीं जाऊँगा। इस बात को मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ। इसकी भाषा को प्राचीन पदकर्त्ताओं की भाषा कहकर चला देना असम्भव नहीं था। यह भाषा उनकी मातृभाषा नहीं थी यह एक कृत्रिम भाषा थी, भिन्न-भिन्न कवियों द्वारा कुछ-न-कुछ भिन्नता इसमें हुई[3]।'

अतएव कुछ परिवर्तन भानुसिंह ठाकुरेर पदावली भाषा में भी गुरुदेव के द्वारा हुए। कुछ नये शब्दों और वाक्यों का प्रयोग इस पदावली में दिखाई पड़ता है। इस पदावली में अपना, चित्त में, हमको, मुझको, पंथ में, अधर में, पथ में, वन में, वृन्दावन में आदि प्रयोग हिन्दी के हैं तथाकथित वैष्णव पदकर्त्ताओं की ब्रजबुलि भाषा में दिखाई नहीं पड़ते। ब्रजबुलि में अधिकरण के लिए ए, हि, हि और कहीं-कहीं मध्य शब्द का तद्भव रूप—माह, माहे, माझे आदि प्रयोग में आते हैं।[4] किन्तु

१. जीवन-स्मृति, पृ० ६४; बाँ सा० इ०, तृतीय खंड, पृ० ५४।

२. एक दिन मध्यान्हे खूब मेघ करियाछे। सेइ मेघला दिनेर छायाघन अवकाशेर आनन्दे बाड़िर भितरे एक घरे खाटेर उपर उपुड़ हइया पड़िया एकटो स्लेट लइया लिखिलाम 'गहन कुसुम कुंज माझे!' लिखिया भारि खुशि हइलाम।
—जीवन-स्मृति, पृ० ६४।

३. भानुसिंह गिनिइ हउन, तांहार लेखा यदि वर्तमान आमार हाते पड़ित तवे आमि निश्चयइ ठकिताम ना, ए कथा आमि और करिया वलिते पारि। उहार भाषा प्राचीन पदकर्त्तार बलिया चालाइया देओया असंभव छिल ना। कारण, ए भाषा ताँहादेर मातृभाषा नहे, इहा एकटो कृत्रिम भाषा, भिन्न भिन्न कविर हाते इहार किछु ना किछु भिन्नता घटियाछे।
—जीवन-स्मृति, पृ० ६५।

४. 'सप्तमी वा अधिकरण कारके' ए, हि, जो, हि विभक्तिर प्रयोग देखा याय। कखन ओ वा कौन विभक्ति-चिह्न व्यवहृत हय ना। अनेक स्थले 'मध्ये' शब्देर अपभ्रंश 'माहा, माह, वा माझे' शब्देर प्रयोग द्वारा सप्तमीर अर्थ प्रकाश करा हय। —प० क० त०, पं० खण्ड, पृ० २४०।

सप्तमी विभक्ति में हिन्दी या मैथिली में ही 'में' का प्रयोग मिलता है। कहीं-कहीं वाक्य-विन्यास में भी अन्तर है। कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं[1]।

भानुसिंह ठाकुरेर पदावली में इस प्रकार कुछ हिन्दी या मैथिली के समरूप कुछ विशेष प्रयोग प्राप्त होते है।

शेष शब्द और वाक्य परम्परागत ब्रजबुलि भाषा के अनुसार हैं[2]। गुरुदेव ने अपने शब्द-तत्व नामक प्रबन्ध में हिन्दी के विशेष कवियों के कुछ उद्धरणों और किंचित हिन्दी की विभाषाओं की तुलनात्मक व्याकरण का भी अकन किया है[3]। गुरुदेव की अन्यान्य रचनाओं में भी कुछ हिन्दी शब्द प्राप्त हो सकते हैं[4]।

३. हिन्दी संत साहित्य का प्रभाव

विद्यापति की परम्परा के पश्चात् गुरुदेव हिन्दी संत कवियों के साहित्य के सम्पर्क में आए। इस प्रसंग में सन्तों के विषय में लिखना कुछ आवश्यक हो सकता है। संत मत (निर्गुण सम्प्रदाय) का प्रभाव समस्त भारतीय समाज एवं साहित्य पर पड़ा है। कबीर, दादू, नानक, सुन्दरदास एवं रज्जब आदि सन्त सारे देश की विभूतियाँ हैं। भारतीय समाज गठन, साहित्य सृजन एवं देश के नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास में इन सन्तों की देन अनुपम है। भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल आदर्श इन सन्तों ने प्रकट किया है। संत मत भारतीय समस्त विचार-धाराओं का साराँश है। वैदिक एकेश्वरवाद, जैन धर्म के अहिंसावाद, बौद्ध-धर्म के उदारतावाद, पौराणिक वैष्णव धर्म की विशाल हृदयता, सिद्धों का खण्डन-मण्डन,

१. **'मोतिम हारे वेश बनादे सींखी लगादे भाले'**

(रवीन्द्र रचनावली, द्वि० खड, पृ० १८)

'अब सो मथुरापूरक पंथमे ईह जब रोयत राधा'

(वही, पृ० २२)

'धन को श्याम सो मथुरा पर को राज्य मानको होय'

(वही, पृ० २३)

'पद तले अपना खोय, को तुंहु बोलबि मोय'

(वही, पृ० २७)

२. परम्परागत ब्रजबुलि में प्रचलित कुछ हिन्दी शब्द इस प्रकार हैं :
सर्वनाम—सो, सब, मझू, तोय, हम, तुझ, हमारा आदि।
विशेषण—अब, कंहि, कभू कहाँ, तब आदि।
क्रिया—कहत, उठइ, हेरिया, डारिया, राखत, बरखत, निकसत आदि।

३. रवीन्द्र रचनावली, द्वादश खण्ड, पृष्ठ ३५८, ३६७।

४. फेरि वाला 'गोरा उपन्यास'।

अक्खड़पन, फक्कड़पन, नाथों की नाद-बिन्दु एवं योग-साधना और उलटवासियों का अद्भुत समन्वय सन्त-दर्शन एवं साहित्य में प्राप्त होता है।

हिन्दी-साहित्य के प्रसार, प्रचार एवं विकास में इनका योगदान बहुत है। अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य पर भी सन्तों का प्रभाव पडा है। भारत की महान् विभूतियाँ इनसे प्रेरणा लेती रही हैं।

भारत के महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी मुक्तकण्ठ से इन सन्तों की साधना एवं काव्यानुभूतियों की भूरी-भूरी प्रशंसा की है। अपने जीवन-दर्शन एवं साहित्य में भी उनकी विचारधारा को आत्मसात किया है। वे भी उनके देशव्यापी प्रभाव से अभिभूत हैं। बंगाल के बाउल सम्प्रदाय की भी कुछ न कुछ विचार-परंपरा सन्तों से प्रभावित है। वैसे तो समस्त सन्तों की वाणी में आश्चर्यपूर्ण समरसता, माधुर्य, एकता और एक भावमयता है। किन्तु कबीर सन्त-मत के मुकुट-विहीन सम्राट हैं, उनका स्वर सबसे दृढ़, गम्भीर और ओजस्वी है। संत मत का प्रभाव उत्तरी भारत की संस्कृति पर ही विशेष है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का चिन्तन गम्भीर और उनकी कल्पना देश एवं कालातीत है। इसके व्यक्तित्व में पुरातन, मध्ययुगीन और नूतन पूर्व-पश्चिम की विचारधाराओं का समन्वय है। वे दार्शनिक एवं अद्भुत प्रतिभाशाली कवि हैं। अतः यह स्वतः सिद्ध है कि प्रत्येक कवि अपने पूर्वजों का थोड़ा-बहुत ऋणी होता ही है। गुरुदेव भी इस सत्य के अपवाद नहीं हैं। उनके काव्य में संस्कृत कवियों का प्रभाव है। फारसी और रोमान्टिक अंग्रेजी कवियों की उन पर छाप है। यद्यपि वे विश्वकवि हैं तथापि उनकी मौलिकता निर्विवाद है। फिर भी भारतीय और पश्चिम के दर्शनों और साहित्यकारों का प्रभाव उन पर स्वतः ही पड़ा है, जिस प्रकार पुष्प में सुगंध और सौन्दर्य का संयोग स्वाभाविक है। गुरुदेव मैथिल-कोकिल, विद्यापति-ठाकुर, बंगाली-वैष्णव पदकर्ताओं एवं बंगाल के बाउल सम्प्रदाय के साहित्य-परम्परा के परवर्ती कवि हैं। अतः गुरुदेव पर इनका प्रभाव परम्परागत है।

गुरुदेव निराकार निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं। उनको यह परम्परा उपनिषदों, ब्रह्मसमाज और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर से पैतृक-सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुई है। किन्तु उनके रहस्यवादी-साहित्य (Mystic-Literature) पर हिन्दी सन्तों का रंग भी है। जैसा कि डा० शशिभूषणदास गुप्त का मत है, "औपनिषिदिक-चित्रपट पर वैष्णव-प्रणय कवियों ने, बंगाल के मरमिया बाउलों ने और उपरी प्रदेश, उत्तर भारत के रहस्यवादी संतों, कवियों ने उदाहरणतया, कबीर, दादू, रज्जब और दूसरों ने विविध छायाओं के रंग और रेखायें प्रदान की हैं[१]।

१. On the Upanisadic canvas the Vaishnava love poets and the mystic Bauls of Bengal and other mystic poets of upper and

प्रोफेसर वी० लेसनी का मत है कि कबीर के धार्मिक-काव्य का रवीन्द्रनाथ पर प्रभाव के परिमाण-स्वरूप उनके सौ पदों का अनुवाद है; उन पदों का संचय और सम्पादन उन्होंने आँग्ल भाषा-भाषी जनता के लिए लिए १६२१ ई० में किया था।[1]

अनुवाद से ही एक कवि का प्रभाव दूसरे कवि पर पड़ जाता है, ऐसा कहना वास्तव में सत्य से दूर है। यह बहुत गम्भीर और विचारणीय विषय है। एक कवि पर दूसरे कवि के प्रभाव के अनेक कारण हो सकते हैं; जैसा कि पहले कहा जा चुका है। पूर्ववर्ती परम्परा, साहित्य-सौदर्य के प्रति आकर्षण, सांस्कृतिक अथवा धार्मिक गौरव एव उत्थान-पतन, एक जाति का दूसरी जाति पर राजनीतिक प्रभुत्व आदि कारण हो सकते हैं। किन्तु गुरुदेव पर हिन्दी सन्त-साहित्य का प्रभाव आदान-प्रदान की भावना से आया प्रतीत होता है। गुरुदेव स्वयं लिखते हैं कि मैं हिन्दीभाषी लोगों के निकट सम्पर्क में आने के लिए उत्सुक हूँ। यहाँ हम लोग संस्कृति प्रचार के लिए जितना भी कुछ कर सकते है, कर रहे हैं। हम चाहते हैं कि हिन्दी भाषी लोग आएँ, हमारे अनुभव में हिस्सा बटायें और अपने अनुभव से हमें लाभान्वित करें।[2]

यह सत्य है कि प्रत्येक परवर्ती कवि पूर्ववर्ती कवियों से न्यूनाधिक रूप में प्रभावित हो ही जाते हैं। विश्व के बड़े से बड़े कवि इस नियम के अपवाद नही हैं। गुरुदेव की गगनोपम उन्मुक्त प्रतिभा में भी रंग-बिरंगे अनेक महाकवियों के इंद्रधनुषों की छटाएँ और छवियाँ हैं।

रवीन्द्रनाथ ने हिन्दी के निर्गुणमार्गी सन्तों और सगुणोपासक वैष्णव-भक्तों को बहुत श्रद्धा की दृष्टि से देखा है। वे अनेक स्थलों पर सन्तों और भक्तों की वन्दना करते है। वे लिखते हैं। 'मेरे अपरिचित हिन्दी-सत्य के महल में काव्य के विशुद्ध रसरूपादि जब मैंने खोजे, इस समय एक दिन क्षितिमोहन महाशय के मुख से बघेलखण्ड के कवि ज्ञानदास के एक दो हिन्दी पद, 'आपके गौरव से ही गौरवान्वित

northern India viz., Kabir, Dadu, Rajjab and others, have supplied lines and colours of different shades, obscure Religious cults. —Introduction pp. 101.

१. The influence of Kabir's religious poetryon Tagore is witnessed by the fact that in 1921 he himself edited a steection of these poems for the English-speaking public—prof. V. Lesny, Rabindranath Tagore's works and his personality.

२. I am anxious to come in touch with Hindi-speaking people, we are doing here what little we can for the spread prof. culture, we want Hindi-speaking people to come here, share our experience and give us the benefit of their experience.
—Vishwal Bharat P, 16 Ravindra Vishashank 1942.

हूँ, आपके रूप से ही रूपवती हूँ" मेरे कानों में पड़े, मैं बोल उठा यह तो पा गया सार वस्तु, इससे ऊपर और कुछ सार नहीं। ज्ञानदास की कविता जब मैंने सुनी, तब यह विचार बार-बार मन में आया, यह तो आधुनिकतम है, आधुनिक बोलते समय मैं इसी समय की वस्तु नहीं कहता हूँ। यह सब कविता चिरकाल के लिए आधुनिक है। इसको किसी काल विशेष की नहीं कह सकते। यह सब कविता चिरकाल आधुनिक है।[1]

विशेषकर, कबीर के प्रति उनकी निष्ठा और आकर्षण विशेष रहा है। सन्तों की विचारधारा कई अंशों में गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय (चैतन्य वैष्णवधर्म) के साथ मिलती जुलती है। बंगाल का बाउल सम्प्रदाय भी कुछ न कुछ हिन्दी सन्तों, सहजियों तथा सूफियों के रंग में रंगा है। रवीन्द्रनाथ इसी परम्परा के परवर्ती कवि हैं।

आचार्य क्षितिमोहन सेन समस्त देश में साधु-सन्तों के अखाड़ों में घूमे हैं। शांतिनिकेतन में उनका आगमन सन्तों के ज्ञान-भण्डार और काव्यामृत के साथ हुआ। उन्होंने ही सन्त ज्ञान वाणी भण्डार का उद्घाटन रवीन्द्रनाथ के सामने किया। स्वयं गुरुदेव ने श्री क्षितिमोहन सेन को सन्तों की वाणी का संकलन, प्रकाशन और प्रचार करने के लिये अनुरोध किया था[2]। शांतिनिकेतन में हिन्दी भवन के स्थापित होने के पहले ही क्षितिमोहन हिन्दी के कल्पतरु बन गये। "हिंदी को राष्ट्रभाषा का पद राजनीतिक-स्वतन्त्रता के कारण मिला है, किन्तु उसका सांस्कृतिक-मिशन इससे गुरूतर है, रवीन्द्रनाथ ने इस सत्य का साक्षात्कार किया था[3]।"

१. आमार अपरिचित हिन्दी-सत्येर महले काव्येर विशुद्ध रसरूपादि यखन खूँजछिलुम, एमन समय एक दिन क्षितिमोहन सेन मशायेर मूख थेके बघेलखण्डेर कवि ज्ञानदासेर दुइ एकटि हिन्दी पद (तोमार गरवे गरविनि आमि रूपसि तोमार रूपे) आमार काने एल। आमि वले उठलूम, एइत पाओ या गैल। खाँटि जिनिस, एक बारे चरम जिनिष एर उपरे आर तान चलेना। ज्ञानदासेर कविता यखन शुनलूम तखन एइ कथाटि वार वार मने एल ए ये आधुनिकतम। आधुनिक बलते आमि एइ कालेरई विशेप छाँदेर जिनिष वलुचि ना। ए सब कविता चिरकालइ आधुनिक। —दादू भूमिका।

२. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का 'कबीर' नामक समालोचनात्मक ग्रंथ भी गुरुदेव की प्रेरणा से लिखा गया था। देखिये—'कबीर' भूमिका।

३. राजनैतिक कारणहेतु आज भारते हिन्दीके राष्ट्रभाषा रूपे आवश्यिक करिवार जन्य चेष्टा चलितेछे, किन्तु एह सब आंदोलनेर बहुवत्सर पूर्व सांस्कृतिक दिक हइते हिन्दी चर्चार ये सविशेष प्रयोजन आछे, एकथा रवीन्द्रनाथ स्वीकार करियाछिलेन। —रवीन्द्र-जीवनी, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ १२१।

श्री प्रभातकुमार मुखोपाध्याय का कथन है, "इनको छोड़कर कवि के धर्म सम्बन्ध में जो ज्ञान अब तक उपनिषदों तक ही सीमित था उसका विस्तार लाभ मध्ययुगीय सन्तों के जीवन में हुआ। इन सन्तों की वाणी में कवि ने अपनी अन्तर की वाणी का प्रतिबिम्ब प्राप्त किया। उन्होंने समझा कि वे भारत की धर्मसाधना की धारा को वहन करते आ रहे हैं। वे नि.संग नहीं हैं[1]।"

श्री क्षितिमोहन सेन का मत है, "उन्होंने विश्वभारती में इस कार्य के लिये रचना करने के लिए अवसर प्रदान किया था। मध्ययुग के साधकों की गम्भीर वाणी के रस-सम्भोग में रसानुभव निपुण उनकी जो सश्रद्ध प्रतिभा देखी, इस प्रकार अन्य कहीं नही देखी[2]।"

गुरुदेव हिन्दी-सन्तों के विषय में लिखते हैं, "जब हम भारत की इस आंतरिक साधना को धारावाहिक रूप में स्पष्ट देखते हैं, तब हम भारत के प्राणवान इतिहास को पाते हैं, इससे अधिक हमें और कहीं नहीं मिलता—सुहृदय वर क्षितिमोहन सेन से शाखा-प्रशाखा रूप में मध्ययुगेर साधनार कारा ग्रंथ में इसका अनुसरण करते हैं[3]।" आगे फिर लिखते हैं, "क्षितिमोहन बाबू के कल्याण क्रम में हिन्दुस्थान के और साधक कवियों के साथ मेरा कुछ परिचय हुआ, आज मेरा सन्देह नहीं है, जो हिन्दी भाषा में एक बार जिस गीत-साहित्य का आविर्भाव हुआ था। उनके गले में अमर सभा की वरमाला है; अनादर की ओट में आज वे बहुत आच्छन्न हैं। उद्धार करना चाहिए। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जो हिन्दी भाषा नही जानते हैं वे भी चिरकाल इस साहित्य

---

१. ए छाड़ा कविर धर्म सम्बन्धे ये ज्ञान एतकाल उपनिषदेर मध्ये आबद्ध छिल, ताहा विस्तार लाभ करिल मध्ययुगीय सन्तदेर जीवनेर मध्य। एह सन्तदेर वाणीर मध्ये कवि ताँहार अन्तरेर वाणीर साय पाइलेन। तिनि बुझिलेन ये तिनि भारतेर धर्म-साधनार धारा वहन करिया आसिते छेन, तिनि निःसंग नहेन। —रवीन्द्र जीवनी, द्वितीय खण्ड, पृ० १८८।

२. " .....तिनि विश्वभारती ते एह काजेर अवसर ओ रचना करिया दियाछेन (मध्य)। युगेर साधकदेर गंभीर वाणी रससंभोगे रसानुभव-निपुण ताँहार ये सश्रद्ध प्रतिभा देखियाछि एमन आर कहार ओ देखिनाइ।"

—रवीन्द्र जीवनी, चतुर्थ खंड, पृ० १२२।

३. "भारतेर एह आन्तरिक साधनार धारावाहिक रूप यदि आमरा स्पष्ट करे देखते पैतुम ताहाले भारतेर प्राणवान् इतिहास ये कोनखाने ता आमादेर गोचर हते पारत। सुहृदय वर क्षितिमोहन सेन अनुसरण करे रसेछेन [भारतीय मध्य-युगे साधनार धारा] ग्रंथे भारतवर्षेर सुदीर्घकालेर सेइ चित्त प्रवाहेर पथटिके तार भिन्न-भिन्न शाखाय।" —वही, पृष्ठ १२२।

को अपना उत्तराधिकार मानकर गौरवान्वित हों[1]। रवीन्द्रनाथ ने अपनी बहुत रचनाओं के लिए क्षितिमोहन सेन का ऋण स्वीकार किया है। उत्तरी भारत के सन्तों और बंगाल के बाउल आदि की वाणी का संधान उन्होंने क्षितिमोहन से प्राप्त किया। गुरुदेव ने सन्त-विचारधारा को बहुत सहृदय-पूर्ण दृष्टि से देखा है, जैसा कि श्री अवलिन अंडरहिल का मत है, "यह कबीर के गीतों का अनुवाद मुख्यतया श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर का कृतित्व है। उनके रहस्यवादी प्रतिभा की प्रवृत्ति···जिन्होंने इन कविताओं को पढ़ा है वे देखेंगे कि वे कबीर के दृष्टिकोण और विचारों के विचित्र सहानुभूति-पूर्ण व्याख्याता हैं[2]।"

गुरुदेव मध्ययुग के साधक कवियों के विषय में लिखते हैं, "मनुष्य के अन्तवर्ती जो सृष्टिकर्त्ता भगवान् का स्पर्श मध्ययुग के साधक कवियों ने पाया था, वह शास्त्र-वर्णित नहीं है। वह मन में, प्राण में, हृदय में आविष्कृत अद्वैत परमानन्द स्वरूप है। उनके लिए उनकी मंत्र पढ़ने से पूजा नहीं होती। गीतों से उनका आरोहण होता है। वह सत्य रूप में प्रत्यक्ष, सहज सुन्दर रूप में, जीवन में आविभूत हुआ। काव्यरूप में प्रकाशित हुआ। हमारे साधक कवियों का हृदय ही उनके गीतों का उत्स था, वे एक राम को आनन्दस्वरूप आत्मा में प्राप्त करते थे। क्षिति बाबू से सुनता हूँ कि हमारे देश में ऐसे लोगों को मरमिया कहते हैं। इनकी दृष्टि, इनका स्पर्श मर्म में है। इनके पास सत्य का बाह्य स्वरूप नहीं है। उसके भीतर का मर्म स्पर्श है। आज के युग में राजा राममोहनराय ही हमारे देश के मुक्ति प्रदाता हैं। जिससे प्रतीत होता है कि कबीर, नानक, दादू आदि ने भारत की सत्य साधना का वहन किया था। उसी

---

१. क्षितिबाबूर कल्याण क्रमे हिन्दुस्थानेर आरो कोनो कोनो साधक कविर संगे आमार किछु किछु परिचय हल। आज आमार सन्देह नाइ ये, हिन्दी भाषाय एकदा ये गीत-साहित्यार आविर्भाव हयेचे तार गलाय अमर सभार वरमाल्य। अनादरेर आड़ाले आज तार अनेक्टो आच्छन्न उद्धार करा चाइ, आर एमन व्यवस्था हओया चाह याते भारतवर्षेर यारा हिंदी भाषा जाने ना ताराओ येन एइ चिरकालेर साहित्ये आपन उत्तराधिकार गौरव भोग करते पारे।

—दादू की भूमिका। रवीन्द्र जीवनी, चतुर्थ खंड, पृ० १२२।

२. This version of Kabir's songs is chiefly the work of Mr. Rabindranath Tagore. The trend of those mystical genius makes him as all who read these poems will see a peculiarly sympathetic inter reter of Kabir's vision and thought.

—One hundred poems of Kabir introduction p. 43.

साधना का प्रवाह आज हमारे प्राणों के क्षेत्र को परिव्याप्त किए हुये हैं।[1]

गुरुदेव पुन: सुन्दरदास ग्रंथावली के प्राक्कथन में अपना मत प्रकट करते हैं--
"दुर्भाग्य से मेरा अधिकार हिन्दी भाषा पर नहीं है। किन्तु बंधुवर आचार्य क्षितिमोहन सेन की सहायता से हिंदी भाषा में लिखित संत-साहित्य के प्रति मेरे हृदय में गंभीर श्रद्धा एवं अनुराग उत्पन्न हो गया है। इस सम्बन्ध में अब तक जिस प्रकार की रचनाओं से मेरा परिचय हुआ है। उसकी तुलना और किसी भी साहित्य में नहीं मिल सकती। इस समय देश में ऐसे बहुत लोग हैं जो भारत की राष्ट्रीय साधना की सिद्धि के रूप में हिन्दी भाषा के प्रचार की कामना करते हैं किन्तु आधुनिक भारत की विभिन्न भाषाओं में ऐसी कोई भी भाषा सम्पूर्णतया यथेष्ट नहीं है, जिसके द्वारा सामयिक प्रयोजनों की पूर्ति हो सके। कोई भी भाषा अपने साहित्य की दृष्टि से ही अपने प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर सकती है। इस प्रकार का विशेष महत्व हिन्दी भाषा के साहित्य में यथेष्ट रूप में पाया जाता है। मध्य-युग के साधक कवियों ने हिन्दी भाषा में जिस भावधारा का ऐश्वर्य विस्तार किया है। उसमें असाधारण विशेषता पायी जाती है। वह विशेषता यही है कि उनकी रचनाओं में उच्चकोटि के साधक एवं कवियों का एकत्र मिलन हुआ है। इस प्रकार का संयोग सर्वत्र ही दुर्लभ है[2]।

---

१. मानुषेर अन्तवर्ती सेइ सृष्टिकर्ता मध्य-युगेर साधकदेर मध्ये ये भगवानेर स्पर्श पेयेछिलेन तिनि मने, प्राणे, हृदये, आविष्कृत अद्वैत परमानन्दस्वरूप। सेइ जन्येइ मंत्र्ये पड़े ताँर पूजा हलना, गान दिये ताँर आरोहण हल। तिनि प्रत्यक्ष सत्य रूपे जीवने आविर्भाव हयेछिलेन वले सहज सुन्दररूपे काव्ये प्रकाश पेलेन। आमादेर साधक कविदेर अंतर थेके गानेर उत्स एमनि करेइ खुलचे, ताँरा राम के आनन्दस्वरूप परम एकके आत्मार मध्ये पेयेछिलेन; क्षितिबाबू काछे शुनचि आमादेर देशे एन्देर दलेर लोकके वले थाके 'मरमिया' एंदेर दृष्टि; एंदेर स्पर्श मर्म्मेर मध्ये; एंदेर काछे आसे सत्येर बाहिरेर मूर्तिनय, तार मर्म्मेर स्वरूप। आजकेर दिने राजा राममोहनराय आमादेर देशे ये उनमोचकता ताते बूझते पारि ये, कबीर, नानक, दादू भारतेर से सत्य साधना के वहन करेछिलेन, आज ओ सेइ साधनार प्रवाह आमादेर प्राणेर क्षेत्रे परिव्याप्त करे नि। (दादू भूमिका)

२. दुर्भाग्य क्रमे हिन्दी भाषाय आमार अधिकार नय, किन्तु बंधुवर श्रीयुत क्षितिमोहन सेनेर उक्त भाषाय लिखित सन्तदेर साहित्येर प्रति आमार गंभीर श्रद्धा ओ अनुराग जन्मियाछे, एह उपलक्ष्ये एमन सकल रचनार सहित आमार परिचय घटियाछे अपर कौन साहित्ये जाहार तुलना नाइ। अनेके आधुनिक भारतेर राष्ट्रीय साधनार वाहन रूपे हिन्दी भाषार प्रचार कामना करवेन।

बँगला साहित्य के इतिहासकारी, समालोचकों और विद्वानों के मत भी इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं। बँगला-साहित्य के महान् इतिहासकार डॉ० सुकुमार सेन का मत है, "गीतांजलि, गीतिमाल्य, गीतालि के युग में रवीन्द्रनाथ ने उत्तर-पश्चिम भारत के मरमिया कवियों की रचनाओं का परिचय लाभ किया था। मरमिया, बाउल कवियों की मानस प्रकृति के साथ रवीन्द्रनाथ की रस दृष्टि का साधर्म्य गहन था, इस समय इस साधर्म्य ने रचनाओं में प्रकाश पाया[1]।

डॉ० शशिभूषणदास का कथन है, "मध्ययुग के संत कवियों का प्रभाव रवीन्द्रनाथ पर है। 'कथा ओ काहिनी' नामक पुस्तक में 'अपमान वर' कविता कवि की कबीर के प्रति श्रद्धा की द्योतक है[2]।" दादू के पदों का स्पष्ट प्रभाव है, नानक का प्रसिद्ध पद, "गगन में थालु रवि चंद दीपक बले तारिका मण्डल जनक मोति" कविता ब्रह्मसमाज कलकत्ता की प्रसिद्ध कविता है, ब्रह्म-संगीत में इसका अनुवाद— रवीन्द्रनाथ ने "गगनेर थाले रवि चंद्र दीपक ज्वले" नाम से किया था।[3]

संतों में विशेषकर कबीर में खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति, जातिवाद और रूढ़ियों का विरोध भी पाया जाता है। यह प्रवृत्ति रवीन्द्रनाथ में भी दृष्टिगोचर होती है। रवीन्द्रनाथ और कबीर की विचारधारा में बहुत साम्य पाया जाता है। दोनों ही

किन्तु कौन भाषार सामयिक प्रयोजन साधनेर उपयोगिता यथेष्ट श्रद्धेय नहे। भाषा आपनार प्रति आंतरिक श्रद्धादानी करिते पारे। आपनार साहित्येर मूल्य लक्ष्या सेइ विशेष मूल्य हिन्दी भाषाय यथेष्ट परिमाणे आछे। मध्ययुगेर साधक कविरा हिन्दी भाषाये ये भावरसेर ऐश्वर्य-विस्तार करियाछेन, ताहार मध्ये असामान्य-विशेषत्व आछे। सेइ विशेषत्व एइजे ताँहादेर रचनाय उच्च अगेर साधक एवं उच्च अंगेर कवि एकत्रे मिलित हइयाछेन। एमन मिलन सर्वत्रइ दुर्लभ। —सु० ग्रं०, प्रथम खंड, प्राक्कथन, पृ० १।

१. गीतांजलि-गीतिमाल्य-गीतालिर युगे रवीन्द्रनाथ उत्तर पश्चिम भारतेर मरमिया कविदेर रचनार परिचय लाभ करिलेन। मरमिया-बाउल कविदेर मानस प्रकृतिर संगे रवीन्द्रनाथेर रस-दृष्टिर साधर्म्य छिल निविड़। एखन साधर्म्य प्रकाश अवसर पाइल रचनाय। — बाँ० सा० इ०, तृतीय खंड, पृ० १६०।

२. लेखक की इस विषय पर डॉ० दास गुप्त से कलकत्ता-विश्वविद्यालय बँगला विभाग में १६-१२-५८ की चर्चा हुई। उन्होंने इस ओर संकेत किया, देखिये—'कथा ओ काहिनी' 'अपमान-वर' में 'भक्त कबीर सिद्ध-पुरुष ख्याति बढ़िया छे देशे' ——पृ० ६३ कविता रवीन्द्रनाथ की कबीर के प्रति श्रद्धा की परिचायक है।

३. प्रस्तुत प्रबंध, चतुर्थ अध्याय, पृ० २८७ ब्रह्म-संगीत, पृ० १७७-१७८, बँगालीर गान पृष्ठ ६३२।

रहस्यवादी होते हुए भी गृहस्थ-आश्रम को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। दोनों पुराणपंथी (Orthodoxy) पर कुठाराघात करते हैं। दोनों ही विचार-स्वातंत्र्य के पुजारी हैं। दोनों ही निराकार-निरंजन ब्रह्म के उपासक हैं। दोनों ही मानवता के पुजारी हैं। जैसा कि इस संबंध में श्री प्रियरंजन सेन का मत द्रष्टव्य है कि रवीन्द्रनाथ ने अपनी अनेक रचनाओं में धर्म के विषय में हमारे विचारों में एक उदार-दृष्टिकोण उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। निःसन्देह यह सत्य है कि वे अनेक बार सिद्धान्त-विशेष और परम्परागत लकीरों से बहुत कतराते थे, उन्होंने इन हर प्रकार के जीर्ण-शीर्ण अंध-विश्वासों के विरुद्ध घोर संग्राम की घोषणा की। किन्तु इसके साथ वे किसी निश्चित संकुचित मत विशेष से नहीं चिपके। मध्यकालीन संत और भक्त उदाहरणतया कबीर आदि उनके प्रिय कवि रहे हैं। उनके अध्ययन के पुनर्जीवन के लिए उन्होंने यथाशक्ति प्रयत्न किये। इसी प्रकार अपना साधर्म्य उन एक ब्रह्म के उपासकों के साथ प्रस्तुत किया। जिन्होंने अपने हृदयों से अत्यन्त भक्तिपूर्ण गीतों की वर्षा की थी[1]। श्री खुदीरामदास का विचार है—वे किसी बद्ध सम्प्रदाय के भीतर नहीं हैं, उन्होंने अपने मानस का सहज भाव से विकास किया था। उनकी साधना मध्य-युग के कबीर, दादू और मरमिया बाउल के सम्प्रदाय की साधना की कोटि थी। वे इस कविता में स्पष्ट भाव से व्यक्त करते हैं :—

कवि आमि ओदर दले—
आमि व्रात्य, आमि मंत्र हीन,
देवतार वन्दीशालाय
आमार नैवेद्य पोंछलना

—रवीन्द्र प्रतिभार परिचय, पृ० २६९-७०।

1. Rabindra Nath in his various writings has done much in infusing a liberal idea in our thoughts on religion. It is no doubt true he has time and again fought shy of dogma and traditional ways, that he has declared war to the bitter and against hoary-headed superstition in all forms and shapes, but at the same time he has refused consistently to hitch his wagon to the yoke of any definite, and consequently limited creed.

The mediaveal sages and devotees, Kabir for example have been his favourite authors and he has done his best in reviving their study, thus linking himself to those worshippers of the one God who poured out their hearts in intensly devotional songs."

—Western influence in Bengali Literature, Page 266.

मूलत. रवीन्द्रनाथ का रहस्यवाद उपनिषदों की पृष्ठभूमि पर खड़ा है, विशेषकर औपनिषिदिक रहस्यवाद बुद्धि प्रधान अधिक है, किन्तु कबीर का रहस्य-वाद उनकी दिव्य-अनुभूतियाँ हैं। वे सरस हैं, किन्तु जहाँ भावनात्मक या रसात्मक रहस्यवाद का प्रश्न है वहाँ गुरुदेव और कबीर के भावों में बहुत साम्य है। जैसा कि श्री उपेन्द्रनाथ भट्टाचार्य का मंतव्य है कि वृक्ष जिस प्रकार सबसे अदृश्य वायु से प्राण वायु ग्रहण कर मिट्टी के नीचे सिकुड़कर और रस पाकर बढ़ता है वैसे ही रवीन्द्रनाथ का कवि मानस भी उपनिषदों की जलवायु से वृद्धि को प्राप्त हुआ है। उपनिषदों ने ही बहुत परिमाण में रवीन्द्रनाथ के कवि मानस का गठन किया है, एक विशेष प्रकार की भाव-दृष्टि का अधिकारी बनाया है। उपनिषदों के साथ-साथ वैष्णव दर्शन के अचिन्त्याभेदाभेद तत्व और लीलावाद हीगेल के आदर्श-यथार्थवाद (Ideal Realism) मतवाद, वर्गसाँ के गीतितत्त्व और—कबीर, दादू प्रभृति मरमी साधुगणों के आध्यात्मिक रसमूलक कविता का प्रभाव कुछ अंशों में पड़कर उनके कवि मानस गठन में सहायता की है।[1]

भारत की भक्ति-साधना रसधारा के साथ उत्पन्न हुई है। जैसा कि श्री अजितकुमार चक्रवर्ती का मत है, "उपनिषद को ही वेदान्त अथवा श्रेष्ठ विद्या कहते हैं, इनके सामने भारत के सकल तत्त्व-शास्त्र नतमस्तक होकर खड़े हैं। अर्थात् उनको साधकों के गम्भीरतम अध्यात्म उपलब्धि का अपूर्व प्रकाश उद्घोषित कर चिरकाल से भारतवर्ष श्रद्धा करता हुआ आ रहा है। भगवत्गीता, श्रीमद्भागवत् प्रभृति सकल शास्त्रों से एक धारा तत्त्वज्ञान की ओर गई है। दूसरी धारा काव्य और संगीत की ओर गई हैं। ये दोनों धारायें ही भारत में चिरकाल से परस्पर एक दूसरी को परिपुष्ट करती हुई आ रही हैं। इसी कारण भारत का श्रेष्ठ धर्म संगीत

---

१. गाछ येमन सकलेर अलक्ष्ये वातास हइते प्राणवायु टानिया लइया ओ माटिर नीचे शिकड़ हइते रस टानिया लिया वर्धित हय, रवीन्द्रनाथेर कवि मानस ओ उपनिषदेर रस ओ वायुते वर्धित हइया छे। उपनिषदइ रवीन्द्रनाथेर कवि मानस के बहुल परिमाणे गठित करियाछे ओ एकटो भावदृष्टिर अधिकारी करियाछे। उपनिषदेर संगे वैष्णव दर्शनेर अचिन्त्याभेदाभेद तत्त्व ओ लीला-वाद, हेगलेर (Ideal Realism) मतवाद, वार्गसँर गीतितत्त्व ओ कबिर, दादू प्रभृति मरमी साधुगणेर आध्यात्मिक रसमूलक कवितार प्रभाव हयतो किछु परिमाणे पड़िया ताँहार कवि मानस गठने सहायता करियाछे।

—रवीन्द्रनाथ-साहित्य परिक्रमा प्रथम खण्ड, पृष्ठ ४-५।

यूरोपीय धर्म संगीत की तरह अकवियों द्वारा विरचित नही है। वह तत्वदर्शी साधक कवियों की रचना है।[1]

अतः हमारा धर्म-साहित्य भी रस-सौन्दर्य को त्याज्य नही ठहराता है। जैसा कि श्री सचिनसेन का विचार है कि रवीन्द्रनाथ ने धर्म संगीत के साथ सदृश कबीर के धर्म काव्य का योग अत्यन्त सुस्पस्ट है। यह भारत की भक्ति-साधना के साथ संयुक्त है। हमारे साधक भक्त कवियों ने केवल रसहीन नीतिबोध का आश्रय नहीं लिया। हमारा धर्म-साहित्य रसरूप रूपी उत्तराधिकार को अस्वीकार नहीं करता। इसी कारण रवीन्द्र काव्य में कबीर के प्रभाव की ओर लक्ष्य करना संभव है। इसी से रवीन्द्रनाथ की भक्त कविता में रूप और सौन्दर्य कही भी अस्वीकृत नहीं हुआ। कबीर के गीत भी इस आनन्द में गुम्फित हैं।[2]

गुरुदेव की साधना का मूलमत्र है :—

वैराग्य-साधने मुक्ति से आमार नय,
असंख्य बन्धन माझे महानन्दमय
लभिव मुक्तिर स्वाद......

---

१. उपनिषदकेइ वले वेदान्त ओ श्रेष्ठ-विद्या, ताहारइ उपर भरकरिया सकल तत्त्व-शास्त्र भारतवर्षे माथा तुलिया दाँड़ाइयाछे। अथच ताहाके साधकेर गंभीरतम अध्यात्मउपलब्धिर अपूर्व प्रकाशकरिया चिरदिनइ भारतवर्ष श्रद्धा करिया आसियाछे। भगवत्‌गीता, श्रीमद्‌भागवत प्रभृति सकल शास्त्र संबहोई सेइ एक कथा—ताहा हइते एकधारा गियाछे तत्त्वज्ञानेर दिके, अन्ये धारा गियाछे काव्य ओ संगीतेर दिके। एइ उभय धाराइ भारतवर्षे चिरकाल परस्पर के परिपुष्ट करिया आसियाछे। सेइ जन्य भारतेर श्रेष्ठ धर्मसंगीत गुलि उरोपेर धर्मसंगीतेर न्याय अकविदेर द्वारा रचित नहे। ताहा तत्त्वदर्शी साधक कविदिगेर रचना।

—काव्य परिक्रमा, पृ० ६२

२. रवीन्द्रनाथेर धर्मसगीतेर सहित कबीरेर धर्मकाव्य गुलिर योग अत्यंत सुस्पष्ट। भारतेर भक्ति-साधनार सहित युक्त हइयाछे। आमादेर साधकगण भक्त कवि, तांहरा शुधु रसहीन नीतिबोध के आश्रय करिया थाकेन नाइ। आमादेर धर्मसाहित्य रस रूपेर दाविके अग्रह्य करे नाइ ताइ रवीन्द्र काव्ये कबीरेर प्रभाव लक्ष्य करा संभव। रवीन्द्रनाथेर भक्तकविताय रूप ओ सौन्दर्य कोथाओ अस्वीकृत हय नाइ। कबीरेर ओ एइ आनन्देर सुरे बाँधा।

कबीर का कथन है :—

कहै कबीर बिछुड़ नहि मिलिहों
ज्यों तरवर छोड़ बन माधुरी [1]।···

रवीन्द्रनाथ पर कबीर का प्रभाव अन्य संतों की अपेक्षा कुछ अधिक गहरा पड़ा है। उनके गीतों में रहस्य भाव को व्यक्त करने वाले प्रतीक अधिकांशतः कबीर की साखियों से अनुप्रेरित जान पड़ते है[2]। अतः कुछ उदाहरणों से संत साहित्य का प्रभाव गुरुदेव पर अधिक स्पष्ट हो सकेगा।

कबीर

कबीर का भावमूलक प्रभाव रवीन्द्रनाथ के अनेक पदो पर है। कबीरदास की रहस्य-साधना और रवीन्द्रनाथ के भगवत् प्रेम के आदर्श में बहुत साधर्म्य है। इसको स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण आवश्यक हैं—

आजि यत तारा तव आकोशे
सबे मोर प्राण-भरि-प्रकाशे

(गुरुदेव)

तुलनीय—

या घट भीतर चन्द्र सूर है,
याही में नोलख तारा ।

(कबीर)

जैसे—

आमि रूपसागरे डूबदियेछि
अरूप रतन आशाकरि···

(गीतांजली, गीत संख्या ४७, पृ० ५५)

तुलनीय—

जावहि मूरत बीच अमूरत, मूरत की बलिहारी[3]। (कबीर)

प्रणय व्यापार में भी दोनों में बहुत समानता है। जैसे—

एकला आमि बाहिर हलेम तोमार अभिसारे···
साथे साथे के चले मोर नीरव अंधकारे।

---

१. देखिये रवीन्द्र साहित्येर परिचय पृ० ७२।

२. आलोचना पृ० १३०, २५ अंक जनवरी १९५९, ७ वर्ष अंक १—काव्यालोचन विशेषांक।

३. रवीन्द्रसाहित्येर परिचय पृ० ७३।

छाड़ते चाइ अनेक करे,
घूरे चलि, जाइ ये सरे,
मने करि आपद गेछे
आवर देखि तारे ।
धरणी से काँपिये चले
विषय चंचलता ।
सकल कथार मध्ये से चाय
कहते आपन कथा ।
से ये आमार आमि, प्रभु,
लज्जा ताहार नाइ ये कभु,
तारे निये कौन लाजे वा
याव तोमार द्वारे ।

(गीतांजलि, गीत संख्या १०३, पृ० ११५)

तुलनीय—

पीतम बुलावत अनहद की पारसे
कौन बेशरमी आज तेर साथ जाइ[1] ...

(कबीर)

प्रेम-व्यापार में दोनों ही प्रियतम से कोई लज्जा एवं दुराव छिपाव नहीं रखना चाहते हैं। क्योंकि किसी भी तरह का आवरण प्रेम में बाधक है।
जैसे—

नीलाम्बरे किवालाज तीरे फेले एस आज
ठेके दिये सब लाज सुनील जले।...

तथा—

फेलगो वसन घुचाओ अंचल पर शुबु सौंदर्येर नग्न आवरणे।
सूर बालिकार वेश किरण वसन, परिपूर्ण तनुखानि बिकच कमल।
जीवनेर योवनेर लावण्येर मेला, विचित्र विश्वेर माझे दाँड़ाओ एकेला...।

कबीर भी उसी भाव को अभिव्यक्त करते हैं :—

निसदिन खेलत रही सखियन संग
मोहि बड़ा डर लागे ।
मोरे साहब की ऊँची अटरिया,
चढ़त में जियरा कांपे ॥

१. देखिये—रवि-रश्मि, द्वितीय खण्ड, पृ० ११३ ।

जो सुख चाहे तो लज्जा त्यागे
प्रिय से हिलमिल लागे·········
घूँघट खोल अंगभरि भेंटे
नैन आरती साजे······ ।

रवीन्द्रनाथ की साधना भगवत् प्रेम का आदर्श है, प्रेम और विरह के लिये उसमें स्थान है। कबीर भी प्रेम-विरह के कवि हैं। रवीन्द्रनाथ के भाव कबीर के साथ मिलते है। ये भाव गीतांजलि में अधिक समानता रखते हैं। जैसे—

× × ×
अरूप तोमार रूपेर लीलाय जागे हृदयपुर
आमार मध्ये तोमार प्रकाश एमनसु मधुर
× × ×
कत वर्णे कत गंधे कत गाने कत छंदे
× × ×
अरूप, तोमार रूपेर लीलाय जागे हृदयपुर ।
आमार मध्ये तोमार शोभा एमन सुमधुर···

(गीतांजलि, पृ० १२०, पृ० १३६)

तुलनीय—

चंदा झलके यहि घटमाँहि, अंधी आँखन सूझे नाहिं ।
यहि घट चंदा यहि घट सूर, यह घट गाजें अनहद तूर···

(कबीर)

गुरुदेव की भक्त अभिसारिका का विरह विश्वव्यापी है—

हेरि अहरह तोमारि विरह
भुवने भुवने राजे है···
× × ×
सकल जीवन उदास करिया
कत गाने सुरे गलिया झरिया
तोमारि विरह उठिछे भरिया
आमार हियार माझे है ।

(गीतांजलि, गीत २५, पृ० ३०)

कबीर में भी यह भाव नाना रूपों में व्यक्त हुआ है—

साँई बिन दर्द करेजे होय

दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया
कासे कहुँ दुःख होय।
आधी रतियाँ पिचले पहरवा, साँई बिना तरस रही सोय।
कहत कबीर सुनो भाई प्यारे, साँई मिले सुख होय ।

तथा—

बाल्हा आव हमारे गेहरे, तुम बिन दुखिया देहरे।···

कबीर की भाषा सरल है, रवीन्द्रनाथ की भाषा अलंकार प्रधान है। जिस भाव को कबीर सरलता से व्यक्त करते हैं, गुरुदेव उस भाव को ही दार्शनिक गंभीरता और शत-शत उपमाओं के साथ अंकित करते हैं। रवीन्द्र औपनिषिदिक रहस्यवाद के पुजारी हैं, किन्तु उपनिषद का ऋषि शायद ही कभी ब्रह्म की दुलहिन बनता हो, किन्तु कबीर का तो रमैया की दुलहिन बने बिना काम नहीं चलता। यही भाव रवीन्द्रनाथ ने अनेक रूपकों एवं प्रतीकात्मक शैली में चित्रित किया है। जैसे--

से ये पाशे एसे वसे छिल तबु जागि नी,
की घूम तोरे पेयेछिल, हतभागिनी ।
एसे छिल नीरव राते, वीणा खानि छिल हाते
स्वप्न माझे वाजिये गेल गंभीर रागिनी ।

(गीतांजलि, गीत ६१, पृ० ७२)

तुलनीय—

तोहि मोरि लगन लगाये रे फकिरवा।
सोवत ही मै अपने मंदिर में,
सब्दन मारि जगाये रे फकिरवा--।

तथा—

सपने में साँइ मिले सोवत लिया जगाय।
आंखि न खोलूँ डरपती मति सपना ह्वै जाय।

भाव-साम्य के साथ-साथ कहीं-कहीं उपमा सादृश्य भी है। गुरुदेव प्रियतम के लिए सुन्दर, मधुर, प्रियतम, प्राणसखा और राजा आदि का प्रयोग करते हैं। कबीर भरतार, राजाराम, साँइ, स्वामी, प्रिये, प्रियतम एवं बाल्हा आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। उपादानों में समानता है। रवीन्द्र नाथ, वीणा, वांशी तथा अनाहत नाद आदि उपकरणों का आश्रय लेते हैं। कबीर वीणा, घट एवं अनहद नाद आदि प्रतीकों की सहायता लेते हैं। जिस भाव की उपमा कबीर चुनरिया से देते हैं, गुरुदेव माला से। जैसे—

ए तो माला नय गो ए ये तोमार तरवारि
ज्वले उठे आगुन जेन वज्रहेन भारि— (खैया)

तुलनीय—

चुनरिया हमने पिया की सँवारी
कोइ पहरे पिय की प्यारी ।

प्रेम-व्यापार में चंचलता, अधीरता तथा व्याकुलता दोनों कवियों को अच्छी नहीं लगती । अनुपम क्षमा और असीम धैर्य ही प्रेमी का गुण है । चुपचाप प्रियतम के स्मरण में तिलमिलाना ही उसके आनन्द का आस्वादन है । प्रेम-साधना को दोनों ने ही कठिन व्यापार माना है, यह तलवार की धार के ऊपर चलने के समान कठोर है । प्रभु-प्रेम का मार्ग बहुत कंटकाकीर्ण है । प्रियतम जिसको अधिक प्रेम करते हैं उसको ही अधिक दुःख देते हैं । जैसे—

ओगो ए कि तोमार दान ?
शक्तिहीना मरि लाजे
ए भूषण कि आमार साजे ?
राखते गेले बुकेर माझे
व्यथा ये पाय प्राण ।
तबु आजि बइव बुके
एइ वेदनार मान ।
निये तोमारि इए दान[1] । (खैया)

तुलनीय—

आग अगम सहना सुगम, सुगम खड़क की धार
प्रेम निबावन एक रस महाकठिन व्यवहार । (कबीर)

जीव ब्रह्म की एकता अथवा प्रियतमा और प्रियतम की एकरूपता दोनों दार्शनिकों में समान रूप से पाई जाती है । जैसे—

मनेर मानुष मनेर माझे करो अन्वेषण ।
एक बार दिव्य चक्षु खुले देखत पावि सब ठाँई
सब ठांई मोर घर आछे आमि से घर हरि खूँजिया
देशे देशे मोर देश आछे आमि सेइ देश बुझिया ।

तुलनीय—

दरियाव की लहर दरियाव है जी,
दरियाव और लहर में भिन्न कोयम ।

+ + +

१. 'कबीर', 'भगवत-प्रेम का आदर्श' ।

जक्त की फेर सब जक्त परब्रह्म में[1],
ज्ञान कर देख माल गोयम ।

(कबीर ग्रंथावली, पृ० १०)

मृत्यु के समन्ध में दोनों ही कवियों के विचार एक जैसे हैं । जैसे—

केवलइ—एइ दुयार टुकु पारे हते संशय
जय अजानार जय । (नैवेद्य)

तुलनीय—

जनम-मरन बीच देखो अंतर नहीं
दज्छ और वाम यूँ एक आही ।
जनम मरन जहां तारी पड़त है
होत आनन्द तहँ गगन गाजे ।
उठत झनकार तहँ नाद अनहद घरे—[1]

मृत्यु वंदनीय है और भगवान का वरदान है । दोनों ही कवि एक ही स्वर में इस मृत्युदेव का अभिनंदन करते हैं । जैसे—

मिलन हवे तोमार साथे,
एकटि शुभ दृष्टि पाते,
जीवन वधू हवे तोमार
नित्य अनुगता ।
मरण, आमार मरण, तुमि
कओ आमारे कथा ।।
वरण माला गाँथा आछे ।
आमार चित्त माझे ।
करो नीरव हास्य—मुखे
आसवे वरेर साजे ।
से दिन आमार रवे ना घर
केइ वा आपन केइ वा अपर,
विजन राते पतिर साथे
मिलवे पतिव्रता ।
मरण आमार मरण, तुमि
कओ आमारे कथा ।

(गीतांजलि, गीत संख्या ११६, पृ० १३२-३३)

---

१. सत्येन्द्रनाथ मणिमंजूषा, पृष्ठ ५४ ।

तुलनीय—

गाओ गायोरी दुलहिणी मंगल चार ।
हम घरि आये हो राजा राम भरतार ।
तन रत करि में मन रत करि हूँ, पंचतत बराती ।
रामदेव मोर पाँहुन आये, में जोबन में माती ।
× × ×
कह कबीर हम ब्याहि चले
पुरुष एक अविनाशी[1]—

(संत सुधा सार, पृ० ६३)

तथा—

जा मरण मरने से जग डरे मेरे मन आनन्द—
बिना मरे को पाहि है, पूर्ण परमानन्द ।

दादू

कबीर[2] की तरह अन्य सन्तों का भी गुरुदेव पर कुछ प्रभाव है । दादूवाणी का प्रभाव कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होता है । उत्सर्ग के निम्नलिखित पद में दादू के एक पद का प्रभाव स्पष्ट है । यह पद रवीन्द्र काव्य में एक रूपक माना जाता है । प्रकृतिर प्रतिशोध में सन्यासी की उक्ति में भी यही भाव है[3] ।

धूप आपनारे मिलाइते चाहे गंधे,
गंध से चाहे धूपेरे रहिते जुड़े ।
सुर आपनारे धरा दिते चाहे छंदे,
छन्द फिरिया छूटे येते चाय सुरे ।
भाव पेते चाय रूपेर माझारे छाड़ा ।
रूपपेते चाय भावेर माझारे छाँड़ा,
असीम से चाहे सीमार निविड़ संग,
सीमा चाय हते असीमेर माझे हारा ।

---

१. देखिये—रवि रश्मि, द्वितीय खण्ड, पृ० ५६ ।

२. आचार्य क्षितिमोहन सेन पर भी हिंदी सन्तों का प्रभाव माना जा सकता है । गुरुदेव के अतिरिक्त श्री हरिरंजन राय, श्री भूमानन्द स्वामी, श्री धीरेन्द्र कुमार गंगोली, श्री मोतिलाल राय, युगगुरु पूर्णचन्द्र मुखर्जी, योगेशचन्द्र मजूमदार आदि सज्जन भी कबीरदास आदि सन्तों के पदों व आत्मकथा आदि की परम्परा बंगाल में सुरक्षित रखे हुए हैं ।

३. ए जगत मिथ्या नय, बुझि सत्य हवे,
असीम हतेछे व्यक्त—सीमा रूप धरि—।

प्रलये सृजने ना जानि ए कार युक्ति,
भाव हते रूपे अविराम याओया आसा
बन्ध फिरिछे खुँजिया आपन मुक्ति,
मुक्ति मागिछे बाँधनेर माझे बासा।

(उत्सर्ग गीत संख्या १७, पृ० ३८-३९)

दादू का पद इस प्रकार है :—

वास कहे हम फूल-को पाऊँ,
फूल कहे हम वास।
भाव कहे हम सत् को पाऊँ,
सत कहे हम भाव॥
रूप कहे हम भाव को पाऊँ,
भाव कहे हम रूप।
आपस में दोउ पूजन चाहे—
पूजा अगाध—अनूप॥[1]

(दादू, पृ० २६३)

रवीन्द्रनाथ के अनेक गीतों पर दादू के भावों की छाया है :—

ए बोझा आमार नामाओ बंधु नामाओ
भावेर वेगेते ठेलिया चलेछि,
ए यात्रा मोर थामाओ—

(खैया, भार)

यही भाव कबीर और दादू के पदों में भी पाया जाता है। दादू में यह भाव इस प्रकार है :—

जो हम छाड़हिं हाथ तें
सो तुम लिया पसार।
जो हम लेवहिं प्रीति सो
सो तुम्ह दीया डार।[2]

(दादू)

---

१. देखिये—रवि रश्मि, द्वितीय खण्ड, पृ० ४८-४९।
रवीन्द्र काव्य परिक्रमा, प्रथम खण्ड, पृ० ३१०।
लेखक को दादू का यह पद किसी हिंदी की मुद्रित प्रति में प्राप्त नहीं हुआ।

२. रवि रश्मि, पृ० १०४।

गीतांजलि के निम्नलिखित गीत के साथ दादू के एक पद का भाव-साम्य है—

जगत जुड़े उदार सुरे
आनंद गान बाजे,
से गान कबे गभीर रवे
बाजिके हिया माझे।
बातास जल आकाश आलो
सबारे कबे बासिब भालो,
हृदय सभा जुड़िया तारा
बसिबे नाना साजे।...

(गीतांजलि, गीत संख्या १५, पृ० १८)

तुलनीय—

दादू घट में सुख आनंद है तब सब ठाहर होई।
घट में सुख आनन्द बिन सुखी न देख्या कोई॥
ये सब चरित तुमहारे मोहन मोहे सब ब्रह्मण्ड खण्डा।
मोहे पवन पवन पानी परमेश्वर सब मुनि मोहे रविचण्डा॥
सायर सप्त मोहे धरणी धारा अष्ट कुला परवत मेरु मोहे।
तिन लोक मोहे जगजीवन-सकल भवन तेरी सेर मोहे॥
मगन अगोचर अपर अपरंपार जो यह तेरे चरित न जानहिं।
यह सोभा तुम्हको सोहर सुन्दर वलि वलि जाउ दादू न जानहिं॥

(रवि रश्मि, पृ० १०४)

ज्ञानदास बघेलखण्डी

ज्ञानदास बघेलखण्डी के पदों का प्रभाव रवीन्द्रनाथ के अनेक गीतों पर है। डॉ० सुकुमार सेन लिखते हैं, "निम्न उद्धृत ज्ञानदास बघेली के कई पदों के भावों और उत्प्रेक्षा का आभास रवीन्द्रनाथ के अनेक गीतों और कविता में देखा जाता है।[1]" जैसे—

'ना जानि कारे देखियाछि,
देखेछि कार मुख।
प्रभाते आज पेयेछि तार चिठि।

१. निम्न उद्धृत ज्ञानदास बघेलिर पदटिर भावेर जो उत्प्रेक्षार आभास रवीन्द्र नाथेर अनेक गाने ओ कविताय देखा याय।

(बां० सा० इ०, तृ० खं०, पृ० १६०)

पेयेछि ताइ सुखे आछि,
पेयेछि एइ सुख।...[1]

(उत्सर्ग, गीत संख्या ११, पृ० २४)

गीतांजलि के निम्नलिखित गीत में भी यही भाव है :—

जगते आनंद-यज्ञे आमार निमंत्रण।
धन्य हल, धन्य हल मानव जीवन।
नयन आमार रूपेर पुरे
साध मिटाये बेड़ाय घुरे,
श्रवण आमार गभीर सुरे
हयेछे मगन।[2]......

(गीतांजलि, गीत संख्या ४४, पृ० ५२)

हिन्दी गीत इस प्रकार है :—

फजर में जब आया यलची
पुशाक सुनहली तेरी,
गमक भर जब श्वांस लगाया
चित जगाया मेरी।
धूप में हम को किया उदासा
क्या पीड़ दूर समाया,
गाया गेरुया सुर मगरवी
मरण सा रैन आया।
कागज काला हरफ उजाला
क्या भारी खत पाया
इत्ती रौनक क्यों रे यलची
तु ही याद भुलाया
भारी जलसा आजम बावत
तु ही इक मेहमान,
खल्क् खल्क् मे खत है फैली
मग़रूर हम फरमान।[3]

१. रवि-रश्मि, द्वितीय खण्ड, पृ० ६८-६९।
२. ,, ,, पृ० १०८।
३. बाँ०सा०इ०, तृ० खं०, पृ० १६०-६१; रवि-रश्मि, द्वितीय खंड, पृ० ६८-६९। ज्ञानदास बघेली का यह पद लेखक को किसी हिन्दी प्रति में प्राप्त नहीं हुआ।

इस पद का भाव रवीन्द्रनाथ की अनेक कविताओं में पाया जाता है। गीतिमाल्य की निम्नलिखित कविता में ज्ञानदास के एक अन्य पद का प्रभाव है :—

"ओगो पथिक, दिनेर शेषे
चलेछे ये एमन वेशे
के आछे वा सेइखाने।"
"के जाने, भाइ, के जाने।
बुकेर काछे प्राणेर सेतार
गुंजरि नाम कहे ये तार,
शुनेछिलाभ ज्योत्स्नारातेर स्वप्ने।
अपूर्व तार चोखेर चाओया,
अपूर्व तार गायेर हाओया,
अपूर्व तार आसा याओया गोपने।"

+ + +

"ओगो पथिक, दिनेर शेषे
चलेछे ये, केइ वा एसे
पथ देखावे सेइखाने।"
"के जाने गो, के जाने।
शुनेछि सेइ एकटि वाणी
पथ देखा वार मंत्रखानि
लेखा आछे सकल आकाश माझे गो;
से मन्त्र एइ प्राणेर पारे
अनाहत वीणार तारे
गभीर सुरे बाजे सकाल-सांझे गो।"

(गीतिमाल्य, गीत संख्या ११, पृ० १८-१९)

हिन्दी गीत इस प्रकार है :—

चरण-कँवल के लाल परस्पर
सब सुर सुरभि खोलें,
पौन काँपत काँपत कँवल वा
मौन कोइल सब बोलें।
अथाह हिरदक तिंविर परस्पर
सब तार सितार जागें।

बेलि-चमेलिके महक फिरि फिरि
सब उर परवेश मांगें ॥[1]

गुरु नानक

गुरु नानक के कुछ पदों को गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने अपने गीतिकाव्य की निधि बनाया है।[2] ये पद इस प्रकार है :—

बाजे बाजे रम्य-वीणा बाजे
अमल कमल माझे ज्योत्स्ना रजनी माझे निशि आंधार माझे,
काजल घनु माझ
कुसुम-सुरभि-माझे वीनरणन शुनिये
प्रेमे प्रेमे बाजे ॥
नाचे नाचे रम्य ताले नाचे
नदी समुद्र नाचे
तपन तारा नाचे, युगयुगान्त नाचे
जन्म मरण नाचे
भक्त हृदय नाचे विश्व छन्दे मातिये
प्रेमे प्रेमे नाचे ॥
साजे साजे रम्य वेशे साजे
धरणी धूलि साजे, दीन दुखी साजे,
प्रणत चित्त साजे विश्व शोभाय लुटाये
प्रेमे प्रेमे साजे ॥ (गीत-वितान, पृ० १३५)

हिन्दी गीत की प्रथम पंक्ति में कुछ भेद है :—

बाजे बाजे रम्य बीण गाजे ......।

मीराँबाई

गुरुदेव ने गार्डनर की एक कविता में मीराँ के एक पद की छाया ग्रहण कर लिखी थी,[1] ऐसा सम्भव है। जैसा कि डाक्टर गुलाबराय लिखते हैं—"इसी भाव

१. बाँ० सा० इ०, तृ० खण्ड, पृ० १६२।
लेखक को यह हिन्दी पद किसी भी मुद्रित हिंदी पुस्तक में प्राप्त नहीं हुआ।

२. लेखक को यह पद हिन्दी में इस रूप में देखने को नहीं मिला। किन्तु गुरु ग्रंथ साहिब में इस प्रकार का एक पद नामदेव जी का मिलता है, उसकी प्रथम पंक्ति इस प्रकार है :—'घन घन हो रम्य वीण बाजे, मधुर मधुर ध्वनि अनहद गाजे।'

की छाया लेकर कवि सम्राट रवीन्द्र बाबू ने अपनी Gardner नाम की कविता की, जिसमें बागवान रानी से उसके यहाँ नौकरी करने की प्रार्थना करता है, वेतन पूछे जाने पर वह कहता है--एक माला नित्य समर्पित करने का अधिकार—मीरां के सुमिरण पाऊँ खरची (जेब खर्च) का ही भाव है।[1] मीरां का एक पद यहाँ दिया जा रहा है :—

स्याम ! म्हाने चाकर राखोजी, गिरधारीलाल । चाकर राखोजी
चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दरसन पांसूं
विन्दावन की कुंज गलिन में—गोविंद लीला गासूं
चाकरी में दरसन पाउँ, सुमिरण पाऊँ खरची,
भाव भगति जागीरी पाऊँ, तीनूं बातों सरसी···
मोर मुगट पीताम्बर सोहे, गल बैजंतीमाला ।
विन्दावन में धेनु चरावे, मोहन मुरली वाला ॥
ऊँचे ऊँचे महल बनाऊँ । बिच बिच राखूं बारी ।
साँवरिया के दरसण पाऊँ, पहर कुसुमी सारी···।

(मीरां-सुधा-सिंधु, पृ० ६४५)

गार्डनर में यह कविता इस प्रकार है :—

The service of your idle days, I will keep fresh the grassy path where you walk in the morning where your feet will be greeted with praise at every step by the flowers eager for death, I will swing you in a swing among the branches of the Saptpran. Where the early moon will to kiss your spirit.

I will replenish with scented oil the lamp that burns by your bedside, and decorate your foot stool with sandal and saffron paste in wondrous-designs.

What will you have for your reward ? To be your......to hold your little fists like tender lotus-beds and slip with flowers over your wrists to tinge the soles of your feet with the red joice of Ashok-petals and kiss away the speck of dust that may dance to linger there......Gardner p. 2-3.

गुरुदेव ने बँगला, ब्रजबुलि और अंग्रेजी में कविता की है, किन्तु हिन्दी में उनका कोई पद दृष्टिगोचर नहीं होता । हाँ, कहीं कहीं कोई गीत हिन्दी की स्वर लहरी और राग-रागिनी में लिखा हुआ मिलता है । गीतांजलि का निम्नलिखित

१. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, पृ० ८६ ।

गीत असावरी राग में यहाँ दिया जा रहा है, जिसका साम्य हिन्दी के साथ प्राप्त होता है :—

अन्तर मम विकशित करो
अन्तरतर हे ।
निर्मल करो, उज्जवल करो
सुन्दर करो हे
जाग्रत करो, उद्यत करो हे ।
मंगल करो, निरलस करो
नि संशय करो हे
अन्तर मम विकशित करो ।……

(गीतांजलि, गीत ५, पृ० ६)

गुरुदेव ने सूरदास पर भी कविता लिखी है[1], तुलसीदास की रामायण और विनय-पत्रिका की ओर भी उनका आकर्षण रहा है । तुलसीदास जी पर भी कविता लिखी है ।[2] भक्तमाल से भी एक दो कथानक लिये है[3] । राजस्थानी साहित्य के प्रति भी उनका प्रेम रहा है ।

अन्त में हम कह सकते हैं कि रवीन्द्रनाथ के रहस्यवाद का संतों की प्रेम-साधना के साथ स्वाभाविक-आन्तरिक मेल है । सन्तों की भाषा सरल है किन्तु उनके भाव गूढ़ हैं । गुरुदेव उसी गूढ़ भाव को कलात्मक स्वरूप प्रदान करते हैं । संत पहले साधक हैं बाद में कवि हैं । गुरुदेव सजग कलाकार होते हुए भी साधक हैं । सन्तों की कविता उनकी साधना को प्रकट करने का माध्यम है । गुरुदेव कविता को साधना का अलंकार बनाते हैं ।

सन्तों के साथ उनका भाव-साम्य ही मिलता है । किन्तु भाव-साम्य दो कवियों में होना स्वाभाविक है । दो विदेशी अथवा असमकालीन पूर्ववर्ती परवर्ती कवियों में भी भाव-साम्य हो सकता है । किन्तु भाव-साम्य भी एक दो पदों में ही प्राप्त हो सकता है । जब भाव-साम्य बहुत अधिक पदों में प्राप्त हो तब उसको प्रभाव मानना ही उचित होगा । गुरुदेव और सन्तों के अनेक पदों में भाव-साम्य है । गुरुदेव ने स्वयं ही सन्तों के अनेक गीतों और भजनों का आधार लेकर और अनुवाद करके अपने गीतों की रचना की है । अतः सन्तों के साथ गुरुदेव का यह भाव-साम्य प्रभाव ही माना जाना चाहिये ।

---

१. सूरदासेर प्रार्थना, भैरवी गान, 'ढाको ढाको टानिया बसन आमि कवि सूरदास ।' —रवीन्द्र रचनावली, द्वितीय खण्ड, मानसी, पृ० २१२ ।

२. स्वामी लाभ, पृ ७२ । (कथा भो काहिनी)

३. गुरुदेव ने बँगला भक्तमाल से इन कथानकों की प्रेरणा ली है ।

सन्त रसस्वरूप एवं आनंदस्वरूप ब्रह्म में सदा तल्लीन रहते थे। गुरुदेव सत्यन् ज्ञानम् अनंतं ब्रह्म के पुजारी हैं।

सन्तों ने अपनी ब्रह्मोपासना अपने गीतों में अभिव्यक्त की है। गुरुदेव ने अपने जीवन और साहित्य में इसको 'सत्यं, शिवं, सुन्दर' के रूप में मूर्तिमान स्वरूप प्रदान किया है।

: ६ :

उपसंहार

आधुनिक काल में बँगला का प्रभाव आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य पर स्पष्ट है, किन्तु परम्परागत हिन्दी-प्रभाव की अंतर्धारा भी विलुप्त नही हुई। राजा राममोहनराय, ईश्वरचन्द विद्यासागर, बंकिमचन्द्र चटर्जी, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर और आचार्य क्षितिमोहन सेन पर न्यूनाधिक हिन्दी प्रभाव पड़ा है। इनमें से गुरुदेव पर हिन्दी का प्रभाव त्रिविध रूप में पड़ा है। प्रथमतः वे हिन्दी-संगीत के प्रेमी रहे हैं। उन्होंने हिन्दी की राग-रागनियों के अनुकरण पर बँगला गीतों की रचना की है। ब्रजबुलि के माध्यम से कुछ हिन्दी का प्रभाव उन पर पड़ सका है। अप्रत्यक्ष रूप में कुछ हिन्दी शब्द भी उनकी कृतियों में पाये जाते हैं।

तीसरे वे हिन्दी संत साहित्य के प्रेमी रहे हैं। हिन्दी संतों की साधना और साहित्य की परम्परा का प्रभाव उन पर पड़ा है। दोनों के आध्यात्मिक सिद्धान्तों में साम्य होने के कारण गुरुदेव का संतों से प्रभाव ग्रहण करना स्वाभाविक है। जो भाव की उदारता संतों में मिलती है, वही भाव की उदारता कवीन्द्र रवीन्द्र में दृष्टिगोचर होती है।

इस पर्यवेक्षण से यह सिद्ध होता है कि गुरुदेव पर संतों का प्रभाव चाहे थोड़ा ही है, किन्तु है अवश्य। उन्होंने उसको विस्तार देकर और कलात्मक रूप प्रदान कर उसकी सुन्दरता, श्री और संपन्नता की अभिवृद्धि की है। सौन्दर्य-बोध और गुणग्राहकता के लिये सत्कवि यही करते हैं। वे प्रभावों के प्रति मुक्त द्वार रख कर अपना भी योगदान करते हैं और मूल-स्रोतों को आगे बढ़ाते हैं।

धर्मसाधना के साथ प्रवाहित जिस रूप-रस-सौन्दर्य की गंगा में संतों ने गहरी डुबकियाँ लगाई हैं, गुरुदेव में भी 'शान्तम् शिवम् अद्वैतम्' के रूप में अपने व्यक्तित्व और कृतित्व में उसी का अवगाहन किया है।

परिशिष्ट

साहित्यिक एवं अन्य विधाओं पर प्रभाव

१. बँगला में हिन्दी शब्दावली

जब एक भाषा के साथ दूसरी भाषा का सम्पर्क होता है। तब एक भाषा से शब्द दूसरी भाषा में चले जाते हैं। इसको भाषायी उधार लेना (Linguistic borrowing) कहते हैं। भाषा में सरलतम प्रभाव का स्वरूप एक भाषा से दूसरी भाषा में शब्दों का ग्रहण करना ही होता है। विश्व की भाषाओं और भारतीय भाषाओं में भी यह नियम लागू होता है। हिन्दी और बँगला भी इसके अपवाद नहीं हैं।

समान उद्गम स्थान वाली इन दोनों भगनियों में भी साहित्यिक आदान-प्रदान के साथ-साथ घनिष्ट भाषायी पारस्परिक प्रभाव भी रहा है। अतः हिन्दी के शब्द बँगला में आदिकाल से ही मिलते आये हैं। प्राचीन बँगला में यह प्रवृत्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। सिद्ध-साहित्य और चर्यापदों में उनकी छटा देखी जा सकती है। वैष्णव-युग में हिन्दी शब्दावली की बँगला पर गहरी छाप है। इस्लामिक बँगला में भी कुछ-कुछ हिन्दी शब्द प्राप्त होते हैं। किन्तु आधुनिक बँगला साहित्य और विशेषतः बँगला भाषा में हिन्दी के शब्द मिलते हैं। यह प्रवृत्ति बँगला लोक-साहित्य या बोलचाल की बँगला में अधिक है। बँगला साहित्यकारों की रचनाओं में भी कुछ हिन्दी शब्द ढूंढे जा सकते हैं। इस विषय में संकेत मात्र ही पर्याप्त है।

प्रमुख बँगला भाषा के शब्दकोशों (अभिधानों) का नामोल्लेख आवश्यक है। श्री हरानचन्द्र बंद्योपाध्याय ने बँगला में व्यवहृत अरबी, फारसी व उर्दू की शब्दावली की तालिका बंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका में दी है।[1] किन्तु लेखक उन उर्दू शब्दों को हिन्दी के ठेठ देशज शब्द मानता है। क्योंकि अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत, अंग्रेजी और अन्य विदेशी या भारतीय प्रांतीय भाषाओं को छोड़कर जो शब्द उर्दू में बच जाते हैं वे हिन्दी के ठेठ देशज शब्द है। साधारण बोलचाल की हिन्दी और उर्दू में कोई अन्तर नहीं है। उपर्युक्त भाषाओं के शब्द भण्डार को छोड़ कर उर्दू में जो शब्दावली बच जाती है वह हिन्दी की ही निधि है। जो शब्द बँगला में ठेठ उर्दू के माने जाते हैं वे हिन्दी के ही हैं।

अतः बँगला के अनेक शब्दकोशों (अभिधानों) में हिन्दी शब्दावली मिलती है। श्री ज्ञानेन्द्रमोहन दास के 'बाँगला-भाषार अभिधान' में हिन्दी की शब्दावली पर्याप्त

---

१. बंग भाषाय व्यवहृत उर्दू, फारसी ओ अरबी-शब्देर तालिका श्री हारानचन्द्र बन्द्योपाध्याय बंगीय-साहित्य परिषद् पत्रिका, तृतीय संख्या, पृ० १६२, बंगाब्द १३०८।

परिमाण में प्राप्त होती है। कोशकार ने भी इनको हिन्दी के ही शब्द माना है। उन्होंने लगभग समस्त हिन्दी शब्दों को लिया है जो आरम्भिक काल से आधुनिक काल तक बँगला भाषा और साहित्य में व्यहृत हुए है। अन्य बँगला शब्दकोशों में भी लगभग हिन्दी के ये शब्द ही संकलित हुए हैं। बंगीय शब्दकोश और चलन्तिका में भी इस प्रकार के ही शब्द हैं।

२. बँगला, प्रवादों और वाग्धाराओं पर हिंदी कहावतों एवं मुहावरों का प्रभाव

विश्व की अनेक भाषाओं के लोकोक्ति साहित्य में परस्पर बहुत साम्य है। कई लोकोक्तियाँ और मुहावरे तो देश, काल की परिधियों को तोड़ कर सार्वकालिक और सार्वभौम बन गए हैं। भारतीय-भाषाओं एवं विश्व की भाषाओं के लोकोक्ति साहित्य में अदभुत साम्य है। भारत की भाषाओं के लोकोक्ति साहित्य में भी परस्पर बहुत समानता है। लोकोक्ति साहित्य मानव जाति की पैतृक ज्ञान-राशि है। सस्कृत की लोकोक्ति साहित्य का आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं और द्राविड़ी भाषाओं के लोकोक्ति साहित्य पर प्रभाव है। आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं को संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी, अरबी एवं अंग्रेजी आदि भाषाओं से यह ज्ञान-राशि उत्तराधिकार के रूप में मिली है। आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं की कहावतों में भी पारस्परिक प्रभाव है। हिन्दी और बँगला इसके अपवाद नहीं हैं। बँगला में अनेक भाषाओं के प्रवादों (लोकोक्तियों), वाग्धाराओं (मुहावरों) का समावेश हुआ है। जैसा कि बंगाल के प्रख्यात विद्वान डा० सुशीलकुमार दे स्वीकार करते हैं, 'इस प्रकार हिन्दी, मैथिली और तो क्या अंग्रेजी आदि भाषाओं से अनेक प्रवाद वाक्य बँगला में ग्रहण किये गये हैं।'[1] हिन्दी कहावतों और मुहावरों का प्रभाव भी बँगला पर है। कुछ का रूपान्तर हुआ है, कुछ जैसे के तैसे अपना लिये गए हैं। डॉ० दे ने अपनी 'बाँगला प्रवाद' नामक पुस्तक में स्पष्ट रूप से लिखा है, "अथवा तथाकथित प्रवाद जैसे बाप का बेटा, सिपाही का घोड़ा बँगला-प्रवादों में मिल गये हैं। उनमें जो सुपरिचित वा नित्य व्यवहार में प्रचलित हैं केवल उनको ही चयन करके दिये गये हैं।[2] साहित्यिक बँगला की अपेक्षा हिन्दी की अधिक कहावतें बोलचाल की बंगला में ही मिलती हैं।

---

१. एइ रूप हिन्दी, मैथिली, एमन कि इंगरेजि प्रभृति भाषा हइचे औ अनेक प्रवाद-वाक्य हयत बाँगलाय गृहीत हइयाछे। (बाँगला प्रवाद, पृ० ७८)

२. अथवा तथाकथित हिंदी प्रवाद (जेमन, बाप का बेटा, सिपाही का घोड़ा) बाँगला प्रवादेर सामिल होइयागियाछे, ताहार मध्ये जेगुलि सुपरिचित वा नित्य व्यवहारे प्रचलित, केवल सेइगुलि चयन करिया देइया हइयाछे। (बाँगला प्रवाद, भूमिका, पृ० १)

प्रवाद साहित्य मानव-जाति की संचित ज्ञान-राशि है। अतः यह एक जटिल और विचारणीय विषय है कि मूल रूप में प्रवाद किस भाषा का है। उदाहरणतया संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश एवं किसी प्रान्तीय देशी भाषा का है अथवा अरबी, फारसी और अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं से प्रादुर्भूत होकर हिन्दी में उनका समावेश हुआ। अर्थात् जो अन्यान्य भाषाओं की लोकोक्तियाँ हिन्दी और बँगला में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में प्रवेश पा गयी हैं; जो लोकोक्ति साहित्य हिंदी की अपनी संपत्ति नहीं है; जो कहावतें अन्यान्य भाषाओं से हिन्दी में आई हैं; हिन्दी के माध्यम से बँगला में गई हैं; उनका हिन्दी के लिये आँशिक महत्व है। क्योंकि वह हिन्दी की उधार ली हुई सम्पत्ति है।

लेखक उन प्रवादों को ही प्राथमिकता देता है, जो हिन्दी ने ही स्वयं अपनी देशज परम्परा के अनुसार उत्पन्न की हैं। जो उपर्युक्त भाषाओं के नहीं हैं। केवल हिन्दी की ही अपनी साहित्यिक और प्रादेशिक परम्परा से प्रसूत हैं। अर्थात् हिन्दी की अपनी प्रान्तीय, क्षेत्रीय, भूभागीय भाषाओं विभाषाओं और लोक-साहित्य से प्रादुर्भूत हैं।

राजस्थानी, पश्चिमी हिन्दी (ब्रजभाषा, बाँगरू, खड़ी बोली) कन्नौजी, बुन्देली, पूर्वी हिन्दी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, बिहारी भाषा (भोजपुरी, मगही, मैथिली), पहाड़ी हिन्दी, मध्यवर्ती और पश्चिमी आदि विभाषाओं और इनके प्रादेशिक-साहित्य की कहावतों और मुहावरों को बृहत्तर-हिन्दी-साहित्य की ही संपदा माना जायेगा।

उर्दू की कहावतों और मुहावरों को भी हिन्दी के अन्तर्गत मानना चाहिये, क्योंकि बोलचाल की भाषा हिन्दी और उर्दू एक ही माँ (खड़ी बोली) की दो बेटियाँ हैं। जैसे—खुदा जब देता है तो छप्पर फाड़ कर देता है अथवा मियाँ बीबी राज़ी तो क्या करेगा काज़ी—आदि कहावतों को हिन्दी की ही माना जाएगा।

बँगला में आगत अधिकतर हिन्दी-लोकोक्तियों और मुहावरों को कुछ को शब्दानुवाद (Loan-translation)[1] की श्रेणी में रख सकते हैं। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से बँगला में आगत हिन्दी कहावतों का वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है:—

१. हिन्दी की वे कहावतें जो बँगला में ज्यों की त्यों (तत्सम रूप में) उद्धृत हैं।
२. जिनका अनुवाद या शब्दानुवाद बँगला में हुआ है।
३. जिनका बँगला में रूपान्तर या वेश-परिवर्तन हुआ है।

१. देखिये-शब्दानुवाद के लिए प्रस्तुत प्रबंध का द्वितीय अध्याय, पृ० ७५।

४. जिनका बँगला में हिन्दीकरण हुआ है।

५. सादृश्य—(क) सहजात सादृश्य (ख) प्रभावगत सादृश्य।

१. हिन्दी की वे कहावतें जो बंगला में ज्यों की त्यों (तत्सम रूप में) उद्धृत हैं—

हिन्दी और बँगला के उच्चारण भेद के कारण थोड़ा बहुत अन्तर आ जाना नितान्त सम्भव है। दोनों भाषाओं के उदाहरणों से यह तथ्य सिद्ध हो जाता है। किन्तु अधिकतर कहावतें बँगला में प्रवेश पाकर भी हिन्दी के समरूप ही रही हैं:—

१. आगे राह बतायके पाछे गोता देय। (बाँ० प्र०—बा० भा० अभि, पृ० २२०६)
२. आप भला तो जग भला। („ „ „)
३. आज अमीर, काल फकीर। („ „ पृ० ३०६)
४. अपने राम को रीज भजो चाहे खीज। („ „ पृ० २२०६)
५. अपने रुचि खाना पर रुचि परना। („ बँ० प्र० पृ० ५१७)
मन भाता खाना, जग भाता पहनना। (हि० क०, इ० हि० डी०, पृ० २८७)
६. ईद का चाँद। (बाँ० प्र०—बँ० प्र०, पृ० „)
७. ऊँची दुकान फीका पकान। („ बा० भा० अभि, पृ० २२०७)
ऊँची दुकान फीका पकवान। (हिं० क०, इ० हि० डी०, पृ० १८१)
८. उलटा चोर कोतवाल को डाटे। (बाँ० प्र०, बाँ० भा० अभि, पृ० २२०७)
९. एक पंथ दो काज। („ „ पृ० २२०७)
१०. एक बार जाय योगी दुबार जाय भोगी तीन बार जाय रोगी। („—बाँ० प्र०, सं० १००१)
११. कोयला का मयला छूटे यव, आग करे परवेश। („—बाँ० भा०अभि, पृ० २००८)
कोयला धोये ना उजरो लाशुन तजे ना बोय।
१२. घर की मुर्गी दाल बराबर। („ „ „)
१३. घर आवे अनघरी बात कहे बनाय जानिओ पूरो बैरी। („ „ „)
१४. चार दिन की चाँदनी फिर अन्धेरी रात। („ „ „)
१५. जब बरसता है तब गरजता नहीं जब गजरता है तब बरसता नहीं। („ „ „)
१६. जहाँ राम ताहाँ अयोध्या। („— बाँ० प्र, सं० ७२७४)

१७. जैसा को तैसा। (बाँ० प्र०, बाँ० भा० अभि, पृ० २२०६)
१८. डोली न कहार बीबी है तैयार। (" " ")
१९. दाता दान दे भाण्डारी का पेट पिराय। ("—बाँ० प्र०, सं० ४०४१)
२०. दाल में कुछ काला है। ("—बाँ० भा० अभि, पृ० २२०६)
२१. दिल्ली का लड्डू यो खाया सो पस्ताया यो न खाया सोवि पस्ताया। (" " " पृ० २२१०)
बूर का लड्डू जो खाया सो भी पछताया जो न खाया सो भी पछताया। (हिं० क०, हि० इ० डी०, पृ० २२१०)
२२. दुनिया का चाल भेड़ का पाल। (बाँ० प्र०—बाँ० प्र०, सं० ४१६७)
दुनिया में भेड़ चाल है।
२३. दूध का जला-माठा फूँक फूँक पीता है। ("—बाँ भा० अभि, पृ० २२१०)
२४. धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का। ("—बाँ प्र०, सं० ४५५४)
२५. नाच न जाने आंगन टेढ़ा। ("—बाँ भा० अभि, पृ० २२१७)
२६. नाम बड़ा दर्शन थोड़ा। (" " पृ० २२११)
२७. नेह घटत नित पर घर जाये। (" " ")
२८. पत्थर पूज के हरि मिले तो हम पूजें पहाड़, माला जप के हरि मिले तो हम जपें कुंदार। ("—बाँ प्र०, सं० ४८३६)
२९. पाँडेजी पछतायंगे वही चना गुड़ खायेगे। ("—बाँ भा० अभि, पृ० २२११)
३०. पितलक कटोरी काम नाहि आवल उपरही झकमक सार। (" " ")
३१. बगल में छुरी मुँह में राम राम। (" " पृ० २२१२)
३२. बाप का बेटा सिपाही का घोड़ा कुछ न हावे तो थोड़ा थोड़ा। ("—बाँ० प्र०, सं० ५६४६)
माँ पर पूत पिता पर घोड़ा अधिक नहीं तो थोड़ा थोड़ा। (हिं० क०—हि० इ० डी०,)

३३. बाबाजी के बाबाजी
तरकारि के तरकारि। (बाँ० प्र०---बाँ० प्र०, सं० ५६६७)
बाबा जी रो बाबाजी
तरकारि रो तरकारि। (राजस्थानी कहावत, पृ० ६१)
३४. भैंस के आगे बीन बाजावे
भैंस ठाड़ी पगुराय। (बाँ० प्र०—बाँ० भा० अभि, पृ० २२०४)
३५. मन चांगा तो कठोता में गंगा। („ बाँ० प्र०, सं० ६४०२)
३६. मरद की बात हाथी की दांत। („ बाँ० भा० अभि,--)
३७. माँगे भीख पूछे गाँव का जमा। („ „ पृ० २२१५)
३८. लड़े फौज नाम सरदार का। („ „ पृ० २२१४)
३९. सब लाल हो जायेगा। („ बाँ० प्र० सं० ८१७५)

२. जिनका अनुवाद या शब्दानुवाद बंगला में हुआ है--

हिन्दी की अनेक कहावतों और मुहावरों का बँगला में अनुवाद हो गया है। अनुवाद को सादृश्य का उदाहरण भी कह सकते हैं। कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं:—

४०. ईदेर चाँद। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र०, सं० ७७५)
ईद का चाँद।
४१. कानार देशे एक चोखाइ राजा। („ „ सं० १६८३)
अन्धों में काना राजा।
४२. कोथाय राजा भोज कोथाय
गंगाराम तेली। („ „ सं० २०४९)
कहाँ राजा भोज कहाँ गंगाराम तेली।
४३. खोदा के ना देखा जाय आक्कले
तार चे ना जाय। („ „ सं० २३०६)
खुदा देखा नहीं जाता अकल से तो
पहचानो। (हिं० का०, हि० इ० डी०, पृ० ५९५)
४४. घरेर मुर्गी दाल बराबर (बाँ० प्र०, बाँ० प्र०, सं० २२०८)
घर की मुर्गी दाल बराबर। (हिं० क०, वृ० हि० को०, पृ० ४:२)
४५. चोरेर दश दिन साधुर एक दिन। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र०, सं० ३१४७)
सौ दिन चोर के एक दिन साहूकार
का।
४६. छोटे मुँह बड़ कथा। („ „ सं० ३३१९)
छोटा मुँह बड़ी बात। (हिं० क०, वृ० हि० को, पृ० ४६७)

४७. जले वास करे कुमीरेर संगे वाद। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र० , सं० ३३९२)
दरया में रहना और मगर-
मच्छ से बैर। (हिं० क०, हि०इ०डी० , पृ० ३१७)

४८. जोर जार मुल्क तार। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र०, सं० ३४८७)
जिसकी लाठी उसकी भैंस।

४९. तुमि फेर डाले डाले
आमि फिरि पाताय पाताय। (,, ,, , सं० ३८४४)
तुम डाल डाल में पात पात।

५०. नियत गुने बरकत। (,, ,, , सं० ४६८८)
नियत जैसी बरकत।

५१. मायेर नाम चेराकी बाँदी
पूतेर नाम सुलतान खाँ। (,, ,, , सं० ६७३५)
माँ का नाम चेराकी बाँदी
पूत का नाम सुलतान खाँ।
माँ भटियारी, बाप फतेखाँ, बेटा
तीर अन्दाज। (श्री हरदत्त शर्मा)

५२. मानुषे मानुषे अन्तर कोई
हीरा कोई पत्थर। (,, ,, , सं० ६६७७)
मनुष्य मनुष्य में अन्तर कोई
हीरा कोई पत्थर।

५३. मारेर आगे भूत भागे। (,, ,, , सं० ६७५०)
मार के आगे भूत भागे।

५४. मागी मरद राजी कि करे काजी। (” ” ’ सं० ६५५४)
मियाँ बीबी राजी तो क्या करेगा काज़ी।

५५. मोलार दौड़ मसजिद तक। (” ” ’ स० ६९६८)
मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक।

५६. सदेश वाला पूड़ि खाय।
सब दिन समान जाय ना। (” ” ’ सं० ८१४१)

५७. सात काण्ड रामायण पढ़ी।
सीता कार भार्या ? (बाँ प्र,० बाँ० प्र० ’ सं० ८२६१)
सारी रात रामायण पढ़ी पर यही
नहीं पता राम कौन रावण कौन ?

५८. सात खून माप। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र० सं० ८३७१)
सात खून माफ।

५९. सेरेर ऊपर सवा सेर। (" " सं० ८४६१)
सेर के ऊपर सवा सेर।

६०. साँड राँड़ सन्यासी इह तिन
निये हल काशी। (" " सं० ८०४९)

६१. क्षुधा चायना सुधा-पिरीत
चायना जाति, घूमे चायना
खाट पलंग, वायु चायना वाति। (" बाँ०भा०अभि, सं० २१११)
नींद न देखे टूटी खाट—प्यास न
देखे धोबी घाट, भूख ना देखे बासी
भात, इश्क़ ना देखे जात कुजात।

३. जिनका बँगला में रूपांतर या वेश-परिवर्तन हुआ है—

कुछ हिन्दी लोकोक्तियों का बँगला में वेश-परिवर्तन हो गया है, यह प्रयत्न लाघव के कारण अथवा उच्चारण भेद से हुआ है। निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कुछ उदाहरण भेद देना अपेक्षित जान पड़ता है—

६२. आमि छाड़ित कमली छाड़े ना। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र० सं० ५९०)
हम छोड़ता है, कमली नहीं छोड़ता। (" " ")

६३. आज नगद कलधार। (" " सं० ३१२)
आज नगद कल उधार।

६४. आगे दुख परे सुख। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र० सं० २६७)
आगे दुख पीछे सुख।

६५. आड़े हाति लागे। (" " सं० ३५१)
आड़े हाथों लेना। (हिं०मु०, सं० शब्दसागर पृ० ४८)

६६. अढ़ाइ दिन की बादशाही। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र० सं० ३४६)
अढ़ाइ दिन की बादशाही।

६७. आध गगरी जल करै छल छल। (" " सं० ३५७)
अध जल गगरी छलकत जाय।

६८. आपन हाथ जगन्नाथ। (" " सं० ४५०)
अपना हाथ जगन्नाथ।

६९. आपनार घोल केउ टके वले ना। (" " सं० ४६६)
अपनी छाछ को कोई खट्टी
नहीं कहता।

७०. आलार नीचेइ आँधार। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र०, सं० ६४६)
दिया तले अँधेरा।

७१. एक काने शोने, एक कान बेरोय। (" " सं० ८९८)
एक कान से सुनना, दूसरे कान से
निकाल देना।

७२. एक दिन रुटि, एक दिन दाँत
चिरकुटि। (" " सं० ९७०)
कभी घी घना कभी मुट्ठीभर चना।

७३. ऐक बने दोइ बाघे। (" " सं० ९९५)
एक म्यान में दो तलवार।

७४. एक हाते ताली बाजेना। (" " सं० १०७०)
एक हाथ से ताली नहीं बजती।

७५. एलाकि काण्ड वा एलाहि कारखाना। (" " सं० १२०४)
अलाही कारखाना।

७६. कयला धूले ओ मयला जायना। (" " सं० १४०९)
कोयला होय ना सफेद चाहे
सौ मन साबुन होय।

७७. कयला मयला छूटे जब आग करे
परवेश। (" " सं० १४११)

७८. काजेर बेला भागे, खाबार बेला आगे। (" " सं० १५९३)
खाने को उन कमाने को मजनून। (हिं०क०, हि०इ०डी० पृ० १७४)

४. जिनका बँगला में हिंदीकरण हुआ है—

बँगला में कुछ प्रवाद ऐसे हैं जिनको हिन्दी का स्वरूप प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है। सम्भवतः यह हिंदी लोकोक्तियों के अनुकरण पर हुआ है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

७९. असती सती निन्दे, घृत निन्दे
मतवाला। वेश्या जैसे पुत्र निंदे
चोर निन्दे कोतवाला। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र० सं० १७७)

८०. आओ जाओ घर तोमरा
खाना माँगो दुश्मन हामरा। (" " सं० १९६)

८१. उठल बाइ दिनेक धाइ
चल चाचा मक्का जाइ। (बाँ० प्र०, बाँ प्र०, सं० ७८६)
८२. एस पार कि उस पार। (" " सं० १२०९)
८३. एक बाड़ीते सातकर्त्ता करे
केवल बेगुन भर्त्ता। (" " सं० ९९९)
८४. कत साध जायरे प्राण मुझको
छोड़ि परव करने। (" " सं० १३२४)
८५. कसबी कैसकि जरू, भेड़वा
किसका साला। (" " सं० १४७६)
८६. कामाये टुपिवाला, खाये धुतिवाला। (" " सं० १७४०)
८७. कोम्पनी का माल दरिया में डाल। (" " सं० २०७१)
८८. गोला खा डाला। (" " सं० २६४८)
८९. तेरी मेरी बाँगाली कदू शाकेर
कांगाली। (" " सं० ३८६१)
९०. *पहेला कुत्ता, बोले, दोसरा कुत्ता
घर घर बोले, तीसरा कुत्ता जरु का
भाई, चौथा कुत्ता घर जमाई। (" " सं० ६४६४)
९१. वा तेरा कुदरत वा तेरा खेल
छूँछूँदर लगाये चमेली का तेल। (" बाँ० भा० अभि०, पृ० २२११)
अजब तेरी कुदरत अजब तेरा खेल
छूँछूँदर के सिर में चमेली का तेल। (हि० क०, हि० इ० डी०, पृ० ५४२)
९२. हाथी पर हौदा घोड़ा पर जीन
जल्दि आओ जल्दि आओ वारेन
हेस्टिंग। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र० सं० ८६८६)
९३. हायरे आमड़ा, आँटि आर चामड़ा
कैसा फल आमड़ा। (" " सं० ८७७२)

५. सादृश्य—(क) सहजात सादृश्य (ख) प्रभावगत सादृश्य

हिन्दी और बँगला की बहुत लोकोक्तियाँ समान हैं, क्योंकि बहुत लोकोक्तियाँ तो दोनों भाषाओं को संस्कृत आदि अन्य भाषाओं से उत्तराधिकार के

1. *One day a man is a guest, second day a burden, third day a pest,

रूप में प्राप्त हुई हैं। अतः समानता होना स्वाभाविक है फिर भी कुछ सादृश्य प्रभाव के कारण भी आया है। दोनों भाषाओं की लोकोक्तियों सादृश्य के उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं :—

९४. अजगरेर दाताराम। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र० सं० २०)
अजगर करे ना चाकरी पंछी करे
ना काम, दास मलूका कह गये
सबके दाता राम।
अजगर के दाता राम। (हिं० क०, हि० इ० डी०, पृ० ३९)

९५. अमावस्यार चाँद, (बाँ० प्र०, बाँ० प्र० सं० १६४)
डूमरेर फूल। (,, श्री हरप्रसाद बागची)
ईद का चाँद। (हिं० क०, हि० श० सा०, पृ० ५९)

९६. आगुन खाये अंगारा हगे। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र०, सं० २६६)
आग खाये अंगारा हगे। (हिं० क०, ० हि० श०, पृ० १३३)

९७. आगुने घी डाला। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र०, सं० २४४)
अग्नि में घी डालना। (हिं० क०, वृ० हि० श०, पृ० १३३)

९८. अपनार पाये कुंगल मारना। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र०, ,,)
अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना।

९९. काना कूँजो खोड़ा तिन असतेर गोड़ा। (बाँ० प्र०, बाँ प्र०, सं० १६५४)
काना कूँजों डेंगरा हरामजादा
लेंगड़ा। (,, ,, , सं० १६५५)
काना खोड़ा कूँजो तिन चले ना उजो (,, ,, , सं० १६५६)
काना बोड़ा (खोंडा) एक गुन बाड़ा। (,, ,, , सं० १६५८)
सौ में सूरदास, हजार में काना
सवा लाख में ऐंचा ताना। (श्री हरप्रसाद बागची)

१००. कुकुरे पेट घी जरे ना। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र०, सं० १९०२)
कुत्ते को घी हजम नहीं होता।

१०१. खाली कलसीर बाजना बड़। (,, ,, सं० २२२७)
थोथा चना बाजे घना। (हिं० क०, हि० इ० डी०, पृ० २२७)

१०२. चाषा कि जाने मदेर सोयाद। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र०, सं० २९९१)
बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद। (हिं० क०, हि० श० स०, पृ० १३२)

१०३. चिरकाल समान जायना। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र० सं० ३०२६)
समय एकसा नहीं रहता।

१०४. चुरि ते चुरि आरो जारि जुरि। („ „ सं० ३०३८)
चोरी की चोरी और सीनाजोरी।

१०५. चोखे धूलो देओया। („ „ सं० ३०६२)
आँखों में धूल झोंकना।

१०६. छायाते भूत देखा। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र० सं० ३२११)
छाया में भूत दिखाई देना।

१०७ जलेर रेखा खलेर पिरीत। („ „ सं० ३४००)
ओछे की प्रीत जैसे बालू की भीत।
खल की प्रीति यथा थिर नाहीं। (हिं० क०, तुलसी रामायण,)

१०८. तेल वो पोड़ओ ना राधाबो
नाचवो ना। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र० सं० ३८७२)
न नौ मन तेल होगा न राधा
नाचेगी।

१०९. देशी कुकर मारहट्ठो बोल। („ „ सं० ४२६२)
कऊआ चले हँस की चाल, अपनी
भी चाल भूल गया।

११०. देशेर कुकुर विदेशेर ठाकुर। („ „ सं० ४२६४)
घर का जोगी जोगड़ा आन गाँव
का सिद्ध।

१११. नाक नेइ बेटी बेशर परे। („ „ सं० ४५३५)
नाक तो है ना, नथिया पहनने
की साध। (हिं० क०, हिं० इ० डी० पृ० ११५०)

११२. नामे धर्मदास, धर्मेर नाम नेई। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र० सं० ४६१६)
अंधा का नाम नैनसुख।
आँखों का अंधा नाम नैनसुख।
जनम का दुखिया नाम नैनसुख।

११३. निमक खेय निमकहरामी। („ „ सं० ४६७७)
नमक खाकर नमकहरामी करना।

११४. नौन खाई जार, गुन गाई तार। („ „ सं० ४६१५)
जिसका खाना उसी का गाना।

११५. नून तैल लकड़ी, (बाँ० प्र०, बाँ० प्र० सं० ३८८१)
तेल नून लकड़ी।
भूल गये राग रंग भूल गये जकड़ी
तीन चीज याद रही नोन तेल लकड़ी।

११६. नेंगटे घरेर चुरि। (,, ,, सं० ४७४६)
नंगा के घर चोरी।

११७. परेर पिठे बड़ मीठे। (,, ,, सं० ४६१३)
मुफ्त की शराब काजी को भी हलाल।
मुफत का चन्दन घिस मेरे नन्दन। (श्री हरदत्त शर्मा)

११८. पर भरसा करे जे जले डूब मरे से। (,, ,, सं० ४८५८)
दूसरे का क्या भरोसा ?

११९. पाँच जने जे खाने, भगवान से खाने।(,, ,, सं० ४९५१)
पंच परमेश्वर।

१२०. पुरातन पापी। (,, ,, सं० ५१३५)
पुराणा पापी।

१२१. पुरुष और स्त्री आगुन और घी। (,, ,, सं० ५१५०)
स्त्री और पुरुष का मेल आग।
और घी का मेल है।

१२२. बगले छुरी मुखे राम राम। (,, ,, सं० ५३९५)
मुँह में राम बगल में छुरी।

१२३. बड़ाई बूड़ी। (,, ,, सं० ५४४८)
बड़ी बूढ़ी।

१२४. बला सहज करा कठिन। (,, ,, सं० ७२६४)
कहना आसान है करना कठिन है

१२५. बेदिल नौकर दुश्मन बराबर। (,, ,, सं० ६०१२)
बेदिल नौकर दुशमन बराबर। (हिं० क०, हि० इ० डी०, पृ० ६३५)
भृत्यश्योन्तरदायण...... (हितोपदेश)

१२६. बेरालेर भागयशिके छंड़ा। (बाँ० प्र०, बाँ० प्र० सं० ६०३५)
बिल्ली के भाग से छींका टूटना।

१२७. यत देखे काला काला
सवाइ जैन बापेर शाला। (,, ,, सं० ७००६)
काला काला सभी बाप का साला।

१२८. राजा मारे दोहाई देव कारे । (बाँ० प्र०, बाँ० प्र० सं० ७५६५)
जबरदस्त मारे और रोने भी न दे ।

१२९. राजार रानी कानार कानी । („ , सं० ७५९३)
रानी को राजा प्यारा
कानी को काना प्यारा ।

१३०. साँड राँड सिडी तिन काशीर बैरी । („ „ , सं० ८०४९)
राँड साँड सिड़ी संन्यासी
इनसे बचे तो सेवे काशी ।

१३१. सब सुबुधेर एक दोयाल । („ „ सं० ८१७७)
सब सयाने एक मत ।

१३२. समय अनेक हय, असमय केओ ना । („ „ सं० ८१९५)
भले भले के सब साथी बुरे का
कोई नहीं ।

१३३. समुखे छेले मालेकि, पिछने हराम
जादकि । („ „ सं० ८२९५)
मुँह पर मुमानी, पीठ पीछे गँवानी । (हिं० क०, हिं० इ० डी० पृ० १११७)

१३४. सूद खोर और मद खोर समान । (बाँ० प्र०, बाँ० प्र० सं० ८४०४)
चोर चोर (मौसेरे) चचेरे भाई ।

१३५. हाकिम फिरे त हुकम फेरेना । („ „ सं० ८५९१)
हाकिम चला जायगा हुक्म रह
जायगा ।

१३६. हातीर पिछने कुकुर भूखे । („ „ सं० ८७०८)
हाथी के पीछे कुत्ते भोंकना ।

१३७. हुनुरे चीन हुज्जते बंगाल । („ „ सं० ८९१६)
हुनर में चीन हुज्जत में बंगाल । (हिं० क०,[हिं० इ० डी० , —)

लोकोक्ति-साहित्य मानव-जाति का सामूहिक उत्तरधिकार है । इसी कारण विश्व की अन्यान्य भाषाओं की लोकोक्तियों में अद्‌भुत समानता है । किन्तु कभी-कभी यह विवाद का विषय बन जाता है कि प्रथम अमुक लोकोक्ति का उद्‌गम किस भाषा में हुआ था । भारतीय भाषाओं के साथ भी यह नियम लागू होता है । हिन्दी और बँगला की अनेक लोकोक्तियों में समानता है । अतः निश्चयपूर्वक यह कहना सरल नहीं है कि मूलतः यह लोकोक्ति हिन्दी की है अथवा बँगला की । क्योंकि लोकोक्ति साहित्य दोनों की परम्परागत संपत्ति है । हिन्दी और बँगला की लोकोक्तियों में केवल भावों में ही समानता नहीं है, अपितु भाषा भी बहुत लोकोक्तियों में

समान है। हिन्दी लोकोक्ति-साहित्य का प्रभाव बँगला प्रवाद-साहित्य पर दृष्टिगोचर होता है। साधारणतः यह प्रभाव साहित्यिक भाषा में अधिक दृष्टिगोचर नहीं होता है। विशेषतः चलति या चलित भाषा (बोलचाल की भाषा) में अधिक है। इसका कारण हिन्दी का देशव्यापी प्रचार और प्रसार है। साहित्यिक रूप में हिंदी समस्त भारत और पाकिस्तान में प्रचलित नहीं है, किन्तु बोलचाल के रूप में इसका प्रसार काश्मीर से कुमारी अंतरीप तक व पेशावर से ब्रह्म देश की पश्चिमी सीमा तक है।

अतः हिन्दी या उर्दू के कारण अनेक हिन्दी लोकोक्ति और मुहावरे भारत की अन्य भाषाओं में प्राप्त होते हैं। बँगला में भी बोलचाल की हिंदी या उर्दू के कारण अनेक लोकोक्तियों और मुहावरों का समावेश हुआ है।

३. हिन्दी-गद्यावतरण और पद्यावतरण

(१) हिन्दी-गद्यावतरण

बँगला कथा-साहित्य (उपन्यासों और कहानियों) में कहीं-कहीं टूटी-फूटी हिन्दी के गद्यावतरण मिलते हैं। बँगाल के सामाजिक उपन्यासों में यह प्रवृत्ति अधिक स्पष्ट है। इसका कारण यह है कि बंगला की जनसंख्या का निर्माण अनेक तत्वों से हुआ है। हिन्दीभाषी लोगों की संख्या भी उसमें बहुत है। विशेषकर बंगाल के व्यापारिक और औद्योगिक केन्द्रों में भारत के सभी राज्यों के निवासी रहते हैं। कलकत्ता केवल बँगलाभाषी नगर ही नहीं है, अन्य भाषाओं का भी वहाँ बोलबाला है।

जब बँगला-लेखक किसी यथार्थ सामाजिक अवस्था का चित्र अंकित करते हैं, तब अवचेतन अवस्था में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में अन्य भाषाभाषी पात्र भी उपस्थित हो जाते हैं। तब पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग होता ही है। बँगला उपन्यासों में अंग्रेजी के साथ-साथ यत्र-तत्र हिन्दी की छटा भी दिखाई देने लगती है। क्या बंगाली बाबू, क्या दरबान, नौकर-चाकर, सिपाही और निम्न वर्ग के लोग कभी-कभी उस भाषा का प्रयोग करते हैं जिसे हम बँगला-मिश्रित हिन्दी या बंगाली हिन्दी कह सकते हैं।

बँगला के कुछ प्रसिद्ध कथाकारों (उपन्यास लेखकों तथा कहानीकारों) के ग्रंथों से उदाहरणस्वरूप कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की गयीं हैं :—

१. **श्री अन्नदाशंकर राय**—श्री अन्नदाशंकर राय की 'चतुरालि' नामक पुस्तक में कुछ हिन्दा-प्रयोग इस प्रकार हैं :—

रेवा—'जोर से बँडिग बाँधते-बाँधते' (चतुरालि, पृ० २)
'कोइ है गाड़ी बोलाओ' (,, पृ० ३)

रेवा— 'ड्राइवर को बोलाओ, सामान ले जायेगा (चतुरालि, पृ० ९)

माँगिराम योधपुरिया—'हुजूर कलकत्ता शहर में' (चतुरालि, पृ० १२)
'सेखानकार, इमाम तो बिलकुल लाल बन गया
हामा के देखे पूछल ।'

२. **श्री केदारनाथ बंद्योपाध्याय**—श्री केदारनाथ बंद्योपाध्याय के 'भादुड़ी-मशाय' नामक उपन्यास में कुछ हिन्दी गद्य के अंश हैं ।

'आश्रम देड़ माइल दच्छिन में' (पृष्ठ ८)

हिन्दी बंगला मिश्रित भाषा का नमूना इस प्रकार है :—

'बाँगाली, बाँगाली हामार बड़ा प्रिय आसे (आछे) एत्ना भक्ति कोइ जातेर नेइ विच विच में आओ ।' (पृष्ठ ८६)

३. **श्री गोपालचन्द्र राय**—श्री गोपालचन्द्र राय की 'शरतचन्द्रेर बैठकी गल्प' में कुछ ये अवतरण हैं :—

'कार्य नेइ हुजुर । कसुर माफ किजिये । तब भागे आमि ।' (पृष्ठ १२५)

४. **श्री गोपाल हालदार**—श्री गोपाल हालदार की पुस्तक 'आर एक दिन' में नमूना इस भाँति है :—

'कि ठिक नेइ है, कामरेड, बुलकुन —
घर काहाँ ? याँहा मेरा काम, उहा मेरा धाम ।' (पृष्ठ १४७)
'मजदूर की कोइ मुलुक नेहि हय'—विना एक मुलुक,—हमारा सोवियट देश—आर याँहा मेरा काम वहाँ मेरा धाम । हाम बांगाल का मज़दूर है—इउपीका का किसान, यह लाहौर नेहि ।' (पृष्ठ १६०)

५. **श्री ताराशंकर बंद्योपाध्याय**—श्री ताराशंकर बंद्योपाध्याय में यह प्रवृत्ति अधिक है । उन्होंने अपने एक उपन्यास का नाम ही 'दिल्ली का लाड्डू' रक्खा है । उनके 'अभियान' नामक उपन्यास में कुछ हिन्दी गद्यांश इस प्रकार हैं :—

'आखड़ा में केंउ नेहि गिया रे ? तबियत खाराप हुआ ।' (पृ० ४१)
'आपका घर कहाँ है?' (पृष्ठ ४२)
'बरफ का माफिक हिम हय । मां । आरे तब केंउ नेहि गिया ? ए ओ बताओ । केया ? इस वक्त पड़ रहा ? आ, लिखा पढ़ि ? क्यों ? तुम गमस्ता होओगे । उल्लू काँहा के ।' (पृष्ठ ४२)

''आँगुल वाड़िये गाड़ीवान टोके देखिये से वलले, ओहे हामि वारण करलाम दफे दफे वारणे करलाम माठके भेतर मत जाओ, गाड़ी खाड़ा राखो मोटर के

पीछे। मोटर चला जायगा तो गाड़ी चालाओ। नेहि शुना हामारा बात। बोला कि धूला होगा, और उसका बात देखेन तो देखे तो—माठेर भितर केमन मजा करे याव। देखन तो फिन हाम काना किया। आप हर्न दिया, डर के मारे गरू मार दिया लाफ। वास उलट गिया गाड़ी। आब आप बोलिये तो उसका कसूर है कि नेहिं।" (पृष्ठ ४६)

× × ×

"केस हुआ? और चार आदमी के जेल होगेया। लेकेन केस में बाप के देना हो गेया। गाँव में पतित हुया। हाम दिया आड़ाइ शो रुपया उसके बाप के। ओ बेटि को दिया हामार साथ। हामारा बाड़ी में झिके काम करके।" (पृष्ठ ५०)

× × ×

'इ गाड़ी किसका है ? आप तो ड्राइवर हैं—लेकिन गाड़ी हामारा है।—टैक्सी है, हाँ-हाँ ! भाड़ा के मोटर गाड़ी हासले लोकटि जानता है। लेकेन इधार काँहा जायगा टैक्सी ?'

—बाड़ा जाता है, गिरवरजा गाँव जानता आप ?

—हाँ हाँ ! ओहि हमारा गाँव।

—हाँ हामि शुनि येछि कि छत्रि लोगेर एक लेड़का श्याम बाजार में टैक्सी किया है? हमारा नाम आप नेहि शुना ? शुखनराम साहू शहर श्यामपुर में हमारा गद्दी। तामाकुल चावल के कारबार। गिरवरा में हमारा तिन चार खरिद्दार खातक हैं। (पृष्ठ ५१)

× × ×

श्री ताराशंकर बंद्योपाध्याय के 'धात्री देवता' नामक उपन्यास में भी निम्न-लिखित गद्यांश हैं :—

"पंजाबी वलिल, घोड़ा बेचने आसियाछि हामलोक। बाबू हामारा पाश एक घोड़ा लिया। बहुत रोज हुआ, ओ घोड़ा मालूम होता वातेल हो गेया। नया बहुत अच्छा घोड़ा हामारे पाश।" (पृष्ठ ७१)

× × ×

"बहुत रोज के बाद, सात वरिष हो गेया। मालिक बाबू हुजुर हामरा काँहा है। सेलाम तो भेजिये। रमजान शेख आया है। ओ घोड़ा हामारा किधर है।"

(पृष्ठ ७२)

× × ×

"ओहि काला घोड़ाठो हाम ले आये थे। हामारा मालिकजादा का काँहा देउमान साब, एहि, हाँ हाँ, हाय बहुत छोटे देखा था। सेलाम हामारा हुजुर मालिक, हामारा—कसुर तो माफ होय जनाब, हाम आपको पहलेइ नेइ पछाना।' (पृष्ठ ७२)

६. **श्री नारायण गंगोपाध्याय**—श्री नारायण गंगोपाध्याय के 'मन्द्र-मुखर' से कुछ उदाहरण इस प्रकार है :—

'ठारिये ठारिये बाबू हाम देखला देता उसको' (पृष्ठ १०३)

इनकी शिलालिपि' में कुछ उदाहरण इस तरह हैं :—

'महात्मा गाँधी की जय' (पृष्ठ ४०)

'छि: छि: एत्ता जंजाल'

'एत्ता बड़ा उठान मे एत्ता जंजाल ।' (पृ० ७१)

'झंडा ऊँचा रहे हमारा ।' (पृ० ६३)

'मेरे सोने कि हिन्दुस्तान
तू हामारा दिल् का रोशनी, तू हमारा जान ।' (पृ० ६४)

७. **श्री बंकिमचन्द्र चटोपाध्याय**—श्री बंकिमचन्द्र चटोपाध्याय के 'राजसिंह' में हिन्दी के गद्यावतरण इस प्रकार हैं—

'खा ! बाबा जान ! खा खा लेओ ! पैसा कावाव रूपनगर से आने के वक्त एक रोज बाना था और कभी नेहिन ? बना ।'

'आम्मा जी । रूपनगर का यो केस्सा आप् फरमायेगे बोली थी ।'

'चुप् ! वह वात् मुह् में मत लाओ बाप्जान् । मेय्ने किया बोली थी ? खेयाल में बोली थी शायेद् ।'

'चुप रहेंगे काहे माजी ? यैसा किया बात होगी ?'

मा—शुन् के का माफिक बात नेहिन बाप्जान ।

छेले—तब रहने दिजिये ।

मा—और कुछ नेहिन, रूपनगर वाली कुमारीन कि बात् ।

छेले—वह कुमारीन बड़ा खूबसूरत ? येह पैसा पुषिदा बात ?

मा—सो नेहिन—बाँदी कि बड़ा देमाग । इया आल्ला ! मेयने किया बोल चूका ।

छेले—काँहा रूपनगर गड़, काँहा उँहाका राजकुमारीन् कि देमागइये वात् आप्का बोलनाइ किया जरूर्—हामारा शुननाइ किया जरूर ?

मा—स्रेफ देमाग बाप्जान् । लौण्डी ने बाद्शाह आलम् को नेहिन मान्ती ।

छेले—बादशाहे आलम को गालि दिइ होगी ?

मा—गालि—बाप्जान् ! उस्से भी जबर कुछ ।

छेले—उस्से भी जबर ! किया हो सक्ता ? बादशाह आल्म को और मार सकता नाइ ।

मा—उससे भी जबर !

छेले—मार से भी जबर ?

मा—बाप्‌जान—और पूछिये मत—मेयने उसकी निमक् खाइन्।

छेले—निमक् खाये हो ! किसतरे मा ?

मा—आशरफि दिन् ?

छेले—काहे माजी ?

मा—उस्की गुनाह के बात किसिका पास बोल्ना मनोसेव नेहिन एस्लिये।

छेले—आच्छा बात है। मुझको एकठो आशरफि वख्शिश फर्माइये।

मा—काहे रे बेटा ?

छेले—नेहिन् त मुझको बोल दिजिये बात्‌ए किया है ?

मा—बात् और किया, बादशाह का तस्वीर-तोरा। तोरा। बात्‌ठो आव्ही निकली थी।

छेले—तसवीर भाँग डाला ?

मा—आरे बेटा, लाथ् से भाँग डाला। तोरा। मेयने निमकहारामी कर चुका।

छेले—निमकहारामी किया है इसमे, तोम मा, मेयने बेटा ! हामरा बोल्ने से निमकहारामी किया है ?

मा—देखिओ बाप्‌जान्, किसइको वलिओ मत।

छेले—आप खेतेरजामा रहिये—किस्इका पास् नेहिन बोलेंगे।

(राजसिंह, पृ० १६, १७)

× × ×

"हजरत् बेगम साहेबा एस् वक्त कुच मजेमे होयेंगी" (पृ० २६)

"चुप रह बेतमिज। मेरे नाम हज्रत इमलि बेगम।

निर्मल—जान्ते नेहिन ? वह हामारि बेटी लाग्ती है। देख, आगाड़ी सोने का तिन कलस यो हाउदे पर जलूष देता हय, वस् पर जेब-उन्निसा बैठी है। (पृ० १४८)

बंकिम बाबू के 'चन्द्रशेखर' में भी कुछ हिन्दी का नमूना है:—

"हम आया है, किया बोलता है ? (चन्द्रशेखर, पृ० १५)

"पाकड़ो। पाकड़ो हामारा विवी।"

"पाकड़ो। पाकड़ो फस्टर साहाब इनाम देगा" (पृ० ७०)

"दो एक बात हुआ"

"दो बात हुआ, दो बात छोड़ कर तीन बात हुआ।"

"बाबू साहाब, इये बेतमिज आदमि को विदा दिजिये।" (पृ० ८६)

बंकिम बाबू की 'देवी चौधुरानी' में भी कुछ नमूना है:—

"कौउ बदजात? तोम् गोइन्दा नेहि ? (देवी चौधुरानी, पृ० १२४)

बंकिम बाबू की 'सीताराम' पुस्तक में भी कुछ हिन्दी के उदाहरण मिलते हैं—

"धन्य रायजी, धन्य राय महाशय। जय काजि साहेब का।"

"तोम, कौन हो रे ?" (पृ० १६)

"तोम काहे हिंया बैठ् के तोप छोड़ते हो ?"

"आरे मुसलमान आने से हम लोग आभि होंकाय देते—तोम काहेको दिक् किये हो ? चल हुजूर में याने होगा।" (पृ० ७६)

"कोतवाल साहेब कि हुकुम से तोम्को उन्का पास ले जायेंगे।"

"हाँ, हामलोग त इस्को पह्चान्ते हैं। येत हमारा गोलन्दाज पियारी लाल हैं—ये काँहा से आय ?"

"ये आदमि त अच्छा बोलता है। यो तोप्का पाश रहेगा, उसिको ले जाने को हुकुम है। एइ मुरदार तोप्का पाश है—उसको आलवत् ले याने होगा।"

"जय महाराजाधिराकि जय।"

"जय श्री सीताराम राय राजा बाहादुर कि जय।"

"जय लक्ष्मीनारायण जी कि जय।"

"कापड़ उतार तेरि गोश्त टुकड़ा टुकरा करके हाम दुकान में बेचेंगे।" (पृ० १३३)

८. वनफूल (बलाई चाँद मुखोपाध्याय)

बलाइ चाँद मुखोपाध्याय के 'जंगम' के चतुर्थ-पंचम खण्ड में हिन्दी के गद्यांश हैं :—

"हड़बड़ में ये हुजुर, भूख भि लगा था, हालवाइ को कहा—जल्दि करो भाई। ओ भूजते चला। मैं खाते चले। कुछ देर में खेयाल पड़ाइ तो गलति काम कर रहे हैं, इ शाला तो काच्चा पुड़ि खिला रहा हमें। खेयाल होने का साथ हि खाना बंद कर दिया—मगर तबभि भोगना पड़ा डाक्तर बाबू।"

"क्या हुआ ;"

"कच्चा आँटो पेटमें लसक् गिया।"

"लसक गिया ?"

"लसक गिया। दो रोज दस्त नहि उतरा, वाइ तक भि गायेल ठसम्-ठोस। एक डाक्टर को बोलयें। ओ आकर एक सुइ दिहिन, एक पुड़िया दिहिन। पाँच रुपया फिस लेहिन। नेहि उतरा। दूसरा एक डाक्टर बोलयें। इस डाक्टर ने दो सुइ दिहिन। एक शिशि दावाइ दिहिन फिस लिहिन आठ रुपिया। कुछ नेहि हुआ। पेट बेशि फूला दिहिस। मैं आर देरि नेहि किया, तड़ाक शहर चले गये। डाक्टर चौधुरी को बोलायें। डाक्टर चौधुरी अच्छाह तरेसे देखिन, पेट में यन्तर बैठाइन, बांमे फिता लप्टाके प्रिसार देखिन। पेसाब जायिन किहिन—पाँच रुपया फिस देना पड़ा पेशाब जायिन का वास्ते। देख शुनकर डाक्टर चौधुरी कहिन, देखो—भाई

इसको दो तरेका जक्सन है मेरा पास एक बड़ा, एक छोटा। बड़ा जक्सन देने से चार घन्टों का अन्दर पाखाना उतर जावेगा। छोटों में दो रोज लगेगा। बड़ जक्सन का किमत बोला आठ रुपैया, छोटे का पाँच रुपया, अब तुमहारा क्या ख्वाँइस कहो ? म्यैं कहा, बड़ जक्सन दीजिये हुजूर, जान या रहा हुये। इहा बड़ा एक जक्सन चूतड़ में घोंत दिहिन। और मिशरिके लायेक एक दावा ६ चाम्मच लेके गरम पानि में घोर के पिला दिहिन। जहर के लायेक तिता। मगर हो गिया ? एकदम साफ—दोहि घन्टे में !

"बेशक?"

"आज हुजुर मेरा घर पर तशरिफ लाइये।" काहे ?

"मेरा जानाना को एक जक्सन देना पड़ेगा ?"

"क्या हुआ उनको ?"

"ओ अब चलति फिरति है, तब तो ठिक हय, कोई तकलिफ नहि। मगर जबहि ओ बाच्चे को गोद में लेकर बैठि, तब तक सिधारहि तब तकतो ठिक रहि, मनर जबहि दूध पिलानी को लिये सामनेह झुकि कच—

"एक घन्टो बाद आओयेगे।"

"एकठो कड़ा जक्शन देने पड़ेगा।"

"आच्छा !"

"बात तब पाक्का ?"

"पाक्का।"

—जंगम चतुर्थ ओ पंचम खण्ड, पृ० १७७-१७८।

९. **सतीनाथ भादुड़ी**—सतीनाथ भादुड़ी की पुस्तक 'जागरी' में भी कुछ हिन्दी की छटा यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है :—

"और ऊँचा, और भी ऊँचा, जरूरत पड़े तो आसमान तक भिड़ा दो"

(पृष्ठ ३)

"लकड़ी मिलेगा, ओ सब महाराष्ट्र में किजिओ, इहाँ उसब नहीं चलेगा, राष्ट्रभाषा बोलने नहीं आता है। पूना सहर को पूँड़े बोलता है। आउर हिन्दी में बात बोलने का सउख है।" (पृष्ठ ४४)

१०. **शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय**—शरतचन्द्र चटोपाध्याय की 'पथेर दावी' नामक पुस्तक में एक दो जगह हिन्दी की पंक्तियाँ उपलब्ध होती हैं :—

"कैया सिगजी खबर भालो ?"

"आपको कंहि जाना दुनिया में कोई रोक सकता।" (पृ० २९७)

११. **श्री शिवराम चक्रवर्ती**—श्री शिवराम चक्रवर्ती की पस्तके 'अथविवाह

घटित' में 'हिन्दी में बात लाओ' एक अध्याय ही लिखा गया है :—

"नेहि नेहि—आमरा नेहि—हाम्। रास्ता तो नहि मिलती। आमि एइ कथा वल्छि ये हाम् खो गयी।" (पृ० ६०)

"बँगाली लोक किसतर से बँगला बोलति, शिखना बहुत मुश्किल है।" (पृ० ६०)

"हिन्दी में बातलाओ। फिन् बोलो।" (पृ० ६६)

"और तुम वहाँ बैठकर, हियाँ आ याओ। इधर आके बैठो।

"आहा। नमस्ते, क्या अपु मजेमें है तो। तबियत खुश है।" (पृ० ६८)

"हाँ! मेटर सिनेमा को पाश पहलेने देखा, आप्को आशक मे हाम् फाँस् गई।"

"आशक् में हाम् फाँस गइ—उहि रोज़ से मेरा जिन्दगि आपहिको चरण में लुटा दिया है।" (पृ० १०१)

इनके अतिरिक्त श्री प्यारीचन्द्र मित्र के 'आलालेर घरेर' दुलाल, श्री परशुराम की 'कज्जली', श्री प्रभातकुमार मुखोपाध्याय की कहानियों, श्री पाँचकड़ी चटोपाध्याय की 'पंचपल्लव', श्री प्रेमेन्द्र मित्र के 'कथागुच्छ', श्री विभूतिभूषण मुखोपाध्याय की रचनाओं और श्री सरोजकुमार राय चौधरी के 'शृंखल' आदि में हिन्दी के इस प्रकार के अंश उपलब्ध होते हैं। उर्दू के भी इस प्रकार के कुछ अंश बँगला पुस्तकों में दृष्टिगोचर होते हैं ?[1]

बँगला नाटकों में भी यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। कुछ पंक्तियों से प्रकाश डालना आवश्यक है :—

१. **श्री दीनबन्धु मित्र**—श्री दीनबन्धु मित्र की 'नील-दर्पण' में इस तरह के कुछ उदाहरण हैं :—

"तोम भय भय करके हाम्को डेक किया, नील कर साहेब का कोई काम में डर है, तोमरा को मुनासिब ना होय काम छोड़ देओ।" (पृ० १०३)

---

१. देखिये—"बहुत मेहरबानि है आपकि। अब् देखिये डाक्टर साब्। आप नसिब का जिक्र करते थे, खोदा उस बातको मन्जूर कर रक्खा है, न-मालुम कबसे। खएर, आप् तो जल्से में तश्रिफ् लायेंगे।—'अजी। हामारा जिक्रका जिकर छोड़ दिजिये, खाँ साव्। हाम्त बिलकुल ना-लायेक है और आपके अधिन् हैं। आप बुजुरग है, आपका मुँह से जो बात् निकलेगि उसि बात कायेम हो जायगि। जी हाँ, जलसे में जरूर हाजिर रहूँगा—"

—स्मृतिर अतले, पृ० १६३।

श्री सीतानाथ—'काव्य-विनोद' के प्रहसन 'शालाबाबू' से एक उदाहरण दिया जाता है :—

"गोलमाल मत करो, गाड़ी छोटने का टाइम हो गिया, भागो हियाँ से।"
(पृ० ४३)

३. **श्री अपरेशचन्द्र मुखोपाध्याय**—इनके 'शुभदृष्टि' नाटक में भी कुछ पंक्तियाँ हैं :—

"बाबू बोले एकठो आओरत आछे उसको वास्ते गाड़ी बोलाने। काँहा आउरत, हियाँ एक आउरत पड़ा है। कौन ठिकाने में गाड़ी बोलाता होने ? और शौन्ने नेहि मिलता।"
(पृ० ८)

जिस हिन्दी में अंग्रेज बोलते थे उसका प्रमाण भी बँगला के महान् साहित्यकार श्री माईकेल मधुसूदन दत्त के 'शर्मिष्ठा' नाटक में मिलता है :—

सार—हालो ! चउकीदार—एक आदमी उद्धार दौड़के गिया नेइ ?

चौकीदार—नेइ छाब, हामतो कुच नेहि देखा !

सार—आलबत् गिया। हाम डेका, टोम् जल्दी दउड़ के जाओ, उष्टारफ डेको, जाओ, जल्दी जाओ, इयू सुअर।

चौकीदार—कोन हेय रे खाड़ा रेह।

सार—इधर—इ यू फूल—

चौकी०—हाँ, छाब, इधर !

(शाला चोट्टा, तोमारा वास्ते दौड़ के हामारा जान गिया।)

सार—आइयय, टोम् चोट्टा हैय। है इधर गे-गे-गे—चुपराओ, इह यू निगर डेक लाओ टोमारा बेगमें किया हैय।

चौकी०—खाड़ा रओ, शाला।

सार—इहे बेगमें और किया, हेम डेके गा। केस्का चोरि किया ? उस्को ठाने में ले चलो। सो नेइ होगा, टोम् थाने में चलो—किया ? टोम जोगे नेइ, आलबट्ट जाने होगा।

चौकी०—चल्वे थाने में चल।

सार—किया ? तोम नेइ मानटो। हाम् डेकटो उस्का कुच कसूर नेइ, उस्को छोड़ देओ।

चौकी०—तोम् हाम्को तो कुच दिया नेहि—आच्छा जाओ, चला जाओ।

चौकी०—हाँ, हाँ ए बाड़ी में—ओ बड़ा मजाकि जाग्गा हेय !

सार—डेको चौकीदार, रोपेया का बाट !

चौकी०—जो हुकुम—खाविन्।

सार—आवि चलो।

(पृ० १४—१५)

वास्तव में यह एक प्रकार की विचित्र हिन्दी है, जो हिन्दी व्याकरण की की दृष्टि से अशुद्ध है। इसमें लिंग—वचन का कोई ज्ञान नहीं है। इस प्रकार की हिन्दी पाठक के लिए हास्यास्पद है। फिर भी बँगला लेखकों ने हिन्दी की गद्य शैली के अनुकरण का सफल प्रयत्न किया है और यह प्रवृत्ति अधिकांश बँगला लेखकों में पाई जाती है। वार्तालाप के प्रसंग में कहानियों, उपन्यासों एवं नाटकों में इस भाषा का प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार की बोलचाल की हिन्दी बंगाली-संस्कृति, बँगला भाषा और साहित्य का अभिन्न अंग मानी जा सकती है। क्योंकि हिन्दी के अनेक रूप हैं। हिन्दी प्रदेश में उसका कुछ और रूप है, अहिन्दी क्षेत्रों में भी कोई न कोई उसका रूप है। इसी कारण भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं के साथ हिन्दी का भी एक रूप होता है। यह प्रदेश विशेष की जनता के उच्चारण पर निर्भर करता है, जिस प्रकार अँग्रेजी का रूप संसार के अन्य देशों में कुछ-कुछ बदला हुआ है, चीन में वह 'पिडगिन इंगलिश' और अमेरिका में 'अमेरिकन इंगलिश' और भारत, में 'बाबू इंगलिश' कहलाती है उसी तरह हिन्दी बोलचाल के रूप में अखिल भारतीय स्तर पर प्राप्त होती है। पंजाब में उसका कुछ और रूप, गुजरात में कुछ और ही रूप एवं बंगाल में भी हिन्दी का उपर्युक्त रूप उपलब्ध होता है।

(२) हिन्दी पद्यावतरण

हिन्दी पदों का समावेश बँगला में परम्परा से ही होता आया है। यह दो रूपों में हुआ है। एक तो स्वयं बँगला कवियों ने हिन्दी पदों की रचना की है। दूसरे हिन्दी कवियों के पदों का मेल बँगला में हो गया है। आधुनिक काल में भी गद्य-पद्य दोनों साहित्यिक विधाओं में हिन्दी पद्यावतरणों का सन्निवेश हुआ है। कुछ पद तो भाषीय अनुकरण पर, कुछ हिन्दी संगीत के आधार पर लिखे गये हैं एवं कुछ पद दृष्टान्त रूप में उद्धृत हुए हैं। हिन्दी सन्त साहित्य और भक्त साहित्य में से ही अधिक हिन्दी पद बँगला में गृहीत हैं। उदाहरणस्वरूप कुछ पदों का यहाँ देना आवश्यक है।

१. **बँगाली कवियों द्वारा विरचित हिन्दी पद—**

बंकिम बाबू के कुछ पद निम्न प्रकार हैं :—

गोरी समझे भसमभार,
पियारी समझे कालो।
शवी समझे बीरबाला॥
गंगा गर्ज्जन शंभु जटपर
धरणि बैठत वासुकी फन में।

पवन होयत अगुन-सखा
वीर भजत युवती मन में ।।

(राजसिंह, पृ० १८)

× × ×

शरम् भरमसे पियारी,
सोम रत वंशीधारी,
झुरत लोचन से ।
न समझे गोपकुमारी,
येहिन् बैठत मुरारी
विहारत राह तुमारि ।।

(राजसिंह पृ० ७५)

सोने की पिंजिरा, सोने की चिड़िया,
सोने कि जिंचिर पयेर में,
सोने की चाना, सोने कि दाना
मट्टि केउं सेरेफ् खयेर में ।।

(राजसिंह पृ० १२६)

× × ×

श्री द्विजेन्द्रलाल राय ने भी एक-दो हिन्दी पदों की रचना की है। ये इस प्रकार हैं :—

गिरि - गोवर्धन - गोकुल चारि,
यमुना तीर निकुंज - विहारी,
श्याम, सुठाम, किशोर, त्रिभंगिम
चित्त- - विनोदन - कारी ।
पीताम्बर, वनपुष्प विभूषण,
चन्दन चर्च्चित, मुरारी - धारी,
यिसि वरसे मोहित वृन्दावन,
उछलत यमुना वारि ।
नूपुर-शिंजित, नृत्य विमोहन,
कपट - चलत - चतुराली,
प्रेम निमीलित नयन-विलोल
कदम्ब जले वनमाली ।
नन्दकि नन्दन माथि यशोदा,
नयनांजन ब्रजबाल पियारी,

जिसि लागी थि कुल छोड़ि राधा
आकुल सब ब्रज नारी ।
कंस विनाशक, मथुरापति जय,
निखिल - भकत - जन शरण,
दुर्ज्जन - पीड़क, सज्जन पालक,
सुर - नर - वन्दित - चरण ।
जय नारायण, श्रीश जनार्दन,
जय परमेश्वर, भव - भय हारी,
जय केशव, मधु सूधन, जय
गोविन्द मुकुन्द मुरारि ।

(द्विजेन्द्रलाल ग्रंथावली, पृ० ५५३)

तथा—

आरे आरे सेइंया इसमें केया काम ।
इसि जाड़ा में मुझको कुछ देना इनाम ।
हातमे दे चुड़ि आउर कानमे दे दूल,
गलाम दे हासलि आउर नाकके दे फूल,
मेरि जान हो जायगि बड़ि मस्गुल,
बड़ि पियार तोमको करेंगी हाम् ।

(द्विजेन्द्रलाल ग्रंथावली, पृ० ५८४)

इस प्रकार की हिन्दी में पद-रचना की प्रवृत्ति अन्य बंगाली साहित्यकारों[1] और विशेषकर बँगला संगीतकारों[2] में दिखाई पड़ती है ।

२. **हिन्दी कवियों के उद्धृत पद**—

विषय में विस्तार-भय से हिन्दी कवियों के पदों का उदाहरण देना आवश्यक हो सकता है । अत: किंचित परिचय देना ही पर्याप्त है । बँगला के अनेक ग्रंथों में हिन्दी कवियों के पदों को उद्धृत किया गया है । श्री क्षितिमोहन सेन के ग्रंथों,

१. श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का एक गीत इस प्रकार है :—

आव् दाड़ि चाप् दाड़ि, बुल बुल चस्मेदार दाड़ि-
कुल्पावका एक काँच्चा, ओहि दाड़ि सबसे आच्छा ।

(दाड़ीर गान-हालका हासिर गल्प, पृ० २)

२. देखिये—रूपचाँद पक्षी के हिन्दी गीत, बाँगालीर गान, पृ० ४१५ । महाराज विजयचन्द महताब, पृ० ४८७, गिरीशचन्द्र घोष, पृ० ५८६, सत्येन्द्रनाथ ठाकुर, पृ० ६०६, बिहारीलाल चटोपाध्याय, पृ० १०१८ ।

श्री सतीनाथ भादुड़ी के 'ढ़ोड़ाई-चरितमानस'[1] श्री देवेशदास के 'रजवाड़ा' और 'राजसी' आदि में हिन्दी पदों को गृहीत किया गया है।

हिन्दी संत और भक्त-साहित्य का व्यापक प्रभाव बंगाल में रहा है। कबीर, तुलसी और मीराँ पर अनेक स्वतंत्र ग्रंथ लिखे गये हैं। श्री शंकरनाथ राय के 'भारतेर साधक', अध्यापक उपेन्द्रकुमारदास के 'भक्त कबीर' आदि ग्रंथों में भी हिन्दी पदों का समावेश किया गया है। तुलसीदास के ग्रंथों का केवल अनुवाद ही नहीं हुआ है, अपितु उनके साहित्य से बँगला साहित्यकारों को प्रेरणा भी मिली है। श्री हेमचन्द्र बंद्योपाध्याय ने कबीर और तुलसी के पदों का बंगानुवाद कर अपने साहित्य का अंग बनाया है[2]। मीराँ के गीत तो बंगाल के घर-घर में गाये जाते हैं। श्री अनाथनाथ वसु ने मीराँ के पदों का बँगला में अनुवाद किया है।

सामान्यतः हिन्दी संत और भक्त साहित्य का प्रभाव अखिल भारत में है। सभी भाषाओं के साहित्य उनके प्रभाव से नहीं बच सके हैं।

बँगला संगीत के विकास में हिन्दी वैष्णव साहित्य का विशेष योगदान है। यह हिन्दी संगीत का बँगला संगीत के ऊपर प्रभाव के प्रकरण में आगे की पंक्तियों में देखा जा सकता है[3]।

४. हिन्दी संगीत का बंगाली संगीत पर प्रभाव

हिन्दी संगीत का बँगला संगीत पर प्रभाव के सम्बन्ध में विद्वानों में कुछ मतभेद हो सकता है। कुछ महानुभाव इसका विषय से प्रत्यक्ष संबंध मानने पर आपत्ति कर सकते हैं, किन्तु विद्वानों ने साहित्य और संगीत की मूलगत एकता प्रतिपादित की है। क्योंकि साहित्य शब्द ब्रह्म की और संगीत नादब्रह्म की उपासना के प्रतीक हैं।

अतः साहित्य और संगीत में कृत्रिम विभिन्नता होते हुए भी दोनों का लक्ष्य आनंदानुभूति ही है। इस सम्बन्ध में साहित्य और संगीत की एकता का प्रतिपादन करने वाले अनेक विद्वानों के मत पठनीय हैं।

संस्कृत में साहित्य और संगीत को सरस्वती के दो कुचों से उपमा दी गई है[4]। सरस्वती को वीणापुस्तकधारिणी भी कहा गया है। वीणा संगीत और पुस्तक

---

१. देखिये—ढ़ोड़ाई-चरितमानस में तुलसीदास के पदों और पर्याप्त हिन्दी शब्दावली का समावेश हुआ है।

२. हेमचन्द्र ग्रंथावली, द्वितीय खण्ड, दोहावली, पृ० ११६-१२४।

३. बाँगालीर गान (हिन्दी गान) पृष्ठ ६६१, १००६।

४. संगीतचापि साहित्यं सरस्वत्याः कुचद्वयम्।

साहित्य की परिचायक मानी जा सकती है। भृर्तहरि महाराज साहित्य और संगीत कलाविहीन मनुष्य को साक्षात बिना सींग-पूँछ वाले पशु के समान मानते हैं[१]। श्री ओलीसहीर का कथन है, 'संगीत और साहित्य दोनों के इतिहास एक-दूसरे से इतने गुँथे हुए हैं कि उनका पृथक्कीकरण करना मानो कला की आत्मा को विनष्ट करना है[२]।' श्री कार्ललइल संगीत और काव्य की एकता प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं, 'काव्य संगीतमय विचार है[३]।' श्री कॉलरिज भी इसी मत की पुष्टि करते हैं[४]। श्री इडगार अलानपो इसको 'सौंदर्य की संगीतमय सृष्टि' कहते हैं[५]। एन-साइकलोपीडिया ब्रिटानिका में काव्य को मानव मस्तिष्क का भावमय और संगीतमय (तालमय) भाषा में स्थूल और कलात्मक वर्णन कहा गया है[६]। एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना में भी इस मत को इसी प्रकार अभिव्यक्त किया गया है[७]। डा० गुलाब राय जी के शब्दों में 'संगीत आकार प्रधान-काव्य है, काव्य सार्थक संगीत है[८]।' श्री नारायण चौधरी का विचार है, 'वास्तव में संगीत और साहित्य में मूलगत कोई पार्थक्य नहीं है[९]। इस सम्बन्ध में जयनारायण व्यास का मत भी दृष्टव्य है—'संगीत और साहित्य दो विभिन्न वस्तुएँ हैं। निस्सन्देह एक पर दूसरे का प्रभाव है। प्रत्येक काव्य में संगीत नहीं हो सकता। वैसे ही प्रत्येक संगीत साहित्य नहीं बन सकता।

---

१. साहित्य संगीत कलाविहीनः।
साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीन ॥
२. भारतीय संगीत का इतिहास, पृ० १।
३. Poetry declares Carlyle, "We will call musical thought ?" William Henry Hudson. "An Introduction to the Study of Literature" P. 83.
४. Biographia Literaria chapter XIV.
५. According to Edger Allanpoe, "It is the rhythmic creation of beauty........."
६. Absolute poetry is the concrete and artistic expression of the human mind in emotional and rhythmical language.
—Encyclopaedia of Britanica Volume 18, P. 106.
७. On the side of rhythmical sound it is closely related to music; but it differs from the latter in its capacity to represent both concrete and abstract ideas with some exactness. E.A. Vol. 22 p. 276.
८. काव्य के रूप, पृष्ठ ३६।
९. आसले संगीत ओ साहित्येर मध्ये मूलगत कोनो पार्थक्य नेइ।
—संगीत परिक्रमा, पृ० १४७।

संगीत में स्वर ताल की प्रधानता रहती है और संगीत सिखाने के लिए आरोह अवरोह सरगमों में व्यक्त किए जा सकते हैं। जिनमें कोई साहित्य ही नहीं होता। तराने आदि संगीत के अङ्ग हैं। पर उनके शब्दों में नाद है, अर्थ नहीं। नृत्यों की पृष्ठभूमि में शाब्दिक संगीत भी गाये जाते हैं तो ताल संगीत भी बोले जाते हैं। अतः संगीत को नाद-प्रधान ही समझना चाहिए जिनमें रस और ताल दोनों सम्मिलित हैं। शब्द प्रधान नहीं। यह सब कुछ होते हुए भी साहित्य शब्दों द्वारा सामञ्जस्य उत्पन्न कर सकता है। जैसे दक्षिण भारत के नाट्य-नृत्य की पृष्ठभूमि में गाये जाने वाले तामिल भाषा के संगीत।

संगीत में लय (Rhythm) की प्रधानता होती है। साहित्य में विषय की। किन्तु संगीत और साहित्य दोनों ही भाव या रस की एक ही इकाई हैं। साहित्य के एक अंग नाटक में तो संगीत के तीनों अवयवों गायन, वादन और नृत्य का समावेश हो जाता है। साहित्य का गीत-अंश और संगीत[1] का गीत-रूप एक ही है।

जो व्यक्ति एक ही साथ संगीतकार भी हो और साहित्यकार भी, उसको आर्ष भाषा में वाग्गेयकार (Composer) कहा जाता है[2]। हिन्दी और बंगला में भी वाग्गेयकारों की परम्परा रही है। संकुचित अर्थ में हिन्दी संगीत को हिन्दी गीति-काव्य कहना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। क्योंकि हिन्दी संगीतकार और हिन्दी काव्य में भेद केवल आभास मात्र है। हिन्दी में जितने बड़े-बड़े कवि हुए हैं वे लगभग सभी संगीतकार भी थे। कबीर अनहद नाद के साथ तानपूरे की तान भी मिलाते थे। सूरदास श्री रङ्गनाथ जी के मन्दिर के प्रमुख कीर्तनिया थे। तुलसीदास जी के संगीत के ज्ञान के विषय में लिखा गया है, "तुलसीदास का काव्य क्यों इतना मानव मात्र में लोकप्रिय हुआ, जब हम इस तथ्य का विश्लेषण करते हैं तो हम इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि उनके काव्य की नींव संगीत की पावन पृष्ठ पर सुदृढ़ता से रखी हुई है। उनके ग्रंथों में जहाँ हमें एक ओर काव्य का अद्वितीय सौंदर्य प्राप्त होता है, वहाँ दूसरी ओर संगीत का उत्कृष्ट रूप भी मिलता है। उनके शब्द-शब्द में संगीत की मधुरिमा बिखर गई है, हम उस मधुरिमा को उनके काव्य से पृथक् नहीं कर सकते।"[3]

---

१. गीतं वाद्यं च नृत्यं च त्रय संगीतमुच्यते, अर्थात् गीत, वाद्य और नृत्य तीनों को संगीत कहा जाता है।

२. वाग् या मातु, गीत साहित्य में शब्दों के नाम हैं। 'गेय' या 'धातु' गान के प्रकार का नाम है। इन दोनों में जो निपुण हैं वे ही 'वाग्गेयकार' कहे जा सकते हैं। (संगीत शास्त्र, पृ० २२८)

३. भारतीय संगीत का इतिहास, पृ० २५६।

मीरां का तो सारा जीवन ही संगीतमय था। संगीत-सम्राट तानसेन सुगायक होने के साथ-साथ सुकवि भी थे। स्वामी हरिदास, बैजूबावरा, कुम्भनदास और हरि राम व्यास जी भी इस नियम के अपवाद नहीं हैं। जिस प्रकार काया के बिना छाया का कोई अस्तित्व नहीं है, उसी प्रकार हिन्दी-संगीत और साहित्य भी पुष्प के सौंदर्य और सुगन्ध की तरह परस्पर अभेद हैं। हिन्दी का समस्त भक्तियुगीन संत और भक्त-साहित्य संगीत की स्वर लहरी से ओतप्रोत है।

बँगला-संगीत पर हिन्दी-संगीत का प्रभाव दिखाने के पूर्व, हिन्दी संगीत का न्यूनाधिक, ऐतिहासिक और सैद्धांतिक या शास्त्रीय परिचय देना आवश्यक प्रतीत होता है। वास्तव में हिन्दी संगीत की परिभाषा करना सरल कार्य नहीं है, क्योंकि इसी संगीत को हिन्दुस्तानी या उत्तर-भारतीय संगीत भी कहा जाता है। हिन्दी-संगीत का अर्थ है परम्परागत संगीत प्रणाली के साथ-साथ ध्रुपद, धमार, होरी, ठुमरी एवं टप्पा आदि विभिन्न राग-रागनियों के समिश्रण से मध्यकाल में मध्यदेश (हिन्दी प्रदेश) में हिन्दी कवियों और संगीतवेत्ताओं द्वारा इसका पुनर्गठन और विकास हुआ था। पडित विष्णुनारायण भातखण्डे के शब्दों में इसकी परिभाषा इस प्रकार हो सकती हैं, "उत्तर हिन्दुस्तान के गायक जो गीत गाते हैं, उनके नाम—ध्रुवपद, ख्याल, टप्पा ठुमरी, होरी, तराना और चतुरंग आदि हैं [1]।" अमीर खुसरो से लेकर आज तक अनेक परिवर्तनों के तदन्तर भी इस हिन्दुस्तानी या हिन्दी संगीत की आत्मा सुरक्षित रही है। मध्यकाल में मुसलमानी संस्कृति का प्रभाव भी कव्वाली और गज़लों के माध्यम से इस संगीत पर पड़ा है। वैसे हिन्दी गीतिकाव्य का कुछ प्रभाव बँगाल में चला आ रहा था, जैसा कि श्री स्वामी प्रज्ञानानन्द लिखते हैं—"मिथिला, दरभंगा प्रभृति स्थानों में बँगला भाषा, ब्रजबुलि के समिश्रण से रस लालित्य प्रदान करने में अद्वितीय थी। रामानंद और कबीर के हिन्दी दोहों और साखियों के मधुर गीतों के माध्यम से ही सृष्टि की थी। कौन कह सकता है कि उनका प्रभाव बँगला गीतों पर नहीं पड़ा। इसके बावजूद भी बँगाली ने अपनी प्रतिभा की मौलिकता को बँगला गीतों में सुरक्षित रक्खा। नामदेव जी ने मराठी साहित्य को कुछ रस सिंचित कर रखा था। राधाकृष्ण की लीला कहानी भजनों के बीच में विकास लाभ मेवाड़ के राणा की पत्नी साधिका मीराँबाई के मधुर कण्ठ से मुखरित हुआ। ब्रजभाषा का समिश्रण तो सब भजनों में था [2]।"

१. हिन्दुस्तानी संगीत, क्रमिक पुस्तक चौथी, पृ० ४५।

२. मिथिला, दारभंगा प्रभृति अंचले बाँगले भाषा ब्रजबुलिर समिश्रणे रस-लालित्य परिवेशने अद्वितीय छिल। रामानंद ओ कबीर हिन्दी दोहा और सखीर प्लावन गानेर माध्यमेइ सृष्टि करे छिलेन ओ तादेर प्रभाव ओ बांगला गाने ये पड़ोति ता के बलते पारे ताहले ओ बाँगाली तार स्वकीय प्रतिभाय बाँगला निजस्वता

पर इस हिन्दी-संगीत का प्रभाव बँगला संगीत के ऊपर श्री रामप्रसाद और श्री रामनिधि गुप्त के समय से ही पड़ने लगा था और उसका क्रम आधुनिक काल में वृद्धि को प्राप्त हुआ। सी शांतिदेव घोष इस प्रभाव का कारण बतलाते हुए लिखते हैं, "मुगल-सम्राट द्वितीय शाह आलम (१७५९—१८०६ ई०) के ध्वसोन्मुख दिल्ली दरबार के श्रेष्ठ गायक गुणी लोग नाना स्थानों को चले गये। तानसेन के वंशज पूर्व की ओर गये। उनका नाम पूर्विया पड़ा, तानसेन के शिष्य वंश वाले राजपूताना की ओर गये, उनका नाम पछाउ वाला पड़ा। तानसेन के वंशधरों ने काशी के राजा अयोध्या के नवाब, बेतिया 'बेतवा' के राजा और रीवाँ के राजा और अनेक दरबारों में आश्रय लिया। बंगाल देश में अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दिल्ली के उस्तादों का एक दल कृष्णनगर और कलकत्ता में आया[१]।"

इस हिन्दी संगीत की धारा के कारण परम्परागत बँगला-संगीत की धारा भी परिवर्तित हो गई। जैसा कि श्री प्रज्ञानानन्द स्वामी लिखते है कि बंग प्रदेश की भूमि में परिवर्तनशील शास्त्रीय राग-रागनियो के मध्य में और नवरूपों की सृष्टि हुई थी। इसी कारण बसंत, भैरव, रामकली, असावरी 'आशावरी', पूरबी एवं बिहाग आदि की राग-रागिनियों के रूप में विकास और रस-परिवेशन में उत्तर-भारतीय संगीत पद्धति के कारण एक नयी अलग पद्धति बन गई। उसके गर्भ में विलक्षण भाव और रसदर्शी संगीत साधकों के दरबार में इनके वास्तविक रूप में समादर से रक्षा होनी चाहिये। कारण यह है कि परित्याग नीति से जातीयकरण का मूल्य अधिक है जिससे सम्पदा का भाण्डार उज्ज्वल और सतत वृद्धिशील होता रहे[२]।

वजाय रेखेछिल। मराठा साहित्य के नामदेव किछुटो रस सिंचित करेछिलेन राधाकृष्णेर लीलाकाहिनी भजनेर मध्ये-दिये विकास लाभ करेछिल। मेवार राणा पत्नी साधिका मीराँबाइयेर किन्नर कण्ठे। ब्रजभाषार समिश्रण छिल सेई सब भजनेर मध्ये।

(राग ओ रूप, पृ० ८२)

१. मोगल सम्राट द्वितीय शा-आलमेर (१७५९—१८०६) ध्वंसोन्मुख दिल्लि दरबारेर श्रेष्ठ गायक गुणीरा नाना स्थाने छड़िये पड़लेन। तानसेन-वंशधरेरा एलेन पूर्वदिके, ताँदेर नाम हल पूरवीया। तानसेनेर शिष्य वंशीयेरा गेलेन राजपूतानार दिके, नाम हल 'पछाउ वाला'। तानसेन—वंशधर देर काशीर राजा अयोध्यार नवाब, बेतियार राजा, रेउयार राजा ओ अन्यान्य अनेके दरबारे आश्रय दिलेन। बाँगला देशे ओ अष्टादेश शताब्दीर शेषदिके दिल्लिर उस्तादेर आसते देखि कृष्ण नगरे ओ कलकाताय। (रवीन्द्र संगीत, पृ० ४९)

२. बाँगलार माटिते परिवर्तनशील शास्त्रीय राग-रागिनीदेर मध्ये ओ आपार नव रूपायनेर सृष्टि हयेछिल—ये जन्य बसंत, भैरव, रामकेली, आसावरी, पूरवी

उक्त स्रोत से आगत हिन्दी-संगीत के प्रभाव को बँगला-संगीत और साहित्य पर तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) बंगालियों ने हिन्दी कवियों के पदों को अपनाया है।

(२) बंगालियों ने हिन्दी-गीतों के अनुकरण पर हिन्दी में गीत रचना की है।

(३) बंगालियों ने हिन्दी-गीतों के अनुकरण पर बँगला में गीत रचना की है।

१. बंगालियों ने हिन्दी-कवियों के पदों को अपनाया है—

बँगला के अनेक ग्रन्थों में हिन्दी कवियों और संगीतकारों के गीतों का समावेश हुआ है। किन्तु हम बाँगालीर गान[1] में ही अधिक गीतों को पाते है। सूरदास, बैजूबावरा, गोपालनायक, शोरीमियाँ, गुरु नानक, तुलसीदास, कबीर, नवलकिशोर, छोटेमियाँ, दूंदी खाँ, बहादुरशाह, शिवनारायण अग्निहोत्री, वाजिदअली, तानसेन, मीरांबाई आदि हिन्दी संगीतकारों, संतों और कवियों के पद बंगाल में आज तक प्रचलित हैं। उनके द्वारा बँगला कवियों और संगीतकारों की भाव-धारा पर भी प्रभाव पड़ा है। ब्रह्मसंगीत में भी लगभग छः हिन्दी के पद प्राप्त होते हैं। उनमें से एक इस प्रकार है :—

भोर भयो पकसीगण बोले,
उठ जन प्रभु गुण गाओरे।
लख प्रभात प्रकृति कि शोभा,
बार बार हर्षाओ रे।
प्रभु कि सुमेर निज मन में,
सरस भाओ उपजाओ रे।
होय कृतज्ञ प्रेम में उनके,
नयनन् नीर बाहाओ रे।

वेहोग प्रकृति राग-रागिनीदेर रूपे, विकाशे ओ रस-परिवेशने उत्तर-भारतीय संगीत पद्धति थेके तारा आज एकटु आलादा हये पड़ेछे। तत्सत्वे ओ विचक्षण ओ रसदर्शी संगीत-साधकदेर दरबारे एंदेर सत्यकारेर समादर हयतो रक्षित हवे, कारण वर्जननीतिर चेये जातीयकरणेर मूल्यइ वेशी। ताते सम्पदेर भाण्डार हय उज्ज्वल ओ क्रमविवर्धमान।

(राग ओ रूप, पृ० ८४)

१. देखिये बाँगालीर गान, पृष्ठ ६६१-१००६।

ब्रह्म रूप-सागरमे मन को,
बारम्बार डुबाओ रे ।
निर्मल शीतल लहरें ले ले,
आतम ताप बुझाओ रे ।
(ब्रह्म संगीत, पृष्ठ १०-११, बाँगालीर गान, पृष्ठ १००३)

इस प्रकार सैकड़ों हिन्दी गीत बंगाल में प्रचलित है। वे बँगला-संगीत और साहित्य की अभिन्न निधि बन गए हैं।

२. बंगालियों ने हिन्दी-गीतों के अनुकरण पर हिन्दी में गीत रचना की है—

परम्परा से ही बंगाली हिन्दी में गीत रचना करते आए हैं। आधुनिक काल में भी यह परम्परा प्रचलित है। हिन्दी में गीत रचने वाले प्रमुख संगीतकार श्री रूपचाँद पक्षी, श्री रसिकचन्द्र राय, श्री प्यारीचन्द्र मित्र, श्री महाराजाधिराज विजयचन्द, श्री. गिरीशचन्द्र घोष, श्री द्विजेन्द्रलाल राय, श्री अमृतलाल वसु, श्री क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद, श्री अतुलकृष्ण मित्र, श्री द्वारकानाथ गाँगुली और श्री अमरेन्द्रनाथ दत्त आदि हैं। इन संगीतकारों और कवियों द्वारा विरचित कुछ हिन्दी गीतों के उदाहरण देना अपेक्षित है :—

रूपचाँद पक्षी—

काहे रंग डारि हो त्रिभंग मुरारि।
सम्भार सम्भार, हो बांके श्यामर,
मत मार पिचकारी, श्वाश शुनेगि,
ननदी लड़ेगि, मोरे संइया,
देश्रोगि मुझे गारि ॥ (मुरारि)
छोड़ छोड़ वाट्, यानेदे यमुना तट,
रे घिट लानेदे वारि, रंगिला छबिला,
रे नन्ददुलाला, छोड़दे बंइया हामारि ॥
(मुरारि) तू केया जान लाला,
फगुया के निला, हो हो गोयाला गिरधारी,
वन वन ढ़ोंड़त, गोया चराश्रोत,
तू केया जानत खेलेने होरि ॥ (मुरारि)
कहे पंच्छिवर, मन भावोये मोर,
युगल चरण तुम्हारि, हो हो त्रिभंग तेड़ा,

रहोजि जेरेसे खाड़ा, मयुर मुकुट बड़ा
बाँके बेहारी ।। (मुरारि)[1]

महाराजाधिराज विजयचन्द—

ग्राय इयारों दुनिया में सब् दागादारी ।
नेकसे मिलना बदि उसे हुंसियारी ।।
तू सोचो हरदम, यब ना रहेगा दम् ।
तब् दम्बाजि करके केया हय काम् ।।
ग्रजि मेहेर परबि होतो ग्राँधियारी,
दुनिया पर करते हो केत्ना जुलुम,
कजा कि वख्त सब होगा मालुम,
ग्रारे सोचो समूझों छोड़ो गुनाहगारी ।।

(बाँगालीर गान, पृष्ठ ४८६)

तथा—

इसको उसको बुरा न मानो ।
ग्रापने को ठिक राखो जि ।
ए दुनिया प्रें सबि है झूटा ।
एक मूठा खाक जि ।।
दुनिया दुनिया काहे मिग्रॉ ।
कहते हो तू हरदमजि ।
दम टूटेगा माट्टि होवेगा,
रहेगा कक् ग्रोहि मोलाजि···।

(बाँगालीर गान, पृष्ठ ४८८)

---

१. रूपचांद पक्षी के कुछ गीत इस भाँति मिलते हैं :—

'झूले झूले झूलन पर, श्यामल सुन्दर, युगल किशोर किशोरी हो ।'

(बाँगालीर गान, पृष्ठ ४१३)

खेलते फगुया, कांर कानाइया,
धाकेट ताक् धूम केटे ताक् बाजे मृदंग ।

(वही, पृष्ठ ४१४)

ऐसे फागुन के दिन ग्राई सजनी ।
पूर्णमासी शशी, भइ उजारा चांदनी ।।

(वही, पृ० ४१५)

सांचि कह मनमोहन मुझे,
कौंहा निशि गोयाई ।

(वही, पृष्ठ ४१५)

गिरिशचन्द्र घोष—

काँहार मेरा वृन्दावन, कांहा यशोदा माई ।
काँहा मेरा नन्द पिता, काँहा वलाइ भाइ ।।
कांहा मेरि धवली श्यामली, काँहा मेरि मोहन मुरलि ।
श्री दामसुदाम राखालगण काँहा मे पाइ ।
काँहा मेरि यमुना-तट काँहा मेरि वंशी वट ।
काँहा गोप नारी मेरि, काँहा हामारा राई ।।[1]

(बाँगालीर गान, पृ० ५५४)

अमृतलाल वसु—

क्या मजादार सहर गुलजार
चेहारा हरतर बहुत बहुत बाहार ।
मरदोया छोड़ा धरम, जेनाना आपना सरम
कोई नाहि नरम, सबको मगज गरम ।

(बाँगालीर गान, पृ० ८८३)

क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद—

आया हुकुम बरदार
आया हुकुम बरदार
बड़ि काम पियारा हरदम् लेओ भरपूर कामदार ।
देखो जेत्ता काला रंग, आवेर तेत्ता जबर ढंग ।
सारा झट्पट काम करने वाला साच्चा समदार ।
बहुत खोष मेजाजि राजि विवि मालिक महलादार ।[2]

(बांगालीर गान, पृ० ८८६)

द्विजेन्द्रलाल राय—

पुराण प्रेम को नहि जाओ भइया हो
पुराण प्रेम को आओर यो दिन गिया हो ;

१. श्री गिरिशचन्द्र घोष ने अनेक हिन्दी गीतों की रचना की है—एक दो यहाँ दिए जा रहे हैं—

जय परमेश्वर परम भिखारी । कल्पतरु गुरु योग आचारी ।।

(बाँगालीर गान, पृ० ५५७)

२. श्री क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद द्वारा विरचित अनेक हिन्दी गीत प्राप्त होते हैं—जैसे—

हो हो जानू हयरान । दुनिया में जनम् लिया क्यों ।।······

(बाँगालीर गान, पृ० ८८६)

हो यो दिन गिया हो, प्यारे यो दिन गिया हो
भररे पेयाला लिये यो दिन गिया हो।[1]
(द्विजेन्द्रलाल ग्रंथावली, पृ० १२६)

तथा —

हम इमानदार गरीबी से
शिर नोउयाता-श्रोउर यो कुछ
श्रो काफेर उसको छोड़के यांय।
हम गरीब हों—हो यो कुछ—
हमारा छोटा काम् श्रोउर जो कुछ
इज्जत हय रुपैया का खेल,
मर्द सीना हय—हो यो कुछ।
क्या छोटा खाना खां हमलोग
परता सूती—श्राश्रोर यो कुछ।
देश्रो रेशम् बेवकूफ को दारु बज्जात को
मर्द मर्द यो कुछ श्राश्रोर जो कुछ
दौलत उनको जो कुछ,
इमानदार हो गरीब नेहाइत
तबांभ पाद्शाह हो यो कुछ।
पादशाह बानाता हो देउयान्,
श्रा ोर नबाब्—श्राउर यो कुछ,
मग्र इमानदार को बाना ने
कोशिश करे मात श्रो कुछ
हो जो कुछ श्राउर यो कुछ
इज्जत उनोका यो कुछ

१. योंइ यब् वन में फूल दूँड़िया हो,
श्राया छोड़ि सो दूर में सो दिन गिया हो।···
यो दिन नदी में तुम हम खेल किया हो
तबसे बीच में रहूँ गाठा दरिया हो।······
ने हात दे हात मुझको मोरा पिया हो,
पिउ जि खेयाल कर अब यो दिन गिया हो···
तोमारि भरो तुम हम भरें मेरि श्रा हो
(द्विजेन्द्रलाल ग्रंथावली, पृष्ठ १२६)

हुस्का इज्जत दाम का देमाक्
सबसे ऊंचा—हो या कुछ।······

(द्विजेन्द्रलाल ग्रन्थावली, पृ० १४२-४३)

अतुलकृष्ण मित्र—

पूरा पियाला पियाला सबार पिया
बकूरा हरदम् दिया साकि भरदम पिया
पूरा जानको देलमेरा मसगुल किया।
पूरा कलेजा खुलकर बेलकुल लिया ॥[1]

(बाँगालीर गान, पृष्ठ ८६०)

अमरेन्द्रनाथ दत्त—

निपट कपट तुया श्याम
रोये रोये मरे तुहारि चरण धारे (राधा)
अगुन विचारि छि छि तुहु गुणधाम ॥
लाज मान हरि, यमुना पानिमें डारि,
वारि वारि करि पियाले कुमारि,
चोरा चित मन चोर कैसे निवारि—
कलिजे काटोरि हरि लिये तेरि नाम।······

(बाँगालीर गान—पृष्ठ ६४०)

बिहारी चट्टोपाध्याय—

जग जीवन हरि, तहुँ परिहरि।
याम्रोब काँहा भाला, कह मुरारि ॥
राका चाँदे नेहारि, उड़ि फिरे चकोरी।
काला-चाँदे, नाचायब नाना छाँदे
पेखि कैसे मोरे निवारे मुरारि—।

(बाँगालीर गान—पृष्ठ १०१८)

इस भाँति अनेक बंगालियों ने हिन्दी में गीत लिखे हैं। संगीत ग्रंथों में भी हिन्दी गीतों का आधार लिया गया है। जहाँ बंगाली कवियों ने हिन्दी में कविता की है वहाँ उन्होंने किसी अंश तक हिन्दी को व्यापक भाषा स्वीकार करते हुए हिन्दी

---

१. अतुलकृष्ण मित्र ने कई हिन्दी गीत लिखे हैं—

पियाला का साफ होने देओ, भरो हुसाकी फिन्।
हाति को पर हाउवा मेरे घोरे कोपर जीन् ॥

(बाँ० गान, पृ० ८६५)

को अज्ञात उपचेतन रूप में स्वीकार किया है। इससे सिद्ध होता है कि दोनों भाषायें कितनी मिली जुली हैं और दैनिक व्यवहार में वे कितनी एक दूसरे के निकट हैं। यह सम्पर्क अज्ञात रूप से प्रभावों का भी जनक होता है। दो भाषाओं के मिलन से प्रभाव अवश्यंभावी है।

३. बंगालियों ने हिन्दी-गीतों के अनुकरण पर बँगला में गीत रचना की है—

हिन्दी या हिन्दुस्थानी संगीत का बँगला-संगीत पर प्रभाव एक युग-परिवर्तनकारी घटना है। इसी हिन्दी संगीत पद्धति के द्वारा बँगला गीतिकाव्य की सम्पदा की आश्चर्यजनक उन्नति हुई है।

आधुनिक बँगला गीतिकाव्य पर हिन्दी का सर्वाधिक प्रभाव हिन्दी संगीत के माध्यम से पड़ा है। उत्तर वैष्णव काल अथवा इस्लामिक बँगला युग से ही हिन्दी-संगीत का प्रभाव बँगला संगीत पर स्पष्ट है। इस संगीत की पद्धति को अपनाकर राजा राममोहनराय ने ब्रह्मसंगीत की आधार-शिला रखी थी। ब्रह्मसंगीत के अनेक गीत हिन्दी गीतों और गायन-पद्धतियों के अनुकरण पर बने हैं। अधिकांश ब्रह्मसंगीत में आराधना और कृतज्ञता के पद गुरु नानक तथा अन्य सन्तों से प्रभावित जान पड़ते हैं। श्री शान्तिदेव घोष का कथन है, "हिन्दीध्रुपद गीतों का मूलभाव भक्ति-पूजा का भाव था। वंग देश में इस भाव को सम्पूर्ण रूप से ग्रहण करके नये भाव से भक्ति और धर्म गीतों की रचना हुई। ख्याल गीतों के भिन्न ढग के अनुसार पूजा और प्रेम के गीत रचे गये थे। शोरी-मियाँ के टप्पे प्रेम के गीत थे, निधू बाबू के गीतों की प्रसिद्धि का भी यही कारण है।[1]" हिन्दों गीतों के और गायन पद्धतियों के अनुकरण पर ब्रह्मसंगीत रचे गये है। यहाँ कुछ उदाहरणों से स्पष्ट करना आवश्यक है :—

झिंझिट खमाज ठुमरी—

विभुपद-कमल पीयूष रसे,
भज रे पिपासु मन मधुकर।...... (ब्रह्मसंगीत, पृष्ठ १०५)

तुलनीय— **किस शोच्[2] विचार में बयठे हो**
मन शुध् करो भाइ एक् छिन् को।

१. हिन्दी ध्रुपद गानेर मूल भाव हल भक्ति पूजार भाव। बाँगलादेशे ए भावटिके सम्पूर्ण ग्रहण करेइ नूतन भावे भक्ति वा धर्म गान रचित हय। खेयाल गानेर भिन्न ढंग अनुसारे पूजा ओ प्रेमर गान रचित हयेछे बाँगला देशे। शोरी मिआँर टप्पा छिल प्रेमेर गान, निधू बाबूर प्रेमेर गाने ओ सेइ कारणे प्रसिद्ध।
(रवीन्द्र संगीत, पृ० २५)

२. पाठ भेद—शोच=सोच।

जग चिन्ता को सब दूर करो,
आओर त्यागे ध्यान विषय धन् को,
प्रभु पूजा में अनुराग करो,
आओर[1] प्रस्तुत हो हरि कीर्तन को
परित्राण के प्रति सब व्याकुल हो
तुम आकुल हो प्रभु दर्शन को।
भक्ति आओर प्रेम के फूलों से,
भरपूर करो हृद-कानन को
एकान्त सुधा रस् पान करो,
आओर शान्ति कर आपने मन को ॥

(ब्रह्मसंगीत, पृ० १०७)

तथा—

आलाइया-यत—

साधे तोमाय दयामय जगते बले।
तुमि पापी बले त्यजिया छे कारे कोन् काले
यखन आमि ये दिके भाइ, सर्व्वदा त देखिते पाइ,
(आमाय) कुपथ हते दया करे टानिछे कोले।
घोर पापेर पापीयारा, निमिषते तरे तारा
तोमार श्री चरण शरण मिले ॥

(ब्रह्मसंगीत, पृष्ठ १४५)

तुलनीय—

तू मेरे प्राण-आधार (प्रभुजी)
नमस्कार दण्डवत वन्दन अनेकबार जो बार (प्रभुजी)
उठत बैठत, शोमत जागत
एमन तुझेहि चितारे,
यो तुमि कर, सोहि फल आमार,[2]
तुमि आगे सार (प्रभुजी)
तुमेरे उठ बल् बुद्धि धन् तुमहि,
तू मेरे परिवार।

---

१. आओर=और।

२. आमार=हमारा, बँगला और हिन्दी के उच्चारण भेद के कारण उक्त पद के कुछ शब्द विकृत हो गये हैं।

सुख दु:ख सबे, मनकि, बेरथा,
सेवक नानक गुरू चरणनार (प्रभुजी)

(ब्रह्मसंगीत, पृष्ठ १४५)

नानक जी के इस पद की छाया एक अन्य ब्रह्मसंगीत पर भी है।[1] गुरु नानक की प्रसिद्ध आरती गगन के थाल में रवि चन्दु दीपक बले[2] का प्रभाव दो बँगला गीतों पर दिखाई पड़ता है। एक गुरुदेव का पद 'गगनेर थाले रवि चन्द्र दीपक ज्वले' है। दूसरा यहाँ दिया जाता है।

तोमारि आरति करे निखिल भुवन,
निरखि जुड़ाय नाथ! युगल नयन।
गनन थाले केमन, दीपक रूपे अनुक्षण,
शोभिछे शशी तपन हृदयरंजन।
मुक्तामाला येन ताय, तारका समुदी,
मरि किवा शोभा पाय है भव भय भंजन।
धूप मलय पवन, निरन्तर समीरण,
करे चामर व्यजन, है विश्व कारण,
वन उपवन यत, पुष्पदेय अविरत,
बाजे भेरी अनाहत शुने प्रेमिक ये जन॥

(ब्रह्मसंगीत, पृष्ठ १४७)

उक्त पद में गुरु नानक की आरती का भाव-साम्य ही नहीं है अपितु शब्द सादृश्य भी है। जैसे—

गगनथाले =गगन में थालु
दीपरूपे =दीपक बने
शशी तपन =रवि-चंदु
मुक्तामाला =जनक मोती
तारिका समुदय=तारिका मण्डल
भव-भय-भंजन =भव खण्डना
धूपमलय पवन =धूपूमलयाआनलो पवणु

एक पंक्ति तो हुबहु एक जैसी ही है। धूपमलय पवन निरंतर समीरण करे चामर व्यजन=धुपुमलयाआनलो पवणु चवरो। उपवन जत पुष्प देय अविरत=सगल बनराइ फूलंत जोती। वाजे भेरी अनाहत=अनहता शब्द बाजंत भेरी।

१. देखिये—प्रस्तुत प्रबंध, पृष्ठ २८७ तथा ब्रह्मसंगीत, पृष्ठ १७७।
२. ब्रह्मसंगीत, पृष्ठ १४९।

तानसेन के एक गीत के साथ एक ब्रह्मसंगीत का केवल राग-साम्य ही नहीं भाव और शब्द-साम्य भी है। जयजयवन्ती रागिनी में दोनों गीत इस प्रकार हैं :

नाथ तुमि ब्रह्म, तुमि नित्य, तुमि ईश, तुमि महेश,
तुम आदि, तुम अंत, तुम अनादि तुमि अशेष।
जल स्थल मरुत व्योम, पशु मनुष्य देवलोक,
तुमि सवार सृजनकार हृदाधार त्रिभुवनेश।
तुमि एक तुमि पुराण, तुमि अनंत सुख सोपान,
तुमि ज्ञान तुमि प्राण तुमि मोक्षधाम,
पूर्ण हलो मनस्काम, लये आजि तव नाम,
तव पाय शतवार करि प्रणाम करि प्रणाम ॥

(ब्रह्मसंगीत, पृष्ठ १७७)

तुलनीय –

तु`हि ब्रह्म, तु`हि बिष्णु, तु`हि शेष तु`हि महेश,
तु`हि आद तु`हि नाद, तु`हि अनाद, तु`हि गणेश।
जल स्थल मरुत व्योम, तु`हि अकार यम सोम,
तु`हि उंकार, तु`हि मकार,
निरंकार तु`हि घनेश
तु`हि वेद तु`हि पुराण
तु`हि हृदीश तु`हि कुरान,
तु`हि ध्यान तु`हि ज्ञान, तु`हि भुवनेश;
तानसेन कहे बयान, तु`हि दिन तु`हि अयन
तु`हि धरि पन छन, तु`हि वरुण तु`हि दिनेश ॥

(बाँगालीर गान, पृष्ठ १००५)

इस भाँति अनेक बंगला-संगीतकारों ने हिन्दी संगीत[1] के अनुकरण पर बँगला

---

१. हिन्दी गीतों के स्वरों (सुरों) के अनुकरण पर बँगला के अन्य गीत-संग्रहों में बँगला गीत रचे गए हैं। गीतमाला में कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(१) खमाज-एकताला—
हिन्दी सुर—'सीतापति रामचन्द्र रघुरायी'=बँगला नमो ब्रह्म परम ईश, निखिल-विश्व कारणे मंगलमय सकल कुशलकारी भवतारणे। (गीतमाला, पृ० २)

(२) ,, 'झमके चलत रामचन्द्र=धन्य प्रभो धन्य आसामान्य महिमा तोमार। (गीतमाला, पृ० ३)

गानों का सृजन किया है। कुछ प्रसिद्ध बँगला-संगीतकारों और गायकों का नामोल्लेख[1] आवश्यक है। श्री राधिकाप्रसाद गोस्वामी, श्री ज्ञानेन्द्रप्रसाद गोस्वामी, श्री भीष्मदेव चटोपाध्याय, श्री तारापद चटोपाध्याय, श्री सत्येन्द्रनाथ, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, श्री माइकेल, मधुसूदन दत्त, श्री द्विजेन्द्रलाल राय, काज़ी नजरूल इस्लाम, श्री दिलीप कुमार राय, श्री हिमांशुदत्त श्री अजय भट्टाचार्य आदि प्रमुख हैं। इनमें से कुछ की संगीतकला का विवेचन अपेक्षित है।

श्री सत्येन्द्रनाथ—

इन्होंने हिन्दी के अनुकरण पर ब्रह्मसंगीत की रचना की है। इनकी एक झिंझिट ठुमरी हिन्दी और बँगला दोनों भाषाओं की मानी जा सकती है :—

गाओरे जयपति जगवन्दन
ब्रह्म सनातन पातक नाशन।
एक देव त्रिभुवन-परिपालक,
कृपा-सिंधु सुन्दर भव नायक।
सेवक मनोमद-मंगल दाता,
विद्या सम्पद बुद्धि विधाता।
जाचे चरण भगत कर जोड़े,
वितर प्रेमसुधा चित चकोरे।

(ब्रह्मसंगीत, पृ० ९७, बाँगालीर गान, पृ०६०९)

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर—

हिन्दी संगीत पद्धति का गम्भीरतम प्रभाव गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर पड़ा है।[2] हिन्दी शास्त्रीय संगीत[3] ही रवीन्द्र संगीत की पृष्ठभूमि है। जैसा कि श्री उमेश

---

(३) ,, पानी भरण जाति यमुना के घाट=कोथा अनाथ बंधु अखिलेर नाथ। (गीतमाला, पृ० ४)

(४) ,, मुखड़ा क्या देखो दरपन में, तेरे दया धरम नहीं मन में =प्रभु हे, आर कि कव तुमि धन्य। हेन शुन्य नाहि देखि शुन्य। (गीतमाला, पृ० ४४)

(५) ,, हमारा कोई नाहि है, पत राखो रघुबीर=आमार आर केह नाहि नाथ, तुमि राख रघुबीर।

(गीतमाला, पृ० १६६)

१. जिन्होंने हिन्दी संगीत के आधार पर बँगला संगीतिकाव्य के भाण्डार को भरा है, उन कवियों और संगीतकारों की सख्या बहुत विशाल है, अतः उनके परिचय के लिये बाँगालीर गान, पृ० १-१०४० देखने योग्य हैं।

२. देखिये विस्तृत परिचय के लिये प्रस्तुत प्रबंध, पृष्ठ २७५-३१७।

३. शास्त्रीय हिन्दी संगीत को बँगला में उच्चांग हिन्दी संगीत कहा जाता है।

जोशी का मत है—'अपनी प्रारम्भिक गान रचनाओं में रवीन्द्र ने ध्रुपद-पद्धति का आधार लिया। उनके सभी गीत भारतीय-पद्धति पर अवलम्बित हैं। रवीन्द्र संगीत प्रधानतः गीतिकाव्यात्मक अभिनव सृष्टि का दूसरा नाम है[1]।' उन्होंने नाना रसों के गान हिन्दी-राग-रागनियों के अनुकरण पर लिखे हैं। उन्होंने हिन्दुस्तानी गीतों का किस भाव से अनुभव और साक्षात्कार किया था। यह उनकी उक्तियों से प्रकट होता है। उनकी कई पंक्तियों में हिन्दी राग-रागनियों का मानवीकरण भी अभिव्यंजित हुआ है।[2] श्री दिलीपकुमार राय गुरुदेव की हिन्दी की परज रागनी के प्रति रसिकता का एक उदाहरण देते हुए गुरुदेव के ही मत का उल्लेख करते हैं। गुरुदेव लिखते हैं, 'हे गुरुजी मुझे काला काला कम्बल खरीद दो, राम जपने के लिये माला लादो और जलपान के लिये तुम्बी लादो, मैं बंगाली होने के नाते इस भाव को इस प्रकार व्यक्त करता हूँ :—

गुरु आमाय मुक्तिधनेर देखाओ दिशा।
कम्बल मोर सम्बल होक दिवानिशा।
सम्पद होक जपेर माला
नाम मणिर दीप्त ज्वाला,
तुम्बिते पान करव ये जल
मिटवे ताहे विषय तृषा।

तुलनीय मूल हिन्दी—

कारि कारि कम्बलिया गुरुजी मोहे मोल ले दे,
राम जपन को माला ले दे, पानी पिवन को तुम्बरिया गुरुजी।[3]

इससे स्पष्ट होता है कि गुरुदेव हिन्दी संगीत के कितने बड़े प्रेमी थे।

---

१. भारतीय संगीत का इतिहास, पृ ३७६।

२. मुलतान येन शून्य गृहचारिणी विधवा संध्यार अश्रुमोचन।

(रवीन्द्र संगीत पृ० ६१)

अर्थात मुलतान जैसे शून्य गृहवारिणी विधवा संध्या का अश्रुमोचन है।

परज येन अवसन्न रात्रि शेखर निद्रा विह्वलता। (रवीन्द्र संगीत, पृ० ६५)

अर्थात् परज जैसे अवसन्न रात्रि शेष की निद्रा विह्वलता।

कानड़ा येन घनान्धकारे अभिसारिका निशीथिनीर पथविस्मृति।

(रवीन्द्र संगीत, पृ० ६५)

अर्थात् कानड़ा जैसे घनान्धकार में अभिसारिका निशीथिनी की पथ विस्मृति।

३. सांगीतिकी, पृष्ठ १४६।

उन्होने इस पद्धति का अनुकरण करके बंगभारती के गीतिकाव्य के भाण्डार को अतुलनीय बना दिया है।[1]

श्री माइकेल मधूसूदन दत्त—

इन्होंने भी हिन्दी साहित्य के अनुकरण पर बँगला गीतों की रचना की है।[2] उनका एक गीत यहाँ दिया जाता है—

जय उमेश शंकर, सर्व्व गुणाकार
त्रिताप संहर, महेश्वर।
हलाहलांकित, कण्ठ सुशोभित।
मोलि विराजित, सुधाकर ॥
पिनाक वादक, शृंग निनादक,
त्रिशूल धारक, भयंकर।
विरिंचि वांच्छित, सुरेन्द्र सेवित।
पदाब्ज पूजित, परात्पर ॥

(मधुसूदन ग्रंथावली, विविधा पृ० ७६)

श्री द्विजेन्द्रलाल राय—

श्री नारायण चौधरी इनके विषय में लिखते हैं, 'द्विजेन्द्रलाल राय के बँगला गीतों की समृद्धि विधान में दो बड़े दान हैं, एक तो हिन्दी ख्याल के ढंग एकराग की भित्ति पर बँगला गीतों की सृष्टि और दूसरे यूरोपीय पद्धति पर बँगला में कोरस सुर का प्रवर्तन है[3]।

श्री दिलीपकुमार राय श्री द्विजेन्द्रलाल राय की ख्याल प्रेम के विषय में लिखते हैं, 'बहुधा देखा गया है कि रवीन्द्रनाथ का बँगला गीतों के विकास में ध्रुपद की ओर रुझान गोसाँई जी की अधिनायकता के कारण और श्री द्विजेन्द्रलाल का

१. रवीन्द्रनाथेर रागभंगिम बांगला गान, सांगीतिकी, पृष्ठ १६४।
२. देखिये—मधुसूदन ग्रंथावली में शर्मिष्ठा नाटक, पृ० २८, ४३, ६३, ८१, ८२, ८४ तथा एकइ वले सभ्यता पृ० २१ पद्मावती नाटक पृ० ३२, ४२, ६५ एवं कृष्णकुमारी नाटक पृ० २६।
३. बाँगला गानेर समृद्धि विधाने द्विजेन्द्रलालेर बड़दान दुटि-एक, हिन्दी ख्यालेर ढंगे एकक रागेर भित्तिते बांगला गान सृष्टि, दुइ इओरोपीय धरणे बाँगलाय कोरास सुरेर प्रवर्तन।

(संगीत परिक्रमा, पृ० १६०)

झुकाव प्रधानतः सुरेन्द्रनाथ के अधिनायकत्व के कारण था।[1] इनका एक गीत यहाँ दिया जाता है :—

नील गगन, चन्द्र किरण, तारकागण रे!
हेर नयन-हर्षमगन चरु भुवन रे।
निद्रित सब कूजन-रव नीरव भर रे।
मोहन नव हेरि विभव मेदिनी सब रे।
वाहित घन स्निग्ध पवन ज्योत्स्ना मगन रे।
नन्दन - वन - तुल्य - भवन - मोहित मन रे।

(द्विजेन्द्रलाल ग्रंथावली, पृ० ५६६)

उक्त गीत हिन्दी साहित्य की पद्धति पर रचा गया है। अतः यह भाषा की दृष्टि से भी हिन्दी और बँगला दोनों भाषाओं की सम्पत्ति माना जा सकता है। इन्होंने हिन्दी संगीत पद्धति का अनुकरण कर बहुत बंगला गीतों का निर्माण किया है।[2]

काजी नजरूल इस्लाम—

रवीन्द्र संगीत के लेखक का विचार है—'गुरुदेव के समसामयिक और परवर्ती रचियताओं में श्री द्विजेन्द्रलाल, श्री अतुलप्रसाद और श्री नजरूल का नाम ही एकमात्र उल्लेखनीय है। क्योंकि इन्होंने प्रत्येक ने अपने गीतों की कथा की ही रचना की थी। गुरुदेव के आदर्शनुसार हिन्दी गीतों के ढंग और सुर के प्रभाव से ही बँगला में ख्याल, ठुमरी और गजल गानों में रूप देने का प्रयत्न किया था।[3] गीतिकार

१. अथ, देखा गेल-बांगला गानेर विकाशे रवीन्द्रनाथ ध्रपदेर दिके झोंकन प्रधानत गोंसाइजिर अधिनायकताय, आर द्विजेन्द्रलाल झोंकन खेयालेर दिके प्रधानत सुरेन्द्रनाथेर अधिनायकताय। (सांगीतिकी, पृ० १६३)

२. देखिये-द्विजेन्द्रलालेर कतिपय रागभंगिम गान (सांगीतिकी, पृ० १६५-६६) राणा प्रतापसिंह, पृ० ८ (शंकरा); पृ० २३ (हमीर); पृ० ३५ (खमाज); पृ० ७४ (भीमपलश्री); पृ० ९३ (बरवा); पृ० १२७ (खमाज); द्विजेन्द्र ग्रंथावली (कविता ओ गान) पृ० ७७; धान श्री पृ० ७९, पूरवी पृ० ८०, विहाग पृ० ८१; भैरवी पृ० ८४; जयजयवन्ती; छायानट, गान पृ० ५८७-६६५।

३. गुरुदेव के समसामयिक ओ अनुवर्ती रचयितादेर मध्ये द्विजेन्द्रलाल अतुल-प्रसाद और नजरूलेर नामइ केवलमात्र करव। कारण ऐंरा प्रत्येकइ निजेर गानेर कथा ओ सुर दुइ-इ रचना करेछेन। गुरुदेवेर आदर्श ऐंरा ओ हिन्दि गानेर ढंग ओ सुरेर प्रभावेइ बांगला खेयाल ठुमरी ओ गजल गाने के रूपे देवार चेष्टा करे छिलेन। (रवीन्द्र संगीत, पृ० २६)

और सुरकार काजी नजरूल के विषय में संगीत परिक्रमा के लेखक का कथन है कि जिन गीतों को हम आधुनिक बँगला गीत कहते हैं उनमें नजरूल का दान अजस्र है। 'मोर घुमघोरे एले मनोहर नमो नमो, आदि गीत मोर आहत पाखीर सम, 'कुहु कुहु कुहु कुहु कोयलिया' (राग प्रधान—न मानूँगी, नामक सुपरिचित हिन्दी गीत का बँगला रूप) प्रभृति अनेक गीतों का नामोल्लेख किया जा सकता, जिससे नजरूल के सुर की विशेषता पूर्णमात्रा में प्रकट है।[1] वे आगे फिर लिखते हैं—'सुपरिचित हिन्दुस्थानी ख्याल गीत के अनुसरण पर रचित बँगला ख्याल नजरूल की सांगीतिक प्रतिभा की एक और देना है।[2] विद्रोही कवि ने इस प्रकार हिन्दी गीतों और उर्दू गजलों का अनुकरण कर बँगला गीतिकाव्य को सम्पन्न बनाने में योगदान किया है।

हिन्दी भाषा की भाँति, हिन्दी संगीत भी व्यापक है। अतः इसी व्यापकता और साँगीतिक श्रेष्ठता के माध्यम से हिन्दी संगीत या गीतिकाव्य का प्रभाव आधुनिक बँगला संगीतकारों और गीतिकाव्यकारों पर स्पष्ट है। बँगला कवियों और साहित्यकारों ने अपनी रुचि और विशाल हृदयतावश इसको अपनी परमप्रिय बँगला भाषा साहित्य एवं संगीत का अभिन्न अंग बनाया है।

४. अनुवादात्मक (बँगला में अनूदित हिन्दी ग्रन्थ)

विश्व-साहित्य में आदान-प्रदान का सरलतम मार्ग अनुवाद है। जहाँ दो संस्कृतियों, साहित्यों, भाषाओं और जातियों का सम्पर्क होता है वहाँ पारस्परिक आदान-प्रदान का मार्ग खुल भी जाता है, यह आदान-प्रदान सीधा भी होता है, प्रायः यह अनुवादों के सहारे होता है। अन्य समृद्ध देशों तथा भारत में अनुवादों की यह परंपरा प्राचीनकाल से ही चली आ रही है। संस्कृत, फारसी और देशी-विदेशी भाषाओं के ग्रंथों का अनुवाद सदैव से होता आया है, हिन्दी और बँगला में भी एक दूसरी से अनुवाद हुए हैं।

---

१. आधुनिक बँगला गान बलते ये श्रेणिर गान बुझि काते ओ नजरूलेर दान अजस्र मोर घूम घोरे एले मनोहर नमो नमो, गानगुलि मोर आहत पाखीर सम 'कुहु कुहु कुहु कुहु कोयेलिया (राग-प्रधान—न मानु गि, नामक सुपरिचित हिन्दी गानेर बाँगला रूप) प्रभृति अनेक गानेरई नामकरा याय याते नजरूलेर सुरेर वैशिष्ट्य पूर्णकात्राय प्रकट। (संगीत परिक्रमा, पृ० ६८)

२. सुपरिचित हिन्दुस्थानी ख्याल गाने अनुसरण रचित बाँगला ख्याल नजरूलेर साँगीतिक प्रतिभार आरेकटि दिक।

(संगीत परिक्रमा, पृ० १००)

यह विचारणीय विषय है कि अनुवादों को प्रभाव के अन्तर्गत रखा जाय या नहीं। केवल भाषा के रूपान्तर को प्रभाव की कोटि में नहीं रखा जा सकता। भाषान्तर बाहरी वस्तु है, पर प्रभाव भीतरी तत्व है।

श्री सी० रेविन अनुवाद की परिभाषा करते हैं—"अनुवाद वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कथित अथवा लिखित कथन एक भाषा जिसमें अनुवाद हुआ हो, अभीष्ट और परिकल्पित कथन अर्थ के साथ उस भाषा में पहले ही विद्यमान हो जिस भाषा से अनुवाद हुआ हो प्रकट हो जाये। इसमें एक अर्थ अथवा कुछ सत्यांश की ओर संकेत करते हुए संदर्भ आदि दो विभिन्न तत्वों का समावेश होता है। हम उस भाषा को जिसमें पूर्ववर्ती कथन अंकित हो 'अ' तथा उस भाषा को जिसमें अर्थ का परिवर्तन हुआ हो 'ब' कहेंगे।[1]

कई अनुवाद पुनसृंष्टि (Re-creation) भी होते हैं, जैसे—गुरुदेव की अंग्रेजी गीतांजलि केवल बँगला-गीतांजलि का अनुवाद मात्र ही नहीं है वह पुनसृंष्टि भी है। इसी Re-cretion या Re-construction से मिलता-जुलता अनूकूलन (Adaptation) है। वही अनुवाद सर्वोत्तम माना जा सकता है, जो मूल लेखक या कवि के भाव और भाषा को क्षति पहुँचाये बिना दूसरी भाषा में उसके मर्म या आत्मा (Spirit) को पहुँचा दे, पूर्णतया प्रेषित (Transmit) कर दे।

अनुवाद ग्रंथ भाषाओं के पारस्परिक-सम्पर्क के द्योतक होते हैं। वे प्रभाव के लिये सामग्री भी उपस्थित करते हैं। किंतु यह आवश्यक नहीं है कि जिस भाषा में अनुवाद हुआ हो उस भाषा को अनूदित ग्रंथ ने प्रभावित किया ही हो। इस प्रभाव का निषेध भी निश्चितता के साथ नहीं किया जा सकता। उसके लिये हमें स्वतंत्र साक्षी, भाव और भाषा के सामने से ही निश्चितता के लिये आधार लेना पड़ेगा। जो अनुवाद विचारधाराओं में परिवर्तन लाये, भावों में परिष्कार करें या नये प्रयोगों अथवा नयी शब्दावली को प्रचलित करें, नई साहित्यिक-विधाओं को जन्म दें, वे ही प्रभाव के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं।

अनुवाद ग्रंथ भी भाषा और भावों में परिवर्तन लाते हैं। क्योंकि यह एक

1. Translation is a process by which a spoken or written utterance takes place in one language which is intended and presumed to convey the same meaning as a previously existing utterance in another language.

It thus involves two distinct factors, a meaning, or a reference to some slice of reality. We shall call the language in which the first, pre-existing utterance is couched language A, and language into which the meaning is trensferred language B.

—Aspects of Translation, Studies in Communication—2.

सोचने की बात है कि अनुवाद का कोई मूल्य या महत्त्व नहीं हो तो अनुवाद केवल कोरी बाल्य-क्रीड़ा होगी। अनुवाद के भी कारण होते हैं। कुछ कारण इस प्रकार हो सकते हैं :—

(१) किसी कवि या ग्रंथ-विशेष का उच्च साहित्यिक गौरव।

(२) आवश्यकतावश अभाव की पूर्ति के लिये।

१. जो ग्रंथ या कवि साहित्यिक सौन्दर्य सम्पन्न होता है, उसके ही अधिक अनुवाद होते हैं। विश्व के बड़े-बड़े कवि इसके साक्षी हैं। कालीदास, तुलसीदास, शेक्सपीयर और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के ग्रंथों के अनुवाद संभवतः विश्व की प्रत्येक सभ्य भाषा में प्राप्त होते हैं। गुरुदेव ने कबीर के सौ पदों का अनुवाद उनके दार्शनिक गांभीर्य और भाव-सौन्दर्य से प्रभावित होकर किया था।

२. श्री ईश्वरचन्द विद्यासागर ने हिंदी वैताल पच्चीसी का अनुवाद बँगला में आवश्यकतावश अभाव की पूर्ति के लिये किया था। अतः अनुवादों से भी एक भाषा का दूसरी भाषा पर प्रभाव होता है। अनुवाद भी अनुकूल धाराओं को प्रभावित करते हैं। कबीर के अनुवाद रहस्यवादी विचारधारा को बल प्रदान करते हैं। तुलसी-ग्रंथों के अनुवाद भक्तिधारा को अवश्य पुष्ट करते हैं। मीराँ के पदों के अनुवाद दाम्पत्य-प्रेम की वल्लरी को रस-सिंचित करते हैं। 'वोल्गा से गंगा' अनुवादक की साम्यवादी विचारधारा को अवश्य अनुप्राणित करती है। केवल अनुवाद भी उन भावधाराओं को प्रभावित करते हैं जहाँ प्रभाव के पुष्प प्रस्फुटित होते हैं।

अतः हिंदी से बँगला में अनुवादों की परम्परा मध्यकाल से ही है। हिंदी भक्तमाल का अनुवाद बँगला भक्तमाल कहा जाता है, किंतु यह पक्तिशः अविकल अनुवाद नहीं है, यह Adaptation है। अवलंबन या आधार भी (Adaptation) अनुवाद या रूपान्तर (Translation) का एक रूप कहा जा सकता है। अनुवादों और आधारित-ग्रंथों (Adapted-Works) में भी अन्तर है। अविकल अनुवाद, समश्लोकी, समछंदी, पंक्ति प्रति पंक्ति अनुवाद को ही अनुवाद कहा जाता है। भावानुवाद को भी अनुवाद कहेंगे। भावानुवाद में भाव वही रहता है, किसी मात्रा में शब्दावली में अवश्य परिवर्तन हो जाता है। वह अनुवाद पंक्ति प्रति पंक्ति नहीं होता। आधार लेकर जो अनुवाद होते हैं उसमें भाषा का तो रूपान्तर होता ही है। भावों को भी परिस्थिति अनुकूल घटाया-बढ़ाया जा सकता है। आधार लेकर पुराने भावों को नई भाषा के साँचे में ढाला जाता है। नये साँचे में ढालने से सामग्री में भी कुछ परिवर्तन हो जाता है। आधारित अनुवाद नये प्रभावों के द्योतक होते हैं। ऐसे अनुवादों में अनुकूलन क्षमता रहती है।

किसी अंश में यह बात भी सही है कि एक अनुवाद का दूसरी भाषा में होने से

कुछ तो अपनी मूलभाषा की प्रकृति लाता है और कुछ अपनी नई भाषा की प्रकृति को ग्रहण करता है। हर एक अनुवाद थोड़ी-बहुत मात्रा में एक नवसृष्टि होती है। वह उस भाषा की सम्पन्नता को बढ़ाता है। यह तो विचारने की बात रहेगी कि हिंदी-ग्रंथों के अनुवादों ने बँगला भाषा और साहित्य को कहाँ तक प्रभावित किया है। किंतु उन्होंने बंगभारती की समृद्धि को अवश्य बढ़ाया है।

हिंदी-ग्रंथों का अनुवाद अथवा अवलंबन बँगला में काफी समय से ही होता आया है। नाभादास जी के भक्तमाल का आधार लेकर लालदास बाबाजी ने, साधन की मैनासत का अवलंबन लेकर दौलतकाजी ने और जायसी की पद्मावत का आश्रय लेकर आलाओल ने बँगला साहित्य में नयी- साहित्यिक परम्पराओं को जन्म दिया, जिसके कारण बँगला-साहित्य के इतिहास में एक नया मोड़ उत्पन्न हुआ। हिंदी की अनेक पुस्तकों का आधार लेकर और अनुवाद करके इस्लामिक बँगला-साहित्यकारों ने बँगला साहित्य और भाषा की श्रीवृद्धि की।

किंतु जिसे ठीक अनुवाद या भाषान्तर कला कहा जाता है, वह आधुनिक युग में ही प्रचार में आयी है। आधुनिक काल में हिंदी-ग्रंथों का अनुवाद बँगला में हुआ है। अतः हिंदी से बँगला में अनूदित समस्त ग्रंथों की तालिका प्रस्तुत करना अपेक्षित नहीं है। यहाँ स्थाली-पुलाक न्याय से कुछ पुस्तकों की तालिका दी जाती है।

१. 'अनासक्तियोग'—ले० महात्मा गाँधी, अनु० विनयकृष्ण सेन १३३२ बंगाब्द, नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
२. 'अस्पृश्यों की मुक्ति'— ,, ,, ,, ,,
३. 'कबीर'—ले० आचार्य क्षितिमोहन सेन, नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
४. 'गोदान'—ले० प्रेमचंद, अनु० श्री प्रियरंजन सेन और स्वर्ण प्रभा सेन, कलकत्ता सन् १९४५ ई०।
५. 'चित्रलेखा'—ले० भगवतीचरण वर्मा।
६. 'छत्रप्रकाश'—ले० लाल कवि।
७. 'जपजी'—ले० गुरु नानक, अनु० किरणचाँद दरवेश, १९१५ ई० बँगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता।
८. 'तुलसी ग्रंथावली' दो भाग—ले० तुलसीदास।
९. 'दादू वाणी'—ले० सन्त दादू, अनु० श्री योगेशचन्द्र मजूमदार, १३५८ बँ०।
१०. 'दोहावली'—ले० तुलसीदास, अनु० ब्रह्मानन्द चटर्जी, १२९१ बंगाब्द।
११. 'नन्ददास का भ्रमर गीत'—ले० नन्ददास, अनु० श्री जगदानन्द बाजपेयी।
१२. 'पद्मावत'—ले० मलिक मोहम्मद जायसी, अनु० सैयद आलाओल।
१३. 'प्रेमसागर'—ले० लल्लू जी लाल।

१४. 'प्रेमचन्देर गल्प'—ले० प्रेमचन्द ।
१५. 'बाण भट्ट की आत्मकथा'—ले० हजारीप्रसाद द्विवेदी, अनु० प्रियरंजन सेन, साहित्य अकादमी नई दिल्ली १६५६ ई०, वाणी मंदिर, आगरा ।
१६. 'बिहारी सतसई'—ले० बिहारीलाल, अनु० श्री सोमेन्द्रनाथ ठाकुर ।
१७. 'वैताल पच्चीसी'—अनु० ईश्वरचन्द विद्यासागर ।
१८. 'भक्तमाल'—ले० नाभादास, टीकाकार प्रियादास, अनु० लालदास बाबाजी ।
१६. 'माटी की मूर्ति—ले० श्री रामवृक्ष बेणीपुरी ।
२०. 'मीराँबाई'—अनु० अनाथनाथ वसु, १३४५ बंगाब्द ।
२१. 'मैनासत'—ले० साधन, अनु० दौलत काजी ।
२२. 'रामचरितमानस'—ले० गोस्वामी तुलसीदास, अनु० मृत्युञ्जय विद्यालंकार ।
२३. " " अनु० हरिमोहन गुप्त, बाल-काण्ड व अयोध्याकाण्ड, १७५० शकाब्द ।
२४. 'रामचरितमानस'—ले० गोस्वामी तुलसीदास, अनु० शिवप्रसाद गंगोपाध्याय, वसुमति साहित्य मंदिर ।
२५. 'रामचरितमानस'—ले० गोस्वामी तुलसीदास, अनु० भुवनचन्द्र वसाक, अरण्यकाण्ड ।
२६. 'विचारसागर'—ले० महात्मा निश्चलदास जी ।
२७. 'विनय पत्रिका'—ले० तुलसीदास, अनु० कंदर्पमोहन भट्टाचार्य, १३३५ बं० ।
२८. " " अनु० मदनमोहन चौधरी ।
२६. 'वोल्गा से गंगा'—ले० राहुल सांकृत्यायन, अनु० असीता सेन ।
३०. 'सत्यार्थ प्रकाश'—ले० महर्षि दयानन्द ।

BIB LIOGRAPHY

ENGLISH

No.	*Name of the Book.*	*Author*	*Press*	*Library*
1.	Anglo Bengali Dictionary of Colloquial expresssions.	R.P.De	22/53 Shyama Pooker Lane, Calcutta.	National Library, Calcutta.
2.	Beginning of Secular Romance in Bengali Literature.	Dr. S.N. Ghosal	Vishwa Bharti Shanti Niketan, 1959.	Vishwa Bharati, Shanti Niketan.
3.	Bengali Ramayans.	Dr. D.C. Sen	University of Calcutta 1920 A.D.	Calcutta University Central Library.
4.	Bengali Literature.	J.C. Ghosh	Oxford University Press London 1948.	Hindi Vidya Pith Agra University.
5.	Chaitanya and his Companions.	Dr. D.C. Sen	Calcutta University 1917.	Bani Mandir Library, Agra.
6.	Descriptive Linguistics.	Gleason		Hindi Vidyapith, Agra University.
7.	Dictionary of Linguistics.	Mario Apei.	Oxford University, London 1948.	,,
8.	Eastern Proverbs & Emblems.	The Rev. I. Long.	Trumbner & Co. 1871.	,,
9.	Element of the Science of Language	J.I.S. Tarapurewala	Calcutta University, 1917.	B. S. P. G., Calcutta.
10.	Encyclopaedia of Religion and Ethics.	James Hastings	Edinburgh T. Lt. Clark 38 George Street.	H.B.L. Agra University.

No.	Name of the Book.	Author	Press	Library
11.	Encyclopeadia of Americana.		The Americana Corporation, New York.	Agra University Central Library.
12.	Encyclopeadia of Brittanica.		The Brittanica Ltd.	Central Library Agra University.
13.	Folk Literature of Bengal.	Dr. D.C. Sen	Calcutta University.	National Library, Calcutta.
14.	Folk Literature of Mithila.	Dr. J.K. Misra	Tirhuta Publication, Allahabad.	,,
15.	The Grammer of the Hindi Language.	S.H. Kellog	Routledge & Kegan-paul, 29 Broadway House 68-75 Carter Lane, London.	,,
16.	A History of Bengali Literature.	Dr. Sukumar Sen	Sahitya Akadami New Delhi, 1960.	Sahitya Akadami.
17.	History of Bengali Language and Literature.	Dr. D.C. Sen	Calcutta University 1954.	National Library, Calcutta.
18.	History of Brajbuli Literature.	Dr. Sukumar Sen	Calcutta University, 1935.	,,
19.	History of Indian Philosophy Vol. III & IV.	S.N. Das Gupta	Cambridge University, 1940.	,,
20.	History of Maithili Literature Vol. I.	Dr. J.K. Misra	Tirhuta Publication Allahabad.	,,
21.	Indian Words in English.	J. Subharao	Oxford at the Clerandon Press, 1954.	H.B.L. Agra University.
22.	Indian Philosophy Vols. I & II.	Dr. S. Radhakrishanan	George Allen & Unwin Ltd. London.	,,

No.	*Name of the Book.*	*Author*	*Press*	*Library*
23.	Introduction to the Science of Languages.	A.H.Sayce		H.B.L. Agra University.
24.	Kaleidoscopic Survey of the Indian Languages	V.K. Narasinphan A.Venketecharya, V.K.N. Chari.	India G. Directories & Publications (P) Ltd. Madras 18.	,,
25.	Language.	Edward Spir	Harcourt Brace & Co., New York 1921	,,
26.	,,	Bloom Field		,,
27.	,,	J. V. Vendreys	Routledge & Keganpaul 29 Broadway House 68-75 Carter Lane, London.	,,
28.	Language its nature Development & Origin	Otto Jesperson		,,
29.	Linguistic Change.	E. H. Sturtevant	New Haven Yale University1956.	,,
30.	Linguistic Survey of India.	J. A. Greirson		National Library, Calcutta.
31.	New Hindustani Eng. Dictonary.	S. W. Fallon	R.C. Tenple Trumbre & Co., London.	Central Library
32.	Modern Vernacular Literature of Hindustan.	Greirson J. A.	Asiatic Society 57 Park St., Calcutta 16, 1889.	H.B.L. Agra University.
33.	✓Obscure Religious Cults as back ground of Bengal Literature.	Dr. S. B. Dass Gupta	Calcutta University. 1946.	National Library. Calcutta.
34.	One hundred poems of Kabir	Ravindranath Tagore	Mackellen Co. 1916 New York	,,
35.	Origin and Development of Bengali Language. Vols. I & II	Dr. S. K. Chatterji	Uuiversity of Calcutta 1926.	,,
36.	Philosophy of Ravindranath Tagore.	Dr. S. Radhakrishanan		,,
37.	Phonemics	Pike		H.B.L. Agra University.

No.	Name of the Book.	Author	Press	Library
38.	Ramkrishan Commomiration Volumes I, II, III and IV.			National Library, Calcutta.
39.	Rabindra Nath Tagore, is Works and Personality.	V. Lesny		,,
40.	Semantics.	Hughr	W.H. Northrn Co. New York 1941.	H.B.L. Agra University.
41.	Subject & Predicate.	Manfred Sardmamm	Edinburgh the University Press 1954.	,,
42.	The Religion of Man.	Rabindra Nath Tagore		National Library, Calcutta.
43.	The Vaishnava Literature of Medieval Bengal.	Dr. D.C. Sen	University of Calcutta.	H.P. Bagchi, Bani Mandir Library, Agra.
44.	The Oxford Dictionary of English Proverbs.	William George Smith	Oxford at the Clarendon Press. 1957.	H.B.L. Agra University.
45.	The Concise Oxford Dictionary.			,,
46.	The History of Bengali Language.	B. Mojumdar	University of Calcutta.	H.P. Bagchi, Bani Mandir Library, Agra.
47.	Western Influence in the Modern Bengali Literature.	Priya Ranjan Sen	B.M. Dass Gupta Saraswati Library College St. Calcutta. 1947.	,,
48.	"Les Chants Mystiques ...Les Dohakosa at Les Carya.	Dr. M. Shadidullha	Adrien Maisomn cuu. Paris.	Hindi Vidyapith, Agra University.

PERIODICALS

1. Asiatic Society of Bengal Journal.
2. Modern Review.
3. The Journal of department of Letters, Calcutta University.
4. Viswa Bharati Quarterly.

सहायक ग्रन्थों की सूची

बँगला

क्रमांक	ग्रन्थ	ग्रन्थकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
१.	अन्नदामंगल	भारतचन्द्रराय गुणाकर	बँगीय साहित्य परिषद् कलकत्ता (१३३८ बंगाब्द)	वाणी मंदिर, श्री हरप्रसाद बागची, आगरा।
२.	अप्रकाशित पद-रत्नावली	श्री सतीशचन्द्र राय	,,	बंगीय साहित्य-परिषद्, कलकत्ता।
३.	आराकान-राज-सभाय बाँगला-साहित्य	एनामुलहक अब्दुल करीम साहित्य-विशारद	१९३५ ई०	,,
४.	अभियान	ताराशंकर बंद्योपाध्याय	रंजन पबलिशिंग हाउस २५।२ मोहन बागान रो, कलकत्ता (१३५२ बं०)	वाणी मंदिर, आगरा।
५.	इस्लामिक-बाँगला-साहित्य	डॉ० सुकुमार सेन	वर्द्धमान साहित्य सभा, प्रथम संस्क-रण १३५८ बँ०	नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता।
६.	उत्सर्ग	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	विश्वभारती शांति-निकेतन, १९०२ ई०	हिन्दी विद्यापीठ पुस्तकालय, आगरा।
७.	कबीर	श्री क्षितिमोहन सेन	विश्वभारती शांति निकेतन, कलकत्ता	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
८.	श्री कृष्ण कीर्तन	चण्डीदास	बसंतरंजन राय, बंगीय साहित्य परिषद् १३२३ बंगाब्द	बंगीय साहित्य परिषद्, ग्रंथागार, कलकत्ता।

क्रमांक	ग्रंथ	ग्रंथकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
९.	क्षणदा-गीत-चिंतामणि	विश्वनाथ चक्रवर्ती	काशीनाथराय, वृन्दावन संस्करण १३१५ बं०	बंगीय साहित्य परिषद् ग्रंथागार, कलकत्ता ।
१०.	खैया	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	विश्वभारती, शांति निकेतन ।	विश्वभारती, शांति निकेतन ।
११.	गीत-चंद्रोदय	नरहरि चक्रवर्ती	हरिदास दास, श्रीधाम हरि बोल कुटीर, नवद्वीप, प्रथम संस्करण, ४६१, श्रीगोराब्द ।	
१२.	गीतांजलि	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	विश्वभारती, शांति निकेतन, १९१३ ई० ।	
१३.	गीतालि	,,	,,	
१४.	गीतिमाल्य	,,	,,	
१५.	गीत-वितान तीन खण्ड	,,	,,	साहित्य परिषद्, कलकत्ता ।
१६.	गोरख-संहिता	अज्ञात नाम कवि	बांगला साहित्येर इतिहास से उद्धृत, प्रथम खंड, वर्द्धमान साहित्य सभा ।	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता ।
१७.	गोपीचंद्रेर-गान, प्र० खंड	श्री विश्वेश्वर भट्टाचार्य	श्री दीनेशचन्द्र सेन, कलकत्ता विश्व-विद्यालय, १९२२ ई०	वाणी मंदिर, आगरा ।
१८.	गौरचरित-चिंतामणि	नरहरिदास चक्रवर्ती	स्वामी हरिदासदास श्रीधाम, हरिबोल कुटीर, नवद्वीप ।	
१९.	गौरपद तरंगिणी	श्री जगबंधु भद्र	बंगीय साहित्य परिषद कलकत्ता, संस्करण १३१० बं०	बंगीय साहित्य परिषद् कलकत्ता ।

क्रमांक	ग्रंथ	ग्रंथकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
२०.	गोविंद-दासेर पदावली	गोविन्ददास	वसुमती-साहित्य-मंदिर कलकत्ता।	बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता।
२१.	गौड़ीय-वैष्णव-जीवन	श्री हरिदास दास	श्रीधाम, हरिबोल कुटीर, नवद्वीप, प्रथम संस्करण ४६२ चैतन्याब्द।	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
२२.	गौड़ीय-वैष्णव-साहित्य	,,	,,	,,
२३.	चर्य्यापद	श्री मणिन्द्र मोहन वसु	कमला बुक डिपो, १५—बंकिम चाटुर्ज्या स्ट्रीट कालेज स्क्वायर, कलकत्ता।	वाणी मंदिर, आगरा।
२४.	चलंतिका	राजशेखर वसु	एम० सी० सरकार एंड संस लि०, १४—बंकिम चाटुर्ज्या स्ट्रीट, कलकत्ता २१।	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
२५.	चंडीदास पदावली	चंडीदास	वसुमति-साहित्य-मन्दिर १६६, बहु बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता	बंगीय साहित्य परिषद् कलकत्ता।
२६.	चैतन्य चरितामृत	कृष्णदास कविराज	राधागोविन्दनाथ, भक्ति ग्रंथ प्रचार भण्डार, ११ नं० सुरेन ठाकुर रोड, बालिगंज, कलकत्ता १३५५ बंगाब्द।	वाणी मंदिर, आगरा।
२७.	चैतन्य चरितेर उपादान	विमानविहारी मजुमदार	कलकत्ता विश्व-विद्यालय, कलकत्ता १९३९ ई०।	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।

क्रमांक	ग्रंथ	ग्रंथकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
२८.	चैतन्य भागवत	वृन्दावनदास ठाकुर	श्री सुबोधचन्द्र मजुमदार देव साहित्य कुटीर २१।१ झामा पुकुर लेन, कलकत्ता १३६३ बंगाब्द ।	वाणी मंदिर, आगरा ।
२९.	चैतन्य मंगल	श्री जयानद	नगेन्द्रनाथ वसु, कालीदास नाग, बंगीय साहित्य परिषद कलकत्ता, सं० १९०५ ई० ।	बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता ।
३०.	जयन्ती उत्सर्ग	चारुचन्द्र भट्टाचार्य	श्री जगदानंदराय, रवीन्द्र-परिचय-सभा कर्तृक-प्रकाशित १३३८ बंगाब्द ।	वाणी मंदिर, आगरा ।
३१.	जीवन-स्मृति	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	पुलिन बिहारी सेन विश्वभारती, द्वारकानाथ ठाकुर लेन, कलकत्ता ।	,,
३२.	ढोड़ाई चरित-मानस (दो चरण)	सतीनाथ भादुड़ी	बेंग्ल पबलिशर्स १४, बंकिम चाटुर्ज्या स्ट्रीट, कलकत्ता १२ ।	,,
३३.	दादू	श्री क्षितिमोहन सेन	विश्वभारती-शांति-निकेतन ।	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता ।
३४.	नाथ संप्रदायेर इतिहास-दर्शन ओ साधन प्रणाली	कल्याणी मल्लिक	कलकत्ता विश्व-विद्यालय, १९५० ई० ।	,,
३५.	पदकल्पतरु (पाँच खण्ड)	श्री वैष्णवदास	श्री सतीशचन्द्रराय, बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता	बंगीय साहित्य परिषद् ग्रन्थागार, कलकत्ता ।

क्रमांक	ग्रंथ	ग्रंथकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
३६.	पद्मावती	सैयद आलाओल	१. हबीबी प्रेस, मछुवा बाजार, कलकत्ता १३३८ बं०	बंगीय साहित्य परिषद् ग्रंथाकार, कलकत्ता।
			२. देवनागरी लिपि, डॉ० सत्येन्द्र नाथ घोषाल।	हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्व-विद्यालय।
३७.	पुरुषोत्तम रवीन्द्रनाथ	अमल होम	एम० सी सरकार एंड संस १४—बंकिम चाटुर्ज्या स्ट्रीट, कलकत्ता–१२ १३६२ बं०।	वाणी मंदिर, आगरा।
३८.	पुस्तक-परिचिति	आहमद शरीफ	बांगला-विभाग, ढाका विश्व-विद्यालय, १९५८ ई०।	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
३९.	पुंथि-साहित्य (दो खण्ड)	श्री पंचानन मंडल	विश्वभारती, शांति निकेतन १९५८ ई०	विश्वभारती पुथि-शाला, शांति निकेतन।
४०.	बंगभाषा ओ-साहित्य	डॉ० दीनेशचन्द्र सेन	कलकत्ता विश्व-विद्यालय, १९१४ ई०।	कलकत्ता विश्व-विद्यालय, केन्द्रीय पुस्तकालय।
४१.	बंग-साहित्य-परि-चय (दो भाग)	,,	,,	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
४२.	बाँगला-पुंथि-साहित्य		ढाका विश्व-विद्यालय, पाकि-स्तान १९५८ ई०	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
४३.	बाँगला-क्रिया-पदेर तालिका	डॉ० रवीन्द्रनाथ ठाकुर	विश्वभारती, शान्ति निकेतन	हिन्दी विद्यापीठ, आगरा।
४४.	ब्रह्म संगीत	श्री कार्तिक चन्द्र	नं० ११, कार्नवा-लिस स्ट्रीट ब्राह्म मिशन यंत्र, ब्राह्म सम्वत् ६३।	वाणी मंदिर, आगरा।

क्रमांक	ग्रंथ	ग्रंथकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
४५.	बांगला प्राचीन पुथिर विवरण	अब्दुल करीम, साहित्य विशारद	बंगीय साहित्य परिषद् १३२० बंगाब्द।	बंगीय साहित्य परिषद् ग्रन्था-गार।
४६.	बांगलार बाउल	श्री क्षितिमोहन सेन	कलकत्ता विश्व-विद्यालय १९५४ ई०।	नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता।
४७.	बांगलार वैष्णव भावापन्न मुसल-मान कवि	श्री यतीमोहन भट्टाचार्य	बुक सोसाइटी आव इंडिया लि०, २ बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता १३५६ बंगाब्द।	वाणी मंदिर, आगरा।
४८.	बांगलार-बाउल या बाउल गीत	श्री उपेन्द्रनाथ भट्टाचार्य	ओरियंट बुक कम्पनी, ९ श्याम चरन दे स्ट्रीट, कलकत्ता १२। प्रथम सं० १३६४ बंगाब्द।	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
४९.	बांगला-विश्वकोश	नगेन्द्रनाथ वसु	बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता।	बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता।
५०.	बांगला भाषा तत्त्वेर भूमिका	डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी	कलकत्ता विश्व-विद्यालय, प्रथम संस्करण १९४६।	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
५१.	बांगला-साहित्य	डा० मनोमोहन घोष	इण्डियन पब्लिसिटी सोसाइटी, २१-बलराम घोष स्ट्रीट, कलकत्ता।	,,
५२.	बांगला-प्रवाद	डॉ० सुशील कुमार दे	ए मुखर्जी एण्ड कम्पनी लि०, २-कालेज स्क्वायर, कलकत्ता। द्वितीय संस्करण १३५९ बंगाब्द।	वाणी मन्दिर, आगरा।

क्रमांक	ग्रंथ	ग्रंथकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
५३.	बाँगाली ओ बाँगला साहित्य	प्रमथनाथ विशी	श्री शचीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय बेंगल पबलिशर्स, १४ बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता १२।	वाणी मन्दिर, आगरा।
५४.	बाँगला-साहित्येर इतिहास (चार भाग)	डॉ० सुकुमार सेन	वर्द्धमान साहित्य सभा, वर्द्धमान।	बंगीय साहित्य-परिषद ग्रंथागार. कलकत्ता।
५५.	बाँगाली संस्कृति	गोपाल हलधर	प्रफुल्ल राय अग्रणी-बुक क्लब, १६-वृन्दावन वसु लेन, कलकत्ता १९४७ ई०।	वाणी मन्दिर, आगरा।
५६.	बाँगला साहित्येर रूपरेखा (तीन भाग)	गोपाल हालदार	ए मुखर्जी एण्ड सन्स प्राइवेट लिमिटेड २-कालेज स्कवायर कलकत्ता १२ १३६२ बङ्गाब्द।	बंगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता।
५७.	बाँगला भाषार अभिधान (२ भाग)	श्री ज्ञानेन्द्रमोहन दास	दी इण्डियन पबलिशिंग हाउस, २२।१ कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता १३३५ बंगाब्द।	"
५८.	बाँगला साहित्येर इतिवृत्ति (कथा)	श्री भूदेव चौधरी		नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
५९.	बाँगला साहित्येर कथा (प्रथम भाग)	डॉ० मोहम्मद शहीदुल्ला	पाकिस्तान १९५८ ई०	नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता।
६०.	बाँगला साहित्येर कथा	डॉ० सुकुमार सेन		नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता।
६१.	बाँगला साहित्य (दो खण्ड)	श्री मणीन्द्रमोहन वसु	श्री क्षीरोदलालदत्त कमला बुक डिपो, १५-बंकिम चाटुर्ज्या स्ट्रीट, कलकत्ता (१९४६)	वाणी मंदिर आगरा।

क्रमांक	ग्रंथ	ग्रंथकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
६२.	बाँगला साहित्ये मुसलमानेर अवदान	डॉ० दीनेशचन्द्र सेन		बंगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता।
६३.	बाँगालीर गान	श्री दुर्गादास लाहिड़ी	बंगवासी, ३८।२ भवानी चरणदत्त स्ट्रीट, कलकत्ता (१३१२ बंगाब्द)।	वाणी मंदिर, आगरा।
६४.	बाँगला प्राचीन पुथिर विवरण तृतीय खण्ड सि०२	बसंतराय रंजन और ताराप्रसन्न भट्टाचार्य		बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता।
६५.	विचित्र साहित्य	डॉ० सुकुमार सेन	श्री अम्बिका प्रसाद विश्वास, इस्ट एण्ड कम्पनी, ५२ केशव चन्द स्ट्रीट, कलकत्ता ६, १९५६ ई०।	वाणी मंदिर, आगरा।
६६.	बेताल पंचविंशति	श्री ईश्वरचन्द विद्यासागर	श्री सुनीतिकुमार चटोपाध्याय, रंजन पबलिशिंग हाउस, २५।२ मोहन बागान रो, कलकत्ता, १३४६ बंगाब्द।	,,
६७.	वैष्णव पदावली	डा० दीनेशचन्द्र सेन	कलकत्ता विश्व-विद्यालय तीसरा संस्करण १९४६।	नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता।
६८.	वैष्णव महाजन पदावली	श्री उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय	वसुमति साहित्य मन्दिर, कलकत्ता।	श्री बुद्धदेव भट्टाचार्य की निजी पुस्तक।
६९.	बौद्ध गान ओ दोहा	म० म० हरप्रसाद शास्त्री	बंगीय साहित्य परिषद ग्रंथागार, १३२४ बंगाब्द १९११ ई०प्रथमबार	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।

क्रमांक	ग्रंथ	ग्रंथकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
७०.	भक्तमाल ग्रन्थ	श्री लालदास बाबाजी	श्री अविनाश चन्द्र मुखोपाध्याय कवि-भूषण श्री पूर्णचन्द्र शील, ४०, गरान हाट स्ट्रीट, कलकत्ता। १३५० बंगाशब्द।	वाणी मन्दिर, आगरा।
७१.	भक्तमाल ग्रंथ	श्री लालदास बाबाजी	उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, वसुमती साहित्य मन्दिर, द्वि० सस्करण, कलकत्ता।	वाणी मंदिर, आगरा।
७२.	भक्ति-रत्नाकर	नरहरि चक्रवर्ती	स्वामी हरिदासदास नवद्वीप, हरिबोल कुटीर, चैतन्याब्द ४२६।	बंगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता।
७३.	भक्त कबीर	अध्यापक उपेन्द्र कुमार दास	ओरियन्ट बुक कम्पनी ९, श्याम-चरण दे स्ट्रीट कलकत्ता १२। १९५५ ई०।	वाणी मन्दिर, आगरा।
७४.	भारतचन्द्र ग्रंथावली	भारतचन्द्रराय गुणाकर	बंगीय साहित्य परिषद् २४३।१ अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता १३५७ बंगाब्द।	वाणी मंदिर, आगरा।
७५.	भानुसिह ठाकुरेर पदावली	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	विश्वभारती, शान्ति निकेतन।	विश्वभारती पुस्तकालय, शान्ति निकेतन।
७६.	भारतेर साधक (चार खण्ड)	शंकरनाथ राय	श्री सुधीर मुखर्जी राइटर्स संडीकेट, ८७, धर्मतल्ला स्ट्रीट कलकत्ता—१३।	वाणी मंदिर, आगरा।

क्रमांक	ग्रंथ	ग्रंथकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
७७.	भारतेर मध्ययुगेर साधनार धारा	आचार्य क्षितिमोहन सेन		नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
७८.	भाषार इतिवृत्त	डा० सुकुमार सेन	वर्द्धमान साहित्य सभा, वर्द्धमान।	बंगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता।
७९.	मध्ययुगेर कवि ओ काव्य	श्री शंकरीप्रसाद वसु	जनरल प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स लि०, ११९ धर्मतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता।	वाणी मन्दिर आगरा।
८०.	मानुषेर धर्म	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	विश्वभारती ग्रन्थालय २, बंकिम चाटुर्ज्या स्ट्रीट, कलकत्ता १९४६ ई०।	वाणी मंदिर, आगरा।
८१.	मीराँबाई	श्री अनाथनाथ वसु	इण्डियन असोसियेटेड पब्लिशिंग को० प्रा० लि० ९३, हरिसन रोड, कलकत्ता-६ चतुर्थ संस्करण १३६४ बँ०।	नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता।
८२.	मीराँबाई	श्री ब्रजनन्दनसिंह	आथर्स कारनार, १९३, कार्नवालिस स्टीट, कलकत्ता १९५८ ई०।	लेखक के पास
८३.	मृणालिनी	श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी	बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता। १३४५ बंगाब्द।	वाणी मंदिर, आगरा।
८४.	मैमनसिंह गीतिका (पूर्व बंगगीतिका)	डॉ० दीनेशचन्द्र सेन	कलकत्ता विश्वविद्यालय १९५८।	नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता।
८५.	रवीन्द्र-काव्य-प्रवाह	श्री प्रमथनाथ विशी	श्री गौरीशंकर भट्टाचार्य मित्रालय, १०, श्यामचरण दे स्ट्रीट, प्रथम खण्ड १३५५ बंगाब्द, द्वि० खंड, १३५६ बं० कलकत्ता।	वाणी मंदिर, आगरा।

क्रमांक	ग्रंथ	ग्रंथकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
८६.	रवीन्द्र साहित्य परिक्रमा (प्र० खंड)	उपेन्द्रनाथ भट्टाचार्य	रमाप्रसाद मित्र, दी बुक हाउस, १५ कालेज स्कवायर, कलकत्ता (प्र० संस्करण १३५४ बंगाब्द)	वाणी मंदिर, आगरा।
८७.	रवीद्र जीवनी या साहित्य प्रवेशिका (चार भाग)	श्री प्रभातकुमार मुखोपाध्याय	विश्वभारती-शांति निकेतन, विश्व-भारती ग्रंथालय, २, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता (१३५५ बंगाब्द)	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता। वाणी मन्दिर, आगरा।
८८.	रवीन्द्र जिज्ञासा	श्री तपनकुमार बंद्योपाध्याय	अजीतकुमार बंद्योपाध्याय, शाँति लाइब्रेरी, कलकत्ता।	वाणी मन्दिर, आगरा।
८९.	रवीन्द्रनाथ	श्री नलिनीकान्त गुप्त	रामेश्वर एण्ड को०, चन्दन नगर, १३४९ बंगाब्द।	वाणी मन्दिर, आगरा।
९०.	रवीन्द्र काव्य-निर्झर	श्री प्रमथनाथ विशी	श्री सुरेशचन्द्रदास, जनरल प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स ११९, धर्मतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता (१३५३ बंगाब्द)	वाणी मन्दिर, आगरा।
९१.	रवीन्द्र प्रतिभार परिचय	खुदी रामदास	२२, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता-६ (१३६० बं०)	वाणी मन्दिर, आगरा।
९२.	रवीन्द्र विचित्रा	प्रमथनाथ विशी	श्री प्रह्लादकुमार प्रामाणिक, ओरियंट बुक कं० ९, श्यामचरण दे स्ट्रीट, कलकत्ता-१२।	वाणी मन्दिर, आगरा।

क्रमांक	ग्रन्थ	ग्रन्थकार	प्रस एवं समय	पुस्तकालय
६३.	रवीन्द्रनाथेर-सौंदर्य-दर्शन	प्रवास जीवन चौधरी	श्री अमियरतन मुखोपाध्याय, ए० मुखर्जी एण्ड कं० (प्राइवेट) लि०, २, कालेज स्क्वायर, कलकत्ता १२। प्रथम प्रकाश (२५ बैसाख १३६३ बंगाब्द)	वाणी मन्दिर, आगरा।
६४.	रवीन्द्र दर्शन	श्री हिरण्यमय बंद्योपाध्याय।	साहित्य संसद्, ३२ ए० अपर, सरकूलर रोड, कलकत्ता-६। (द्वि० संस्करण १३६३ बं०)	वाणी मन्दिर, आगरा।
६५.	रवि रश्मि (दो खण्ड)	चारुचन्द्र बंद्योपाध्याय	ए. मुखर्जी एण्ड कम्पनी कलकत्ता, १३४६ बंगाब्द।	वाणी मन्दिर, आगरा।
६६.	रवीन्द्र रचनावली (समस्त खण्ड)	श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	विश्व भारती शांति-निकेतन। २, बँकिम चाटुर्ज्या स्ट्रीट कलकत्ता। पुनर्मुद्रण १३५८ बँ०।	नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता, आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ आगरा।
६७.	रवीन्द्र संगीत	श्री शांतिदेव घोष	विश्वभारती ग्रंथालय, २, बँकिम चाटुर्ज्या स्ट्रीट, कलकत्ता (१३६५ बँगाब्द)	वाणी मन्दिर, आगरा।
६८.	रवीन्द्र-साहित्येर परिचय	डॉ० सचीन सेन	रीडर्स कर्नार ५, शँकर घोष लेन, कलकत्ता-६।	वाणी मन्दिर, आगरा।

क्रमश:	ग्रंथ	ग्रन्थकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
९९.	रवि परिक्रमा	श्री कनक बंद्योपाध्याय	ए. मुखर्जी एण्ड को० लि० २, कालेज स्क्वायर कलकत्ता १२। १३६० बगाब्द।	वाणी मन्दिर, आगरा।
१००.	राग श्रो रूप (प्रथम भाग)	स्वामी प्रज्ञानानन्द	श्री रामकृष्ण वेदान्त आश्रम दार्जलिंग। १९५७ ई०।	वाणी मदिर, आगरा।
१०१.	रामनिधि गुप्त	ईश्वरचन्द्र गुप्त	श्री भवतोषदत्त १९५८ ई०।	सम्पादक की निजी पुस्तक।
१०२.	रामरसायण	श्री रघुनंदनदास गोस्वामी	आहिरी टोला कामारपाड़ा स्ट्रीट, १०-विद्यारत्न चन्द्र कलकत्ता।	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
१०३.	रामायण	कृत्तिवास ओझा	डा० दीनेशचन्द्र सेन बंगीय-साहित्य, परिषद्, कलकत्ता।	बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता।
१०४.	विचित्र-साहित्य (प्रथम खण्ड)	डॉ० सुकुमार सेन	श्री अम्बिकापद विश्वास ११५, सीताराम घोष स्ट्रीट कलकत्ता-९।	वाणी मन्दिर, आगरा।
१०५.	विद्यापति पदावली	खगेन्द्रनाथ मित्र एवं विमानविहारी-मजुमदार	श्री सुधीरकुमारदास गुप्त, कमला प्रिंटिग वर्कस, ३ नं० काशीमित्र घाट स्ट्रीट, बागबाजार, कलकत्ता, नूतन संस्करण, १३५९ बं०।	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
१०६.	विद्यापति चण्डीदास	चारुचन्द्र बंद्योपाध्याय	सुबोधचन्द्र मजूमदार, देव साहित्य कुटीर, २२।५ झामापुकुर लेन, कलकत्ता।	वाणी मंदिर, आगरा।

क्रमशः	ग्रंथ	ग्रन्थकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
१०७.	विद्यापति ठाकुरेर पदावली	नगेन्द्रनाथ वसु	वसुमति साहित्य मन्दिर	बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता।
१०८.	विद्यासागर ग्रंथावली	ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	श्री सुनीतिकुमार चटोपाध्याय, रंजन पब्लिशिंग हाउस, २५।२ मोहन बागान, रो, कलकत्ता, १३६४ बं० ।	वाणी मंदिर, आगरा ।
१०९.	षोड़श शतकेर बांगला साहित्य	श्री त्रिपुराशंकर सेन	एस० चक्रवर्ती प्रफुल्लकुमुद लाइब्रेरी, ५ नं० श्यामाचरण दे स्ट्रीट कलकत्ता-१२ । १३६१ बं० ।	वाणी मंदिर, आगरा ।
११०.	संगीत परिक्रमा	नारायण चौधरी	इंडियन आरगेनाइजिग पब्लिशिंग को० लि०, ९३, हरिसन रोड, कलकत्ता १३६२ बंगाब्द ।	वाणी मन्दिर, आगरा ।
१११.	संगीत मंजरी	रामप्रसन्न बंद्योपाध्याय	४८, बहु बाजार स्ट्रीट, १३३५ बं०	दिल्ली विश्वविद्यालय पुस्तकालय
११२.	संगीत ओ संस्कृति (प्रथम तथा उत्तर भाग)	स्वामी प्रज्ञानानंद	श्री रामकृष्ण वेदान्त मठ, कलकत्ता। १९५३ ई० ।	वाणी मन्दिर, आगरा ।
११३.	साहित्य प्रकाशिका	श्री प्रबोधचन्द्र बागची	कालिदास चटोपाध्याय विद्याभवन, विश्वभारती, शांतिनिकेतन ।	नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता ।
११४.	साहित्य साधक चरितमाला (चारों खण्ड)		बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता ।	बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता।

क्रमशः	ग्रंथ	ग्रन्थकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
११५.	सांगीतिकी	दिलीपकुमार राय	कलकत्ता विश्व-विद्यालय, कलकत्ता १९३८ ई०	वाणी मन्दिर, आगरा।

हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची--

१. चरणदासेर दोहा : चरणदास, बंगीय-साहित्य-परिषद् पुंथिशाला, कलकत्ता।

२. चंडीर गीत : रामानन्द यति, एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, कलकत्ता। पुंथिसंख्या ८०, क्रमांक ए-२० समय, १७७६ शकाब्द।

३. तुलसीदास, कबीरदास, रूपसनातन, मीराबाइर दोहा : प्राचीन बँगला-पुथिर-विवरण द्वितीय भाग, (पुंथि-परिचय प्रथम एवं द्वितीय खण्ड) श्री पंचानन मण्डल, पुंथिशाला, विश्वभारती, शांतिनिकेतन, १९५८ ई०।

४. मीराबाई : कलकत्ता विश्वविद्यालय, बँगला विभाग, पुंथिशाला, कलकत्ता।

५. पद्मावती : (आलाओल), कलकत्ता विश्वविद्यालय, बँगला विभाग, पुंथिशाला, कलकत्ता।

६. पदमेरु ग्रन्थ : पुंथिशाला, विश्वभारती, शांतिनिकेतन।

पत्र-पत्रिकाएँ--

१. उद्बोधन

२. प्रवासी

३. बंगीय-साहित्य परिषद् पत्रिका (१३००—१३६५ बं०)

४. वसुमति (मासिक)

५. विश्वभारती पत्रिका

६. युगान्तर

७. सुदर्शन

८. शनिवारेर चिठि

सहायक ग्रन्थों की सूची

हिन्दी

क्रमांक	ग्रंथ	ग्रन्थकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
१.	अपभ्रंश साहित्य	डॉ० हरवंश कोछड़	भारती साहित्य मंदिर, फुव्वारा दिल्ली। संवत् २०१३ वि०।	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
२.	अवधी-कोष	रामाज्ञा द्विवेदी समीर	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद १९५५ ई०।	सूरजमल जालान स्मृति भवन पुस्तकालय, कलकत्ता।
३.	अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (दो भाग)	डॉ० दीनदयाल गुप्त।	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग। सं० २००४ वि०	श्री नागरी प्रचारिणी सभा आगरा।
४.	आधुनिक हिन्दी साहित्य	डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, (१९५४ ई०)	हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।
५.	उर्दू हिन्दी शब्दकोश	केदारनाथ भट्ट	रामनारायणलाल, इलाहाबाद, १९५५ ई०।	,,
६.	उत्तरी भारत की सन्त परम्परा	श्री परुषराम चतुर्वेदी	भारती भंडार, लीडर प्रेस, लि०, इलाहाबाद। (सं० २००८ वि०।	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।

क्रमशः	ग्रंथ	ग्रन्थकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
७.	कबीर	आचार्य हजारी-प्रसाद द्विवेदी	हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, कार्यालय, बम्बई ।	नेशनल लायब्रेरी कलकत्ता ।
८.	कबीर ग्रंथावली	कबीरदास	श्यामसुन्दरदास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा ।	श्री नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा ।
९.	कबीर का रहस्यवाद	डॉ० रामकुमार वर्मा	साहित्य भवन लि० इलाहाबाद । १९४८ ई० ।	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता ।
१०.	कीर्तिलता (कीर्तिपताका)	विद्यापति ठाकुर		
११.	गोरखवाणी (जोगेसुरीवाणी)	डा० पीताम्बरदत्त बड़थवाल	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता ।
१२.	जायसी ग्रंथावली	जायसी	रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, १९३५ ई० ।	श्री नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा ।
१३.	तुलसी ग्रंथावली (दो खण्ड)	तुलसीदास	काशी नागरी प्रचारिणी सभा । सं० २००४ वि० ।	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता ।
१४.	तुलसी शब्द सागर	हरगोविन्द तिवारी	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग । १९५४ ई ।	श्री सूरजमल जालान स्मृति भवन, कलकत्ता ।
१५.	दादूवाणी	संत दादूदयाल		,,
१६.	दोहाकोश	महापंडित राहुल सांकृत्यायन	राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना । १९५७ ई०	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता ।
१७.	नंददास ग्रंथावली	ब्रजरत्नदास	काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं० २००६ वि ।	हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय आगरा ।

क्रमशः	ग्रंथ	ग्रन्थकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
१८.	पद्मावत	जायसी	डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी। प्रथमावृत्ति, (सं० २०१२ वि०)।	नेशनल लायब्रेरी, कलकत्ता।
१६.	पुरातत्व निबंधावली	राहुल सांकृत्यायन	इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग। १६३७ ई०।	हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।
२०.	पुरानी हिन्दी	चन्द्रधर शर्मा गुलेरी	काशी नागरी प्रचारिणी सभा, प्रथमावृत्ति। सं० २००६ वि०।	,,
२१.	फोर्ट विलियम कालेज	डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, १६४७ ई० इलाहाबाद।	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
२२.	ब्रजभाषा सूर कोश (पाँच खण्ड)	डा० दीनदयाल गुप्त	लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।	सूरजमल जालान स्मृति भवन लाई०' कलकत्ता।
२३.	ब्रजभाषा	डा० धीरेन्द्र वर्मा	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग। १६५४ ई०।	हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
२४.	बँगला साहित्य की कथा	डा० सुकुमार सेन	हिन्दी साहित्य, सम्मेलन प्रयाग, सं० २००६ वि०।	नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता।
२५.	वृहत पर्यायवाची कोश	भोलानाथ तिवारी	किताब महल, इलाहाबाद, १६५४ ई०।	हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।
२६.	बृहत हिन्दीकोश	कालिकाप्रसाद	ज्ञान मण्डल बनारस। सं० २०१३ वि०।	,,

क्रमशः	ग्रंथ	ग्रन्थकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
२७.	बिहारी भाषाओं की उत्पत्ति और विकास	नलिनी मोहन सान्याल	रामनारायणलाल, इलाहाबाद।	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
२८.	भक्तमाल	नाभादास प्रियादास की टीका सहित।	नवकिशोर प्रेस, लखनऊ। पंचम बार सन् १९४० ई०।	श्री नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा।
२९.	भक्तकवि व्यासजी	वासुदेव गोस्वामी	प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, २००९ वि०।	,,
३०.	भारत का भाषा सर्वेक्षण	जार्ज ग्रियर्सन उदयनारायण तिवारी	प्रकाशन शाखा सूचना विभाग, प्रथम संस्करण १९५९ ई०।	हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्व-विद्यालय, आगरा।
३१.	भारतीय आर्य-भाषा और हिन्दी	डा० सुनीतिकुमार चटर्जी	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९५४ ई०।	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
३२.	भारतीय संगीत का इतिहास	उमेश जोशी	—	हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्व-विद्यालय, आगरा।
३३.	भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा	परशुराम चतुर्वेदी	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९५६ ई०।	सूरजमल जालान स्मृति भवन, कलकत्ता।
३४.	मध्यकालीन धर्म-साधना	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी	साहित्य भवन, इलाहाबाद सं० २०१३।	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
३५.	मध्यकालीन प्रेम साधना	परशुराम चतुर्वेदी	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली (१९५२ ई०)	,,

क्रमश:	ग्रंथ	ग्रन्थकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
३६.	मानस-शब्द-सागर	बद्रीदास अग्रवाल ।	काशीप्रसाद विजय-कुमार अग्रवाल । १९५५ ई० । ८३, बीडन स्ट्रीट, कलकत्ता ।	सूरजमल जालान स्मृति भवन, कलकत्ता ।
३७.	मिश्रबंधु विनोद (चार खण्ड)	मिश्रबंधु	ग० पु० मा०, लखनऊ	श्री नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा ।
३८.	हिन्दी मुहावरे और कहावतें	बालमुकुन्द 'अर्श'	विद्या प्रकाशन, दिल्ली (१९५७ ई०)	हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।
३९.	मूल बीजक	कबीरदास	खेमराज श्रीकिशनदास सं०, २००८ वि० ।	श्री नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा।
४०.	मैनासत	साधन	श्री अगरचन्द नाहटा ग्रंथ वीथिका-हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ।	हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।
४१.	मैनासत	श्री हरिहरनिवास द्विवेदी	श्री उदय द्विवेदी, विद्या मंदिर प्रकाशन, ग्वालियर प्रथम संस्करण (१९५९)	डा० सत्येन्द्रजी की निजी पुस्तक ।
४२.	रवीन्द्र कविता कानन	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली । (१९५५ई०)	लेखक की निजी पुस्तक ।
४३.	राजस्थानी कहावतें	डॉ० कन्हैयालाल सहल	भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली । (१९५८)	हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ।

क्रमांक	ग्रंथ	ग्रन्थकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
४४.	राजस्थानी-कहावतें (दो भाग)	नरोत्तमदास स्वामी	राजस्थानी साहित्य परिषद् कलकत्ता। (१९५७ ई०)	हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।
४५.	राधा का विकास	डा० शशी भूषणदास गुप्त		,,
४६.	रामकथा उत्पत्ति और विकास	रेवरेंड फादर कामिल बुलके	हिन्दी परिषद, प्रयाग। विश्वविद्यालय, प्रयाग। (१९५०ई०)	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
४७.	रामचरितमानस	डा० माताप्रसाद गुप्त	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।	,,
४८.	राम पंचाध्यायी	नन्ददास	ब्रजरत्नदास-नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।	श्री नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा।
४९.	विनय-पत्रिका	गोस्वामी तुलसी दास	वियोगी हरि, साहित्य सेवा सदन, काशी (२००६ वि०)	सूरजमल जालान, स्मृति भवन, कलकत्ता।
५०.	विद्यापति की पदावली	विद्यापति ठाकुर	बसन्तकुमार माथुर, भारती भाषा भवन, दिल्ली। (२००८ वि०)	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
५१.	विद्यापति ठाकुर की पदावली	नगेन्द्रनाथ गुप्त	इंडियन प्रेस, प्रयाग, एक लिपि विस्तार परिषद्, कलकत्ता (१९१०ई०)	लेखक की निजी पुस्तक।
५२.	विद्यापति ठाकुर	उमेशचन्द्र मिश्र	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद। (१९४९ ई०)	सूरजमल जालान स्मृति भवन, कलकत्ता।

क्रमांक	ग्रंथ	ग्रन्थकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
५३.	विद्यापति (कीर्तिलता)	विद्यापति ठाकुर	बाबूराम सक्सेना, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (सं० २०१० वि०)	नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता।
५४.	संगीत शास्त्र	के० वासुदेव शास्त्री	प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, (प्र० सं० १९५८ ई०)	हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।
५५.	संस्कृत साहित्य का इतिहास (दो भाग)	कन्हैयालाल पोद्दार	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी। द्वितीय संस्करण (२०११ वि०)	,,
५६.	संगीत राग-कल्पद्रुम	श्री कृष्णानन्द राय सागर	नगेन्द्रनाथ गुप्त, बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता (१९२१ ई०)	,,
५७.	संत सुधा सार	वियोगी हरि	सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन दिल्ली (१९५३ई०)	सूरजमल जालान स्मृति भवन, कलकत्ता।
५८.	सिद्ध साहित्य	डा० धर्मवीर भारती	किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद। प्रथम संस्करण (१९५५ ई०)	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
५९.	सुन्दर ग्रंथावली	सुन्दरदास	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।	श्री नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा।
६०.	सूर की भाषा	डा० प्रेमनारायण टंडन	हिन्दी साहित्य भंडार, गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ (१९५७ ई०)	हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।
६१.	सूर ब्रजभाषा शब्दकोष (५ भाग)	डा० दीनदयाल गुप्त	लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।	सूरजमल जालान स्मृति भवन, कलकत्ता,।

क्रमांक	ग्रंथ	ग्रन्थकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
६२.	सूरसागर (२ भाग)	डा० नन्ददुलारे वाजपेयी	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (प्र० सं० २००७ वि०)	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
६३.	सोलहवीं शती के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि	डा० रत्नकुमारी	भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली (१९५७ ई०)	,,
६४.	हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय	डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल		सूरजमल जालान स्मृति भवन, कलकत्ता।
६५.	हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का त्रयोदश त्रैवार्षिक विवरण (सन्१९२६-२८ई०)	डा० हीरालाल	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी। (सं० २०१०वि०)	हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।
६६.	हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग	नामवरसिंह	साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद (१९५४ई०)	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
६७.	हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास	शमशेरसिंह नरूला	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली। (१९५७ई०)	हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।
६८.	हिन्दी उर्दू और हिन्दुस्तानी		हिन्दुस्तानी एकेडेमी ईलाहाबाद (१९३२ ई०)	डी० ए० वी० कालेज जालन्धर।
६९.	हिन्दी काव्यधारा	राहुल सांकृत्यायन	किताब महल, प्रकाशन, इलाहाबाद (१९४५ई०)	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
७०.	हिंदी बांगला अभिधान	श्री गोपालचन्द्र वेदांत शास्त्री	बंगाल मास एडूकेशन सोसाइटी, कार्नवालिस स्ट्रीट शाम बाजार, कलकत्ता-४।	हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।

क्रमांक	ग्रंथ	ग्रन्थकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
७१.	हिंदी काव्यालंकार सूत्र	आचार्य वामन	डा० नगेन्द्र, आत्माराम एंड संस, दिल्ली। (१९५५ई०)	हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।
७२.	हिन्दी प्रेमाख्यान-काव्य	डा० कमल कुल श्रेष्ठ	मथुरा प्रसाद शिवहरे, अजमेर (१९५३ ई०) प्रं० संस्करण।	,,
७३.	हिन्दी व्याकरण	कामताप्रसाद गुरु	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।	,,
७४.	हिन्दी भाषा का इतिहास	डा० धीरेन्द्र वर्मा	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, प्रयाग (१९५३ ई०)	,,
७५.	हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास	उदयनारायण तिवारी	साहित्य भवन, इलाहाबाद (१९५७ ई०)	,,
७६.	हिन्दी मुहावरा कोश	भोलानाथ तिवारी	किताब महल, इलाहाबाद। (१९५४ई०)	,,
७७.	हिन्दी पर फारसी का प्रभाव	पं० अंबिकाप्रसाद बाजपेयी	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (द्वि० संस्करण स० २००५ वि०)	,,
७८.	हिन्दी विश्वकोश	श्री नगेन्द्रनाथ वसु	९-विश्वकोष लेन, बाग बाजार, कलकत्ता (१९२४ई०)	,,
७९.	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० रामकुमार वर्मा	रामनारायणलाल, इलाहाबाद। च० संस्करण (१९५८ ई०)	,,
८०.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (छठा संस्करण २००७ वि०)	,,

क्रमांक	ग्रंथ	ग्रंथकार	प्रेस एवं समय	पुस्तकालय
८१.	हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास	बा० गुलाबराय	साहित्य रत्न भंडार आगरा (१९५५ ई०)	लेखक की निजी पुस्तक।
८२.	हिन्दी साहित्य	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी	अत्तरचन्द कपूर एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली (१९५२ ई०)	हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।
८३.	हिन्दी साहित्य का आदिकाल	,,	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना (१९५२ ई०)	नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
८४.	हिन्दी साहित्य की भूमिका	,,	हिन्दी ग्रंथरत्नाकर, बम्बई (१९४० ई०)	,,
८५.	हिंदी विद्यापीठ ग्रंथ वीथिका		डा० विश्वनाथ प्रसाद, हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।	हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।
८६.	हिन्दी शब्दसागर	श्यामसुन्दर दास	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी। (१९२६ ई०)	,,
८७.	हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास (प्रथम भाग)	राजबली पाण्डेय	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (सं ०२०१४ वि०)	,,
८८.	हिन्दी में उच्चतर साहित्य	मंगलनाथसिंह	राजबली पाण्डेय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी प्रथम बार (सं० २०१४ वि०)	,,
८९.	हिन्दी साहित्य कोश	डा० धीरेन्द्र वर्मा	ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस (प्रथम संस्करण सं० २०१५)	,,

पत्र-पत्रिकायें :

१. अवन्तिका।
२. आलोचना।
३. कल्याण (विशेषाँक)।
४. नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका, काशी।
५. भारतीय साहित्य।
६. विशाल भारत।
७. सरस्वती।
८. साहित्य सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग।
९. साप्ताहिक हिन्दुस्तान।
१०. साहित्य-सन्देश।

अप्रकाशित प्रबन्ध :

१. मध्ययुगीन भक्ति एवं सूफी साहित्य में वार्तातत्त्व : ले० डॉ सत्येन्द्र सन् १९५७ ई०। (अब प्रकाशित)।
२. हिन्दी में अंग्रेजी के आगत शब्दों का भाषा तात्त्विक अध्ययन : लेखक डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया, अप्रैल १९५८।

अपभ्रंश

१. पउमचरिउ : लेखक—स्वयंभू, सं० आचार्य जिनविजय मुनि, डॉ० हरिवल्लभ, चुन्नीलाल भायाणी, सिंधी-जैन-शास्त्री-शिक्षापीठ—भारतीय विद्या भवन, बम्बई। प्रथम भाग, वि० सं० २००९।
२. प्राकृत-पेंगलम : चन्द्रमोहन घोष, ऐशियाटिक सोसाइटी ऑव बँगाल। १९४० ई०।

संस्कृत

१. ऋग्वेद
२. श्रीमद्भागवत
३. नारद भक्ति सूत्र (गीताप्रेस गोरखपुर)
४. वाक्य पदीयम्
५. महापुराण
६. काव्यालंकार
७. उज्ज्वल नीलमणि

सहायक ग्रन्थों की अतिरिक्त सामूहिक सूची

१. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि—डॉ० सरयूप्रसाद ।

२. काव्य परिक्रमा—श्री अजितकुमार चक्रवर्ती, विश्वभारती ग्रंथालय, १३६५ बँ० ।

३. उनविंश शताब्दीर प्रथमार्ध श्रो बाँगला साहित्य - श्री असितकुमार बंद्योपाध्याय, श्री शशिभूषणदास गुप्त ।

४. कवि जीवनी—ईश्वरचन्द्र गुप्त रचित, श्री भवतोष दत्त सम्पादित १६५८ ई० ।

५. भक्ति का विकास—डॉ० मुंशीराम शर्मा—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १६५८ ।

६. रवीन्द्र संगीतेर भूमिका—कणिका बंद्योपाध्याय, एम० सी० सरकार ।

७. रवीन्द्र काव्यालोक—अमिता मित्र ।

८. रवि प्रदक्षिण—श्री मोहितलाल मजुमदार, बँगभारती ग्रंथालय । १३६५ बँ० ।

९. रवीन्द्रनाथ—अजितकुमार चक्रवर्ती, विश्वभारती १६५८ ई० ।

१०. रवि दीपिता—श्री सुरेन्द्रनाथदास गुप्त ।

११. रवीन्द्र काव्य कालिदासेर प्रभाव—डॉ० विमलकांति समदार ।

प्रमुख साहित्यिक प्रकाशन

१. [illegible]तक काव्य परम्परा और बिहारी	डा० रामसागर त्रिपाठी	१६·००
२. [illegible] पर हिन्दी का प्रभाव	डा० ब्रह्मानन्द (थीसिस)	१५·००
३. कबीर [illegible] ग्रावली [illegible]	प्रो० पुष्पपालसिंह	१२·५०
४. मीरा [illegible]	प्रो० देशराजसिंह भाटी एम० ए०	१०·००
५. साहित्यिक निबन्ध (द्वितीय संस्करण)	डा० गणपतिचन्द्र गुप्त	८·००
६. [illegible] मीमांसा	डा० रामसागर त्रिपाठी	१०·००
७. [illegible] मुक्तक [illegible]	डा० रामसागर त्रिपाठी	७·५०
८. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ	प्रो० शिवकुमार एम० ए०	८·००
९. हिन्दी साहित्य : समस्याएँ और समाधान	डा० गणपतिचन्द्र	५·००
१०. साकेत की टीका	प्रो० ब्रजभूषण शर्मा	५·००
११. भ्रमरगीत सार : समीक्षा एवं व्याख्या	प्रो० पुष्पपालसिंह	५·००
१२. बिहारी सतसई सटीक	प्रो० विराज एम० ए०	५·००
१३. अशोक निबन्ध-सागर (चतुर्थ संस्करण)	विजयकुमार एम० ए०	५·००
१४. हिन्दी साहित्य का नूतन इतिहास	आचार्य बटुक	३·५०
१५. चिन्तामणि विवेचन	प्रो० कृष्णलाल एम० ए०	२·५०
१६. कवि प्रसाद	प्रो० भारतभूषण 'सरोज'	२·५०
१७. मैथिलीशरण गुप्त	[illegible] विनयकुमार एम० ए०	[illegible]·५०
१८. वृन्दावनलाल वर्मा	[illegible]	[illegible]·५०
१९. महादेवी वर्मा	[illegible]	२·५०
२०. [illegible] कवियों [illegible]	प्रो० देशराजसिंह भाटी एम० ए०	३·५०
२१. पन्त और उनका [illegible]	प्रो० देशराजसिंह भाटी एम० ए०	३·५०
२२. दिनकर व उनका कुरुक्षेत्र	प्रो० देशराजसिंह भाटी एम० ए०	३·५०
२३. गोदान समीक्षा	डा० रामगोपाल शर्मा	२·५०
२४. अशोक निबन्ध-माला	प्रो० शिवप्रसाद एम० ए०	३·००
२५. हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	२·५०
२६. साकेत मा[illegible]	प्रो० ब्रजभूषण शर्मा	२·५०
२७. [illegible]	आचार्य कुसुम	२·५०
२८. [illegible]	पं० नरोत्तमलाल 'नरेन्द्र'	२·५०

हिन्दी की [illegible] पुस्तकें मिलने का स्थान

अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-६